भूषण-ग्रन्थावली

(विशद भूमिका, शब्दार्थ, पद्यार्थ, ऐतिहासिक स्थानों और व्यक्तियों के परिचय सहित)

टीकाकार

पं० राजनारायण शर्मा

हिन्दी-प्रभाकर

भूमिका-लेखक

श्री देवचन्द्र विशारद

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

लाहौर

पहला संस्करण १९३७ मूल्य २)

(श्री० लाला कृष्णजसरायजी)

समर्पण

पूज्य गुरुवर देशोपकारक श्री लाला कृपाजसराय जी बी० ए०
एफ़० टी० ऐस० भूतपूर्व इन्स्पैक्टर जनरल शिक्षाभाग अलवर,
मंत्री कमर्शियल कॉलेज देहली, वर्तमान मंत्री कमार्शियल
हाईस्कूल, देहली, जिन की छत्रछाया में मैने शिक्षा
प्राप्त की और अब शिक्षण कार्य करता
हुआ साहित्य सेवा करना सीख रहा
हूँ उन्हीं के करकमलों में
यह तुच्छ भेंट सादर
समर्पित
है
ओ३म् शम् !

राजनारायण शर्मा

धन्यवाद प्रकाश

इस टीका के लिखने में हमें जिन जिन पुस्तकों से सहायता मिली है, उन की सूची यहाँ दी जा रही है। इन पुस्तको के लेखकों, इनके संग्रहकर्त्ताओं एव सम्पादक महोदयो को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

इस के अतिरिक्त हमे महामहोपाध्याय श्री० हरिनारायण जी शास्त्री, प्रोफेसर सस्कृत हिन्दू कालेज देहली; महामहोपाध्याय श्री आर्यमुनि, प्रिंसिपल सस्कृत कालेज मोगा (पजाब), श्री प० चन्द्रदत्त जी शास्त्री, राजपंडित अलवर; राजकवि जयदेव जी ब्रह्मभट्ट, अलवर; स्वर्गीय श्री प० बाबूराम जी शर्मा, एम० ए०, प्रोफेसर हिंदू कालेज देहली; श्री ला० रामजीलालजी गुप्ता, एम० ए०, साहित्य रत्न; मित्रवर आचार्य प०रामजीवन जी शर्म्मा, हिंदी प्रभाकर, साहित्य रत्न आदि महानुभावों से पर्याप्त सहायता मिली है। एतदर्थ हम इन महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

राजनारायण शर्म्मा

सहायक पुस्तकों की सूची

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल
२ भाषा और साहित्य, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
३ हिन्दी नवरत्न, श्री मिश्रबन्धु
४ छत्र प्रकाश, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
५ कविता कौमुदी, श्री रामनरेश त्रिपाठी
६ भूषण ग्रन्थावली, श्री मिश्रबन्धु
७. ,, ,, श्री रामनरेश त्रिपाठी
८ ,, ,, बगवासी प्रेस, कलकत्ता
९ ,, ,, साहित्य सेवक कार्यालय, बनारस
१० ,, ,, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
११ ,, ,, श्री ब्रजरत्नदास
१२ सपूर्ण भूषण (मराठी) इतिहास संशोधक मंडल, पूना
१३ शिवाबावनी, श्री राधामोहन गोकुलजी, कलकत्ता
१४ शिवाबावनी, पं० हरि शंकर शर्म्मा
१५ ,, ,, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१६ शिवाबावनी साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१७ ,, ,, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग
१८ छत्रसाल दशक, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१९. अलङ्कार मंजूषा, ला० भगवान दीन
२० भारती भूषण, सेठ अर्जुनदास केडिया
२१ काव्य प्रदीप, प० रामबहोरी शुक्ल
२२ मराठों का उत्थान और पतन, गोपाल दामोदर तामस्कर
23 Shivaji & His Times by J. N Sarkar
24 A History of the Maratha People by Kincaid and Parasnis
25 Life of Shivaji Maharaj by Takakhav & Keluskar
26 Medevial India by U N Ball

सूची

भूमिका भाग

कवि-परिचय	१
शिवाजी	२०
शाहूजी	४५
छत्रसाल	४६
भूषण की रचनाएँ	५५
हिन्दी के वीर-काव्य और रीति ग्रन्थो पर एक विहङ्गम दृष्टि	६२
आलोचना	७५
भूषण · रीति-ग्रन्थकार	७४
रस-परिपाक	८२
भूषण की भाषा	९०
वर्णन शैली	९६
युद्ध-वर्णन	९६
नायक-यश-वर्णन	९७
दान-वर्णन	१०२
आतक-वर्णन	१०५
काव्य दोष	१११
भूषण की विशेषताएँ	११३
जातीयता की भावना	११३
ऐतिहासिकता	११५
मौलिकता और सरल भाव व्यजना	११६
हिन्दी साहित्य मे भूषण का स्थान	११७
सशोधन	१२०

ग्रन्थ

शिवराज भूषण	१
शिवाबावनी	२८९
छत्रसाल-दशक	३५१
फुटकर	३६४
पद्यसूची	४२८

कवि-परिचय

महाकवि भूषण के वास्तविक नाम से हिन्दी जगत् अब तक अनभिज्ञ है। उनका जन्म कब हुआ, देहावसान कब हुआ, यह भी निश्चित तौर से नहीं कहा जा सकता। कवि ने अपने वंश तथा जन्मस्थान के विषय में अपने काव्य-ग्रन्थों में जो संक्षिप्त परिचय दिया है, तथा ग्रंथ-निर्माण की जो तिथि दी है, बस उनका उतना ही परिचय प्रामाणिक माना जा सकता है। उनके जीवन की अन्य घटनाएँ, उनके भाइयों की संख्या तथा नाम और उनके जन्म तथा देहावासन की तिथियाँ आदि सब अनुमान, अन्य साहित्यिक ग्रन्थों के साक्ष्य तथा किंवदन्तियों पर ही अवलम्बित हैं।

'शिवराज भूषण' के छंद संख्या २५ से २७ तक भूषण अपना परिचय यों देते हैं—"शिवाजी के पास देश-देश से विद्वान याचना (पुरस्कार-प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं; उन्हीं में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' नाम से पुकारा जाता था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यप गोत्र, धैर्यवान श्री रत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर नामक उस गाँव मे रहता था, जिसमें बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए हैं, तथा जहाँ श्री विश्वेश्वर महादेव के समान बिहारीश्वर महादेव का मन्दिर था।"

इन पद्यों में निर्दिष्ट त्रिविक्रमपुर, आधुनिक तिकवाँपुर, यमुना नदी के बाएँ किनारे पर जिला कानपुर, परगना व डाक-खाना घाटमपुर में मौजा "अकबरपुर वीरबल" से दो मील की दूरी पर बसा है। कानपुर से जो पक्की सड़क हमीरपुर को गई है उसके किनारे कानपुर से ३० और घाटमपुर से सात मील पर सजेती नामक एक गाँव है, जहाँ से तिकवाँपुर केवल दो मील रह जाता है। "अकबरपुर वीरबल" अब भी एक अच्छा मौजा है, जहाँ अकबर बादशाह के सुप्रसिद्ध मत्री, अतरग मित्र और मुसाहिब महाराज बीरबल का जन्म हुआ था। ऐसा जान पड़ता कि राजा वीरबल ने अपने आश्रयदाता तथा अपने नाम पर इस मौजे का नया नामकरण किया, पर उनसे पहले इसका क्या नाम था इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस मौजे में राधाकृष्ण का एक प्राचीन मंदिर भी वर्त्तमान है, जिसे भूषण ने विहारीश्वर का मंदिर लिखा है। इस प्रकार हम महाकवि भूषण के पिता, उनके वंश तथा गाँव के बारे में एक निश्चित निर्णय पर पहुँच जाते हैं। पर इस गाँव में भूषण के वंश का अब कोई व्यक्ति नहीं रहता।

ऐसा प्रसिद्ध है कि भूषण के पिता रत्नाकरजी देवी के बड़े से भक्त थे और उन्हीं की कृपा से इनके चार पुत्र उत्पन्न हुए—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकठ उपनाम जटाशकर। ये चारो भाई सुकवि थे। सबने पर्याप्त काव्य-ग्रन्थ लिखे, पर किसी ने भी अपने ग्रन्थ मे एक दूसरे का अथवा पारस्परिक भ्रातृत्व का उल्लेख नहीं किया। चिंतामणि, मतिराम और भूषण के भाई होने की बात कई जगह पाई जाती है। सबसे पहले हम मौलाना गुलाम-अली आज़ाद के 'तज़किरः सर्वे आज़ाद' मे इसका उल्लेख पाते हैं। जिसमे चिंतामणि के विषय में लिखा गया है कि मतिराम और भूषण चिंतामणि के ही भाई थे तथा वे कोड़ा जहानाबाद के निवासी थे। चिंतामणि सस्कृत के बड़े पण्डित थे और शाहजहाँ

के बेटे शुजा के दरबार में बड़ी इज्जत से रहते थे। यह ग्रन्थ स० १८०८ में बना था और इसके लेखक गुलामअली के पितामह मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी, सैयद रहमतुल्ला के मित्र थे जिन्होने चिन्तामणिजी को पुरस्कृत किया था। गुलामअली फारसी के सुकवि, इतिहासज्ञ तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे। अत उनके कथन को अकारण ही अशुद्ध नही माना जा सकता। इसके अतिरिक्त स० १८७२ में समाप्त हुई 'रसचन्द्रिका' के लेखक कवि बिहारीलालजी ने जो कि चरखारी नरेश राजा विजयबहादुर विक्रमाजीत तथा उनके पुत्र महाराज रत्नसिंह के दरबार के राज-कवि थे, अपना वश-परिचय अपने ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है।

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश के हीर॥
भूषण चिंतामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते कीन्हे निज निज धाम॥
है पती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल॥
कस्यपवस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत॥
विविध भाँति सनमान करि ल्याये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारीलाल॥

मतिराम के वशधर कविवर बिहारीलाल ने यद्यपि इन पद्यो में चिंतामणि, भूषण तथा मतिराम के भ्रातृत्व का स्पष्टत उल्लेख नही किया, पर उन्होंने उनके जन्मस्थान, गोत्र और कुल का स्पष्टतया- एक होना बताया है, जिससे कि गुलामअली के लेख का समर्थन होता है। महाराष्ट्र लेखक चिटणीस ने भी 'बखर' मे चिन्तामणि और भूषण के भाई होने का उल्लेख किया है। तजकिर सर्वे-आज़ाद-अथवा रसचन्द्रिका मे जटाशकर उपनाम नीलकठ

का कहीं, उल्लेख नहीं, अतः अधिक मत केवल तीन ही भाई मानता है, पर शिवसिंह-सरोज, तथा मनोहर-प्रकाश आदि ग्रंथों मे जटाशकर को भी उनका भाई माना गया है ।

कहा जाता है कि चिंतामणि सबसे बड़े भाई थे, उनसे छोटे भूषण और उनसे छोटे मतिराम थे। सवत् १८९७ में लिखे गये वशभास्कर नामक ग्रथ में लिखा है—"जेठ भ्राता भूषणरु मध्य मतिराम तीजो चिंतामणि भये ये कविता-प्रवीन।" इस प्रकार वह उलटा क्रम मानता है।

भूषण का जन्म कब हुआ, यह भी अभी निर्भ्रान्त रूप से नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह-सरोज में भूषण का जन्मकाल सवत् १७३८ विक्रमी लिखा है। कई सज्जन भूषण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते और उनके पौत्र साहू का दरबारी कवि मानते हैं। साहू ने अपना राज्याभिषेक-समारभ विक्रमी संवत १७६४में किया। 'शिवसिंह-सरोज'में लिखित भूषण का जन्मकाल मान लेने से अवश्य ही भूषण साहू के दरबारी कवि कहे जायेंगे। पर भूषण ने अपने ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' का समाप्तिकाल सवत १७३० बताया है जो शिवसिंह-सरोज मे लिखित उनके जन्मकाल से भी ८ वर्ष पहले ठहरता है। इसके अतिरिक्त भूषण-कृत 'शिवराज भूषण' में एक विशेष बात दर्शनीय है। उसमें एक काल-विशेष की घटनाओं का ही विशद वर्णन है तथा किसी भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं है जो सवत १७३० के बाद की हो। यदि भूषण शिवाजी के समकालीन न होकर उनके बाद के होते तो पहले तो वे अपने आश्रयदाता साहूजी को छोड़कर शिवाजी के यश के वर्णन में ही अधिक समय न लगाते, और यदि शिवाजी का यश वर्णन करते भी तो अपने अलंकार-ग्रथ मे साहूजी का भी उल्लेख अवश्य करते। यदि 'शिवराज भूषण' साहूजी के समय में लिखा गया हो, तो उसमें शिवाजी के १७३० के बाद के कार्यों का भी वर्णन

होना चाहिए । शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी महत्वपूर्ण घटना (जो सवत् १७३१ की है)पर भी भूषण का मौन देखकर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि भूषण का ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' शिवाजी के राज्याभिषेक से पहले ही समाप्त हो चुका था। अत' उसमें लिखा गया समाप्तिकाल ठीक ही है । अंत के समाप्तिकाल द्योतक दोहे के अतिरिक्त प्रारंभ मे भी भूषण ने शिवाजी के दरबार में जाने उल्लेख किया है । अत जब तक अन्य कोई बहुत प्रबल प्रमाण न हो तब तक कवि द्वारा लिखित तिथियों पर अविश्वास करना उचित नही प्रतीत होता । इस प्रकार महाकवि भूषण का कविताकाल १७३० के लगभग ठहरता है, और उनका जन्म उससे कम से कम ३५-४० बरस पहले हुआ होगा। मिश्रबधु इनका जन्मकाल उस से लगभग ५६ वर्ष पूर्व संवत् १६७१ (ई० सन् १६१४) मानते हैं। प्रसिद्ध विद्वान प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल १६७० माना है । पर हमें यह ठीक नही जँचता, क्योंकि यदि शिवराज भूषण की समाप्ति पर भूषण की अवस्था ६० वर्ष के लगभग मानी जाय तो साहू के राज्याभिपेक के समय भूषण ६४ वर्ष के ठहरते हैं । अत' हमारी सम्मति में इनका जन्मकाल १६६० और १७०० के बीच मे मानना चाहिये ।

किंवदन्ती है कि बचपन में ही नहीं, अपितु युवावस्था के प्रारंभ तक भूषण बिलकुल निकम्मे थे। पर उनके भाई चिंतामणि की दिल्ली-सम्राट् के दरबार मे पहुँच हो गई थी और वे ही धन कमाकर घर पर भेजते थे, जिससे घर का खर्च चलता था। चिंतामणि के कमाऊ होने पर उनकी स्त्री को भी पर्याप्त अभिमान था । एक दिन दाल में नमक कम था, भूषण ने अपनी भावज से नमक माँगा। इसपर उसने ताना मार कर कहा—हाँ बहुत सा नमक कमाकर तुमने रख दिया है न, जो उठा लाऊँ! यह व्यग्योक्ति भूषण न सह सके, और तत्काल ही भोजन छोड़ कर उठ गये

और बोले—अच्छा, अब जब नमक कमाकर लायेंगे, तभी यहाँ भोजन करेंगे। ऐसा कह भूषण घर से निकल पड़े, और इसी समय से उन्होंने कवित्व-शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया। सोती हुई कवित्वशक्ति विकसित हो उठी और वे थोड़े ही दिनों मे अच्छे कवि हो गये।

उन दिनों कविता द्वारा धनोपार्जन का एक ही मार्ग था, राज्याश्रय। इसी पथ को उस समय के अनेक कवियो ने अपनाया था। भूषण के बड़े भाई चिंतामणि भी राज्याश्रय से ही धन और मान पा रहे थे। भूषण ने भी चित्रकूटाधिपति सोलंकी 'हृदयराम सुत रुद्र' का आश्रय ग्रहण किया। उस समय साधारण कवि शृंगार रस की ही कविता करते थे। पर भूषण ने उस कविता-धारा में न बह कर वीररस की चमत्कारिणी कविता प्रारंभ की। इनकी चमत्कारिक कविताओ से प्रसन्न हो 'हृदयराम सुत रुद्र' ने इन्हे 'कवि भूषण' की उपाधि दी जैसा कि भूषण ने शिवराज भूषण के छंद सख्या २८ मे कहा है। तभी से इनका 'भूषण' नाम इतना प्रचलित हुआ कि उनके वास्तविक नाम का कहीं पता नहीं चलता।

विशाल भारत की अगस्त सन् १९३० ई० की सख्या मे कुँवर महेन्द्रपालसिंह का एक लेख निकला है। जिसमे लेखक ने बताया है कि तिकवाँपुर के एक भाट से उन्हें पता लगा है कि भूषण का असली नाम 'पतिराम' था जो मतिराम के वजन पर होने से ठीक हो सकता है। पर अभी तक इस विषय में निश्चित तौर से कुछ नही कहा जा सकता।

ये हृदयराम या रुद्रशाह सोलंकी, जिन्होंने इन्हें कवि भूषण की उपाधि देकर सदा के लिए अमर कर दिया, कौन थे, इसके विषय में भी निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता। भूषण ने सोलकी नरेश का केवल शिवराज-भूषण के छन्द २८ मे तथा फुटकर

छन्द संख्या ४१ (बाजि बंब चढ़ो साजि) मे ही उल्लेख किया है। अग्निकुल से चार क्षत्रियकुलों का जन्म हुआ कहा जाता है। जिनमे एक सोलंकी भी हैं। रुद्रशाह सोलंकी का पता तो इतिहास में नही मिलता पर उनके पिता हृदयराम का नाम मिलता है। ये गहोरा प्रान्त के राजा थे। गहोरा चित्रकूट से तेरह मील पर है। चित्रकूट पर भी इनका उस समय राज्य प्रतीत होता है। करवी जो चित्रकूट से तीन ही मील पर है, इनके राज्य में सम्मिलित था। संवत् १७२८ के लगभग महाराज छत्रसाल ने शेष बुन्देलखंड के साथ इस राज्य पर भी अधिकार कर लिया था।

रीवाँ का बघेल राजवंश सोलंकी ही है। कई कहते हैं कि इनके जमीदारो मे से बर्दी के एक बाबू रुद्रशाह हो गए हैं जिनके पिता का या बड़े भाई का नाम हरिहरशाह था।

कुछ लोग भूषण के "हृदयराम सुत रुद्र" का अर्थ रुद्र का पुत्र हृदयराम करते हैं। उनके अर्थानुसार गहोरा प्रान्त (चित्रकूट) के अधिपति रुद्रशाह के पुत्र हृदयराम ने इन्हें कवि भूषण की पदवी दी थी। पर अभी तक इस विषय में कुछ निश्चित तौर से नहीं कहा जा सकता।

कवि भूषण के सब जीवनी-लेखक इस बात में सहमत है कि भूषण ने पहले-पहल सोलंकी नरेश का आश्रय लिया था, जिन्होंने इन्हे भूषण की पदवी दी। पर इस राज्य से भूषण कहाँ गए, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि भूषण यहाँ से दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के दरबार में गये, जहाँ कि उनके भाई चिंतामणि पहले ही रहते थे। वहाँ से वे शिवाजी के यहाँ पहुँचे। दूसरो का मत है कि शिवाजी की ख्याति तथा वीरता का हाल सुनकर भूषण सोलंकी नरेश का आश्रय छोड़कर वहाँ से सीधा मराठा दरबार में गये। पहले मत वाले

भूषण के शिवाजी के दरबार में पहुँचने तक की नीचे लिखी कहानी कहते हैं।

दिल्ली पहुँचने के अनंतर अपने भाई चिंतामणि के साथ भूषण भी दरबार मे जाने लगे। एक दिन औरंगजेब ने भूषण की कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। भूषण ने कहा कि मेरे भाई चिंतामणि की शृंगार-रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर-कुठौर पड़ने के कारण गंदा हो गया होगा, पर मेरा वीर-काव्य सुनकर वह मूँछो पर पड़ेगा। इसलिए मेरी कविता सुनने से पहले उसे धो लीजिए। यह सुनकर औरंगजेब ने कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हें प्राण-दण्ड दिया जावेगा। भूषण ने इसे स्वीकार कर लिया। बादशाह हाथ धोकर सुनने बैठा। अब भूषण जी ने फड़कते स्वर में अपने वीररस के पद सुनाने प्रारम्भ किये। अंत में महाकवि भूषण का कहना ठीक निकला। बादशाह का हाथ मूँछो पर पहुँच गया। बादशाह यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भूषण को पारितोषक आदि देकर सम्मानित किया। अब भूषण का दरबार मे अच्छा मान होने लगा। पर ऐसे उत्कृष्ट छंद कौन से थे, जिन्होंने औरंगजेब का हाथ मूँछों पर फिरवा दिया था, इसका पता नहीं लगता। श्री कुँवर महेन्द्रपालसिंह जी कहते हैं कि भूषण का वह छंद निम्नलिखित था—

कीन्ह खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड वीर,
मंडल मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
हेरत हिराने ते कहूँ न ठहराने हैं॥
पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने हैं।
भूषन भनत नवखंड महि मंडल मे,
जहाँ-तहाँ दीसत अब साहि के निसाने हैं॥

भूषण ने किस प्रकार औरंगजेब का दरबार छोडा इस विषय में भी एक बड़ी सुन्दर दंत कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि एक दिन बादशाह ने कवियो से कहा कि तुम लोग सदा मेरी प्रशंसा ही किया करते हो, क्या मुझ में कोई ऐब नही है? अन्य कवि लोग तो चापलूसी करते रहे, पर जातीय कवि भूषण से चुप न रहा गया। अभय दान लेकर उन्होंने "क़िबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ"(शि. बा छ १२) तथा'हाथ तसबीह लिये प्रात उठै बन्दगी को' (शि बा छ १३) ये दो पद सुनाये। औरंगजेब का चेहरा तमतमा उठा,वह भूषण को प्राण दण्ड देने को उद्यत हो गया, पर दरबारियो ने अभय वचन की याद दिलाकर भूषण की जान बचाई। अब भूषण ने वहाँ रहना उचित न समझा और अपनी तीव्रगामी कबूतरी घोड़ी पर चढ़कर उन्होंने दक्षिण की राह ली।

भूषण जब दिल्ली को छोड़कर अपनी घोडी पर चढ़े जा रहे थे तो रास्ते मे हाथी पर चढ़ कर नमाज़ पढ़ने के लिए आता हुआ बादशाह मिला। भूषण ने उसकी ओर देखा तक नही। तब बादशाह ने एक दरबारी द्वारा भूषण से पुछवाया कि वह कहाँ जा रहा है। भूषण ने उत्तर दिया कि अब मैं छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार में रहूँगा, वही जारहा हूँ। बादशाह ने यह बात सुनकर इन्हे पकडने की आज्ञा दी, पर इन्होंने जो एड लगाई तो पीछा करने वाले मुख देखते रह गये और वे हवा हो गये।

परन्तु इस किंवदन्ती पर विश्वास करने वाले यह भूल जाते हैं कि औरंगजेब दशरथ नही था। ये दोनो छन्द सुनकर औरंग-जेब ने वचनबद्ध होने के कारण भूषण को छोड़ दिया यह बात हम नही मान सकते।

कइयों का यह भी कहना है कि जब शिवाजी दिल्ली आए

तो भूषण की भी इनसे भेंट हुई थी। यदि यह बात सत्य मानी जाय तो भूषण के दक्षिण पहुँचने की आगे दी गई कथा सत्य नहीं प्रतीत होती।

ऐसा कहा जाता है कि सध्या के समय रायगढ़ पहुँच कर भूषण एक देवालय में ठहर गये। संयोग-वश कुछ रात बीते महाराज शिवाजी छद्मवेश मे वहाँ पूजा करने के लिए गये। बात-चीत में भूषण ने अपने आने का प्रयोजन कह डाला। इनका परिचय पा कर उस तेजस्वी छद्मवेशी व्यक्ति ने इनसे कुछ सुनाने को कहा। भूषण ने उस व्यक्ति को उच्च राज-कर्मचारी विचार कर तथा उस के द्वारा दरबार में शीघ्र प्रवेश पाने की आशा कर उसे प्रसन्न करना उचित समझा तथा "इन्द्र जिमि जम्भ पर" (शि० भू० छ० ५६) फड़कती आवाज़ मे पढ़ सुनाया। उसे सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पुन. सुनाने को कहा। इस प्रकार १८ बार उस छद् को पढ़कर भूषण थक गए। उस छद्मवेशी व्यक्ति के पुन. आग्रह करने पर भी वे अधिक बार न पढ़ सके। तब अपनी प्रसन्नता प्रकट कर तथा दूसरे दिन दरबार में आने पर शिवाजी से साक्षात्कार कराने का वचन देकर उस छद्मवेशी व्यक्ति ने उनसे विदा ली। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे तो उसी छद्मवेशी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठे देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। भूषण समझ गये कि कल छंद सुनने वाले व्यक्ति स्वय शिवाजी महाराज थे। शिवाजी ने भी उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा कि मैंने यह निश्चय किया था कि आप जितनी बार उस छन्द को पढ़ेंगे, उतने ही लाख रुपये, उतने ही गाँव, तथा उतने ही हाथी आपकी भेंट करूँगा। आपने १८ बार वह छद सुनाया था, अतएव १८ लाख रुपया, १८ गाँव और १८ हाथी आपकी भेंट किये जाते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि भूषण ने उस छद्मवेशी व्यक्ति को

प्रथम भेंट के अवसर पर केवल एक ही कवित्त १८ बार या ५२ बार न सुनाया था अपितु भिन्न-भिन्न ५२ कवित्त सुनाये थे, जो कि शिवाबावनी ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। और शिवाजी ने उन्हे ५२ हाथी, ५२ लाख रुपये तथा ५२ गाँव दिये थे। कुछ भी हो इतना निर्विवाद है कि भूषण के कवित्त शिवाजी ने सुने अवश्य थे और प्रसन्न होकर उन्हें प्रचुर धन भी दिया था। कहते हैं कि भूषण ने उसी समय नमक का एक हाथी लदवा कर अपनी भाभी के पास भेज दिया।

शिवाजी से पुरस्कृत होने के अनन्तर भूषण उनके दरबार मे राजकवि पद पर प्रतिष्ठित हुए और वहाँ रहकर कविता करने लगे। हिन्दूजाति के नायक तथा स्वन्तत्र हिन्दू राष्ट्र की सर्व प्रथम कल्पना करनेवाले शिवाजी के उन्नत चरित्र को देखकर महाकवि भूषण के चित में उस को भिन्न-भिन्न अलकारों से भूपित कर वर्णन करने की इच्छा उत्पन्न हुई*। तदनुसार शिवराज भूषण नामक ग्रथ की रचना हुई, जिसमें भूषण ने अलंकारों के लक्षण देकर उदाहरणो में अपने चरित्र नायक शिवाजी के चरित्र की भिन्न-भिन्न घटनाओं, उनके यश तथा दान और उनकी महत्ता का ओजस्वी छंदों में उल्लेख किया। वीर रसावतार नायक के अनुरूप ही ग्रथ मे भी वीर-रस का ही परिपाक है। यह ग्रंथ शिवाजी के राज्याभिषेक से प्राय: एक वर्ष पूर्व सवत १७३० में समाप्त हुआ, जो कि उसके छन्द सख्या ३८२ से स्पष्ट है। कुछ लोग उसकी समाप्ति सवत् १७३० के कार्त्तिक या श्रावण मास में मानते हैं, और कुछ लोग प्रथम पक्ति का पाठान्तर करके उसकी समाप्ति ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी को मानते हैं। पिछले मत के पोपक अधिक हैं।

---

* शिव-चरित्र लखि यों भयो कवि भूषण के चित्त।
भाँति-भाँति भूषणनि सों भूषित करों कवित्त ॥

यहाँ पर यह प्रश्न विचारणीय है कि भूषण शिवाजी के दरबार मे कब पहुँचे, और वहाँ कब तक रहे। इस प्रश्न के बारे में भी हमें भूषण के ग्रन्थों का ही सहारा लेना पड़ता है। भूषण ने शिवराज-भूषण के १४वे दोहे मे लिखा है—

दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़ बास॥

और उसके बाद कई छन्दों मे उसी रायगढ़ का वर्णन किया है। आगे भी तद्गुण अलंकार में रायगढ़ की विभूति का वर्णन है। इतिहास को देखने से पता चलता है, कि स० १७१९ (सन् १६६२) मे शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। शाहजी की मृत्यु होने पर शिवाजी ने अहमद नगर द्वारा प्राप्त पैतृक राजा की उपाधि को धारण कर संवत् १७२१ (सन १६६४) मे रायगढ़ में टकसाल खोली थी।

भूषण का कथन इस ऐतिहासिक तथ्य का समर्थन करता है, अत. यह तो निश्चित है कि भूषण शिवाजी के पास तभी पहुँचे होंगे, जब वे रायगढ़ में वास कर चुके थे और राजा की उपाधि धारण कर चुके थे।

मिश्रबन्धुओं का मत है, कि भूषण संवत् १७२४ (सन् १६६७) मे शिवाजी के पास गये। इसके लिए वे निम्न-लिखित युक्ति देते है—यदि भूषण संवत् १७२३ (सन् १६६६) से पहले शिवाजी के पास पहुँचे होते तो जब शिवाजी औरंगजेब के दरबार मे गए थे, तब भूषण दक्षिण से अपने घर मे चले आये होते। और फिर एक ही साल मे यात्रा के साधनों के अभाव मे इतना लंबा सफर करके अपने घर से फिर महा-राष्ट्र देश तक न पहुँच सकते। मिश्रबन्धुओं की यह युक्ति

एकदम उपेक्षणीय नहीं, अतः हम समझते हैं कि भूषण सं० १७२० या १७२४ मे शिवाजी के दरबार में पहुँचे होंगे ।

अब रहा दूसरा प्रश्न कि भूषण शिवाजी के दरबार मे कब तक रहे। और क्या भूषण शिवाजी के दरबार में एक ही बार गए अथवा दो बार। शिवराज भूषण तथा उनके अन्य प्राप्त पद्यों में शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख न देखकर जहाँ यह प्रतीत होता है कि भूषण राज्याभिषेक से पूर्व ही शिवाजी से पर्याप्त पुरस्कार पाकर अपने घर लौट आए होंगे, वहाँ फुटकर छन्द स० २५ में "दौरि करनाटक मैं तोरि गढ़कोट लीन्हें मोदी सों पकरि लोदि सेरखॉ अचानको' तथा फुटकर छद स० ३३ मे "साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब बाहुबल राखी पातसाही बीजापुर की" देख कर यह प्रकट होता है कि भूषण शिवाजी के स्वर्गवास के समय तक दक्षिण में ही थे। क्योंकि शिवाजी ने संवत् १७३४ (सन् १६७७) मे कर्नाटक पर चढ़ाई करने और अपने भाई व्यकोजी को परास्त करने के लिए प्रयाण किया था। इस प्रयाण में बीजापुर के सरदार शेरखॉ लोदी ने, जो त्रिमली महाल (आधुनिक त्रिनोमल्ली) का गवर्नर था, शिवाजी को रोकने का प्रयत्न किया था। जिसमें वह बुरी तरह परास्त हुआ था। (देखिये *A History of the Maratha People* by Kincaid and Parasnis) इसी प्रकार बीजापुर की रक्षा का काम शिवाजी के जीवन का अतिम काम था(देखिये 'मराठों का उत्थान और पतन' पृ०१५६)।

एक दो भूषण-ग्रन्थावली के सम्पादकों ने यह कल्पना की है, कि 'शिवराज भूषण' अभिषेक से ठीक १५ दिन

पहले समाप्त हुआ, और भूषण ने उस ग्रंथ का निर्माण शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर अपनी ओर से एक सुन्दर भेंट देने के विचार से ही किया था। इस तरह वे अप्रत्यक्ष तौर से भूषण का शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित होना मानते हैं। यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शिवराज भूषण समाप्त हुआ सन् १७३० में और शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ ज्येष्ठ शुक्ल १३ वि० सं० १७३१ (शक संवत् १५९६, ६ जून १६७४) को। इस तरह शिवराज भूषण राज्याभिषेक से कम से कम एक वर्ष पूर्व समाप्त हो गया था। इस तरह उनकी यह कल्पना सर्वथा निराधार है। ऐसी हालत में दो ही बातें हो सकती हैं। या तो भूषण ने शिवाजी के जीवन पर और भी कोई ग्रंथ लिखा हो, जिसमें उन्होंने शिवाजी के राज्याभिषेक आदि बातों का उल्लेख किया हो जो कि अबतक अलभ्य है †; या यह मानना पड़ेगा कि सं० १७३०(सन् १६७३) में 'शिवराज भूषण' समाप्त कर उसे अपने आश्रयदाता की भेंट कर फलतः उनसे पर्याप्त पुरस्कार पाकर भूषण कुछ दिनों के लिए अपने घर लौटे, और कुछ बरस घर पर आराम कर वे फिर दुबारा शिवाजी के दरबार में गए, जहाँ रहकर वे समय समय पर कविता करते रहे; जिन में से कुछ पद अब अप्राप्य हैं। शिवाजी का स्वर्गवास हो जाने पर भूषण भी कदाचित दक्षिण को छोड़ कर चले गए होंगे, क्योंकि उस समय मराठा

† 'शिवसिंह सरोज' के लेखक तथा अन्य विद्वान भी भूषणकृत 'भूषण हजारा' 'भूषण उल्लास' तथा 'दूषण उल्लास' ये तीन ग्रन्थ और मानते हैं, जो अब तक नहीं मिले।

राज्य एक ओर गृह कलह मे व्यस्त था, दूसरी ओर से औरंग-
ज़ेब का प्रकोप बढ़ रहा था। साथ ही शम्भाजी के दरबार में
कलश कवि की प्रधानता थी। भूषण की कविता मे शम्भाजी
विषयक कोई पद नहीं मिलता। शिवाबावनी के पद्य सख्या
४९ में कुछ लोग 'शिवा' के स्थान पर 'शम्भा' पाठ कहते हैं,
पर वह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शम्भाजी को कभी
सितारा पर चढ़ाई करने का अवसर नहीं मिला।

भूषण की प्रायः सारी कविता शिवाजी पर ही आश्रित
है, पर उसमें कहीं-कहीं कुछ पद्य तत्कालीन राजाओं पर भी
मिलते हैं, जो आटे मे नमक के समान हैं। इन पद्यों
में सब से अधिक छत्रसाल बुंदेला पर हैं। छत्रपति
शिवाजी के अनतर वीररस प्रेमी कवि को मनोनुकूल चरित-
नायक उस वीर छत्रसाल के अतिरिक्त और मिल ही कौन
सकता था, जिसने कुल पाँच सवार तथा कुछ पैदल लेकर
असीम सत्ताधारी मुगल साम्राज्य, तथा पराधीनता प्रेमी अपने
सारे रिश्तेदारों से टक्कर ली हो, उन्हें नीचा दिखाया हो और
एक स्वतत्र राज्य की स्थापना की हो। ऐसा प्रतीत होता है कि
शिवाजी के स्वर्गवासी होने के अनंतर दक्षिण से लौटते हुए
भूषण महाराज छत्रसाल के यहाँ गये होंगे और वहाँ इनका
अभूतपूर्व आदर हुआ।

छत्रसाल शिवाजी का बडा आदर करते थे, और भूषण
थे शिवाजी के राजकवि। किम्वदन्ती है कि जब भूषण वहाँ से
विदा होने लगे तो महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी का डंडा
अपने कधे पर रख लिया। भूषण यह देख कर पालकी से कूद

पड़े और उनकी प्रशसा में उन्होंने दस कवित्त पढ़े जो छत्रसाल दशक के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि महाराज छत्रसाल द्वारा किये गये सम्मान मे संदेह नही किया जा सकता, क्योंकि वे स्वय कवि थे, और कवियों का सम्मान करते थे, परन्तु छत्रसाल-दशक के सब पद एक समय मे लिखे गये नहीं प्रतीत होते।

उसमे से कुछ पदो मे छत्रसाल की प्रारभिक अवस्था का वर्णन है, और कुछ पदो मे ऐसी घटनाएँ वर्णित हैं, जो उस समय तक घटी भी न थीं। फिर भूषण को दक्षिण मे दो तीन बार जाना पड़ा था। आते जाते वे उस वीर-केसरी के यहाँ अवश्य ठहरते होंगे। और इस प्रकार भिन्न-भिन्न पद भिन्न भिन्न समय मे रचे गए प्रतीत होते हैं।

कुमाऊँ नरेश के यहाँ भूषण के जाने की किंवदन्ती भी बडी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि भूषण ने वहाँ अपना "उलहत मद अनुमद ज्यों जलधि-जल" इत्यादि छंद (फुटकर संख्या ४८) पढ़ा। और जब ये विदा होने लगे तो कुमाऊँ नरेश इन्हे एक लाख रुपया देने लगे। भूषण ने कहा—शिवाजी ने मुझे इतने रुपये दे दिये है कि मुझे अब और की चाह नहीं है। मैं तो केवल यह देखने आया था कि महाराज शिवराज का यश यहाँ तक पहुँचा है या नहीं। यह कह भूषण बिना रुपये लिए घर लौट आए। चिटनीस ने बखर में शिवाजी के यहाँ जाने के पहले ही भूषण का कुमाऊँ जाना लिखा है। भूषण के वहाँ से चले आने के बारे मे लिखा है कि एक दिन राजा ने पूछा कि क्या मेरे ऐसा भी कोई दानी इस पृथ्वी पर कहीं होगा। भूषण ने कहा—बहुत से। जब राजा इन्हे एक लाख रुपया देने लगा तो इन्होंने यह कह कर रुपया लेना अस्वीकार कर दिया कि अभिमान से दिया हुआ रुपया हम नहीं लेंगे। यह कहकर

वे वहाँ से दक्षिण चले गए। पता नहीं इन किंवदंतियों मे कितना सार है ।

सं० १७३७ मे शिवाजी का स्वर्गवास होने पर भूषण उत्तर भारत मे चले आये थे, और संवत् १७६४ तक वे उत्तर भारत में ही रहे क्योंकि यह समय मराठों की आपत्ति का था। इस लंबे समय में शायद वे अपने भाई-बंधु आदि के आग्रह से उनके आश्रयदाताओं के दरबार में भी गए हों। क्योंकि उनकी फुटकर कविता मे (इस पुस्तक के पृष्ठ ४०१ से ४१६ तक) कई राव-राजाओं को प्रशंसा में लिखे गये छंद मिलते हैं। परन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शिवाजी के यहाँ से पर्याप्त पुरस्कार पाने के बाद भूषण इन छोटे-मोटे राजाओं के पास आश्रय या धन की लालसा से न गए होंगे । और उन्होंने महाराज छत्रसाल को छोड़कर और किसी की प्रशंसा में एक दो से अधिक छंद लिखे भी नहीं।

संवत् १७६४ में शिवाजी का पोता छत्रपति साहू गद्दी पर बैठा। उसके बाद भूषण फिर दक्षिण को गए। पर वहाँ कब गये और कब तक रहे इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भूषणग्रंथावली के किसी संस्करण मे साहू के बारे में केवल दो और किसी में चार छंद मिलते हैं।

फुटकर छंद संख्या ३७ 'बलख बुखारे मुलतान लौ हहर पारे' से साहूजी के राज्य के समृद्धिकाल का पता लगता है, क्योंकि इतिहास ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि जब साहू सतारे की गद्दी पर बैठा तो उसका राज्य सतारा किला के आस-पास कुछ दूर तक ही था, और कुछ ही दिनों में उसका राज्य

बढ़ने लगा, और जब उसकी मृत्यु हुई तब सारे मुगल-साम्राज्य पर उसकी धाक थी।*

फुटकर छंद संख्या ३८ की अन्तिम पंक्ति --'दिल्लीदल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के चंबल के आरपार नेजे चमकत हैं'—से मल्हाराव होल्कर तथा मुगल सूबेदार राजा गिरिधर राव के सं० १७३८ (सन् १७२६) के युद्ध का आभास मिलता है।

इसी प्रकार छन्द संख्या ३९—'भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निज़ाम बेग'—में वर्णित घटना संवत् १७८८ (सन् १७३१) की है। यह छंद दो एक संस्करणों में ही है, और हमें इस छंद के भूषण-कृत होने में स्वयं संदेह है। यदि भूषण का जन्म-काल १७०० के लगभग माना जाय तो यह छंद भूषण का हो भी सकता है।

साहूजी के यहाँ जाते-आते भूषण छत्रसाल के यहाँ एकबार दुबारा अवश्य ठहरे होंगे। तभी उन्होंने लिखा है 'और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को'

भूषण जी की मृत्यु कब हुई थी, उनकी संतान कितनी थी, इसका कुछ पता नहीं लगता और मृत्यु-तिथि का तब तक निश्चय भी नहीं हो सकता, जब तक यह निश्चय न हो जाय, कि फुटकर छंदों में से कौन कौन से पद भूषण के हैं।

* "When he ascended the throne his Kingdom was a mere strip of land round Satara fort. When he left it, it completely over-shadowed the Mughal Empire"

परन्तु इतना अवश्य निश्चित है कि भूषण दीर्घजीवी थे और यदि उनका जन्मकाल संवत् १६९० और १७०० के बीच में हो तो मृत्युकाल सवत् १७८५ आर १७९५ के बीच में मानना होगा।

शिवसिंह-सरोज में भूषण के बनाए हुए चार ग्रंथों का नाम लिखा है—शिवराज भूषण, भूषण हज़ारा, भूषण उल्लास, और दूषण उल्लास। इनमें से अंतिम तीन ग्रथ आज तक नहीं छपे, और न किसी विद्वान् ने उनको स्वयं देखने का उल्लेख ही किया है। अभी तक उनके बनाए हुए शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक तथा कुछ स्फुट छद ही मिलते हैं। शिवाबावनी स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, ५२ स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। यही बात संभवतः छत्रसाल-दशक के विषय में भी कही जा सकती है। यह निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है, कि भूषण की जितनी कविता आजकल उपलब्ध होती है, उससे कहीं अधिक उन्होंने लिखी होगी और कालचक्र के प्रभाव से हिन्दी-संसार उनकी बहुत सी अनुपम रचनाओं को खो बैठा है।

शिवाजी

शृंगाररस के कुछ पदों को छोड़कर भूषण की शेष सारी कविता छत्रपति शिवाजी, शाहूजी तथा छत्रसाल जैसे वीरों पर आश्रित है। अतः उस पर कुछ आलोचना करने से पहले उनका जीवनचरित्र देना आवश्यक है।

मेवाड़ के सीसोदिया-नरेश राणा लक्ष्मणसिंह का पोता सज्जनसिंह चित्तौड़ छोड़कर सोंधवाड़ा में रहने लगा। उसके वंशजों में से देवराजजी नाम का एक पुरुष संवत् १४७२ (सन् १४१५) के लगभग दक्षिण में आया और उदयपुर की भोंसावत जागीर का मालिक होने के कारण भौंसिला कहा जाने लगा। इस वंश मे सबसे प्रसिद्ध मालोजी—भूषण इन्हें स्थान स्थान पर मालमकरंद[1] कहते है—हुए। मालोजी ने अपने बाहु-बल से खूब नाम कमाया। अहमदनगर के निजामशाह की सेना में उन्हे सिलेदारी मिल गई। इसके बाद मालोजी की उन्नति दिन पर दिन होने लगी। उनके कोई लड़का न था। एक मुसलमान पीर शाहशरीफ की मिन्नत करने से उनका पहला लड़का हुआ। उस पीर के नाम से उसका नाम शाहजी[2] रक्खा गया।

---

१ भूमिपाल तिन मैं भयो बडो "मालमकरन्द" पृ० ८

२ 'भूषण भनि ताको भयो, भुव-भूषण नृप-साहि' पृ० १०

शाहजी का विवाह जाधवराव की लड़की जीजीबाई से हुआ। इस बीच मे मालोजी ने अपनी अच्छी उन्नति कर ली थी। वे पॉचहजारी मनसबदार होगए थे और राजा का खिताब पा चुके थे। शिवनेरि और चाकण के किले तथा पूना और सूपा के दो परगने जागीर में उन्होंने प्राप्त कर लिये थे। मालोजी के पुत्र शाहजी ने भौंसिला वंश का नाम और बढ़ाया। पिता की जगह वे भी अहमद नगर का मनसबदार बने। अहमद नगर के साथ मुगलों का जो युद्ध हुआ, उसमें शाहजी ने भी भाग लिया। पर पीछे अहमदनगर के तत्कालीन शासक से अनबन होने के कारण शाहजी बीजापुर दरबार में चले आये, जहॉ उस समय इब्राहीम आदिलशाह राज्य करता था। उसके बाद शाहजी, दिल्ली, बीजापुर और अहमदनगर के परस्पर के युद्धों में भाग लेते रहे।

मुगलों के साथ के इन युद्धों में शाहजी को इधर से उधर अपनी प्राण रक्षा के लिए भागना पड़ता था। इसी बीच जब शाहजी इधर से उधर प्राण-रक्षा के लिए भाग रहे थे, शिवनेरि के दुर्ग में (सवत् १६८४) मे शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के जन्म के कुछ समय बाद शाहजी ने दूसरा विवाह कर लिया, और उन्होंने जीजीबाई तथा शिवाजी से प्रायः सम्बन्ध तोड़-सा लिया। शाहजी बीजापुर में रहते थे, और जीजीबाई तथा शिवाजी उनकी पूना और सूपा की जागीर में। उस समय शिवाजी की शिक्षा का भार दादाजी कोंडदेव पर था। उस वृद्ध अभिभावक तथा आचार्य ने और वीर-माता जीजीबाई ने शिवाजी को बचपन में ही जहॉ अस्त्र-शस्त्र मे प्रवीण

कर दिया, वहाँ महाभारत तथा पुराणों की कथाएँ सुनाकर उनमे जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव भी भर दिये थे। उन्हे सिखा दिया था कि उन्हें कभी इस बात को न भूलना चाहिये कि वे देवगिरि के यादवों तथा उदयपुर के राणाओं के वंशज हैं। बचपन ही से शिवाजी को शिकार का शौक था। दादाजी के आदेशानुसार वे अपने बचपन के साथी मावलियों की टोली बनाकर मावल और कोंकण के प्रदेशों तथा सह्याद्रि के पहाड़ों मे कई कई दिन तक घूमते रहते थे। इस प्रकार अठारह साल का शिवाजी एक अनथक निर्भय और भक्त नव-युवक होगया। उसने अपने पिता की तरह बीजापुर या दिल्ली दरबार की नौकरी करने के बजाय स्वतत्र हिन्दू-राज्य की कल्पना की।

स० १७०३ मे सबसे पहले अपने पिता की जागीर के दक्षिणी सीमान्त पर स्थित तोरण दुर्ग को हस्तगत कर शिवाजी ने अपने भावी कार्य-क्रम का सूत्रपात किया। वहाँ उन्हें गड़ा हुआ काफी खजाना मिला। इस धन से शिवाजी ने अस्त्र-शस्त्र, तथा गोला-बारूद खरीदा और उस दुर्ग से छ: मील की दूरी पर ही मोरबंद नामक पर्वत-शृंग पर एक और किला बनवाया जिसका नाम राजगढ़ रक्खा। यह देखते ही बीजापुर के सुलतान के कान खड़े होगये। उसने शाहजी द्वारा दादा कोंडदेव को लिखवाया, पर शीघ्र ही दादाजी जराग्रस्त होकर इस संसार को छोड़ गये। उसके बाद शिवाजी ने तीन सौ सिपाही लेकर रात के समय अचानक पहुँच कर अपनी विमाता के भाई संभाजी मोहिते से अपने पिता की सूपा की जागीर भी छीन ली। फिर पूना से १२ मील की दूरी पर स्थित कोंडाना नामक दुर्ग को उसके मुसलमान अधिकारी से ले लिया। फिर कुछ ही दिन के

अनतर पुरधर का किला लेकर शिवाजी ने अपने दक्षिणी सीमांत को सुरक्षित बना लिया।

इसके बाद एक दिन शिवाजी ने कोंकण से बीजापुर को जाता हुआ शाही खजाना लूट लिया, और फिर उत्तर माल के नौ किलो पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया, जिनमे लोहगढ़, राज-माची और रैरि प्रसिद्ध हैं।

बीजापुर दरबार ने यह शंका की कि शाहजी ही के इशारे से शिवाजी यह उत्पात मचा रहा है, अतः उसने अपने एक दूसरे मराठा सरदार बाजी घोरपड़े को शाहजी को कैद करने का आदेश दिया। घोरपड़े ने एक षड्यन्त्र रचकर शाहजी को कैद कर लिया। पिता के कैद होने का समाचार सुन शिवाजी दुविधा में पड़ गये। यदि वे बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करते, तो यह निश्चित था कि बीजापुर का सुलतान उनके पिता का वध कर देता। यदि वे युद्ध बद कर स्वयं बीजापुर जाते, तो उनका अत निश्चित था। राजनीति-कुशल शिवाजी ने मुगल बादशाह शाहजहाँ से संधि-वार्ता आरंभ की। शाहजहाँ ने बीजापुर दर-बार को शाहजी को छोड़ने के लिए लिखा। यह देख बीजापुर दरबार डर गया, क्योंकि यदि शिवाजी और मुगल मिल जाते तो बीजापुर दरबार कुचला जाता। फलत. बीजापुर दरबार ने उन्हें छोड़ दिया। पर शाहजी अभी बीजापुर दरबार में ही थे, इसलिए यदि शिवाजी बीजापुर के विरुद्ध कोई कार्य करते तो शाहजी पर सकट आ सकता था। इसी प्रकार बीजापुर दरबार भी शिवाजी और मुगलों की सधि से डरता था, अत. बीजापुर दरबार ने गुप्त षड्यन्त्र द्वारा शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ना चाहा और बाजी शामराजे को इसके लिए नियुक्त किया। बाजी शामराजे ने इसमें जावली के राजा चन्द्रराव मोरे की सहा-यता माँगी।

जावली प्रान्त कोयना नदी की घाटी में ठीक महाबलेश्वर के नीचे था। यह एक तीर्थ-स्थान था। अतएव शिवाजी वहाँ बहुधा आया करते थे। अपने गुप्तचरों द्वारा शिवाजी को इस षड्यन्त्र का पता लग गया, और उनकी हत्या के लिए जो व्यक्ति उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, उन पर अकस्मात् आक्रमण कर शिवाजी ने उन्हें भगा दिया। कुछ दिन के अनंतर शिवाजी के सेनापति रघुवल्लाल अत्रे तथा शम्भाजी कावजी ने सं० १७१२ (सन् १६५६) में चन्द्रराव मोरे को मार डाला। शिवाजी ने अपनी सेना सहित जावली पर आक्रमण कर दिया, और उस पर अधिकार कर लिया।[१] वहाँ शिवाजी को बहुत-सा धन मिला, और उससे उन्होंने उसी स्थान पर प्रतापगढ़ नामक किला बनाया।

इसी समय मुगल बादशाह शाहजहाँ का लडका और प्रतिनिधि औरंगजेब बीजापुर आदि राज्यों को हस्तगत करने के लिए दक्षिण को गया। शिवाजी और औरंगजेब ने मिलकर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। बेदर और कल्याण के किले औरंगजेब के हाथ में आगये।[२] पर इतने में शिवाजी और बीजापुर का मेल

---

१ "चन्द्रावल चूर करि जावली जपत कीन्हीं" (पृ० ३२२)

He and his troops pushed on at once to Jaoli overran in a few days the entire fief (*A History of the Maratha People* by Kincaid and Parasnis p 151)

२ बेदर कल्याण घमासान कै छिनाय लीन्हें

जाहिर जहान उपखान यही चल ही (पृ० ३८३)

उसी समय प्रसन्न होकर औरंगजेब ने शिवाजी को जो पत्र लिखा, उसका श्रीकिनकेड तथा पारसनीस अपनी पुस्तक *A History of the Maratha People* में इस प्रकार अनुवाद देते हैं।

"Day by day we are becoming victorious See the impregnable Bedar fort, never before taken, and Kalyani never stormed even in men's dreams heve fallen in a day"

होगया, और बेदर तथा कल्याण के किले शिवाजी ने ले लिए। शिवाजी और बीजापुर का मेल देखकर मुगल बादशाह गुस्से मे लाल होगया। इधर शिवाजी की सेना ने भी मुगल इलाकों में लूट प्रारम्भ की। यहाँ तक कि वे लूटते-लूटते अहमदनगर के इलाके तक पहुँच गये। तब राव करन तथा शाइस्ताखाँ मराठों को कुचलने को भेजे गये। इस पर भी जब लूट बढ़ने लगी तो खानदौरा नौशेरीखाँ भी घटनास्थल पर पहुँच गया। शिवाजी से उसका घोर युद्ध हुआ[1]। युद्ध में मराठो के पैर उखड़ गये, और वे वहाँ से लूट मार करते हुए निकल गए[2]। नौशेरीखाँ उनका पीछा न कर सका, इस पर औरगजेब ने नौशेरीखाँ तथा दूसरे सेनापतियों को बहुत डाँट कर लिखा कि तुम लोग तुरत शिवाजी को चारों ओर से घेर लो।

इधर औरङ्गजेब स्वय भी बीजापुर से निराश हो शिवाजी के पीछे पड़ गया। इतने मे उसे खबर मिली कि उसका पिता मुगल सम्राट् शाहजहाँ बीमार है, अत उसे अब दक्षिण से अधिक उत्तर भारत की चिंता सताने लगी। फलत, वह शिवाजी और बीजापुर दोनों से नरम बातें करने लगा। दोनों को एक दूसरे को नष्ट करने के लिए उत्साहित करने लगा और स्वय उत्तर की ओर अपने भाइयों से गद्दी के लिए झगड़ने को चला गया।

इधर औरङ्गजेब के उत्तर को जाते ही बीजापुर और शिवाजी में युद्ध प्रारभ होगया। बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी का अत कर देने का निश्चय कर सवत् १७१६(सन् १६५६) में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित बारह हजार सवार तथा बारूद तोप और रसद के

---

१. अहमदनगर के थान किरवान लै कै
नवसेरीखान ते खुमान भिरयो बल तें। (पृ० २३४)

२. लूटयो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु (पृ० ७८)

सहित अफजलखाँ नामक भारी डीलडौलवाले तथा बलवान व्यक्ति को शिवाजी पर चढ़ाई करने को भेजा[१]। अफजलखाँ ने मद-भरे शब्दों में इकरार किया था कि वह शिवाजी को जीता या मृत पकड़कर लायेगा, कम से कम उसका राज्य तो अवश्य तहस-नहस कर देगा। वह मार्ग के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ प्रतापगढ़ के नीचे जावली प्रान्त के पार गाँव में पहुँच गया जहाँ शिवाजी उन दिनों मौजूद थे। अफजलखाँ और शिवाजी दोनों ही एकान्त स्थान पर मिलकर एक दूसरे का नाश करने का विचार कर रहे थे। शिवाजी से एकान्त में मिलने का अनुरोध करने के लिए अफजलखाँ ने अपना दूत उनके पास भेजा। माता जीजाबाई से आशीर्वाद ले शिवाजी ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलत: किले से कोई चौथाई मील दूर नीचे की ओर एक खेमे में दोनों की भेट हुई। भेंट के समय शिवाजी के पास प्रत्यक्ष रूप से कोई शस्त्र न था, पर अफजलखाँ के पास लंबी तलवार थी। शिवाजी उससे जाकर इस प्रकार मिले, जैसे कोई विद्रोही आत्मसमर्पण के लिए आता है[२]! शिवाजी का अंत करने के लिए पहले अफजलखाँ ने अपनी तलवार से वार किया। शिवाजी ने अपने कपड़ों के नीचे जिरहबख्तर पहना था, अत. वह चोट उनके बदन पर न

---

१. बारह हजार असवार जोरि दलदार
ऐसे अफजलखान आयो सुरसाल है।
सरजा खुमान मरदान सिवराज वीर
गंजन गनीम आयो गाढे गढपाल है॥ पृ० ३९१

"The king gladly accepted his (*Afzal Khan's*) services and placed him at the head of a fine army composed of 12,000 horses and well-equipped with cannon, stores and ammunition" (*Kincaid & Parasnis*)

"But Shiva was seemingly, unasured like a rebel who had come to surrender, while the Khan had his sword at his side" —(*Sarkar*)

लगी। इतने में उन्होंने अपने हाथों में पहने बघनखे तथा बिछुए की चोट से खान का अन्त कर दिया[1] और वे दौड़कर किले के भीतर आगये। अब शिवाजी की छिपी हुई सेना अफजलखाँ की सेना पर टूट पडी। खान की सेना मे से प्राय वे ही बच सके जिन्होने आत्म-समर्पण कर दिया।

अफजलखाँ के वध से बीजापुर राज्य मे सब ओर निराशा छा गई। अपने भतीजे की मृत्यु पर बीजापुर की राज-माता के दु ख की तो सीमा ही नही रही। इसी समय शिवाजी ने पन्हाला, पवनगढ, वसतगढ, रगना, और विशालगढ आदि बीजापुर के कई किले जीत लिए। शिवाजी की इस विजय-यात्रा को रोकने के लिये मीराज के अफसर रुस्तमे जमान को भेजा गया पर रुस्तमे जमान खॉ को शिवाजी ने बुरी तरह से हराया और उसे वापिस मीराज को भागने में बडी कठिनता हुई[2]। शिवाजी सेना सहित लूट मार करते हुए बीजापुर तक जा पहुँचे, और वहाँ से वापिस लौटे। अब अली आदिलशाह ने हब्शी सरदार सीदी जौहर को भेजा। उसके साथ अफजलखाँ का पुत्र फजल खॉ भी था। उसने जाते ही पन्हाला दुर्ग घेर लिया। कई महीनो के घेरे के बाद जब दुर्ग टूटने को हुआ तब शिवाजी उस दुर्ग से चुपचाप निकल कर रंगना होते हुए प्रतापगढ चले गए। जब शत्रु ने उनका पीछा किया तब बाजीप्रभु देशपाँडे ने पढरपानि

---

१. बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो
बीछू के घाव धुस्योई धरक्कहै तौ लगि धाय धरा धरि बैठो पृ० १९३

२. देखत मे खान रुस्तम जिन खाक किया। (पृ० ३२७)

"Rastam Jaman was completely defeated and he had considerable difficulty in escaping back to Miraj"

(*A History of the Maratha People*—Kincaid & Parasnis page 165)

के दर्रे मे दीवार की तरह खडे होकर शत्रु को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब शिवाजी ने विशालगढ़ में पहुँचकर तोप दागी तब उस आहत सरदार ने सुख से शरीर त्याग दिया। इसी समय सावतवाड़ी के सावतों ने, जो कि कुडाल से १२ मील दक्षिण मे थी, शिवाजी के दक्षिणी सीमान्त पर धावा शुरू किया। साथ ही वे मुधोल के घोरपड़े तथा बीजापुर की सेना की मदद लेने का यत्न कर रहे थे। पर शिवाजी ने इन तीनो के मिलने से पहले ही मुधोल पहुँच कर अपने पिता के शत्रु बाजी घोरपडे को मारकर मुधोल का सत्यानाश कर दिया। इतने मे आदिलशाह ने खवासखॉ को एक बडी सेना के साथ भेजा। कुडाल के पास भयकर युद्ध हुआ[२]। पर शिवाजी ने उसे भी निराश्रित तथा निराश करके वापिस भेजा। इसके बाद सावतबाडी वालों ने गोआ के पुर्त्तगीजो से सहायता माँगी, पर वह भी विफल हुए। शिवाजी ने दोनो को ही तहस-नहस कर दिया। तब सावतबाड़ी के सावतों ने अपनी आधी आमदनी देकर तथा पुर्त्तगीजों ने शिवाजी को बारूद गोला तथा तोपे देकर सधि की।

इस समय बीजापुर दरबार बड़ा चिन्तित होगया। अन्त में उसने शाहजी को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से सधि-वार्ता प्रारम्भ की। उसने सवत् १७१९ (सन् १६६२) मे शिवाजी की सब माँगे स्वीकार कर ली। उत्तर में कल्याण, दक्षिण में फोण्डा, पश्चिम मे दभोय तथा पूर्व मे इन्दापुर तक सपूर्ण प्रदेश मे शिवाजी का स्वतत्र राज्य माना गया। दोनो दलों ने शत्रुओं से एक दूसरे की रक्षा का प्रण किया, तथा शिवाजी ने शाहजी के जीवनकाल

---

२. उमडि कुडाल मै खवासखान आए भनि,
भूषण त्यों धाए सिवराज पूरे मन के। पृ० २४८

में बीजापुर वालों से न लडने की शपथ खायी। इस संधि के निमित्त शाहजी कई वर्षों बाद अपने पुत्र से मिलने आये। शिवाजी ने उनका बडा आदर सत्कार किया, और उन्हें सब विजित प्रांत दिखाया। उस समय शाहजी की पैनी और अनुभवी आँखों ने रैरि की उच्चश्रृंग को देखकर शिवाजी को वहाँ राज-धानी बनाने का परामर्श दिया। शिवाजी ने पिता की सलाह मानकर वहाँ किला तथा महल बनवाया, और उसका नाम रायगढ़ रखा। अब शिवाजी वहीं वास करने लगे[1] और उसे ही उन्होंने अपनी राजधानी बनाया[2]। वह चारों ओर से सह्याद्रि की अनेक उच्च पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ था और उसके उच्चश्रृंग कई मील दूर से दिखाई देते थे[3]।

बीजापुर से इस प्रकार निश्चित होकर शिवाजी ने मुगलों की ओर ध्यान दिया। मुगलों ने सं० १७१८ में कल्याण और भिवडी प्रदेश ले लिए थे, जो कि बीजापुर की संधि के अनुसार शिवाजी के थे। शिवाजी ने अपने सेनापतियों को मुगल-साम्राज्य में लूटमार प्रारम्भ करने का आदेश दिया। यह देख औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ तथा जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह को शिवाजी के दमन के लिए भेजा।

शाइस्ताखाँ औरंगाबाद से बडी भारी सेना लेकर पूना की ओर चला। पूना पहुँचते ही इसने अपने सहायक सेनापति कारतलबखाँ को शिवाजी को पकड़ने के लिए सेना सहित भेजा।

---

१. दच्छिन के सब दुग्ग जिति दुग्ग सहार विलास
सिव सेवक सिव गढ़पती कियो रायगढ़ वास। पृ० १३

२. तहँ नृप रजधानी करी जीति सकल तुरकान। पृ० १९

३. ऐसे ऊँचो दुरग महाबली को जामें
नखतावली सों वहस दीपावली करति है। पृ०४१

पर जब उसकी सेना अवरखिडी के पास पहुँची तो मराठो ने उसे घेर लिया। अन्त में बहुत सा धन लेकर उसे जीवनदान दिया[1]। इसके बाद मराठा सैनिक औरगाबाद तक लूटमार करते रहे। इस समय शिवाजी कोण्डाना मे थे, उन्होने पूना में चैन से बैठे हुए शाइस्ताखॉ को मजा चखाना चाहा।

पूना मे शाइस्ताखॉ शिवाजी के ही महल मे ठहरा था। उससे थोड़ी दूर पर राजा जसवतसिंह दस हजार सेना सहित डेरा डाले पडा था। एक रात को शिवाजी ने पूना पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उन्होने दो हजार सेना जसवतसिंह के डेरे के चारों तरफ रख दी और स्वय चार सौ चुने हुए सैनिको को लेकर शादी के बहाने से शहर मे आये, उन मे से भी दो सौ को शाइस्ताखॉ के महल के बाहर रख कर शेप दो सौ को साथ ले शिवाजी एक खिडकी तोडकर महल के भीतर घुस गये[2] और शाइस्ताखॉ के सोने के कमरे में पहुँच गये। शोर सुनकर शाइस्ताखॉ ज्योंही अपने हथियार सम्हाल रहा था,

---

१. लख्यो कारतलबखॉ मानहुँ अमाल है (पृ० ७८)

२. दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान
पूना मॉहि दूना करि जोर करवार को
मनसबदार चौकदारन गॅजाय
महलन मे मचाय महाभारतके भार को
तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं
जीत्यो जग सरदार सौ हजार असवार को (पृ० १४७)

"Shivaji with his trusty leiutenant Chimnaji Bapuji was the first to enter the harem and was followed by 200 of his men" (*Shivaji by Sarkar*)

त्योंही शिवाजी ने एक वार से उसका अगूठा काट दिया। इतने में एक औरत ने कमरे का लैम्प बुझा दिया, और अँधेरे मे शाइस्ताखाँ को दासियाँ वहाँ से उठा ले गई। इस गडबड मे मराठों ने कई मुगल सरदारों को कतल कर दिया। शाइस्ताखॉ का लड़का अब्दुलफतह भी इसमें मारा गया[1]। मुगलों की सेना के सँभलने के पहले ही शिवाजी अपने आदमियों सहित वहाँ से चपत हो गये। इस घटना से शिवाजी का आतंक बहुत बढ़ गया। मुसलमान उन्हें शैतान का अवतार कहने लगे। निराश हो शाइस्ताखॉ वापिस चला आया। शाइस्ताखाँ की असफलता पर औरंगजेब बडा क्रुद्ध हुआ और उसे उसने दक्षिण से बगाल भेज दिया। जसवतसिंह अभी दक्षिण में ही था। उसने तथा भाऊसिंह हाडा ने मिल कर कोंडाना घेर लिया। परन्तु दोनो को ही शिवाजी ने परास्त कर दिया जसवतसिंह वहाँ से घेरा उठाकर चाकन को चल दिया[2]।

शाइस्ताखाँ के चले जाने के बाद शिवाजी ने सवत् १७२१ मे सूरत पर हमला कर दिया। सूरत का मुगल सूबेदार जाकर किले में छिप गया। जब तक शिवाजी न लौटे तब तक वह किले से न निकला। यह देखते ही सूरत-निवासी भी शहर छोड़कर भाग गये। वहाँ शिवाजी ने अच्छी तरह लूट मार की। डर के मारे जो अमीर उमराव भाग गये थे, शिवाजी ने उनके घरों तक को खुदवा दिया, और उसके बाद सारे सूरत को जलाकर,

---

१. सासतखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है॥ पृ० २४४

२. जाहिर है जग में जसवत,लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो। पृ०३२१
बन्दि सइस्तखहूँ को कियो जसवत से भाऊ करन्न से दोनै। पृ०५८

वहाँ से अनन्त संपत्ति लेकर लौटे[१] ।

सूरत की लूट से वापिस लौटते ही शिवाजी ने अपने पिता शाहजी के स्वर्गवास का समाचार सुना। अब शिवाजी ने अहमद नगर के सुलतान द्वारा दी गई पैतृक राजा की पदवी धारण की और रायगढ़ में टकसाल बनाई।

शाइस्ताखाँ की पराजय और सूरत की लूट का वृत्तान्त सुन औरङ्गजेब जलभुन उठा। उसने अपने योग्यतम सेनापति जयसिंह को दिलेरखाँ आदि कई सरदारों के साथ दक्षिण को भेजा। जयसिंह ने दक्षिण में जाते ही शिवाजी के सधर्मी और विधर्मी सब शत्रुओं को एकत्र कर उन पर आक्रमण कर दिया। सम्मिलित शत्रुओं ने शिवाजी को तंग कर दिया। अंत में शिवाजी को मुगलों से संधि करनी पड़ी। जिसके अनुसार शिवाजी को

---

१. सूरत कौ मारि बदसूरत सिवा करी (पृ० ३८९)

हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मंदिर ढहायो जो पै काढी मूल काँकरी
आलम पुकार करै आलम-पनाह जू पै
होरी सी जलाय सिवा सूरत फनो करी (पृ० ३९०)

"..... every day new fires being raised, so that thousands of houses were consumed to ashes and two-thirds of the town destroyed The fire turned the night into day as before the smoke in the day time had turned day into night . The Marathas plundered it at leisure day and night till Friday evening, when having ransacked it and dug up its floor, they set fire to it From this house they took away 28 seers of large pearls, with many other jewels, rubies, emeralds and ' an incredible amount of money.'" (*Shivaji by Sarkar page 103*)

अपने पैंतीस किलों में से तेईस मुगलों को देने पडे। शेष बारह शिवाजी के पास रहे[1]। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने आवश्यकता पडने पर मुगलो की नौकरी करना तथा बीजापुर को दबाने में मुगलों की मदद् करना स्वीकार किया। इधर बादशाह ने शिवाजी के बड़े लडके शम्भाजी को पॉचहजारी का मनसब दिया।

संधि के अनन्तर शिवाजी पहले जयसिंह् के साथ बीजापुर के आक्रमण में गये। पर शीघ्र ही औरङ्गजेब ने शिवाजी को भेट क लिए आग्रहपूर्वक बुलाया। अपने राज्य की व्यवस्था कर शिवाजी ने शम्भाजी तथा कुछ सैनिको सहित आगरे को प्रयाण किया। जयसिंह् दक्षिण में थे, अत उन्होंने अपने पुत्र रामसिंह को शिवाजी का सब प्रबन्ध करने के लिए लिख दिया।

आगरा पहुॅचने पर सवत् १७२३ (१२ मई १६६६) में शिवाजी की औरङ्गजेब से भेट हुई। औरंगजेब ने जानबूझ कर उनका अपमान करने के लिए उन्हें पॉचहजारी मनसबदारों[2]

---

१ भूषण ने पैंतीसों किले देना लिखा है—

भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन
　　द्वैहू ना लगाए गढ लेत पॅचतीस को
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीवे
　　सौगुनी बढाई गढ दीन्हे है दिलीस को। पृ० १६४

२ भूषण ने एक जगह पर पॉचहजारी मनसबदारों के बीच में खड़ा करने का उल्लेख किया, और एक स्थान पर छः हजारियों के बीच—

पंचहजारिन बीच खड़ा किया, मैं उसका कछु भेद न पाया। पृ० १६१

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबो को जोग
　　ताहि खरो कियो छ हजारिन के नियरे। पृ० ३०६

"The emperor then ordered him to take his place among commanders of 5000 horse This was a deliberate insult" (*A History of the Maratha People*)

के बीच मे खड़ा किया। यह अपमान देख शिवाजी जलभुन उठे और रामसिंह से उन्होंने उसी समय अपना क्रोध प्रकट कर दिया। रामसिंह ने उन्हे शान्त करना चाहा पर वह सफल न हो सका[1]। इसपर औरंगजेब ने शिवाजी को डेरे पर जाने को कहा। और थोडी ही देर मे जहॉ वे ठहरे थे, वहॉ कड़ा पहरा लग गया ताकि वे आगरे म निकल न जायँ। शिवाजी अब कैद स निकलने के उपाय सोचन लगे। उन्होंने पहले अपने सब साथियो को दक्षिण भेज दिया। फिर कुछ दिन बाद बीमारी का बहाना कर दान-पुण्य के लिए ब्राह्मणो, गरीबो और फकीरो आदि मे बॉटने के लिए मिठाई के बड़े बड़े पिटारे भेजने प्रारम्भ किये। एक दिन शिवाजी और शभाजी अपने को बड़ा चालाक समझने वाले औरङ्गजेब की ऑखो मे धूल झोंक कर अलग अलग पिटारों म बैठकर पहरे से बाहर निकल आये। दूसरे दिन जब पहरेदारो ने शिवाजी का बिस्तर देखा तो उन्हे न पाकर उन्होंने औरङ्गजेब को लिखा कि हम उस पर पूरी तरह चौकसी करते रहे, पर पता नहीं कि वह किस तरह अदृश्य होगया। सब द्वार और सब चौकियो पर पहरा होते हुए भी शिवाजी वहाँ से वैरागी का वेष धर कर मथुरा,प्रयाग,काशी की राह से लगभग नौ महीने बाद अपने किले रायगढ़ मे फिर आ पहुँचे[2]। शम्भाजी को वे अलग मथुरा छोड़

---

१. ठान्यो न सलाम, भान्यो साहि को इलाम
धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा। पृ० १५३

"The Maratha prince saw that he was being maliciously flouted and,unable to control himself, turned to Ram Singh and spoke frankly his resentment The young Rajput did his best to pacify him but in vain "

(*A History of the Maratha People*)

२. घिरे राह घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन मॉहि ह्वै गयो।

आये थे। कुछ दिन में सम्भाजी भी विश्वासपात्र आदमियों के साथ रायगढ पहुँच गये।

अब शिवाजी दक्षिण पहुँच गये थे, और वे मुगलों से बदला लेना चाहते थे। इधर औरंगजेब ने राजा जयसिंह पर शक करके उन्हें वापिस बुला लिया, और उसके बाद मुअज्जम और जसवंतसिंह को भेजा। जयसिंह की रास्ते में ही मृत्यु होगई। जसवंत और मुअज्जम युद्ध न करना चाहते थे, अत शिवाजी की फिर मुगलों से संधि होगई। औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि दी। कोंडाना और पुरंदर को छोडकर शिवाजी के सब किले उन्हे वापिस दे दिये गये। इन किलों के बदले में शिवाजी को बरार की जागीर दी गई। शिवाजी ने औरंगजेब को बीजापुर के आक्रमणों में सहायता देने का वचन दिया। उसके अनुसार उन्होंने प्रतापराव गूजर को ५००० सवारों के साथ वहाँ भेज दिया। यह देख बीजापुरवालों ने

ठार ठोर चोकी ठाढी रही असवारन की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै गयो ॥
देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मींड़े, कर झारत किते गयो।
सारी पातसाही के सिपाह सेवा सेवा करें,
परयो रह्यो पलंग परेवा सेवा ह्वै गयो ॥

शिवाजी के डेरे के रक्षक फौलादखाँ न शिवाजी के वहाँ से अन्तर्धान होने पर बादशाह को जो रिपोर्ट की थी उसका अनुवाद प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने निम्नलिखित दिया है।

"The Rajah was in his own room We visited it regularly But he vanished all of a sudden from our sight Whether he flew into the sky or disappeared into the earth, is not known, nor what majical trick he has played" (*Shivaji*, *Page* 167-8)

शिवाजी को सरदेशमुखी तथा चौथ के स्थान पर साढ़े तीनलाख रुपये देने का वचन देकर, और मुगलो को शोलापुर तथा उसके पास का इलाका देकर सधि कर ली। गोलकुडा क सुलतान ने भी पॉच लाख रुपये वार्षिक कर शिवाजी को देना स्वीकार किया। इन सधियों के होने पर शिवाजी को दो वर्ष तक किसी स झगड़ा न करना पडा। यह समय उन्होंन राज्य की व्यवस्था करने मे लगाया।

मुगलो के साथ सधि देर तक न टिकी। औरगजेब ने फिर विश्वासघात करके शिवाजी को पकड़ना चाहा। इस से चिढ़कर शिवाजी ने मुगलो को दिये हुए किले लेने का निश्चय किया। कोडाना की विजय के लिए उन्होंने अपने वाल-मित्र तानाजी मालसुरे को नियुक्त किया। कोडाना मे उन दिनो उदयभानु नामक वीर राठौर सरदार किलेदार था। तानाजी मालसुरे अँधेरी रात मे ३०० मावलियों को लेकर किले पर चढ़ गया, और अपने भाई सूर्याजी को उसने कुछ और सिपाहियो के साथ बाहर ही रख दिया। भयकर युद्ध हुआ। राठौर सरदार उदयभानु और तानाजी मालसुरे दोनो ही वीरगति को प्राप्त हुए, पर किला मराठों के हाथ मे आगया। उन्होंने उसी समय मशाले जलाकर शिवाजी को सूचित किया।[१] शिवाजी उसी समय वहाँ पहुँचे, पर अपने मित्र तानाजी को मरा देखकर उन्होंने कहा—"गढ़ आया पर सिंह गया।" उसी दिन से उस किले का नाम सिंहगढ़ पड़ा।

सिंहगढ़ के बाद शिवाजी ने पुरदर, लोहगढ़ आदि अन्य कई किले भी ले लिये। पीछे उन्होंने बीजापुर के जजीरा पर हमला

१. साहितनै सिव साहि निसा मे निसॉक लियो गढसिंह सोहानो,
राठिवरो को सॅहार भयो लरि कै सरदार गिरयो उदैभानो।
भूषण यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ,
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ। पृ० ७५

किया। यह जजीरा (द्वीप) कोंकण के तट पर राजगढ़ से पश्चिम की ओर बीम मील पर था। वहाँ अधिकतर अबीसीनिया के हब्शी ही थे, जो सीदी कहाते थे। यह द्वीप बीजापुर के अधीन था और यहाँ बीजापुर की ओर से फत्तेखाँ नाम का गवर्नर रहता था, शिवाजी ने इस पर सवत् १७१६ से लेकर कई बार हमला किया था। परन्तु उन्हे सफलता न मिली थी। शिवाजी ने सवत् १७२७ में फिर चढ़ाई की। बार-बार के युद्धों से तग आ कर फत्तेखाँ ने शिवाजी से सधि कर ली[१]। यह देख हब्शियों ने उसका अन्त कर दिया और उन्होंने मुगलों से सहायता माँगी। मुगलों के आ जाने पर शिवाजी ने इसे विजय करना कठिन समझकर उधर से हटकर सूरत को दुबारा लूटा। सूरत की पहली लूट की तरह शिवाजी ने इस बार भी सूरत को खूब लूटा। वहाँ से लगभग ६६ लाख रुपये का सामान लेकर तथा १२ लाख वार्षिक कर पाने का करार कराके वे रायगढ़ की ओर लौटे।[२] रास्ते में मुगल सूबेदार दाउदखाँ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया पर शिवाजी उसको नीचा दिखा कर सकुशल वापिस आ गए।

---

१. अफजलखान, रुस्तमै जमान, फत्तेखान,
कूटे लूटे जूटे ए उजीर बिजैपुर के। पृ० १८४

२. सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो, पृ० ३९०

"An official inquiry ascertained that Shivaji had carried off 66 lacs of rupees, worth of booty from Surat—*viz* cash pearls, and other articles worth 53 lakhs from the city itself and 13 lakhs worth from Nawal Sahu and Hari Sahu and a village near Surat" (*Shivaji Page 203*)

सूरत से प्राप्त धन से बहुत सी फौज भरती करके शिवाजी ने अन्य मुगल इलाकों पर आक्रमण करने शुरू किये। उनके सेनापति प्रतापराव ने खानदेश तथा बरार पर चढ़ाई की और वहाँ के कितने ही शहरों को लूटा और उन पर 'चौथ' का कर लगाया।[1] शहरो के बड़े-बड़े व्यक्तियों तथा गाँवों के मुखियाओ से 'चौथ' देने के लिए लिखित शर्त्तनामे किये। इस समय मराठा सेना शहर पर शहर जीत रही थी। ओध, पट्टा, सलहेरि आदि पर उनका अधिकार हो गया। सूबेदार दाऊदखाँ इन स्थानों को बचाने के लिए बहुत देर मे पहुँचा। सिंहगढ़ की तरह ही सलहेरि के दुर्ग पर रात को कुछ आदमियो ने दीवार पर चढ़कर विजय प्राप्त की थी।

सूरत की लूट, चौथ की स्थापना तथा मराठो की इन विजयो का समाचार सुनकर औरंगजेब को दक्षिण की चिंता सताने लगी। उसने उसी समय (संवत् १७२७—सन् १६७० मे) महावतखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा तथा दिलेरखाँ उसके सहयोग के लिए भेजा गया। महावतखाँ को पहले कुछ सफलता मिली, परन्तु पीछे सलहेरि के घेरे मे महावतखाँ को सफल न होते देख औरंगजेब ने गुजरात के सूबेदार बहादुरखाँ को महावतखाँ के स्थान पर चढ़ाई का भार सौंपा[2]। इस प्रकार शिवाजी के डर के कारण औरंगजेब जल्दी जल्दी सूबेदारो की अदला-बदली कर रहा था[3]। शिवाजी ने मोरो पंत तथा प्रतापराव को स्वयं सलहेरि का उद्धार करने के लिए जाने को कहा। बहादुरखाँ ने दोनों तरफ से बढ़ती हुई मराठा सेना को रोकने के लिए इखलासखाँ को भेजा। प्रतापराव ने पीछे हटकर अव्यवस्थित मुसलमान

१. भूषण भनत मुगलान सबै चौथ दीन्ही,
हिंद में हुकुम साहिनंद जू को ह्वै गयो। पृ० ३९१

२. दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यो गयंद को झप्पर। पृ० २४१

३. सूबन आनि सिवाजू के तेज ते पान से फेरत औरंग सूबा। पृ. ३८१

सेना पर आक्रमण कर दिया। उस प्रबल आक्रमण के सामने इखलासखाँ अपनी फौज को सँभाल न सका[१]। इधर से शिवाजी स्वय भी वहाँ पहुँच गये। सलहेरि के इस भयकर युद्ध में मुगलों की पूर्ण पराजय हुई। दिलेरखाँ हार गया[२], अमरसिंह चदावत मारा गया, उसका लड़का मोहकमसिंह तथा इखलासखाँ मराठों के हाथ पडे, जिन्हे पीछे शिवाजी ने छोडा[३]। इस युद्ध से शिवाजी का प्रभाव बहुत बढ़ गया। इसके बाद ही उन्होंने रामनगर तथा जवारि या जौहर नाम के कोंकण के पास के दो कोली राज्य जीत लिये[४]। और एकदम तिलगाना की ओर अपनी सेना भेज दी। बहादुरखाँ के वहाँ पहुँचने से पहले ही उनकी सेना ने तिलगाना लूट लिया[५]।

इसके बाद शिवाजी ने गोलकुडा की राजधानी भागनगर (आधुनिक) हैदराबाद पर आक्रमण कर दिया, और उससे कई लाख रुपये लेकर वापिस आये। इरध जंजीरा के सीदियो से भी शिवाजी की लडाई जारी रही जिनमें कभी सीदी जीतते थे तो कभी शिवाजी।

इसी समय बीजापुर के अली आदिलशाह की मृत्यु होगई उसके स्थान पर उसका पाँच साल का लड़का गद्दी पर बैठा। और

---

१. फौजे सेख सैय्यद मुगल औ पठानन की,
मिलि इखलासखाँ हू मीर न सँभारे हैं। पृ० ३३७

२. गत बल खान दलेल हुव खान बहादुर मुद्ध,
सिवसरजा सलहेरि ढिग कुद्धद्धरि किय जुद्ध। पृ० २६८

३ अमर सुजान, मोहकम बहलोलखान,
खाँडे, छाँडे, डाँडे उमराव दिलीसुर के। पृ० १८४

४. भूषण भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के। पृ० १३४

५. भनि भूषण भूपति भजे भगग्गरब तिलग। पृ० २७९

खवासखाँ उसका संरक्षक नियत हुआ। अली आदिलशाह शिवाजी को चौथ देता था पर खवासखाँ चौथ देने से इन्कार करने लगा। इस पर शिवाजी ने मुगलों को छोड़कर फिर बीजापुर की ओर ध्यान दिया। और पन्हाला किले पर धावा बोल दिया। बीजापुर का सेनापति अब्दुलकरीम बहलोलखाँ उसकी रक्षा के लिए आया। शिवाजी की सेना की पहले तो कुछ हार हुई, पर पीछे शिवाजी के स्वयं आने पर खाँ की सेना हिम्मत हार गई। शिवाजी ने पन्हाला किले को लेकर हुबली आदि करनाटक के कई धनी शहरो को मथ डाला[१]। उसके बाद उन्होंने सितारा आदि कई किलों को जीत लिया[२]।

खवासखाँ ने बहलोल खाँ को फिर पन्हाला का किला लेने को भेजा। उसने आकर पन्हाला को घेर लिया। शिवाजी के सेनापति प्रतापराव ने उसका घेरा हटाने के लिए सीधा बीजापुर शहर पर आक्रमण कर दिया[३]। बीजापुर मे उस समय सेना न थी, अतः खवासखाँ ने बहलोलखाँ को पन्हाला के किल से वापिस बुला लिया। पर उमरानी के समीप प्रतापराव ने उस को आ घेरा। दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। प्रताप-

---

१. लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे। पृ. १६०

२. पाटे डर भूमि, काटे दुवन सितारे मैं। पृ० ३६८

३. बैर कियो सिवजी सों खवासखाँ डौंडियै सैन बिजैपुर बाजी।
पृ० १५१

"With this plan in view he moved his force straight upon Bijapur and advanced, pillaging and destroying, to the gates of Bijapur itself (*Life of Shivaji Maharaj by* Takakhav & Keluskar *page 342*)

राव ने खाँ को इतना तंग किया कि उसे पानी तक पीने को न मिला। इस विपत्ति के समय[1] शिवाजी से फिर न लड़ने की प्रतिज्ञा कर उसने छुटकारा पाया। शत्रु को इस प्रकार छोड़ने के कारण शिवाजी प्रतापराव पर बहुत क्रुद्ध हुए। इधर बहलोल ने भी अपना वचन तोड़कर फिर लड़ना शुरु किया। प्रतापराव यह देख आगे-पीछे का खयाल छोड़ कर उस पर टूट पडा, पर थोड़ी देर में स्वयं ही वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका स्थान हंसाजी मोहिते ने लिया। उसने बहलोलखॉ के दल को बुरी तरह कुचल दिया[2]। बहलोल स्वय बीजापुर लौट गया। इसी वर्ष शिवाजी ने दिलेरखॉ को भी हराया।

इधर औरंगजेब सतनामियों के विद्रोह तथा खैबर के अफगानों को दबाने के लिए उत्तर मे व्यस्त था। यह अवसर देख शिवाजी ने रायगढ़ में अपने राज्याभिषेक का प्रबंध किया। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् गगभट्ट के आचार्यत्व में ज्येष्ठ शुक्ल १३ स० १७३१ वि० (६ जून १६७४) को यह शुभ कार्य समाप्त हुआ।

अभिषेक में शिवाजी ने दान-पुण्य आदि मे बहुत अधिक खर्च कर दिया था। अब उन्हें रुपये की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने मुगल सूबेदार बहादुरखॉ से लड़ने के लिए लगभग २००० आदमी भेजे। जब बहादुरखॉ उनसे लड़ने

---

१. अफजल की अगति सायस्ताखाँ की अपति,
बहलोल बिपति सों डरे उमराव हैं। पृ० १३५

२. सिवराज साहि-सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल। पृ० २७२

गया, तब शिवाजी ने उसके पड़ाव पर धावा बोल दिया, और लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त किया। इसके बाद बीजापुर से भी कई लड़ाइयाँ होती रहीं। इसी बीच बीजापुर में घरेलू झगड़ा प्रारंभ हुआ, और खवासखाँ मार डाला गया। उसके स्थान पर बहलोलखाँ प्रधान-मंत्री तथा संरक्षक बना। उसने मुगलों से डर कर शिवाजी से संधि कर ली और उन्हें पर्याप्त कर देना स्वीकार किया।

इधर शिवाजी ने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से भी संधि कर ली। इस प्रकार निश्चिंत होकर उन्होंने संवत् १७३४ में करनाटक पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई पर जाने से पहले शिवाजी ने गोलकुण्डा के कुतुबशाह से भी मेल कर लिया। शिवाजी स्वयं अपनी सारी सेना के साथ गोलकुंडा गये। वहाँ से वार्षिक कर, करनाटक की चढ़ाई के लिए आर्थिक सहायता का वचन तथा कुछ फौज लेकर शिवाजी करनाटक की ओर बढ़े। जिंजी तथा उसके आस पास के स्थान को वश में करने में कुछ कठिनता न हुई। केवल त्रिमली महल के बीजापुरी अफसर शेरखाँ लोदी ने शिवाजी को रोकने का कुछ प्रयत्न किया। उसने शिवाजी की फौज के अग्रभाग पर आक्रमण किया, पर वह बुरी तरह से परास्त हुआ और पकड़ा गया[1]।

---

१. दौरि करनाटक मैं तोरि गढ़-कोट लीन्हे,
मोदी सों पकरि लोदी सेरखाँ अचानको। पृ० ३८४

" With 5000 horse, Sher Khan made a gallant effort to stem the invasion But he was routed, enveloped and captured with his entire force "

(*A History of the Maratha People, page* 255)

इसके बाद अठारह महीने लगातार एक शहर के बाद दूसरे शहर को जीतकर एक तथा किले के बाद दूसरे किले को लेकर जब शिवाजी रायगढ पहुँचे तब उनका नया विजित प्रदेश पूर्वी-घाट से पश्चिमी घाट तक किलों की पंक्तियों से सुरक्षित था।

इसी समय मुगल सूबेदार बहादुर खॉ की जगह दिलेरखॉ फिर नियुक्त हुआ। उसने बीजापुर के साथ मिल कर गोलकुंडा पर आक्रमण किया, पर उसमे उसे सफलता न मिली। इसी बीच बीजापुर के प्रधान मन्त्री बहलोलखाँ की मृत्यु हो गई। तब दिलेरखॉ ने बीजापुर को ही जा घेरा। बीजापुर का अंत निश्चित था। ऐसी हालत मे बीजापुर के नये प्रधान मन्त्री ने नम्रता-पूर्वक शिवाजी से सहायता माँगी। शिवाजी ने शरणागत की रक्षा के लिए पूरा प्रयत्न किया। इसी बीच उनका लड़का शम्भाजी उनसे विरुद्ध होकर दिलेरखॉ से जा मिला। परन्तु कुछ दिन बाद वह फिर वापिस आ गया। शिवाजी ने उसे पन्हाला किले मे नजरबंद कर दिया और बीजापुर की रक्षा का काम जारी रखा। जिस कार्य में अंत मे उन्हें सफलता प्राप्त हुई[१]। मसऊदखॉ ने शिवाजी का उपकार माना। दोनों की बीजापुर के पास भेंट हुई। इस अवसर पर उसने करनाटक मे शिवाजी द्वारा विजित स्थानों पर उनका अधिकार मान लिया।

बीजापुर की रक्षा शिवाजी के जीवन का अंतिम प्रमुख कार्य था। चैत्र शुक्ल १५, सं० १७३७ वि० (५ अप्रैल सन् १६८० ई०) रविवार को थोड़ी सी बीमारी के अनन्तर

---

१ साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की। पृ० ३९२

दोपहर के समय इह-लीला समाप्त कर इस वीर ने परलोक को प्रयाण किया।

शिवाजी का सारा जीवन लड़ाइयों में ही बीता। १८ वर्ष की अवस्था मे जिस 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना का उन्होंने सूत्रपात किया, आजीवन वे उसी कार्य मे लगे रहे। उन की अभिलाषा समस्त भारत में हिन्दू स्वराज्य स्थापन करने की थी, परन्तु जीवन मे वे इसे पूरा न कर सके। केवल ताप्ती और तुंगभद्रा के बीच के अधिकांश भाग तक ही उनके स्वराज्य की सीमा रही। परन्तु एक छोटी-सी जागीरदारी से इतना विस्तृत स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना भी साधारण बात नहीं है। वह भी ऐसे समय जबकि विशाल मुगल-साम्राज्य, बीजापुर, गोलकुडा, दक्षिणी करनाटक-नरेश, पश्चिमी समुद्र के किनारे क हबशी और फिरंगी ही नहीं अपितु वीर क्षत्रिय राजपूत और अन्य सजातीय और सधर्मी भाई भी मुसलमानों के साथ एक होकर उन्हे कुचलने का प्रयत्न कर रहे थे और अकेले शिवाजी को ही उन सब का मुकाबला करना पड़ रहा था[1]। मराठे उन्हे अवतार समझते थे, क्योंकि हिन्दूधर्म और हिन्दू-संस्कृति का उद्धार और गौ ब्राह्मण तथा साधु-संत की सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य था। दूसरी ओर अफजलखाँ-वध, शाइस्ताखाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, औरंगजेब की कैद से अकेला बचकर निकल आना, कुछ थोड़े से व्यक्तियों को साथ में लेकर अजेय दुर्गों को रात ही रात में विजय कर लेना, आदि उनके साहसिक कृत्यों के देख मुसल-

---

१. एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक। पृ० ३७२

मान उन्हें जादूगर समझते थे और उनके आतक से कॉपते थे। वही बीजापुर, जहॉ उनके पिता नौकर थे जो उनको बचपन मे ही कुचल देना चाहता था, उन्हे वार्षिक कर देने लगा था, और उनसे रक्षा की भीख मॉगता था। गोलकुडा का सुलतान उन्हें चौथ देता था, तथा पराक्रमी औरगजेब उनसे चिंतित रहता था।

शिवाजी केवल रण-कुशल वीर ही नहीं थे, अपितु कुशल शासक भी थे। उन्होंने अपने विस्तृत राज्य के शासन के लिए अष्टप्रधान नाम का एक मंत्रिमंडल बनाया था। आठ मन्त्रियों के अधीन राज्य का एक-एक विभाग था। जल और स्थल दोनों प्रकार की सेनाएँ उन्होंने रखी हुई थीं। प्रत्येक कर्मचारी को वेतन राजकीय कोष से ही मिलता था।

छत्रपति शाहू जी

वीर-केसरी छत्रपति शिवाजी के ऑख मूँदते ही मराठों में गृहकलह प्रारंभ हो गया। कुछ सरदार शिवाजी के छोटे बटे राजाराम को गद्दी पर बैठाना चाहते थे, क्योंकि वह सदाचारी और वीर था; परन्तु बड़ा होने के कारण सभाजी राज्य का अधिकारी था। अत में संभाजी ही गद्दी पर बैठा। उसने शिवाजी के कई विश्वस्त सरदारों को बुरी तरह मरवा दिया। उसमे वीरता अवश्य थी, कई स्थानों पर उसने आश्चर्य-जनक विजय भी पाई, पर व्यसनी होने के कारण उसका नाश हुआ, और वह सवत् १७४५ में मुसलमान सना द्वारा जीता पकडा गया।

औरंगजेब ने उसे मुसलमान बनने को कहा, पर उसने इनकार कर दिया। इसपर वह बुरी तरह से मार डाला गया।

अब उसका ९ वर्ष का लड़का शिवाजी गद्दी पर बिठाया गया, और उसके चाचा राजाराम अभिभावक नियत हुए। पर कुछ ही महीनों बाद मुसलमानी सेना ने रायगढ़ पर आक्रमण कर बालक शिवाजी तथा उसकी माँ येसूबाई को पकड़ लिया। छत्रपति राजाराम तथा उनके सरदार उससे पहले ही रायगढ़ छोड़ चुके थे। इस समय एक एक करके मराठों के सभी किले और प्रान्त मुगलों के अधिकार मे जाने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठाशाही का अंत निकट है। पर राजाराम और उनके साथियों ने इधर-उधर भाग कर भी उसकी रक्षा की और अन्त मे सितारा मे आकर महाराष्ट्र की राज्य-गद्दी स्थापित की। परन्तु दिन-रात युद्ध मे व्यस्त रहने के कारण केवल २९ वर्ष की अवस्था मे ही राजाराम की अकाल मृत्यु हो गई। उनके बाद उनकी स्त्री ताराबाई ने अपने नौ वर्ष के लड़के शिवाजी को गद्दी पर बिठाया। इस समय भी मराठों और औरंग-जेब मे छीना-झपटी चल रही थी। सवत् १७६४ मे औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने मराठों में फूट डालने के लिए शिवाजी को जो अब शाहूजी के नाम से प्रसिद्ध था, छोड़ दिया। उसके छूटते ही मराठों मे दो पक्ष हो गए। चार पॉच वर्षों के बाद बालाजी विश्वनाथ नामक व्यक्ति की सहायता से शाहूजी को सफलता मिली। शाहूजी ने उसे ही पेशवा अथवा प्रधान मंत्री बनाया। उसने मराठों के विद्रोह को शान्त कर मराठा राज्य को पुनः संगठित किया।

इन दिनों दिल्ली में सैयद-बन्धुओं की तूती बोल रही थी। बादशाह तक इनके इशारे पर नाचते थे। बादशाह फरुंखसियर ने सैयद-बन्धुओं की अधीनता से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। सैयद-बन्धुओं ने बालाजी विश्वनाथ से सहायता माँगी। बालाजी की सेना दिल्ली पहुँच गई। फरुंखसियर मारा गया। इस सहायता के बदले नए बादशाह मुहम्मदशाह ने मराठों को दक्षिण के छः सूबों पर 'स्वराज्य' दिया तथा अन्य मुगल शासनाधीन प्रान्तों मे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया।

इसके बाद शीघ्र ही बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई। उसका लड़का बाजीराव अपने पिता के स्थान पर पेशवा नियुक्त हुआ। इसके समय में मराठे दक्षिणी भारत की सीमा को पार कर मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि पर आक्रमण करने लगे। मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर का मुगल सूबेदार राजा गिरिधरराव से सवत् १७८३ (सन् १७२६) में युद्ध हुआ, जिसमें गिरिधरराव मारा गया[१]। इसके बाद मालवा मे मल्हारराव ने, ग्वालियर में राघोजी सिन्धिया ने और गुजरात मे दमाजी गायकवाड़ ने अपने अपने राज्य बनाए। ये सब सरदार पेशवा को अपना अधिपति मानते थे। जिन नए प्रदेशों पर ये सरदार विजय पाते थे, वे इन्हीं की अधीनता मे रहते थे। इस कारण ये सदा अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते थे और उत्तरी भारत के विविध देशों पर हमले करते रहते थे। सवत् १७८८ (सन्

---

१ दिल्ली दल दाहिने को दक्छिण के केहरी के,
चचल के आर-पार नेजे चमकत है। पृ० ३९८

१७३१) मे मराठों ने गंगा और यमुना के बीच के दोआब पर आक्रमण किया जिसमे मुगल सम्राट् के दक्षिणी सूबेदार निजामुल-मुल्क ने मराठों को सहायता दी थी[१]। परन्तु जब निजाम ने कुछ वर्ष के अनतर दिल्ली को खतरे मे देखा, तब वह मराठों स उसकी रक्षा करने के लिए बढा, परन्तु भोपाल के समीप उसकी हार हुई और उसने मालवा तथा चंबल और नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मराठों को देकर संधि की।

सं० १७९७ (सन् १७४०) मे बाजीराव पेशवा का अचानक देहावसान हो गया। उसके बाद उसका लड़का बाला-जी उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ। उसके समय मे भी मराठों क राज्य का विस्तार जारी रहा। संवत् १८०६ (सन् १७४९) में ४२ वर्ष राज्य करने के अनन्तर शाहू जी की मृत्यु हुई। इस समय भारत भर मे सबसे अधिक प्रबल शक्ति मराठों की ही थी मुगल साम्राज्य उसकी धाक से कॉपता था।

---

१ भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग लौं पतारा की। पृ० ३९९

In 1731 the old Nizam supported the Marathas in their attack upon Hindustan (*Medeval India by U N Ball*)

छत्रसाल

इलाहाबाद के दक्षिण और मालवा के पूर्व में विंध्याचल के आँचल में बसा प्रान्त बुंदेले क्षत्रियों का निवास-स्थान होने के कारण बुंदेलखंड कहाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन बुंदेलों के पंचमसिंह नामक एक पूर्वज ने अपने रक्त की बूँदों से विंध्यवासिनी देवी की उपासना की थी, अतः उसके वंशज बुंदेला कहलाने लगे। इसी बुंदेला वंश में वीराग्रगण्य चंपतराय का जन्म हुआ था। वे महेवा के शासक थे। उस समय बुंदेलखंड में और भी कई उन जैसे शासक विद्यमान थे जो चंपतराय के संबंधी ही थे। पर वे लोग जहाँ मुगलों की दासता में ही संतुष्ट थे, वहाँ चंपतराय अपनी स्वाधीन सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। मुगल-सम्राट शाहजहाँ से इस छोटे से जागीरदार का युद्ध जारी था। शाहजहाँ जब कभी बड़ी बड़ी सेनाएँ भेजता तब चंपतराय पहाड़ों में छिप जाते और सेना के पीछे हटते ही उस पर हमला कर सब कुछ छीन लेते। इन्हीं युद्धों में चंपतराय का बड़ा पुत्र सारवाहन मारा गया। चंपतराय को इसका बड़ा दु:ख था। उनके दिल में प्रतिहिंसा की आग जलने लगी। उन्हीं दिनों ज्येष्ठ शुक्ल ६ संवत् १७०६ वि० में उनकी दूसरी रानी से छत्रसाल का जन्म हुआ। ऐसा मालूम होता है कि वे पिता की प्रतिहिंसा की भावना को लेकर ही पैदा हुए थे।

इस समय निरंतर युद्धों से तंग आकर चंपतराय ने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली और तीन लाख की मालगुजारी पर कोंच का परगना पाया। उसके बाद वे युवराज दाराशिकोह के साथ काबुल में लड़ने गये। वहाँ उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई, पर दारा और चंपतराय की अनबन हो गई। इसके थोड़े ही दिन पीछे सं० १७१५ में दारा और औरंगजेब में सल्तनत के लिए धौलपुर के समीप युद्ध हुआ, जिसमें चंपतराय ने औरंगजेब का साथ दिया। इस युद्ध में विजय पाने पर औरंगजेब ने चंपतराय को बारह-हजारी का मनसब और एक बड़ी जागीर दी। पर कुछ ही दिन के अनन्तर स्वाधीनता-प्रेमी चंपतराय ने शाही नौकरी को परित्याग कर आसपास लूट-मार जारी कर दी। इस समय से लगभग दो वर्ष तक चंपतराय की मुगल-सेनाओं से लड़ाई चलती रही। वह कई बार हारे और कई बार जीते। अधिकतर मुसलमानों की बहुसंख्या और साधन-संपन्न सेना के सामने उन्हें हार ही खानी पड़ी और जंगल में इधर से उधर मारे-मारे फिरना पड़ा। उनके संबन्धी भी उनके दुश्मन हो गये। परन्तु उन्होंने कभी दिल न तोड़ा। उनकी वीर-पत्नी, छत्रसाल की माँ, सदा उनके साथ ही रहती थी। अंत में जब बीमारी से क्षीण चंपतराय अपनी बहन के यहाँ आश्रय लेने गये, तब उसके नौकर अपने स्वामी के गुप्त आदेश के अनुसार उन्हें पकड़ कर मुगलों के यहाँ भेजना चाहते थे। वे विश्वासघाती रक्षक सुरक्षित स्थान की खोज में जाते हुए चंपतराय पर टूट पड़े, और उन्होंने उन्हें वहीं मार डाला। उनकी वीर-पत्नी भी पति की रक्षा करती हुई वहीं काम आई। छत्रसाल बच निकले। वे इस समय केवल १५ वर्ष के थे।

चंपतराय ने लूटमार और मुगलों पर आक्रमण कर सारे बुंदेलखंड को शत्रु बना लिया था। उसकी सन्तान को आश्रय देने को कोई भी तैयार न था। छत्रसाल पहले अपने चाचा सुजान-

राय के पास गये, पर उनके मुस्लिम-द्वेषी विचार उनके चाचा को पसन्द न थे, अत छत्रसाल उनको छोड़कर अपने भाई अगदराय के यहाँ देवगढ चले गये और भाई की सलाह से वे आमेराधिपति जयसिंह के नीचे मुगल-सेना में सम्मिलित हो गये। देवगढ़ के घेरे में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया। पर जब वे देखते कि मुस्लिम-सेना मे वीरता प्रदर्शन करने पर भी नाम और मान नही मिलता तब उनका हृदय असन्तोष से उबल उठता और शिवाजी के आदर्शों को देखकर उनमें भी स्वाधीनता के भाव प्रज्व-लित हो उठते। अत में स० १७२८ में एक दिन छत्रसाल शाही फौज से विदा होकर गुप्तरूप से शिवाजी के शिविर में जा पहुँचे। शिवाजी ने उस नवयुवक को बुन्देलखड मे लौटकर मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खडा करने की सलाह दी। तदनुसार अपने जन्म-स्थान में स्वतत्र राज्य की स्थापना का सकल्प करके वे दक्षिण से लौटे। अब निराश्रय तथा निर्धन युवक छत्रसाल विशाल मुगल-साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए साथी जुटाने लगे।

पहले वे मुगलों के कृपापात्र शुभकरण बुन्देले से मिले। वह उनके कार्य में सहयोग देने को राजी न हुआ, पर धीरे धीरे कई अन्य बुन्देल सरदार उनसे मिल गये। यहाँ तक कि स्वयं ओरछा नरेश जो उनके प्रबल शत्रुओं मे से था उनकी सहायता करने के लिए उद्यत हो गया।

अब छत्रसाल ने इधर-उधर लूटमार प्रारम्भ की। धँधेरा सरदार कुँअरसेन उनका सबसे पहला शिकार था। कुँअरसेन ने हारकर अपनी भतीजी का व्याह छत्रसाल से कर दिया। इसके बाद छत्रसाल ने सिरोज के थानेदार मुहम्मदअमीखाँ (मुहम्मद-हाशिमखाँ) की रक्षा में दक्षिण से जाते हुए कोष को लूट लिया[1]।

---

१. जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा
महमद अमीखा का कटक खजाना है। पृ० ३५४

फिर उन्होंने धामुनी पर चढ़ाई कर विजय पाई और बाँसी के केशवराय को परास्त कर मार दिया।

सवत् १७३५ वि० में छत्रसाल ने पन्ना नामक शहर बसाया, और उसे ही अपनी राजधानी बनाया। अब उनका आतक सारे बुन्देलखड पर छागया। छत्रसाल की बढ़ती देख औरगजेब ने रणदूलहखाँ को तीस हजार सैनिको के साथ छत्रसाल के दमन के लिये भेजा, परन्तु छत्रसाल ने चतुरता से उसे परास्त कर दिया। उसके बाद सवत् १७३७ में औरगजेब ने तहव्वरखॉ को एक बड़ी सेना के साथ छत्रसाल पर चढ़ाई करने को भेजा। कई लड़ाइयो के बाद वह भी हार कर वापिस लौट आया। यह समाचार पाते ही औरगजेब ने बहुत बड़ी सेना के साथ शेख अनवर को छत्रसाल को पकड़ने के लिये भेजा। छत्रसाल ने अचानक छापा मारकर शेख अनवर को पकड़ लिया। सवा लाख रुपया देकर वह कठिनता से छूट सका। अब औरगजेब ने अनवरखॉ को पदच्युत कर धमौनी के सूबेदार मिर्जा सुतरुद्दीन को भेजा पर उसकी भी शेख अनवरखाँ की सी गति हुई, वह भी सवा लाख भेंट तथा चौथ का वचन देकर छूटा[1]।

इस प्रकार कई विजय प्राप्त कर स० १७४४ में छत्रसाल ने विधिपूर्वक राज्याभिषेक कराया। सवत् १७४७ में अब्दुस्समदखॉ की नायकता मे एक भारी मुगल-वाहिनी ने आकर बुन्देलखड को घेर लिया। वेतवा नदी के किनारे भयकर युद्ध हुआ[2] जिसमे अब्दुस्समद को बुरी तरह नीचा देखना पड़ा और वह अपनी सेना को लेकर यमुना की ओर वापिस चला गया।

---

१. तहवरखान हराय ऐंड अनवर की जग हरि।
सुतरुदीन बहलोल गए अब्दुल्ल समद मुरि॥ पृ० ३६१

२. अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के। पृ० ३५६

जब छत्रसाल अब्दुस्समद से लड रहे थे तब भेलसा मुगलो ने ले लिया था। छत्रसाल भेलसा लेने को बढे, मार्ग मे बहलोलखाँ ने जगतसिंह बुंदेले को साथ ले इन पर धावा किया। इस लडाई मे जगतसिंह मारा गया, और बहलोल को भागना पडा। बहलोल ने दो तीन और लडाइयाँ की, पर सब मे उसे नीचा देखना पड़ा, अन्त में लज्जावश उसने आत्मघात कर लिया। तदनन्तर छत्रसाल ने मुरादखाँ और दलेलखाँ को भी पराजित किया। स० १७५० मे बीजापुर के एक पठान ने पन्ना पर चढ़ाई की थी, पर युद्ध प्रारम्भ होते ही वह इस लोक को छोड कर चलता बना और उसकी सेना आगे न बढ सकी[1]। इसी समय सैयद अफगान नामक एक दिल्ली का सरदार छत्रसाल से लड़ने को भेजा गया। छत्रसाल ने इसे भी पराजित कर दिया[2]। तब औरंगजेब ने शाहकुली नामक सरदार को भेजा। पहले उसे कुछ सफलता मिली, पर अन्त में उसे भी निराश ही लौटना पड़ा। अब यमुना और चंबल के दक्षिण के सम्पूर्ण प्रदेश पर छत्रसाल का अधिकार हो गया, आसपास के शासक उनके आज्ञानुवर्ती हो गये[3]।

स० १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाह ने इन्हे उनके स्वतन्त्र राज्य का राजा स्वीकार कर लिया। अब उन्हों ने निश्चिंत हो शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इसमें उन्होंने शिवाजी का ही अधिकतर अनुकरण किया। अपने जीते जी ही उन्होंने अपने पुत्रों को राज्य क भिन्न-भिन्न विभागों का शासक नियत कर दिया था।

---

१. दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को पृ० ३५५

२. सैद अफगनहि जेर किय। पृ० ३६१

३. जंग जीतिलेवा तेऊ ह्वै कै दाम-देवा भूप
सेवा लागे करन महेवा महिपालकी। पृ० ३५३

मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता के ढीला पडते ही स्थान-स्थान पर मुगल-सरदारों ने अपने अपने राज्य स्थापित कर लिए थे। इसी प्रकार का एक फौजदार मुहम्मदखाँ बगश फर्रुखाबाद मे अपनी नवाबी चलाता था। पास के बुदेलखड पर भी अपना प्रभुत्व जमाने के लिए वह सं० १७८६ में अपनी कई सहस्र सेना के साथ वहाँ चढ आया। महाराज छत्रसाल रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह का बहुत-सा राज्य छीन चुके थे अत रीवाँ-नरेश भी बगश की सहायता दे रहे थे। इस कुदशा मे छत्रसाल ने जो अब ७५-७६ वर्ष कर वृद्ध थे, पेशवा बाजीराव को एक पत्र में सब वृत्तान्त लिख कर अत मे लिखा—

"जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुँदेल की राखो बाजी लाज॥"

यह पत्र पाते ही पेशवा ने एक महती सेना भेजी और उसकी सहायता से छत्रसाल ने बगश को परास्त किया। बगश ने बुंदेलों का जीता हुआ इलाका लौटा दिया और भविष्य में बुदेलखंड की ओर पैर न बढ़ाने की शपथ खाई।

महाराज ने इस उपकार के बदले बाजीराव को अपना एक तिहाई राज्य दे दिया, और शेष अपने दो बड़े लड़कों मे बाँट दिया। स० १७९० मे वह वीर-केसरी इस असार ससार को छोड़ गया।

छत्रसाल स्वयं कवि थे, और कवियों का बड़ा आदर करते थे। उन के बनाये हुए कई काव्य-ग्रन्थ मिलते हैं। इन के दरबारी कवियों मे से 'लाल' कवि सब से अधिक प्रसिद्ध हैं। लाल ने 'छत्र प्रकाश' नामक ग्रन्थ में उनका गुण-गान किया है।

भूषण की रचनाएँ

शिवराज-भूषण—महाकवि भूषण की रचनाओं में से केवल 'शिवराज-भूषण' ही एक ऐसा स्वतंत्र ग्रंथ है जो आजकल उपलब्ध है। इसके नाम से ही प्रकट है कि इसमें शिवाजी की चर्चा है, और यह भूषण (अलकार) का ग्रथ है। अथवा इसे कवि भूषण ने बनाया है। इस तरह इसका नाम, नायक, कवि तथा विषय सभी का द्योतक है। कवि ने सुन्दर अलंकार-ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने मत के अनुसार इस ग्रथ मे अलकारों का लक्षण दोहों में देकर उनके उदाहरण सवैया, कवित्त आदि विविध छन्दों में दिए हैं। ये उदाहरण सब शिवाजी के चरित्र पर आश्रित हैं।

पुस्तक के अन्त मे दी गई अलंकारों की सूची मे एक सौ अर्थालंकार चार शब्दालकार तथा एक उभयालकार—इस प्रकार कुल एक सौ पॉच अलकार गिनाये गए हैं। इस गणना मे कहीं कहीं अलकारों के भेद भी सम्मिलित हैं, पर कई अलकारों के भेदों को अन्तिम सूची में सम्मिलित नहीं किया गया, जैसे—लुप्तोपमा, न्यून, अधिक, रूपक, गम्योत्प्रेक्षा आदि। इस अलंकार-सूची को देखने से पता लगता है कि भूषण ने मोटे तौर पर दो एक अलकारों को छोडकर बाकी सभी मुख्य अलंकारों का वर्णन कर दिया है। जितने अलंकार लिखे हैं, उनमें से कुछ के पूरे भेद कहे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं, और कुछ के भेद नहीं भी लिखे। भूषण ने दो एक नए अलकारों का उल्लेख भी किया है, जैसे—सामान्य-

विशेष तथा भाविकछवि। ऐसे ही भूषण ने विरोध और विरोधाभास को भिन्न-भिन्न अलकार माना है। इनमे उन्हे कितनी सफलता मिली है इसकी विवेचना आगे की जायगी।

इस ग्रथ मे सवत् १७१३ से १७३० तक की शिवाजी के जीवन की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा विजयों, उनके प्रभुत्व, आतक, यश तथा दान आदि का उल्लेख है। जिन घटनाओं का इस ग्रथ मे उल्लेख हुआ है उनकी तालिका आगे दी जाती है।

घटना	पद सख्या	सवत्
जावली को जब्त करना	२०७	१७१३
नौशेरखाँ से युद्ध और उसे लूटना	३०८, १०२	१७१४
औरगजेब द्वारा दारा तथा मुराद का मारा जाना, और शाहशुजा का भगाया जाना	२१८	१७१५
अफजलखाँ वध	४२,६३,६८,१७४, २४१,२५३,३१३,३३६	१७१६
रुस्तमे जमानखाँ का पलायन	२४१	१७१६
खवासखाँ से युद्ध	३३०	१७१८
सिंगारपुर लेना	२०७	१७१८
रायगढ़ मे राजधानी स्थापित करना	१४,२४	१७१९
कारतलबखाँ को लूटना	१०२	१७१९
शाइस्ताखाँ की दुर्दशा	१०२,१७४,१९०,३२२ ३२५,३३६,३४०	१७२०

सूरत की लूट	२०१,३३६,३५६	१७२१,१७२७
जयसिंह से संधि और गढ़ देना	२१३,२१४	१७२२
शिवाजी की औरंगजेब से भेंट	३४,३८,१८७,१९९, २०५,२१०,२६६, ३१०,३११	१७२३
कैद से निकल आना	७६,१४८,१९९	१७२३
सिंहगढ और लोहगढ की पुन प्राप्ति	९९,२६०,२८६	१७२७
सीदी सरदार फत्तेखाँ से संधि	२४१	१७२७
सलहेरि का युद्ध	९६,१०२,१६१, २२७,२४१, २९३,३३३,३५७	१७२९
बहादुरखाँ का सेनानायक होना	७७,३२२	१७२९
जवारि रामनगर की विजय	१७३,२०७	१७२९
तिलगाना की लूट	३५९	१७२९
परनाला किले की विजय	१०६, १७९, २०८, २५५, ३५६,	१७३०
बीजापुर पर धावा	२०७, २५५ ३१३,	१७३०
बहलोल के दल का कुचला जाना	३५८,३६०,३६१	१७३०

इसको देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भूषण ने शिवाजी के जातीय जीवन की घटनाओं पर ही कुछ लिखा है; उनके यशोःशरीर का ही चित्र खींचा है। एक भी छंद शिवाजी के वैयक्तिक जीवन के विषय में नहीं है।

अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख होने पर भी 'शिवराज-भूषण' एक स्फुट काव्य है, प्रबन्धकाव्य नहीं। अर्थात् उसका प्रत्येक छन्द अपने आप मे पूरा है, एक पद का दूसरे पद से कोई आनुपूर्वी संबध नहीं है। उसमे किसी समय का तारीखवार इतिहास या किसी घटना-विशेष का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। केवल घटनाओं का उल्लेख मात्र है और वह उल्लेख केवल काव्य के चरित-नायक वीर-केसरी शिवाजी के गौरव-गान के लिये है। इसी प्रकार यद्यपि शिवराज-भूषण एक अलकार ग्रंथ है, पर अलंकारों की गूढ छानबीन करने के लिए यह नहीं लिखा गया। भूषण का उद्देश्य तो केवल शिवाजी के यश को अजर-अमर करना था और उसने ऐतिहासिक घटनाओं तथा अलकारों को उस उज्ज्वल चरित्र को अलंकृत करने का एक साधन-मात्र बनाया है। उस पवित्र चरित्र को देखकर ही कवि के हृदय में जो अलकार-मय काव्य-रचना की वासना उत्पन्न हुई थी इसी वासना को पूर्ण करने के लिए उसने यह अलकार-मय ग्रंथ बनाया। कवि स्वयं कहता है—

'सिव-चरित्र लखि यों भयो कवि भूषण के चित्त
भाँति भाँति भूपननिसों भूपित करों कवित्त।'

शिवाबावनी—इस नाम का भूपण ने कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं बनाया था। यह भूषण के शिवाजी-सबंधी ५२ स्फुट पद्यों का संग्रह मात्र है। बावनी के संबंध मे यह किंवदती प्रचलित है कि जब भूषण और शिवाजी की प्रथम भेंट हुई थी तब भूषण ने छद्मवेशी शिवाजी को जो ५२ भिन्न-

भिन्न कवित्त सुनाये थे, वे ही शिवाबावनी मे सगृहीत हैं। परन्तु यह किंवदन्ती सर्वथा सारहीन है, क्योंकि शिवाबावनी के नाम से आजकल जो संग्रह मिलते हैं उनमें स०१७३० तक की घटनाओं का उल्लेख है। कई सग्रहों मे तो ऐसे पद्य भी हैं, जिनमे सवत् १७३६ तक की घटनाओं का जिक्र है। यह सग्रह भूषण का अपना किया हुआ प्रतीत नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने भूषण के शिवाजी-विषयक फुटकर पद्यों मे से अच्छे-अच्छे पद छॉट कर शिवाबावनी नाम से सग्रह छपवाया होगा। तभी से यह नाम प्रसिद्ध हो गया।

शिवाबावनी नाम से जो संग्रह मिलते हैं, उनमें पदों का क्रम प्राय भिन्न-भिन्न है और कुछ पद भी भिन्न हैं। हमने इसमे प्राय: मिश्रबधुओं का क्रम रखा है, क्योंकि अधिकांश सग्रहों मे मिश्रबन्धुओं का ही अनुकरण किया गया है। शिवाबावनी में दो पद (स० १२ और १३) औरगजेब की निन्दा के हैं। इन्हे 'शिवाबावनी' में रखना उचित प्रतीत नही होता, क्योंकि इनका शिवाजी से कोई सबध नहीं। पर क्योंकि अब तक के अधिकांश सस्करणों मे चले आते है, अत: विद्यार्थियों की सुविधा के लिए हमने उन्हे रहने दिया है। शिवाबावनी में अधिकतर पद शिवाजी की सेना के प्रयाण का शत्रुओं पर प्रभाव, शिवाजी के आतंक से शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा, शिवाजी का पराक्रम तथा शिवाजी को विजय करने मे औरगजेब की असफलता, और यदि शिवाजी न होते तो हिन्दुओं की क्या दशा होती, आदि विषयों

पर हैं। अलंकार के बंधनों के कारण शिवराज-भूषण में कवि जिस ओज का परिचय न दे सका था, उसका परिचय इन छंदों में मिलता है। स्वतन्त्रता-पूर्वक निर्मित होने के कारण इन छंदों में प्राबल्य और गौरव विशेष रूप से है। वीर,रौद्र तथा भयानक रस के कई अनूठे उदाहरण इसमें पाये जाते है।

छत्रसाल-दशक—यह छोटा सा ग्रन्थ भी शिवाबावनी की तरह एक संग्रह-मात्र है। इसमें वीर-केसरी छत्रसाल बुंदेला विषयक पद्यों का सग्रह है। भूषण दक्षिण मे आते-जाते जब कभी इस वीर के यहाँ ठहरते रहे, तभी समय समय पर इन पदों का निर्माण हुआ।

प्रारम्भ में दो दोहों मे छत्रसाल हाड़ा और छत्रसाल बुंदेला की तुलना है। उसके बाद नौ कवित्त और एक छप्पय वीर बुदेले की प्रशंसा के हैं, और मुख्यतया उनमें उनकी विजयों का उल्लेख है। कई प्रतियों मे छत्रसाल हाड़ा-विषयक कुछ पद भी सम्मिलित कर दिए गए हैं पर उनमें कवि का नाम न होने से स्वर्गीय गोविन्द गिल्लाभाई उन्हे भूषणकृत नहीं मानते।

शिवाबावनी के समान छत्रसालदशक के पद्य भी उच्च-कोटि के है और इनमें रस का परिपाक भी अच्छा हुआ है।

फुटकर—शिवराज-भूषण तथा उपरिलिखित दो संग्रहों के अतिरिक्त भूषण के कुछ और स्फुट पद्य भी मिलते हैं। अब तक प्राप्त पद्यों की संख्या ६५ के लगभग है, जिनमे से ३६ तो शिवाजी-विषयक हैं और १० शृंगार-रस के है, शेष शाहूजी या अन्य राजाओं के वर्णन मे है।

शिवाजी-विषयक छन्दों मे शिवाबावनी की तरह या तो

शिवाजी की धाक का वर्णन है अथवा शिवाजी के अन्तिम-जीवन की घटनाओं—करनाटक पर चढ़ाई, गोलकुंडा के सुलतान का शिवाजी को कर देने की प्रतिज्ञा करना, तथा शिवाजी द्वारा बीजापुर की रक्षा—का उल्लेख है।

शिवाजी के बाद ४ पद्य उनके पोते शाहूजी पर हैं। एक एक पद्य सुलकी-नरेश तथा रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह पर, फिर एक-एक पद्य आमेराधिपति महाराज जयसिंह तथा उनके पुत्र महाराज रामसिंह पर, उसके बाद एक पद्य पौरच-नरेश पर तथा दो पद्य रावबुद्धसिंह हाड़ा पर मिलते हैं। एक पद्य कुमाऊँ नरेश के हाथियों की प्रशंसा में भी मिलता है। इसके बाद एक पद्य दारा तथा औरंगजेब के युद्ध पर भी मिलता है। उसमें कवि का नाम है, अत. भूषण का कहना पड़ता है। परन्तु पता नहीं भूषण ने यह छन्द किस अवसर पर बनाया। इसके बाद के शृंगार रस को छोड़कर शेष जितने पद्य दिए गए हैं वे सब संदिग्ध हैं और उनके नीचे ही संदेह का कारण दे दिया गया है। कुछ अन्य पद्य भी भूषण के नाम से प्राप्त हुए हैं, पर वे भी भूषण-कृत हैं या नहीं इसमें संदेह है।

हिन्दी के वीर-काव्य और रीतिग्रन्थों पर एक विहंगम दृष्टि

भूषण वीर कवि थे, स्वतन्त्रता के प्रेमी थे, बन्धन और परतन्त्रता उन्हें चुभती थी। परन्तु रीतिकाल के कवि होने के कारण उन्हें भी अपनी कविता को अलंकारों के बन्धन में बाँधना

पड़ा। अतः भूषण की कविता की आलोचना करने से पहले जहाँ हमें हिंदी के अन्य वीर कवियों की कविता पर दृष्टि डालनी पड़ेगी, वहाँ तत्कालीन साहित्यिक विचार-धारा का भी विहगावलोकन करना होगा।

उत्तर भारत के जिस भूभाग मे जिस समय अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न होकर हिंदी-साहित्य अपना शैशवकाल व्यतीत कर रहा था, उस समय उसी भूभाग मे घोर अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था। महाराज हर्षवर्धन के बाद से भारत में एकछत्र सम्राट् दिखाई न दिया था। देश कई टुकड़ों मे बँट चुका था, और उन पर भिन्न-भिन्न राजपूत राजाओं का राज्य था। ये राजागण निरन्तर गृह-कलह में व्यस्त रहते थे। इधर भारत के पश्चिमीय भूभागो पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। वे पहले यहाँ की अतुल सम्पत्ति को लूट ले जाने की इच्छा से ही आक्रमण करते थे, पर कुछ काल के उपरान्त वे कुछ तो धर्मप्रचार की इच्छा से और कुछ यहाँ के विपुल धन-धान्य से आकृष्ट होकर इस देश पर अधिकार जमाने की धुन में लगे। यहाँ के राजपूत राजाओं को समय-समय पर उनके साथ लोहा लेना पड़ता था। इन युद्धों मे उन्हे प्रोत्साहित करने के लिए मारु-राग पर गाने वाले वीर कवियों की आवश्यकता थी। भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति के उस युग मे वीर-गाथाओं की ही रचना सभव थी। राजपूतों द्वारा शासित भूभाग मे वीरोल्लासिनी कविता की गूँज सुनाई पड़ने लगी। हिन्दी के आदि-युग मे जो केवल वीर रस की कविताएँ मिलती हैं उसका यही कारण है।

उस समय की वीरगाथाएँ दो रूपों मे मिलती हैं—कुछ तो प्रबन्ध-काव्य के साहित्यिक रूप में और कुछ वीरगीतों के रूप में। हिंदी की वीरगाथाओं में प्रबंध रूप से सबसे प्राचीन ग्रथ जिसका उल्लेख मिलता है, दलपतिविजयका 'खुमानरासो' है। ऐसा कहा जाता है कि उसमे चित्तौड़ के दूसरे खुम्माण (वि० स० ८७०-९००) के युद्धों का वर्णन था। इस समय इस पुस्तक की जो प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है। वीर-गाथा-सम्बधी प्रबन्ध काव्यो मे दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक चन्दवरदई-कृत 'पृथ्वीराज-रासो' है। इसके रचयिता चन्द वरदई महाराज पृथ्वीराज के समकालीन तथा उनके राजकवि, सामन्त और सखा बताए जाते हैं। यह ढाई हजार पृष्ठो का बड़ा ग्रन्थ है। जिसमें ६९ समय (सर्ग या अध्याय) हैं। यही विशाल-काय ग्रन्थ हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। समस्त वीर-गाथा युग की यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है। उस काल की जितनी स्पष्ट झलक इस एक ग्रंथ में मिलती है उतनी दूसरे किसी ग्रंथ में नहीं मिलती। इसमे अनेकों युद्धों का वर्णन है, युद्धों के साथ प्रेम का अनूठा सम्मिश्रण है। इस प्रकार वीर और शृंगाररस की स्थान स्थान पर अद्भुत छटा दिखाई देती है। रसात्मकता के विचार से उसकी गणना हिन्दी के थोड़े से उत्कष्ट काव्य-ग्रथों में हो सकती है। परन्तु इसकी आजकल जितनी भी प्रतियॉ मिलती हैं, उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है। उसमें वर्णित घटनाएँ इतिहास के विरुद्ध भी दिखाई देती हैं, भाषा की भी बड़ी विभिन्नता है। अत ऐतिहासिकों में इसकी प्राचीनता के विषय में बड़ा विवाद

है । प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ओझा तो इसके लेखक चंदवरदई के महाराज पृथ्वीराज के दरबार मे होने मे संदेह करते हैं ।

इस काल के अन्य प्रबन्ध-काव्यों मे भट्ट केदार का 'जयचंद-प्रकाश' मधुकर का 'जयमयक-जसचन्द्रिका' सारंगधर का 'हम्मीर-काव्य' और नल्लसिंह का 'विजयपाल रासो' उल्लेखनीय हैं ।

वीरगीतों में सबसे प्रसिद्ध नाल्ह-रचित 'वीसलदेव रासो तथा जगनिक कृत 'आह्लखड' है । बहुत काल तक लिपि-बद्ध न होने के कारण और भाट तथा चारणों मे परपरा रूप से मौखिक चले आने के कारण इनके रूप में, भाषा मे और वर्णित विषयों में प्रर्याप्त परिवर्त्तन आ गया है । 'वीसलदेवरासो' मे सॉभर के बीसलदेव के राजकन्या राजमती से विवाह तथा रूठ कर उड़ीसा की ओर जाने और फिर उनके पुनर्मिलन का उल्लेख है । वर्तमान समय मे इसे एक प्रेम-गाथा ही माना जा सकता है । परन्तु उसमे वीरों के सरल हृदय की व्यंजना होने से वह वीर-गीत कहलाता है । आल्हखण्ड मे आल्हा ऊदल आदि की वीर वाणी तथा वीर कृत्यों का जमघट-सा है, उनके अनेक विवाहों तथा ५२ लड़ाइयों का वर्णन है। प्रचार की दृष्टि से तत्कालीन रचनाओं में स सबसे अधिक इसी ग्रथ ने आदर पाया है । ये गीत आजतक हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में बरसात में गाए जाते है ।

तत्कालीन प्रसिद्ध ग्रथों को देखने से पता चलता है कि उस काल की प्रायः सारी कविता राजाओं के आश्रय में ही हुई, अतः उनमें राजाश्रित कविता की प्रायः सभी विशेपताएँ मिलती हैं । इन कवियों की वाणी अपने स्वामियो के कीर्ति-

कथन में कभी कुंठित नहीं हुई। किसी राजा की कन्या के रूप का समाचार पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हर लाना उस समय वीर राजाओं के गौरव और अभिमान का कार्य समझा जाता था। अतः जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या-हरण आदि का अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन करता या रण-क्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय मे उत्साह की उमगे भर सकता वही सम्मान पाता था। इस कारण उस समय के काव्यों में गौण रूप मे शृंगार का भी मिश्रण रहता था, पर प्रधान वीर रस ही रहता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर किसी रूपवती स्त्री को ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी। जैसे 'पृथ्वीराज रासो' में शहाबुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहाँ आना ही लडाई की जड लिखी है। हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी ऐसा कारण कल्पित किया गया है। उस समय के वीर-काव्य के रचयिता प्राय. राजपूताने के भाट या चारण थे। कुछ काव्यों मे उनके जन्म-स्थान की भाषा का प्रयोग था जिसे डिंगल कहा जाता है, और कुछ काव्यों मे सामान्य काव्य-भाषा का प्रयोग होता था, जिसे 'पिंगल' कहा जाता है। पर राजस्थानी का पुट 'पिंगल' मे भी पर्याप्त होता था।

जब देश का शासनाधिकार मुसलमानों के हाथ में जाकर स्थिर होगया, और जब रणथभौर तथा चित्तौड़ आदि को छोड़ कर शेष सभी देशी रजवाड़ों ने विदेशियों को आत्म-समर्पण कर दिया तब वीर-गाथाओं की रचना मे शिथिलता

आगई। जनता आतंकित और विलासी होकर आत्मविस्मृत सी हो गई। अब वीरगाथाओं तथा कर्कश रणनाद का स्थान सन्तों प्रेमियों और भक्तों की वाणी ने लेना प्रारंभ किया। सन्त कबीर, सूफी फकीर मलिक मुहम्मद जायसी, महात्मा सूरदास, रामधन तुलसीदास तथा इन सब के अनुयायियों ने कविता का रूप ही बदल दिया। कविता राजदरबारों से निकल कर जनता के सेवक वैरागियों की कुटिया मे आगई और राजकवियों की अपेक्षा जनता के प्रतिनिधियों से उसे अधिक आदर मिला।

यह हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण युग था। हिन्दी काव्य इस समय पूर्ण प्रौढ़ता को पहुँच चुका था। ऐसे समय कुछ लोगों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने और सस्कृत की काव्य-रीति का अनुसरण करन की ओर खिच रहा था। फलतः रस और अलंकारों का विवेचन प्रारंभ हुआ। सवत् १५९८ में कृपाराम ने थोड़ा बहुत रस-निरूपण किया। उसके वाद गोप कवि ने अलकारों की ओर ध्यान दिया। पर हिन्दी मे पहले आचार्य जिन्होंने काव्य के सब अगों का विवेचन संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति से किया, वे थे केशवदास। वे अलकारों को ही काव्य की आत्मा मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे। रीति पर इन्होंने दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे—कविप्रिया और रसिक-प्रिया। कवि-प्रिया मे इन्होंने बहुत से विषयों का समावेश किया—जैसे, काव्य-भेद अलंकार-भेद, दोष, काव्य के वर्ण्य विषय आदि। रसिक-प्रिया मे इन्होंने दांपत्य रीति-भाव को ही लेकर उसके कई भेद दिखाते हुए शृंगार रस के आलंबन आदि का विस्तार से वर्णन किया। इन ग्रथों का विद्वानों मे पर्याप्त आदर हुआ। पर हिन्दी मे रीति-ग्रंथों का

अविरल और अखंडित प्रवाह केशव की 'कवि-प्रिया' के प्राय' पचास वर्ष पीछे चला, और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर। केशव ने दण्डी,रुय्यक आदि संस्कृत के आचार्यों की अलंकारों की विस्तृत विवेचनात्मक और छान-बीन की प्रणाली का अनुकरण किया था, पर हिन्दी के पिछले कवियों ने सस्कृत के 'चद्रालोक' और 'कुवलयानद' की संक्षिप्त शैली का अनुकरण किया, अर्थात् एक दोहे के पूर्वार्द्ध में या एक पूरे दोहे मे किसी अलकार या रस का पूरा या अधूरा लक्षण लिखकर उत्तरार्द्ध मे या अलग कवित्त अथवा सवैये में उसका उदाहरण देने की प्रथा चल पड़ी। यह बाढ़ अथवा परम्परा भूषण के भाई चिंतामणि त्रिपाठी से प्रारभ हुई। और इसका इतना प्रचार हुआ कि बिना लक्षण-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म अधूरा समझा जाने लगा। रीति-ग्रथों को इतना महत्त्व दिया जाने लगा कि कवि कहलाने के लिए उसी परिपाटी पर ग्रन्थ-रचना करना प्राय अनिवार्य हो गया। इसमें शृगार-रस को ही प्रधानता मिली। भक्त-कवियो के कृष्ण और राधिका के लीला-वर्णन में वासना के कीडे ने प्रवेश किया। तत्कालीन राजाओं की विलास-चेष्टाओ की परितृप्ति और अनुमोदन के लिये कृष्ण एव गोपियो की ओट में कवियों ने कलुषित प्रेम की शत-शहस्र उद्भावनाएँ की। शृगार के आलबन नायक-नायिकाओं के अनेक भेद-विभेद किये गये। रस-ग्रन्थ प्राय, नायिका-भेद के ही ग्रन्थ हैं। उद्दीपन के लिए षड् ऋतु वर्णन की प्रथा चली। सूर और तुलसीदास जैसे महाकवियो ने काव्य-कला को साधन बना कर अलकारो को केवल सहायक समझ कर उनका उपयोग किया था, पर रीतिकाल के कवियों ने काव्य-कला को ही साध्य समझा, और अलकारों को ही

कविता का सौंदर्य। उन्होंने काव्यकला को ही प्रधान मान कर शेष सब बातो की उपेक्षा की और मुक्तकों के द्वारा एक-एक अलकार,एक-एक नायिका अथवा एक-एक ऋतु का वर्णन किया।

सस्कृत-साहित्य मे कवि और आचार्य दोनो भिन्न-भिन्न थे। अर्थात् कवि अपने काव्य की रचना कर अलग हो जाते थे, वे लक्षण-ग्रन्थों के निर्माण मे न पड़ते थे। और जो लोग अलकार आदि के लक्षणो से युक्त ग्रन्थ लिखते थे, वे केवल लक्षणों का निरूपण एव प्राचीन काव्य की समालोचना मे ही भिड़ते थे, स्वयं लक्षणानुसार उदाहरणो का निर्माण न करते थे। इस कारण सस्कृत में लक्षण-ग्रन्थों के लिखने में पर्याप्त छानबीन से काम लिया गया। कई नये-नये वाद निकले। रसवादी रस को ही काव्य की आत्मा मानते थे। उनका कहना था कि रस-युक्त वाक्य ही काव्य है। अलकारवादी अलकारों को ही काव्य में प्रधान मानते थे। उनकी सम्मति मे रस आदि अलकारो से गौण थे। वे ओज, प्रसाद माधुर्य आदि गुणों की भी अलकारो मे गिनती करते थे। तीसरे रीतिवादी, रीति को ही काव्य की आत्मा मानते थे। रीति शब्दो के नियमित और सघटित प्रयोग को कहते हैं। उन्होने वैदर्भी, गौड़ी तथा पाँचाली कुल तीन प्रकार की रीतियो का विवेचन किया। चौथे वक्रोक्ति-संप्रदाय वालो का कहना था कि कवि वस्तुओं के सबन्ध का अभिव्यजन जो कुछ चमत्कार और बाँकेपन से करता है वही वक्रोक्ति है, और वक्रोक्ति ही काव्य का सर्वस्व है, वक्रोक्तिरहित साधारण कथन काव्य नही है। पाँचवाँ सम्प्रदाय ध्वनि सप्रदाय था। वे ध्वनि को ही काव्य के उत्तम स्वरूप का निदर्शक मानते है। ध्वनि तीन प्रकार की कही जाती है—रसध्वनि, अलकार-ध्वनि, और वस्तु-ध्वनि। वे यह भी कहते हैं कि जिस काव्य से रस-सिद्धि नहीं होती

वह निष्प्रयोजन है। इस प्रकार वह रस-सम्प्रदाय से अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ते हैं; साथ ही वे अलकारों, गुणों आदि को रसोत्पादन मे सहायक मात्र मानकर गौण स्थान देते हैं। पीछे इसी सम्प्रदाय की शैली सर्वमान्य होगई। पर हिन्दी के रीतिकारों मे न इस प्रकार के संप्रदाय थे, और न गहरी छान बीन ही हुई, क्योंकि यहाँ कवि और आचार्य एक ही थे। प्रायः रीति-ग्रन्थ लिखने वाले भावुक सहृदय और निपुण कवि थे, उनका उद्देश्य कविता करना था न कि कव्यांगों को शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। ऐसे कवि लोग एक दोहे मे अपूर्ण लक्षण देकर अपने कवि-कर्म में प्रवृत्त होजाते थे। उनका लक्षण-ग्रथों का सहारा लेना तो एक बहाना मात्र था। उनकी दृष्टि तो काव्य-रचना में ही टिकी हुई थी। फलतः काव्यांगों का विस्तृत विवेचन तर्क द्वारा खडन-मडन तथा नए-नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ न हुआ। अपितु उनके अपूर्ण लक्षण साहित्य-शास्त्र का सम्यक् बोध कराने मे सर्वथा असमर्थ रहे। बहुत स्थलो पर तो उनके द्वारा अलकार आदि के स्वरूप का भी ठीक बोध नहीं होता और कहीं-कहीं उदाहरण भी ठीक नहीं।

इस प्रकार लगभग दो या ढाई शताब्दी तक इन रीति-ग्रन्थ-कार कवियों का ताँता बँधा रहा। इने-गिने प्रबन्ध-काव्य लेखकों, नीति या ज्ञानसबन्धी सूक्तियों के प्रणेताओं तथा कुछ एक शृंगाररस के प्रेमी कवियो को छोड़ कर प्राय: सबने रीतिबद्ध ग्रन्थ लिखने की ही प्रणाली का सहारा लिया। इनमे से चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम, जसवतसिंह, कुलपति मिश्र, देव, श्रीपति, भिखारी दास (दास) पद्माकर और प्रतापसाहि अधिक

प्रसिद्ध हैं। चिंतामणि और मतिराम महाकवि भूपण के भाई थे। चिंतामणि ने छन्द-विचार काव्य-विवेक, कविकुल-कल्पतरु,काव्य-प्रकाश तथा रामायण ये पॉच ग्रन्थ लिखकर काव्य के किसी अंग को भी अधूरा न छोडा। मतिराम ने ललित-ललाम नामक अलकार ग्रथ, छन्दसार नामक पिंगल-ग्रन्थ तथा रसराज नामक रस-ग्रन्थ लिखा। इसके अतिरिक्त इन्होंने साहित्यसार लक्षणशृगार तथा मतिराम-सतसई नामक ग्रन्थ भी लिखे। मतिराम की गिनती हिंदी के प्रतिनिधि कवियो मे की जाती है। मिश्रबधुओ ने इन्हे नवरत्नो मे स्थान दिया है। महाराज जसवन्तसिंह का भाषा-भूपण ग्रथ अलकारो पर एक बहुत ही प्रचलित पाठ्यग्रथ रहा है। इस ग्रथ को इन्होने वास्तव मे आचार्य के रूप मे लिखा है,कवि के रूप मे नही। भाषा-भूषण के एकही दोहे मे लक्षण और उदाहरण दोनो दिये गये हैं। कुलपति मिश्र का रसरहस्य नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें शास्त्रीय पद्धति से काव्य-विवेचन का प्रयत्न किया गया है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियो मे शायद सबसे अधिक ग्रथ-रचना देव ने की है। ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभा-संपन्न कवि थे। इनकी गणना भी हिंदी के नवरत्नो मे की जाती है। श्रीपति ने काव्य के सब अगो का निरूपण विशद रीति से किया है। इन का काव्य-सरोज नामक ग्रथ प्रसिद्ध है। इस में काव्य-दोषो का विस्तृत विचार किया गया है। भिखारीदास (दास) को काव्यांगो के निरूपण मे सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है,क्योंकि इन्होंने छन्द, रस, अलकार, रीति, गुण,दोप, शब्द शक्ति आदि सब विपयो का औरो से विस्तृत प्रतिपादन किया है। पर सच्चे आचार्य का पूरा रूप इन्हे भी प्राप्त नहीं हुआ। वे भी वस्तुतः कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। रीति-काल के कवियो मे सहृदय

समाज पद्माकर जी को सर्वश्रेष्ठ स्थान देता आया है। इनका जगद्विनोद काव्य-रसिकों और अभ्यासियों दोनो का कठहार रहा है। इसके अतिरिक्त इनके पद्माभरण, गंगालहरी आदि अन्य भी कई ग्रन्थ है। इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि मे होनी चाहिये। प्रतापसाहि हिन्दी के रीति-काल क अतिम आचार्य और कवि हुए हैं। इनके काव्यार्थ-कौमुदी, काव्य-विलास आदि ग्रथो से इनके पांडित्य तथा कवित्व दोनों का पता चलता है। आचार्यत्व और कवित्व का ऐसा सुन्दर सयोग बहुत थोडे कवियों में दीख पड़ता है।

महाकवि भूषण भी रीतिकाल के कवि थे। उन्हे भी सामयिक प्रवाह में पड़कर अपने भाइयों की तरह रीति ग्रन्थ लिखना ही पडा। उनका 'शिवराज-भूषण' अलकार का ग्रन्थ है और उनके बनाये जो अन्य ग्रन्थ कहे जाते हैं, उनमें से भी 'भूषण-उल्लास' तथा दूषण-उल्लास रीतिग्रथ ही जान पड़ते हैं। इतने पर भी उनमें जातीय उत्थान और वीरगुणगान की सच्ची लगन थी, और उनके नायक थे शिवाजी तथा छत्रसाल जैसे वीर। फलत सामयिक प्रवाह में बहते हुए भी उन्होंने उस लगन को नही छोड़ा, उन्होने अपने नायको के अनुरूप ही अपने ग्रन्थ में वीर रस को ही अपनाया।

भूषण के समान ही उस शृगारी समय मे हम अन्य कुछ वीर कवियो की भी भीम गर्जना सुन पाते हैं। इनमे लाल और सूदन प्रमुख हैं। यद्यपि वीरगाथा-काल से अब तक वीर कवियो का सर्वथा लोप न होगया था, समय समय पर विलास प्रिय नृपतियो को खुश करने के लिए कितने ही स्वार्थ-साधक खुशामदी कवियों ने अर्थलोलुपतावश कवि वाणी के

तिरस्कार-रूप अपने नायक की प्रशंसा मे अनेक वीर रस की कविताएँ की, परन्तु मिथ्या-स्तुति पर अवलम्बित होने के कारण ये थोड़े ही दिनो में विनष्ट होगई, अथवा उन राजाओ के दरबारों तक ही सीमित रही।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का समय शान्ति का समय था। उस समय स्वतत्रता की आग मेवाड़ की स्वतत्रता-प्रिय भूमि को छोड़कर अन्य सब जगह कुछ काल के लिए शान्त-सी हो चुकी थी। अत: वास्तविक वीर कविता भी शान्त थी। औरंगज़ेब के धार्मिक कट्टरपन ने दक्षिण मे महाराष्ट्रशक्ति को, तथा पजाब में सिक्खों को जागरित किया। मराठावीर शिवाजी के ज्वलत उदाहरण को देखकर बुंदेलखंड-केसरी छत्रसाल भी स्वतत्रता के लिए तड़पने लगे और इनके साथ ही साथ भूषण और लाल जैसे वीर कवियों का उदय हुआ।

लाल कवि द्वारा वीर-केसरी छत्रसाल की प्रशंसा में रचित 'छत्रप्रकाश' प्रबन्धकाव्य है। भूषण की कविता की भाँति ही इसमे जातीयता की भावना मिलती है, और उसी की भाँति छत्रप्रकाश शृगाररस से अछूता है। इसकी रचना प्रौढ़ और काव्य-गुणयुक्त है, और कवि ने प्रबध-कौशल भी अच्छा दिखाया है। पर छद के निर्वाचन में कवि ने भूल की है। उसने वीररस के इस काव्य को रामचरित-मानस की भाँति दोहो और चौपाइयो मे लिखा है, जो कि वीर रस के लिए अनुपयुक्त छद है। अतएव उसमे वह ओज नही दिखाई देता जो भूषण के कवित्तो मे है, परन्तु लाल के जो फुटकर कवित्त मिलते हैं, वे उसकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय देते हैं।

इस काल के तीसरे वीर-कवि सूदन द्वारा रचित सुजान-चरित्र में भी वीररस की अच्छी झलक मिलती है। यह ग्रन्थ भरतपुर के महाराज सुजानसिंह उपनाम सूरजमल की प्रशसा मे लिखा गया

था, जिन्होंने सवत् १८०२ मे मेवाड जीता था, तत्कालीन जयपुर-नरेश की सहायता से मराठों पर विजय पाई थी, और दिल्ली के मुगल-सम्राट से भी युद्ध किया था। वीर रस का अच्छा परिपाक होने पर भी इसमें जातीयता की वह चेतना नहीं दिखाई देती जो भूषण और लाल की रचनाओं में मिलती है। दूसरे स्थान-स्थान पर घोडों, तलवारों तथा विभिन्न अस्त्रों की लम्बी सूची देने, और इसी प्रकार वस्तुओ के अनेक प्रकारों के नाम ढूँढ ढूँढ कर गिनाने की प्रवृत्ति के कारण ग्रन्थ की सरसता बहुत कुछ मारी गई है।

इन तीन कवियों की रचनाओ के अतिरिक्त फर्रुखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध के वर्णन मे श्रीधर का लिखा 'जगनामा' भी वीररस के उल्लेखनीय ग्रन्थो मे से है। यह एक छोटी सी रचना है, पर इसमें सेना की चढाई आदि का अच्छा वर्णन है। इसी प्रकार प्रसिद्ध शृगारी कवि पद्माकर की 'हिम्मत वहादुर विरुदावली' नामक पुस्तक भी इसी काल की है। रचयिता की प्रारम्भिक रचना होने के कारण तथा नायक की विशेष व्यक्तित्व न होने के कारण यह रचना विशेष आदर नहीं पा सकी। पर इस युग की एक और रचना अवश्य उल्लेखनीय है यह है चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा लिखित 'हम्मीरहठ'। यद्यपि इसमें नवीन उद्भावनाओं की कमी है, और कथा-भाग चारणों की चली आती हुई रासो की पद्धति पर रचे गये हम्मीर-काव्यों से ही लिया गया है, तथापि भाषा के सौष्ठव और वर्णन की समीचीनता तथा रस के अनुकूल पद-विन्यास की दृष्टि से यह वीर काव्यों में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है। 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार' इसी काव्य की प्रसिद्ध उक्ति है।

इस युग मे अन्य भी कई वीर कवि हुए। हनुमान, रामचन्द्र, दुर्गा आदि की प्रशसा में कुछ वीर देव-काव्य भी लिखे गये।

पर वे उल्लेखनीय नहीं। इस युग के अन्त मे हम भारत को पराधीनता की बेड़ी पहनते देखते हैं। उनके हाथो से अस्त्र-शस्त्र छिन जाते हैं, और रण-नाद की भी इतिश्री होजाती है। परन्तु धीरे धीरे भारतीय पराधीनता की पीड़ा को अनुभव करने लगे। निश्शस्त्र होने के कारण रण-नाद तो कही सुनाई न पड़ा, परन्तु राष्ट्रीय जाग्रति की गूँज सब ओर से सुनाई देने लगी। फलतः कविता मे भी इसकी छाया पड़ी और वर्तमान परिस्थिति में प्रोत्साहन के रूप मे या प्राचीन वीरो की प्रशस्तियो के रूप में वीर कविता लिखी जाने लगी। इस प्रकार के वीर अथवा राष्ट्रीय कविताकारो मे प० माखनलाल चतुर्वेदी, प० बालकृष्ण शर्मा, प० गयाप्रसाद शुक्ल, श्री वियोगी हरि, माधव शुक्ल आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं। स्वर्गीय लाला भगवानदीन का 'वीर पचरत्न' और श्री वियोगी हरि की 'वीर सतसई' इस प्रकार के काव्यो की अर्वाचीन उत्तम कविताएँ हैं।

आलोचना

भूषण : रीति-ग्रंथ-कार

भूषण रीतिकाल के कवि थे। उस काल के अन्य कवियों की भाँति उन्होंने भी रीतिबद्ध ग्रंथ लिखने की प्रणाली को अपनाया। परन्तु इस कार्य मे वे कहाँ तक सफल हुए यह एक विचारणीय प्रश्न है।

भूषण ने अपने ग्रंथ शिवराजभूषण में अलंकारों के लक्षण दोहों मे देकर चलते कर दिये हैं, और उनके उदाहरण सवैया कवित्त आदि छंदों में दिये हैं। उनके उपलब्ध ग्रंथ में इस

से अधिक अन्य किसी काव्यांग पर कुछ लिखा नहीं मिलता। अलकार क्या वस्तु है अलकारों का काव्य मे क्या स्थान है, इन बातों का भी भूषण ने कोई विवेचन नहीं किया। भूषण के कई अलकारों के लक्षण अपर्याप्त और अधूरे हैं, तथा कई स्थानों पर उदाहरण ठीक नहीं बन पडे। इन सब त्रुटियों का निदर्शन मूल पुस्तक में स्थान-स्थान पर कर दिया गया है। यहाँ केवल उनका उल्लेखमात्र पर्याप्त होगा।

भूषण ने सबसे पहले उपमा अलंकार को स्थान दिया है, पर इसका लक्षण इतना स्पष्ट नहीं है और इसका उदाहरण तो पर्याप्त दोष-पूर्ण है। इसमें शिवाजी की इन्द्र से और औरगजेब की कृष्ण से उपमा दी गई है, जो कि सर्वथा अनुचित है, और पौराणिक कथा के अनुकूल भी नहीं।[१]

पंचम प्रतीप का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह अन्य ग्रथों से नहीं मिलता पर जो उदाहरण दिये हैं उनमें से दो भूषण के अपने लक्षण से मेल नहीं खाते वरन् वास्तविक लक्षण के अनुकूल हैं।[२]

परिणाम अलंकार के पहले उदाहरण की पहली पक्ति मे तो परिणाम अलंकार ठीक है, पर दूसरी तथा तीसरी पक्ति में परिणाम के स्थान पर रूपक अलकार होगया है।[३]

भ्रम अलंकार का उदाहरण ठीक नहीं है लक्षण भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुआ।[४]

निदर्शना अलकार के तीनों ही उदाहरण चमत्कारहीन अथवा अस्पष्ट हैं।

---

१. पृ० २४ विवरण। २. पृ० ३३, सूचना। ३. पृ० ५१, सूचना। ४. पृ० ५९, विवरण।

भूषण का समासोक्ति का लक्षण भी अधूरा है । समासोक्ति मे समान अर्थ वाले विशेषण शब्दों के द्वारा प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है । यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है और कभी बिना श्लेष के । पर भूषण के लक्षण से यह बात प्रकट नहीं होती, वे केवल इतना कहते है—"वर्णन कीजे आन को ज्ञान आन को होय" अर्थात् वर्णन किसी और का किया जाय और ज्ञान किसी और वस्तु का हो। अप्रस्तुत प्रशंसा मे भी वर्णन किसी और (अस्प्रतुत) का होता है और उससे किसी और (प्रस्तुत) का ज्ञान हो जाता है । अतः यह कहना पड़ेगा कि भूषण का लक्षण अधूरा और अतिव्याप्ति दोषयुक्त है । और उसमे उदाहरण केवल श्लेष से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के दिये हैं ।

अन्य कवियों ने अप्रस्तुत प्रशसा के पॉच भेद माने हैं। पर भूषण ने भेदों का उल्लेख नहीं किया और उदाहरण भी केवल कार्य-निबंधना के ही दिये हैं।[1] पहले दो उदाहरणों मे एक ही बात को दोहराया गया है ।

सम अलंकार का उदाहरण अस्पष्ट है ।[2] विकल्प अलंकार के उदाहरण की भी वही गति हुई है । पहली तीन पंक्तियों मे विकल्प प्रकट किया गया था, पर चौथी पक्ति मे निश्चय प्रकट कर उसका गला घोंट दिया गया है ।[3]

अर्थान्तरन्यास के कई भेदों में से भूषण ने केवल दो भेद दिये हैं, पर उनमे भी दूसरा उदाहरण ठीक नहीं बैठता ।[4]

---

१. पृ० १३१, सूचना । २. पृ० १६२, विवरण । ३. पृ० १९२, विवरण । ४. पृ० २०५, विवरण ।

छेकानुप्रास के लक्षण मे भूषण 'स्वर समेत' अक्षरों की पुनः आवृत्ति आवश्यक समझते हैं, परन्तु उनके उदाहरण "दिल्लिय दलन दबाय" मे व्यंजनों की आवृत्ति तो हैं, पर स्वर-साम्यता नहीं। इसके अतिरिक्त भूषण ने वृत्यनुप्रास को छेकानुप्रास में ही सम्मिलित कर दिया है।[१]

संकर का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह भ्रामक है, वह वस्तुन. उभयालंकार का लक्षण है। उसमे सकर तथा ससृष्टि दोनों प्रकार के उभयालकार आ जाते हैं।[२]

भूषण ने समानविशेष, विरोध तथा भाविकछवि तीन नये अलकार माने हैं। सामान्यविशेष मे विशेष का कथन करके सामान्य लक्षित कराया जाता है। यह अलकार प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों के अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार की विशेष-निबधना से भिन्न नहीं है। इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नहीं, जैसे होने चाहिए।

इसी प्रकार भूषण ने विरोध, विरोधाभास और विषम तीन भिन्न भिन्न अलकार माने हैं। पर वास्तव में विरोध और विरोधाभास मे कोई अन्तर नहीं है। विरोध अलंकार मे यदि वास्तविक विरोध हो तो उसमे अलंकारता न रहेगी। उसमे या तो विरोध का आभास होता है अथवा विषमता होती है। भूषण न जो विरोध का लक्षण दिया है, उसे अन्य कवियों ने विषम का दूसरा भेद माना है। यही उचित प्रतीत होता है।

भूषण का तीसरा नया अलंकार है—भाविकछवि। अन्य लोगों ने इसे भाविक मे परिगणित किया है। भाविक में समय की दूरी होती है और भाविक छवि मे स्थान की दूरी।

१ पृ० २६८, सूचना। २. पृ० २८१, सूचना।

भाविक छवि को चाहे स्वतन्त्र अलंकार माना जाय अथवा भाविक का भेद, पर इसमें अलंकारता अवश्य है।

भूषण ने अन्त में जो अर्थालंकारों की सूची दी है, उसमें उन्होंने सौ अलंकार तो गिना दिये हैं पर इसमें कई अलंकारों के भेदों की संख्या भी शामिल है। कई अर्थालंकारों का भूषण ने विवेचन ही नहीं किया, जैसे अल्प, विकस्वर, ललित, मुद्रा, गूढ़ोत्तर, सूक्ष्म, आदि।

जो अलंकार भूषण ने दिए भी हैं उनमे से कुछ के पूरे भेद लिखे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं और कुछ अलकारों के भेद लिखे ही नहीं।

अपर्याप्त और अधूरे लक्षणों को देखकर तथा अलंकारों की छानबीन न पाकर यह मानना पड़ता है कि रीति-ग्रंथकार के रूप मे भूषण किसी प्रकार भी सफल नहीं हो सके और रीति ग्रन्थ की दृष्टि से 'शिवराज भूषण' का कुछ भी महत्व नहीं है, प्रत्युत रीतिबद्ध ग्रन्थ लेखन प्रणाली ने भूषण की कविता का स्वतन्त्र विकास भी नहीं होने दिया। इसी कारण शिवराज भूषण मे वैसा सौंदर्य और रसपरिपाक नहीं दिखाई देता जैसा उनकी दूसरी कविताओं मे है। इसका कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भूषण को अलंकार का अभ्यास बहुत कम था। इसका कारण तो यह है कि भूषण निर्बन्ध कवि थे, रीतिग्रथ के बंधन मे पड़ना उनका उद्देश्य नहीं था। उनका उद्देश्य तो केवल शिवाजी का यशोगान करना था। रीति-ग्रन्थ तो उनके उस उद्देश्य का साधन मात्र था। तत्कालीन साहित्यिक प्रवाह से विवश हो कर उन्हें इस पचड़े में पड़ना पड़ा। तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति उनकी दृष्टि कविता की ओर ही टिकी हुई थी। यही कारण

है कि जहाँ उनको कोई बन्धन न था, वहाँ उन्होंने स्वाभाविक रूप से बहुत ही उत्तम अलंकार-योजना की है। विशेषतः शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों को अलंकारों द्वारा पाठक के मन में अंकित कर देने का श्रेय तो केवल उन्हें ही प्राप्त है, जो कि आगे दिए गये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

औरंगजेब ने और सब हिन्दू राजाओं को वश मे कर लिया था, पर केवल शिवाजी ही ऐसे थे, जिनसे वह कर न वसूल कर सका। इस ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने कैसे अच्छे उपमा-मिश्रित रूपक द्वारा प्रकट किया है। और प्रतिनायक के अपार पराक्रम को दिखाकर नायक के यश को कितना बढ़ा दिया है।

> कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
> गौर है गुलाब राना केतकी विराज है।
> पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
> सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है॥
> 'भूषन' भनत मुचकुंद बड़गूजर है,
> बघेले बसत सब कुसुम-समाज है।
> लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
> अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है॥

भ्रमर सभी पुष्पों का रस लेता है, पर चंपा पर उसकी तीव्र गंध के कारण नहीं बैठ सकता। इस प्राकृतिक तथ्य के अनुसार इस कविता मे औरंगजेब को भ्रमर और शिवाजी को—जिसका औरंगजेब कभी रस न ले सका—चंपा बनाना कैसा उपयुक्त है। जयपुर महाराज को कमल और राणा को केतकी बनाना भी कम संगत नहीं। भारत के राजपूत

राजाओं मे से सब से अधिक रस या सहायता मुगल-सम्राट् को जयपुर-नरेश रूपी कमल से ही मिली थी। ऐसे ही राणा रूपी कंटकयुक्त केतकी के रस लेने में औरंगजेब रूपी भ्रमर को पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा था।

× × × × × ×

शिवाजी का दमन करने के लिए औरंगजेब बारी बारी से जसवंतसिंह शाइस्ताखाँ, दाऊदखाँ, दिलेरखाँ, महावतखाँ, और बहादुरखाँ आदि सरदारों को भेज रहा था, पर शिवाजी के तेज के सामने वे टिक न सकते थे, और औरंगजेब घबरा कर बड़ी तेजी से उनकी अदला बदली कर रहा था, इस पर कवि की उक्ति दर्शनीय है।

यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये जसवंत अजूबा।
साइतखाँ अरु दाउदखाँ पुनि हारि दिलेर महम्मद डूबा॥
भूषन देखें बहादुरखाँ पुनि होय महावतखाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा॥

पान यदि उलटा पलटा न जाय तो वह गरमी से सूख या सड़ जाता है। इस प्राकृतिक तथ्य तथा ऐतिहासिक घटना के मेल से कवि ने अपने नायक के तेज का कैसा मनोहारी चित्रण किया है!

× × × × × ×

शिवाजी को जीतने के लिए औरंगजेब हाथी, घोड़े, बारूद तथा अस्त्र-शस्त्र के साथ बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजता है, पर शिवाजी हर वार विजय प्राप्त कर सेना का सब सामान लूट लेते हैं, जिससे शिवाजी का यश और कोप दोनों बढ़ रहे हैं। कवि कितनी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है—

मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रिसाल है।

रहँट की घरी जैसे औरंग के उमराव,
पानिप दिल्ली से ल्याई ढारि ढारि जात है।

× × × ×

औरंगजेब के सरदार दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण मारे मारे फिरते हैं, दक्षिण में जाते हैं तो शिवाजी उन्हें मार के भगा देते हैं उत्तर की तरफ आते हैं तो औरंगजेब उन्हें झिड़क कर फिर दक्षिण भेजता है, इस पर भूषण क्या अच्छा कहते हैं—

"आलमगीर के वीर वजीर फिरैं चउगान बटान के मारे"

× × × × ×

शिवाजी को रात दिन बीजापुर के सुलतान ऐदिलशाह, गोलकुडा के सुलतान कुतुबशाह तथा मुगल-सम्राट् औरंगजेब से लोहा लेना पड़ता था! इनमें से पहले दो तो विवश होकर शिवाजी को कर देने लग गये थे, तीसरे को भी शिवाजी ने खूब नीचा दिखाया था। इस ऐतिहासिक तथ्य की पौराणिक कथा से समता प्रकट कर कवि ने व्यतिरेक का क्या ही अच्छा उदाहरण दिया है—

एदिल कुतुबसाह औरंग के मारिबे को
भूषन भनत को है सरजा खुमान सों
तीनपुर त्रिपुर को मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥

× × × × × ×

शिवाजी ने दुश्मनों से लोहा लेने के लिए आस-पास के सब पर्वतों पर गढ़ बनाकर उन्हें अपने पक्ष में (अपने अधिकार में) कर लिया था, इस ऐतिहासिक तथ्य को पौराणिक कथा से मिलान कर कवि ने कैसा अच्छा अधिक रूपक दिखाया है—

मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किए सैल हैं।

× × × × ×

सूरत जैसे प्रसिद्ध व्यापारिक शहर को लूटकर और जला कर शिवाजी ने मुगल सल्तनत को खूब नीचा दिखाया था। सूरत के लुटने और जलाये जाने का हाल सुन कर औरंगजेब क्रोध से जल भुन गया था। इसका कवि कैसा आलंकारिक वर्णन करता है।

सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाह मुख झलकी।

सारांश यह कि यद्यपि भूषण सफल रीति-ग्रंथकार न थे, तथापि उनके काव्य में अलंकारों की योजना उच्च-कोटि की है। उनमें अन्य कवियों की तरह पिष्टपेषण नहीं है, क्लिष्ट कल्पना नहीं है, पर है मौलिकता और नवीनता।

रस-परिपाक

रस काव्य की आत्मा है, रसयुक्त वाक्य को ही काव्य कहा जाता है। काव्य मे शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, और शान्त ये नौ रस माने गये हैं। जिस वाक्य, पद्य या लेख मे इनमें से कोई रस न हो, वह काव्य नहीं कहा जा सकता। अत काव्य की कसौटी पर कसते समय यह देखना आवश्यक है कि उसमें रस-परिपाक कैसा हुआ है।

भूषण की कविता वीर-रस की है। शत्रु का उत्कर्ष, उस की ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी

पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता और क्रिया-शील होजाता है, उसी के वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता के मन में उमड़ता है ।

वीर चार प्रकार के माने जाते हैं, युद्धवीर, दयावीर दान-वीर और धर्मवीर। इस रस के चारों प्रकारों में स्थायीभाव उत्साह है। उत्साह वह मनोवेग है जो किसी महत्कार्य के सपन्न करने में प्रवृत्त कराता है। युद्धवीर मे शत्रु-नाश का, दयावीर में दयापात्र के कष्ट-नाश या सहायता का, दानवीर में त्याग का, और धर्मवीर में अधर्म-नाश एव धर्म-सस्थापन का उत्साह होता है ।

रस के परिपाक के लिए स्थायी-भाव के साथ विभाव अनुभाव आदि भी आवश्यक हैं। जो व्यक्ति या वस्तु स्थायी भाव को विशेष रूप मे प्रवर्त्तन करती है, वह विभाव कहलाती है। जिनका आश्रय लेकर रस की उत्पत्ति होती है, वे आलवनविभाव और जिनसे रसनिष्पत्ति होने पर उद्दीप्ति प्राप्त होती है वे उद्दीपन विभाव कहाते हैं। विभावों द्वारा उद्बुद्ध स्थायीभाव को बाहर प्रकट करने वाले कार्य अनुभाव कहाते हैं, और स्थायीभाव में क्षण भर के लिए उत्पन्न और नष्ट होने वाले गौण और अस्थिर-भाव संचारी-भाव कहाते है। इन सब से पुष्ट होने पर ही रसपरिपाक होता है।

भूषण की कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर हैं, जिन में चारों प्रकार का वीरत्व पाया जाता है। अत. भूषण ने चारों प्रकारों के वीरों का वर्णन किया है। उनकी कविता में से कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

दानवीर का उदाहरण देखिए—

साहितने सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी वितान छिति छोर छाइयतु है ।
भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है ॥
महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यौं गनाइयतु है ।
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है ॥

इस कवित्त में शिवाजी के दान का वर्णन है । यहाँ भिक्षुक लोग आलंबन हैं । दान-पात्र की सत्पात्रता, यश और नाम की इच्छा उद्दीपन हैं । याचक की इच्छा से भी अधिक दान देना अनुभाव है । और याचक की संतुष्टि देखकर हर्ष आदि उत्पन्न होना संचारी भाव है । इस तरह यहाँ रस का बड़ा अच्छा परिपाक है । धर्मवीर का भी अनूठा उदाहरण है—

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं ।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मै ॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं ।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मै ॥

शरणागत पीड़ित राजा दयावीर शिवाजी का आश्रय पाकर कैसे निश्चिंत हो जाते है, इसका भी वर्णन कवि ने कैसा अनूठा किया है ।

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है ।
भूषन भनत सिवराज तब किति सम,
और की न किति कहिबे को काँधियतु है ॥
इन्द्र को अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातैं,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है ।
पायतर आय नित निडर बसायबे को,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है ॥

साहित्य मे उपरिलिखित तीनों प्रकार के वीरों से युद्ध-वीर को प्रधानता दी जाती है। नीचे युद्ध-वीर का उदाहरण दिया जाता है।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं ।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं ॥
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं ।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मै ॥

इस कवित्त मे युद्ध के समय शिवाजी द्वारा युद्ध की आज्ञा दिये जाने पर उनके सैनिकों का उत्साह सहित शत्रुओं को जख्मी करते हुए किलों में कूद जाने का वर्णन है। यहाँ शत्रुओं की उपस्थिति आलंबन है। शत्रुओं का गोला आदि चलाना तथा नायक की आज्ञा उद्दीपन है। मूछों पर ताव देना, शत्रुओं को घायल करना आदि अनुभाव हैं, धृति और उग्रता आदि संचारी

भाव हैं। वीर रस का यह अनूठा उदाहरण है। इसी तरह के वीर रस के और भी कितने ही अच्छे-अच्छे उदाहरण भूषण की कविता में मिल सकते हैं।

रौद्र और भयानक रस वीर रस के सहकारी माने गये हैं इनमे से भयानक रस का तो भूषण ने बहुत अधिक वर्णन किया है। शिवाजी के प्रताप से भयभीत शत्रुओं और उनकी स्त्रियों का सजीव चित्र भूषण ने कितने ही पद्यों मे खींचा है। और इस रस के वर्णन मे भूषण को सफलता भी बहुत मिली है। एक उदाहरण देखिये—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनि की नारी फरकति है॥
थर-थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

रौद्र-रस के भी भूषण ने कई अच्छे पद कहे हैं, आगे उनमें से एक दिया जाता है।

सबन के ऊपर ही ठाढो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हज़ारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे॥
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उडाय गये जियरे।

तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥

भयंकर युद्ध के अनतर युद्ध-क्षेत्र की दशा श्मशान-सी होजाती है, अत' उसके वर्णन में वीभत्स रस का आना भी आवश्यक है, भूषण की कविता मे भी वह स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। फुटकर छद संख्या ४, ५, ६ तथा ७ में इस रस के अच्छे उदाहरण हैं। उनमें से एक पद नीचे दिया जाता है।

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषण तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥
कहूँ रुंड-मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धारि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं॥

भूषण का वीभत्स वर्णन भौंडा कहीं भी नहीं होने पाया। उन्होंने इस रस का सदा सयत वर्णन किया है, जो वीरता के आवेश से प्राय: सब जगह दबा सा रहा है। इस प्रकार वीर और भयानक के योग में भूषण ने शृंगार को छोड़कर अन्य सब रसों को दिखा दिया है। किसी सरदार को औरंगजेब ने दक्षिण का सूबेदार बना दिया। बेचारा नौकर था, इनकार न कर सकता था, परन्तु उसकी विचित्र अवस्था को देख उसकी बेगम के वचनों में स्मित हास्य की रेखा भी मिलती है।

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीबी कहैं वैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूषन भनत बूझे आए दरबार तें,
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहिनै॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गये हौ सुखाय तुम्हें,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै॥

सब धन-दौलत के लुट जाने पर, फकीर हो जाने पर निर्वेद का होना स्वाभाविक होता है, अतः भूषण ने वीर रस की लपेट में शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद का भी नीचे लिखे पद्य मे कैसा अच्छा निदर्शन किया है।

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस विदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनियाँ ते उदास भए हैं॥

शत्रुओं के मर जाने पर उनकी स्त्रियों में 'शोक' घर कर लेता है। उस शोक के वर्णन में कहीं कहीं 'करुण' का आभास भी भूषण की कविता मे आगया है जैसे—

बिज्जपुर, बिदनूर, सूर सर-धनुष न सधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहि बधहिं।

अद्भुत रस को भी भूषण ने अछूता नही छोड़ा।

सुमन मैं मकरन्द रहत है साहिनन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हंस-बस रहत हैं तेरे जस,
हंस मै रहत करि मानस विरोध है॥

भूपन भनत भौंसिला भुवाल भूमि,
तेरी करतूति रही अद्‌भुत रस ओघ है।
पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोघ है॥

राजाश्रित कवियों ने अपने विलासी आश्रयदाताओं की मनस्तृप्ति के लिए शृंगार और वीर का एक दम मिश्रण कर दिया था। भूषण इससे चिढ़ते थे, वे इसे वाणी का तिरस्कार मानते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है—

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु ब्यास के अंग सुहानी॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

अतएव भूषण ने अपनी वीर-रस की कविता में शृंगार को कहीं स्थान नहीं दिया। उन्होंने दस-बारह पद्य शृंगार-रस के कहे अवश्य हैं, पर वे उन्होंने अपने नायक के विलास-वर्णन के लिए नहीं कहे। उन शृंगार रस के पद्यों में भी भूषण की वीर-रसात्मक प्रवृत्ति का आभास मिलता है। संभोग शृंगार में भी कवि ने 'रति-संगर' का कैसा अनूठा वर्णन किया है, इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है।

नैन जुग नैनन सों प्रथमे लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरे नाहि टरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज बीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे है॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
भए अंग-अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।

पाछे परे बारन कौं बाँधि कहै आलिन सों,

भूषण सुभट येई पाछे परे मेरे हैं ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण ने वीर रस की लपेट में सब रसों का सुन्दर और अनूठा वर्णन किया है। रसों का परिपाक भी अच्छा और स्वाभाविक हुआ है। रसात्मकता की दृष्टि मे भूषण का काव्य अनूठा है।

भूषण की भाषा

वीरगाथा-काल के राजस्थानी कवियों ने अपनी कविता में पिंगल का प्रयोग किया था, पर उसमें उनकी प्रान्तीय भाषा का पुट पर्याप्त रूप से पाया जाता था। उनके बाद प्रेममार्गी सूफी कवियों ने तथा राम के उपासकों ने अवधी भाषा को अपनाया; पर कृष्ण-भक्तों ने ब्रजविहारी के लीला-वर्णन के लिए ब्रज की भाषा को ही उपयुक्त समझा। महाकवि तुलसी-दास के बाद उन जैसा अवधी का कोई पोषक नहीं हुआ। रीति-काल के शृंगारी कवियों ने कृष्णभक्त कवियों के प्रेमावतार कृष्ण को ही अपना नायक बनाया था, अतः भाषा भी उन्होंने वही ब्रज की पसंद की। फलतः ब्रज-भाषा साधारण काव्य की भाषा होगई। सुकवि भिखारीदास ने अपने ग्रंथ में उसी ब्रजभाषा को ज्ञान का साधन बताते हुए लिखा है—

सूर केशव मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,

चिंतामणि मतिराम, भूषण सुजानिए।

लीलाधर, सेनापति, निपट नेवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव, देव मानिए ॥
आलम रहीम रसखान सुंदरादिक,
अनेकन सुकवि भये कहाँ लौं बखानिए।
व्रजभाषा हेत व्रजवास ही न अनुमानौं,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सौं जानिए ॥

इसमें दास ने जिन सब कवियों की भाषा को व्रजभाषा कहा है उनमे से शायद किन्हीं भी दो की भाषा एक जैसी न थी। उसका कारण यह था कि यद्यपि रीतिकाल मे व्रजभाषा ही काव्य की भाषा थी पर अन्य-प्रान्त-वासी अथवा व्रजप्रदेश से कुछ हटकर रहने वाले कवियों की भाषा में उनके देश की बोली की कुछ न कुछ छाप पड़ ही जाती थी। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का राज होने के कारण अरबी फारसी के कई विदेशी शब्द भी भाषा में घर कर चुके थे, या कर रहे थे। किसी कवि ने उनको थोड़ा अपनाया, किसी ने अधिक, और किसी ने उनको तोड़-मरोड़ कर इस देश का चोला पहना कर उनका रूप ही बदल दिया। सारांश यह कि तत्कालीन कवियों की वाणी वैयक्तिकता के छाप के कारण पर्याप्त भिन्नता लिए हुए थी।

भूषण की भाषा में विदेशी शब्दों की बहुलता है। उसमें विदेशी भाषाओं के साधारण शब्द ही नहीं अपितु ऐसे कठिन शब्द भी पाये जाते हैं, जिनके लिए कोष देखने की आवश्यकता पड़ती है; जैसे—तसबीह, नकीब, कौल, जसन, तुजुक, खबीस, जरबाफ खलक, दराज, गनीम आदि। विदेशी शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने मे भी भूषण ने ज़रा भी दया

नहीं दिखाई। कई स्थानों पर उन्होंने शब्दों का ऐसा मनमाना रूप कर दिया है कि वास्तविक शब्द का पता लगाना भी कठिन होजाता है; जैसे—कलक से कलकान, औसान से अवसान, पेशानी से पिसानी, एलान से इलाम।

विदेशी शब्दों से हिन्दी व्याकरण के अनुसार क्रिया पद बनाने में भी भूषण ने कसर नहीं की। जैसे—तिनको तुजुक देखि नेकहु न लरजा।

मुसलमानों के प्रसंग मे अथवा दरबार के सिलसिले मे भूषण ने फारसी-मिश्रित खड़ी बोली अथवा उर्दू का भी प्रयोग किया है। जैसे—

१. देखत मैं खान रुस्तम जिन खाक किया।

२. पंज हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।

३, बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने

भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।

उपरिलिखित विदेशी शब्दों के अतिरिक्त प्रान्तीयता के नाते भूषण ने बैसवाड़ी और अन्तर्वेदी शब्दो का भी कही कही प्रयोग किया है, क्योंकि ये दोनों प्रदेशो की सीमा पर रहते थे। जैसे—

१. लागें सब ओर छितिपाल छिति में छिया।

२. कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर।

३. गजन के ठेल पेल सैल उसलत है।

क्रियाओं में कही कहीं बुन्देली के भविष्यत्-काल के रूप भी मिलते है। जैसे—

धीर धरवी न धर कुतुब के धुरकी। कीबी कहै कहा इत्यादि।

कहीं-कहीं क्रियाएँ संस्कृत के मूल रूप से भी ली गई हैं। जैसे—तीन पातसाही हनीं एक किरवान तें। ऐसे ही 'जहत हैं,' सिदति

हैं,आदि रूप भी दिखाई देते हैं। कही-कही माधुर्य उत्पन्न करने के लिए अवधी की उकारवाली पद्धति भी ग्रहण की गई है। जैसे—
दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है; तेरे बाहुबल ले सलाह बाँधियतु है, हरजू को हारु हरगन के अहारु दै।

कही कही तद्भव एव ठेठ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—धोप (तलवार),ओत (आश्रय), पैली(उस पार)आदि। अप-भ्रश काल के शब्दो का भी सर्वथा अभाव नही है, वे भी उनकी कविता में कही कही दिखाई देते हैं जैसे—"पव्वय से पील" "पुहुमि के पुरुहूत", "और गढ़ोई नदी नद सिव गढ़पाल दरियाव, "वैयर बगारन की।"

लकाकांड में वीर या रौद्ररस के छप्पयों मे जिस प्रकार महाकवि तुलसीदास जी ने पुरानी वीरगाथा-काल की पद्धति का अनुसरण किया है उसी प्रकार भूषण ने भी किया है—विशेषत' शिवराज-भूषण के शब्दालकारों के उदाहरण में आये हुए अमृत ध्वनि छन्दों में। अपभ्रश और प्राकृतिक शब्दों के प्रयोग के कारण ये छद कुछ क्लिष्ट से हो गये हैं। अमृतध्वनि छन्द प्राय युद्ध-वर्णन के लिए ही प्रयुक्त होता है। इन छन्दों मे सभवतः प्राचीन प्रथा के पालन के लिए ही भाषा का यह रूप रखा गया है, यह उनकी साधारण शैली प्रतीत नही होती।

इस प्रकार भूषण की भाषा साहित्यिक दृष्टिकोण से शुद्ध नहीं कही जा सकती है। मौलिकता से कोसों दूर भागने वाले तथा पुरानी पिष्टपेषित बातों में ही इस्लाह करने वाले रीतिकाल के शृंगारी कवियों की भाषा के समान वह मँजी हुई भी नही है, अपितु वह एक खासी खिचड़ी है। पर उसका भी कारण है। भूषण को अपने नायक शिवाजी और उनके वीर मराठा सैनिकों को रण-क्षेत्र में उत्साहित और उत्तेजित करना था। उनकी भाषा ऐसी होनी चाहिए थी जो कि वीरों के लिये साधारण तौर पर बोध-गम्य हो और साथ ही

ओज गुण युक्त हो। अतः वे भाषा को सजाकर अथवा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों को अपना कर भाषा को ऐसी दुरूह न बना सकते थे, जो मराठों की समझ न आये। उस समय मराठी साहित्य में अरबी फारसी का बहुत प्रयोग हो रहा था। केवल मराठों की बोलचाल में ही नही अपितु उनकी कविता मे भी विदेशी शब्द बहुत अधिक घर कर रहे थे। परन्तु संस्कृत की पुत्री मराठी मे जाकर उन विदेशी शब्दों का उच्चारण भी बदल जाता था। अरबी के 'तफसील' शब्द का मराठी में 'तपशील' रूप हो गया था, जो कि शुद्ध सस्कृत का मालूम पड़ता है। अतएव भूषण को भी व्रजभाषा मे ऐसे शब्दो को डालना पड़ा और मराठी का ही अनुकरण करके उन्होने आदिलशाह को 'एदिल' बहादुरखाँ को बादरखाँ, शरजः को सरजा और संस्कृत के आयुष्मान को खुमान लिखा तथा अन्य विदेशी शब्दों को तोड़ा मरोड़ा। छत्रसालदशक तथा शृंगार-रस की कविता में उन्होंने जैसी मँजी हुई भाषा का प्रयोग किया है, वह उपर्युक्त कथन को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सुदूर महाराष्ट्र में अपनी कविता का प्रचार करने के लिए ही उन्हें शिवाजी-संबधी कविता की भाषा को खिचड़ी बनाना पड़ा। पर उस खिचड़ी में भी ओज की कमी नहीं है। उनकी भाषा का सौंदर्य तो केवल इसी में है कि उसे पढ़ या सुनकर पाठकों और श्रोताओं के हृदय में वीरों के आतंक, युद्धकौशल, रणचंडी-नृत्य इत्यादि का पूरा चित्र खिंच जाता है। रस के अनुकूल शब्दों मे भैरीरव की विकट ध्वनि लक्षित होती है। प्रभावोत्पादन के लिए अथवा अनुप्रास के लिए जिस प्रकार की भाषा समीचीन है वैसी भाषा का भूषण ने प्रयोग किया है और ऐसा करने में

उन्होंने शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ शुद्ध विदेशी शब्दों को मिलाने में भी संकोच नहीं किया। जैसे—"तादिन अखिल खलभलैं खल खलक मैं" 'अखिल' और 'खल'-शुद्ध संस्कृत शब्द हैं, 'खलभलैं' देशज है तथा 'खलक' अरबी भाषा का है; पर इन का ऐसा अनुप्रास-पूर्ण और ओज-पूर्ण सम्मिलन करना भूषण का ही काम है। ऐसे ही 'निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को' 'पान पीकदान स्याह सेनापति मुख स्याह' तथा 'जिनके गरज सुने दिग्गज बेआब होत मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं' में संस्कृत, देशज तथा विदेशी शब्दों का जोड़ देखने लायक है। इस अनुप्रास-योजना के लिए तथा ओज लाने के लिए भूषण ने स्थान-स्थान पर 'शिवाजी गाजी' का भी प्रयोग किया है। गाजी का अर्थ धर्मवीर अवश्य है, परन्तु साधारणतया वह काफिरों पर विजय प्राप्त करनेवाले के लिए ही प्रयुक्त होता है।

भाषा को सजाने की ओर भूषण का ध्यान था ही नहीं। अतः उन्होंने मुहावरों और लोकोक्तियों की ओर भी ध्यान नहीं दिया, फिर भी कई स्थानों पर मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ या मुहावरे आगे दिये जाते हैं—

मुहावरे—१. तारे सम तारे मुँदि गये तुरकन के
२. तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के
३. दल तोरि तखत तरें ते आयो सरजा
४. नाह दिवाल की राह न धायो
५. कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है
६. तिन ओठ गहे अरि जात न जारे।

लोकोक्ति—१. सिंह की सिंह चपेट सहै गजराज सहै गजराज को धका

२. सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी जप के

३. छागो सहै क्यों गयंद को थप्पर

४. कालिह के जोगी कलीदैं को खप्पर

इन सबको देखकर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यद्यपि भूषण की भाषा खिचड़ी है तथापि उसमें ओज आदि गुण होने के कारण वह अपने ही ढंग की है।

वर्णन-शैली

भूषण वीर-रस के कवि थे, युद्ध के मारु राग पर गाने वाले थे। उन्हें नागरिक या प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण का अवसर ही कहाँ मिल सकता था। पुस्तक के प्रारंभ में शिवाजी की राजधानी के नाते रायगढ़ के वर्णन में तीन-चार छंद हैं तथा ऐसे ही बीच में कहीं-कहीं एक-आध छन्द हैं, जो खासे अच्छे हैं। ऐसो ऊँचो दुरग महावली को जामैं नखतावली सों बहस दीपावली करत है। कितना अच्छा वर्णन है। दुर्ग की ऊँचाई कैसे व्यक्त की गई है! प्राकृतिक सौंदर्य पर भूषण ने एक पद भी नहीं लिखा। उनके तो वर्ण्य-विषय थे—युद्ध, शिवाजी का यश, शिवाजी का दान, शिवाजी का आतंक, शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा।

युद्ध वर्णन

युद्ध-वर्णन में भूषण ने कुछ स्थानों पर वीरगाथा काल के कवियों की तरह अमृतध्वनि छन्द तथा अपभ्रंश शब्दों की बहुलता रखी है, पर कई स्थानों पर भूषण ने मनहरण कवित्त का ही प्रयोग किया है। लोमहर्षण युद्ध की भयकरता दिखाने के लिये अमृतध्वनि छंद ही उपयुक्त है, पर जहाँ साधारण आक्रमण आदि का वर्णन करना हो वहाँ अन्य छन्दों का प्रयोग भी हो सकता है। भूषण

ने इसका बहुत ध्यान रखा है। प्राचीन परम्परा के अनुसार ही युद्ध-वर्णन में कई स्थानों पर चंडी और भूत-प्रेतों का समावेश कराया गया है। आगे दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोलदल॥

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥
कहुँ रुंड मुंड कहुँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबन्ध धमकत हैं॥

भयंकर जननाश से उमडते खून के समुद्र पर क्या ही अच्छी कल्पना है—

पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै।
नँदिया की पूँछ गहि पैरि कै कपाली बचे,
काली बची माँस के पहार पर चढ़ि कै॥

नायक-यश-वर्णन

अपने नायक के यशवर्णन के उद्देश्य से ही भूषण ने ग्रंथ रचना प्रारंभ की थी और महाकवि भूषण से पहले किसी कवि ने अपने नायक के यश-वर्णन मात्र के लिए कोई संपूर्ण ग्रंथ हिंदी में

रचा भी न था। अतः उनका नायक का यश-वर्णन होना भी अनूठा चाहिये। किसी महत्कार्य को संपन्न करने वाला नायक ही यश प्राप्त करता है। यदि उसका प्रतिपक्षी महान हो, अमित पराक्रमी हो, तो उसको विजय कर नायक भी अमित यश का भागी होता है। अतः कुशल कवि नायक के यश का वर्णन करने के लिए पहले प्रतिनायक के पराक्रम और ऐश्वर्य का खूब बढ़ा कर वर्णन करते हैं। महाकवि भूषण को तो जिस प्रकार सौभाग्य से शिवाजी जैसे नायक मिले थे, उसी प्रकार प्रतापी मुगल-सम्राट् औरंगजेब जैसा प्रतिनायक भी मिल गया था जो हिन्दू जाति को कुचल देने के लिए कटिबद्ध हो रहा था। अतः भूषण को उसके अत्याचारों के वर्णन करने का, उसके अनंत बल और ऐश्वर्य को दिखाने का, तत्कालीन अन्य हिन्दू राजाओं की दुर्दशा का चित्र खींचने का तथा फिर अकेले धर्मवीर शिवाजी द्वारा उसका विरोध किये जाने और उसमें उनकी सफलता दिखाने का अनूठा अवसर मिल गया था। 'हम्मीर हठ' के लेखक चन्द्रशेखर वाजपेयी ने—जिनका उल्लेख वीर कवियों मे किया जा चुका है—चुहिया के कूदन से हम्मीर के प्रतिनायक दिल्ली-सम्राट् अल्लाउद्दीन के डरने का वर्णन किया है। पर भूषण औरंगज़ेब का पराक्रम दिखाने मे कभी नहीं चूके। भूषण जहाँ शिवाजी को सरजा (सिंह) की उपाधि से भूषित करते हैं, वहाँ औरंगजेब को 'मदगल गजराज' के नाम से पुकारते हैं। जहाँ शिवाजी के विषय में 'आप धर्‍यो हरि ते नर रूप' अथवा "म्लेच्छन को मारिबे को तेरो अवतार है" आदि पद प्रयुक्त करते हैं, वहाँ वे औरंगज़ेब को 'कुम्भकर्ण असुर औतारी' कहते हैं। इस प्रकार

अनेक पद्यों की प्रारंभ की पंक्तियों में वे औरंगजेब के पराक्रम तथा अत्याचारों का वर्णन करते हैं और अंतिम पंक्तियों में उस पर विजय प्राप्त करने वाले शिवाजी का उत्कर्ष दिखाते हैं। देखिए, औरंगजेब के प्रभुत्व का वर्णन—

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौंर, गढ, कुही बाज की।
मेवार, दुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखण्ड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की॥
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वे,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगज़ेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की॥

औरंगजेब के अत्याचारों का भी वर्णन कैसे जोर से किया है।

औरंग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।
देवल डिगाने राव-राने मुरझाने अरु,
धरम ढहाना, पन मेट्यो है पुराना को॥
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद बखाना को।
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना बर बाना हिन्दुवाना को॥

इस प्रकार शिवाबावनी के "सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी" वाले अनेक छन्दों मे अगर शिवाजी न होते तो हिन्दुओं और हिन्दुस्तान की क्या दशा होती इसका अत्युत्कृष्ट वर्णन कर

भूपण ने नायक को बहुत ऊँचा उठाया है। साथ ही "अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज हैं" वाले पद्यों से कवि ने शिवाजी को अधीन करने में सारे भारत को विजय करने वाले औरंगजेब की असमर्थता का बड़ा अच्छा चित्र खींचा है।

शिवाजी को अकेले औरंगजेब से ही नहीं लड़ना पड़ता था। बीजापुर, गोलकुंडा आदि के सुल्तान भी औरंगजेब के साथ मिल कर या अलग अलग शिवाजी से लड़ते रहते थे। भूपण ने (शिवराज भूपण की पद संख्या ६२ में) उन सब को मिलाकर 'अत्याचारी कलियुग' का बड़ा अच्छा 'मुसलिम शरीर' बनाया है, जिसका शिवाजी ने खंडन किया। इसी तरह उस समय एक ओर किस प्रकार अकेले शिवाजी थे, और दूसरी ओर सारा भारत था, इसका वर्णन फुटकर छंद संख्या ११ में किया है, तथा अन्तिम पंक्ति में 'फिर एक ओर सिवराज नृप एक ओर सारी खलक' कह कर शिवाजी के अनंत साहस का सुंदर चित्र खींचा है। भूषण में एक और खूबी है—वह बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों को शिवाजी का प्रतिनायक (बराबर का विरोधी) नहीं बनाता, उनको तो वह इतना ही कह देता है—"जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई, दिल्लीदल भली तो तिहारी कहा चली है" अथवा "बापुरो एदिल साहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।"

शिवाजी के सदा सफल होने का उल्लेख भूपन ने 'भूतल माँहि बली सिवराज भो भूपण भाखत शत्रु सुधा को' कहकर किया है। "भूपण भनत महाराज सिवराज तेरो राजकाज देखि कोई पावत न भेव है" कह कर कवि ने शिवाजी की गूढ़ राजनीति का भी परिचय दिया है। शरणागत शत्रुओं पर शिवाजी हाथ

न उठाते थे, अतः कवि कहता है—"एक अचंभव होत बडो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे" । हिन्दुओं की उन्नति में शिवाजी किस प्रकार उत्साहित होते हैं, और घर के भेदी विभीषण रूपी हिन्दुओं तक को मारने मे भी उन्हे कितना कष्ट होता है इस का मर्म निम्नलिखित पद्य में उद्घाटन कर कवि शिवाजी के देश और जाति प्रेम को प्रकट करता है ।

काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै ।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै ॥
हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै ।
चन्द अलोक तें लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै ॥

प्रतापी मुगल-सम्राट् का विरोध करने वाले शिवाजी ने क्या क्या किया इसका उल्लेख 'राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो' तथा 'वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत" आदि छन्दों में (पृ ३४८,३४९) करके "पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को" और 'सो रँग है सिवराज बली जिन नौरग में रग एक न राख्यो' कह कर कवि अपने नायक के अधिकार और बल का खूब पोषण करता है । 'कुंद कहा पय वृंद कहा अरु चंद कहा सरजा जस आगे' कह कर अपने नायक के धवल यश के सामने अन्य सब श्वेत वस्तुओं को तुच्छ समझता है और उस शुभ्र यश से इस धवलित त्रिभुवन में से अन्य धवल वस्तुओं के ढूँढने की कठिनाई का 'इन्द निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु' (पृ०२३०) मे बढ़िया वर्णन करता है। माना कि यह अतिरंजन है, पर ऐसा अतिरंजन साहित्य मे पुराना चला आता है । संस्कृत के किसी कवि ने जब यहाँ तक कह डाला 'महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते, पय पारावार परमपुरुषोयं मृगयते"

तो भला भूषण अपने यशस्वी नायक के वर्णन में ऐसा लिखने में कैसे चूक सकते थे। सारांश यह कि अपने नायक के यश-वर्णन में भूषण ने कोई बात छोड़ी नहीं और कहीं भी उन्हें असफलता नहीं मिली। साथ ही यह भी लिख देना आवश्यक है कि शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों का यशवर्णन करने वाला कवि केवल भाट या खुशामदी नहीं कहा जा सकता अपितु वह तो हिन्दुओं के उस समय के भावों को ही व्यक्त करता है। क्योंकि शिवाजी के अवतार के बाद ही तो पराधीन हिन्दू जाति कह सकती थी कि "अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह, सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत हैं"। यदि आज के कवि भारत का उद्धार करने वाले महात्मा गाँधी को भगवान कृष्ण का अवतार तथा उनके चरखे को सुदर्शन चक्र बना सकते हैं तो उस समय के हिन्दुओं के उद्धार में संलग्न तथा अत्याचार का विरोध करनेवाले वीर को "तू हरि को अवतार सिवा" कहने में अतिरंजन नहीं कहा जा सकता।

दान वर्णन

शिवाजी के यश की तरह भूषण ने शिवाजी के दान का भी बड़ा उदात्त वर्णन किया है। भूषण कहते हैं—"ऐसो भूप भौंसिला है, जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है" और उसके दान का अंदाजा यों लगाया जाता है—"रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों, हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है"। उस महादानी ने जो गजराज कविराजों को दिये हैं, उनका वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

"ते सरजा सिवराज दिए, कविराजन को गजराज गरूरे
सुंडन सों पहिले जिन सोखिके फेरि महा मद सों नद पूरे"

× × ×
तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर
भूषण भनत तेऊ महामद छकसै
× × ×
जिनके गरज सुने दिग्गज बेआब होत
मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं।

कृपापात्र कविराजों के निवासस्थान के ऐश्वर्य का वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

"लाल करै प्रात तहाँ नीलमणि करैं रात
यहाँ भाँति सरजा की चरचा करत हैं"

इतने बड़े दानी के दान का संकल्प जल भी तो बहुत अधिक होगा, अतः भूषण उसका वर्णन करने में भी नहीं चूके।

"भूषन भनत तेरो दान संकलप जल
अचरज सकल मही में लपटत है
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो
कर कोकनद नदी नद प्रगटत हैं।"

कार्य से कारण की कैसी विचित्र उत्पत्ति बताई गई है। इतने बड़े दानी के सामने कल्पवृक्ष और कामधेनु की गिनती हो ही क्या सकती है. क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष का वर्णन तो केवल पुस्तकों में है और ये शिवाजी तो प्रत्यक्ष इतना दान देने वाले हैं। तभी तो भूषण कहते हैं—"कामना दानि खुमान लखे न कछू सुररुख न देवगऊ है।" उस कामना-दानी के दान का बखान सुनकर और "भूषण जवाहिर जलूस जरबाफ जोति, देखि देखि सरजा के सुकवि सुमाज की" लोग तप करके कमलापति से यही माँगते हैं—"बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के
भिखारी हमें कीजै महाराज सिवराज के"

इस प्रकार भूषण ने अपने उस नायक के दान का विशद वर्णन किया है, जिससे उन्हे पहली भेंट के अवसर पर ही अनेक लाख रुपए, अनेक हाथी और अनेक गॉव मिले थे। उसी दान से संतुष्ट होकर ही तो भूषण ने सारे भारत के राजाओं के यहॉ घूमने के अनन्तर कहा था—

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतै बरसै मरसैं, उमड़े नदियाँ ऋतु पावस पाए॥

इस दानवर्णन को जो लोग अतिरंजित कहते हैं उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए यह उस दानी के दान का वर्णन है जिस के दान की अद्भुत कहानियॉ महाराष्ट्र बखरों मे और जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासज्ञों ने भी अपनी पुस्तकों मे दी हैं, मुसलमान इतिहास लेखक कैफीखॉ तक ने जिसके बारे मे यह लिखा है कि आगरा से भाग कर जब शिवाजी तीर्थयात्री के वेश में बनारस पहुॅचे थे, तब उन्होंने घाट पर स्नान कराने वाले पंडे को ९हीरे,९अशरफी और ९हून दे डाले थे,और जिसने शम्भाजी को रायगढ़ पहुॅचाने वाले ब्राह्मणों को एक लाख सोने की मोहरे नकद तथा दस हजार हून सालाना देने किए थ। जिसने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक लाख ब्राह्मण, स्त्री, पुरुष और बच्चों का पेट चार महीने तक मिठाइयों से भरा था, और लाखों रुपए दान मे दे दिए थे*। कवि उस दानी के दान का वर्णन इससे कम कर ही क्या सकता था। यदि वह उसके दान की वस्तुओं की केवल गिनती मात्र करने बैठता तो

---

*देखिए Sarkar: *Shivaji and his Times*. पृ० १७१-१७२, १७४, २४२।

वह कविता न रह जाती, वह तो केवल सूखा ऐतिहासिक वर्णन हो जाता। काव्य में तो अतिशयोक्ति और अत्युक्ति अलंकारों का होना आवश्यक ही है। भूषण ने तो छत्रपति शिवाजी जैसे महाराज से कविराजों को गजराज दिलाकर उन्हें केवल बेफिक्र ही किया है, पर रीतिकाल के अन्य कवियों के अतिरंजित वर्णन की तो कोई सीमा ही नहीं। पद्माकर ने तो नागपुर के राजा रघुनाथ राव के दान का वर्णन करते हुए जगन्माता पार्वती को भी डरा दिया है —

दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना
याहीं डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरितें गरेतें निज गोदतें उतारै ना

सारांश यह कि भूषण द्वारा किया गया शिवाजी के दान का वर्णन उदात्त अवश्य है, पर इतना अतिरंजित नहीं जितना रीतिकाल के अन्य कवियों का।

आतंक वर्णन

भूषण ने शिवाजी के यश और शौर्य का उतना वर्णन नहीं किया, जितना शत्रुओं पर उनकी धाक का। और वह वर्णन है भी बहुत ओजस्वी, प्रभावोत्पादक और सजीव। क्योंकि शिवाजी के आतंक का वर्णन केवल वाणी-विलास के लिए अथवा अर्थ-प्राप्ति के लिए नहीं किया गया, परन्तु उसका उद्देश्य शिवाजी की धाक को चारों ओर फैलाना था, और उससे विपक्षियों को विचलित करना था। भूषण इसमें इतने सफल हुए हैं कि कई समालोचकों का मत होगया है कि भूषण वीररस से भी अधिक भयानक रस में विशेषता रखते हैं। पर कई लोग भूषण के इस वर्णन में भी अतिरंजन का दोष लगाते हैं। उनके लिए इतना ही कह सकते हैं कि यदि वे भूषण के आतंक-

वर्णन के अतर्निहित उद्देश्य को समझ सकते और यदि वे इतिहास की पुस्तकों के देखते तो शायद वे ऐसा न कहते।

शिवाजी की नीति सहसा आक्रमण की थी। खुलकर युद्ध करना उनकी नीति के प्रतिकूल था। इसी नीति के बल से उन्होंने बीजापुर को नीचा दिखाया, अफ़ज़लखाँ का वध किया, और दिल्ली के बड़े-बड़े सरदारों को नाकों चने चबवाये। शाइस्ताखाँ की दुर्दशा भी इसी प्रकार हुई थी। इन घटनाओं से शत्रु शिवाजी को शैतान का अवतार समझने लगे थे‡। कोई भी उनके आक्रमणों से सुरक्षित न समझा जाता था, और कोई काम उनके लिए असंभव न माना जाता था।

शत्रु उनका और उनकी सेना का नाम सुनकर काँपने लगते थे, और आक्रमण-स्थान पर उनके पहुँचने से पहले ही शहर खाली कर देते थे। सूरत की लूट के समय किसी को शिवाजी का मुकाबिला करने का साहस नहीं हुआ था। शिवाजी का यह आंतक मुसलमानों में इतना छा चुका था कि जब शिवाजी औरंगजेब के यहाँ कैद थे, तब उन्होंने औरंगजेब से एकान्त में भेंट करने की आज्ञा माँगी पर औरंगज़ेब ने डर के मारे इनकार कर दिया। इस पर जब शिवाजी उसके प्रधान मंत्री जफरखाँ

---

‡ He was taken to be an incarnation of Satan; no place was believed to be proof against his entrance and no feat impossible for him. The whole country talked with astonishment and terror of the almost superhuman deed done by him *Shivaji and His Times by J. Sarkar. page. 96.*

के पास गये, तब जफरखाँ की बीबी ने पति को देर तक शिवाजी से बातचीत करने से रोका और जफर खॉ जल्दी ही वहाँ से विदा हो गया।*

शिवाजी के औरंगजेब के दरबार से निकल भागने पर तो मुसलमान उसे जादूगर ही कहने लगे थे। वे कहते थे 'गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा हैं?' सलेहरि के युद्ध के बाद तो उनका

---

* He then begged for a private interview with the Emperor.... . . ..The prime minister Jafar Khan, warned by a letter from Shaista Khan, dissuaded the Emperor from risking his person in a private interview with a magician like Shiva But Aurangzeb hardly needed other people's advice in such a matter. He was too wise to meet in a small room with a few guards the man who had slain Afzal Khan almost within sight of his 10,000 soldiers, and wounded Shaista Khan in the very bosom of his harem amidst a ring of 20,000 Mughal troops, and escaped unscathed. Popular report credited Shiva with being a wizard with " an airy body," able to jump across 40 or 50 yards of space upon the person of his victim. The private audience was refused.

Shivaji next tried to win over the prime-minister, and paid him a visit, begging him to use his influence over the Emperor to send him back to the Deccan with adequate resources for extending the Mughal Empire there Jafar Khan warned by his wife (a sister of Shaista Khan) not to trust himself too long in the company of Shiva, hurriedly ended the interview, saying " All right , I shall do so." *Shivaji and His Times by J. Sarkar, pp 161-162.*

आतंक बहुत बढ़ गया था, और दक्षिण विजय कर लेने पर दूर-दूर तक उनका आतंक छा गया था। दिल्ली सम्राट् उनकी विजयों के कारण चिंतित था, बीजापुर और गोलकुंडा उनसे अभयदान माँगते थे। हब्शी, पुर्तगीज तथा अगरेज़ भी उनसे काँपते थे। भूषण इसका क्या ही अच्छा वर्णन करते हैं—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करपति है।
बिलखि बदन बिलखति बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनि की नारी फरकति है॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

इसके सिवाय भूषण ने शिवाजी के डर से डरे हुए सूबेदारों और मनसबदारों का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया है, कभी वे कहते हैं कि लोमश ऋषि के समान दीर्घ आयु होवे तो शिवाजी से जाकर लड़ें, और कभी कहते हैं—

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
भूषन कहैं यों अवरंग सों वजीर, जीति,
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥

×　　　×　　　×

दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजे,
　　　उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही ।

शिवाजी की सेना के प्रयाण का भी बड़ा प्रकृष्ट वर्णन है—

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
　　　नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के ।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
　　　बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
　　　भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के ।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
　　　केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥

कच्छप की पीठ के टूटने और शेषनाग के फणों के फटने का वर्णन पढ़कर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि भूषण उस रीति-काल के कवि हैं जिस काल की विरहिणी कृशाङ्गी नायिका की आह से आसमान फट जाता था। फिर भला विशाल मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने वाले शिवाजी के दल के दबाव से कच्छप की पीठ टूट जाय तो इस में आश्चर्य ही क्या है ।

जब शत्रुओं का यह हाल था तब उनकी सहजभीरु स्त्रियों का बेहाल होना तो स्वाभाविक ही था। भूषण ने शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा का बहुत अधिक और आलंकारिक वर्णन किया है । स्वर्णलता के समान उन कामिनियों के मुख-रूपी चन्द्रमा में स्थित कमल-रूपी नेत्रों से पुष्परस-रूपी जो आँसू टपकते हैं, उनका भूषण क्या ही सुन्दर वर्णन करते हैं ।

कनकलतानि इन्दु, इन्दु माँहि अरविन्द
　　　झरै अरविन्दन ते बुंद मकरंद के ।

बादलों से अंगार एवं रक्त की वर्षा आदि अनहोनी बातों का होना अशुभ-सूचक है। भूषण भागती हुई शत्रुस्त्रियों के केशों से गिरते हुए लालों को देखकर कैसी सुंदर कल्पना करते हैं—

छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषण सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं वैरिन के झुण्डन मैं,
कारे घन घुमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

शिवाजी के डर से भागती हुई शत्रु-स्त्रियों का भूषण ने कई स्थानों पर ऐसा वर्णन किया है जो आजकल आपत्ति-जनक कहा जा सकता है, सभ्यसमाज शायद जिसे अब पसंद न करेगा। जैसे—

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन की भीर मैं सम्हारती न छाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

यद्यपि हम भी इस वर्णन को पसन्द नहीं करते, फिर भी कवि के साथ न्याय करने के लिए इतना कहना ठीक होगा कि हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य में भी शत्रुओं की दुर्दशा वर्णन करने के लिए उनकी नारियों की दुर्दशा वर्णन करने की परिपाटी रही है। 'हम शत्रु को मार गिराएँगे' के स्थान

पर हम शत्रु-स्त्रियों को विधवा कर देंगे, या उनकी स्त्रियों के बाल खोलवा देंगे कहने को अधिक पसन्द किया जाता रहा है। महाकवि विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस नाटक में मलयकेतु अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करते हुए कहता है —

"कर-वलय उर ताड़त गिरे आँचरहु की सुधि नहिं परी
मिलि करहिं आरतनाद हा हा अलक खुलि रज-सों भरी
जो शोक सों भइ मातुगण की दशा सो उलटाइहैं
करि रिपु-जुवतिगन की सोइ गति पितहिं तृप्ति कराइहैं"

वेणीसंहार नाटक में भी द्रौपदी की चेरी दुर्योधन की स्त्री भानुमती से कहती है—'अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति।'

सारांश यह कि शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा के वर्णन में भूषण ने परंपरा का ही पालन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण के वर्ण्य-विषय यद्यपि बहुत थोड़े थे तो भी जिस पर उन्होंने कलम उठाई है, उसे अच्छी तरह निभाया है, और उसमें कहीं त्रुटि नहीं रहने दी।

काव्य-दोष

भूषण की कविता में दोष भी कम नहीं है। शिवराज-भूषण में अलंकारों के लक्षणों और उनके उदाहरणों में जो त्रुटियाँ हैं, उनका निदर्शन पीछे किया जा चुका है। छंदों में यतिभंग कई स्थानों पर है। जैसे—जाहिर जहान जाके धनद समान पेखि-

यतु पासवान यों खुमान चित चाय है।

यह मनहरण कवित्त है, जिसमें ३१ वर्ण होते हैं, तथा ८, ८, ८ और ७ वर्णों पर अथवा १६ और १५ वर्णों पर यति होती है। पर इसकी पहली पंक्ति मे 'पेखियतु' और दूसरी पंक्ति मे 'खुमान' शब्द टूटता है। इसी प्रकार 'गज घटा उमड़ी महा घन घटा से घोर' में गति ठीक न होने के कारण रचना बड़ी उखड़ी सी है, यहाँ हतवृत्तत्व दोष है। भूषण की कविता में यह दोष बहुत अधिक है। इनमें से बहुत से छन्द-दोष तो प्रतिलिपिकारों की असावधानी अथवा परंपरा से याद रखने वाले भाटों के अज्ञान के कारण, अथवा बड़े लेखक की कविता मे निज रचना को जोड़ देने वालो की कृपा का फल है। तो भी कुछ दोष भूषण से भी रहे होंगे क्योंकि उन्होंने काव्योत्कर्ष की ओर इतना ध्यान नही दिया। इनमे से कुछ दोषों का उल्लेख आगे किया जाता है—

कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठनील,
कैटभ के कालिका, विहंगम के बाज हो।

यहाँ बड़ी ऊँची ऊँची उपमानावलि के बाद तुच्छ बाज पर उतर आना पतत्प्रकर्ष दोष है।

लवली लवंग यलानि केरे, लाखहों लगि लेखिए।
कहूँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करवीर है।

यहाँ 'केरे' का अर्थ यदि 'केले' किया जाय तो आगे 'कदली' कहने से पुनरुक्ति दोष हैं। यदि 'केरे' का अर्थ 'के' माने तो केरे के आगे 'वृक्ष' होना चाहिये, अन्यथा न्यून-पदत्व दोष होता है।

सातौ वार आठौ याम जाचक नेवाजे नव,
अवतार थिर राजे कृपन हरि गदा।

यहाँ कृपान का कृपन कर देना खटकता है। इसमे कवि की शब्दावलि की सकुचितता प्रतीत होने लगती है।

बिन अवलम्ब कलिकानि आसमान मैं है,
होत विसराम जहाँ इन्दु औ उदय के।

यहाँ 'उदथ' का अर्थ 'उदय+अथ (अस्त)होने वाला अर्थात् सूर्य' है। शब्द गढ़ा हुआ है, पर बहुत बिगड गया है, जिसका अर्थ सहसा स्फुरित नहीं होता, यहाँ क्लिष्टत्व दोष है।

नर लोक में तीरथ लसें महि तीरथो की समाज में।
महि में बडी महिमा भली महिमै महारज लाज में॥

इन पक्तियों में 'महि' शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। यहाँ 'महि' का अर्थ 'महाराष्ट्र भूमि' लगाया गया है, जिसके लिए बडी खींचातानी करनी पडती है। 'रजलाज' का अर्थ लज्जायुक्त राज्यश्री भी जबरदस्ती करना पड़ता है। इस तरह इस सारे पद्य का अर्थ अस्पष्ट है, यहाँ कष्टार्थत्व दोष है।

वीर रस की कविता को शृंगार रस के उपयुक्त व्रजभाषा मे लिखने वाले पहले कवि भूषण थे। भूषण को अपना रास्ता स्वय ही निकालना पडा था, अतएव भूषण को शब्दों को खूब तोड़ना मरोड़ना पड़ा। इसी कारण कुछ दोष भी आगए हैं, पर वे इतने उल्लेखयोग्य नहीं है।

भूषण की विशेषताएँ

जातीयता की भावना

भूषण की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जातीय भावों की प्रधानता है। भूषण के पहले जितने भी वीर रस के कवि हुए उनकी कविता में इन भावों का अभाव था। उनकी कल्पनानुसार एक कामिनी ही लड़ाई का कारण हो सकती थी। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध हुआ, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर, किसी रूपवती कामिनी को ही कारण कल्पित करके उन वीर

कवियों ने अपनी रचनाएँ कीं। भूषण ही ऐसे महाकवि थे जिनकी कविता में सबसे पहले हिन्दू जाति का नाम सुना गया, जो आपने नायक की प्रशंसा केवल इसलिए करते हैं कि उसने हिन्दुओं की रक्षा की और हिन्दुओ के नाम को उज्ज्वल किया।

अपने नायक की विजयों को भूषण उनकी वैयक्तिक विजय नहीं मानते अपितु हिन्दुओं की विजय मानते हैं और कहते है—"संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को, सारु हरि लेत हिन्दुवान सिर सारु दै।" भूषण ही ऐसे कवि थे, जिन्होंने सबसे पहले यह घोषणा की "आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे", जिन्हे उस समय के हिन्दू राजाओं की असहायावस्था चुभती थी, विशेषतः महाराणा प्रताप के वंशज उदयपुर के राणा की, अतएव वे कहते थे—'राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को बाना तजि भूषण भनत गुन भरि कै": जिन्होने शिवाजी के बाद छत्रसाल बुन्देला की केवल इसलिए प्रशंसा की थी कि उन्होंने 'रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की।'

सारांश यह कि भूषण की कविता में जातीयता की भावना सर्वत्र व्याप्त है और वह तत्कालीन वातावरण तथा हिंदुओं की मानसिक अवस्था की सच्ची परिचायक है। भूषण की वाणी हिंदू जाति की वाणी है। इसी विशेषता के कारण भूषण हिंदुओं के प्रतिनिधि कवि कहाते हैं। उन्हें हिंदू जाति का जितना ध्यान और अभिमान था, उतना प्राचीन काल के अन्य किसी कवि को नहीं हुआ। "परन्तु भूषण की जातीयता मे भारतीयता का भाव उतना नहीं है, जितना हिंदूपन या हिन्दूधर्म का। यद्यपि उस समय हिंदूपन का संदेश ही एक प्रकार से भारतीयता

का संदेश था, क्योंकि मुसलमान प्रायः विदेशी थे" तथापि उसमें "मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस" आदि मुसलमानों के प्रति कुछ ऐसी कटूक्तियाँ भी हैं, जो वर्त्तमान समय की दृष्टि से कुछ अनुचित सी प्रतीत होती हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या भूषण की ये कटूक्तियाँ मुस्लिम धर्म से स्वाभाविक द्वेष के कारण हैं अथवा औरंगजेब के अत्याचारों से तंग आए हुए जातीयता-प्रेमी व्यक्ति के उद्गार हैं। हम समझते हैं कि भूषण स्वभावत' मुस्लिम-द्वेषी न थे, परन्तु औरंगजेब के अत्याचारों ने ही भूषण को मुस्लिम-विरोधी बना दिया था। वे अत्याचारी के रूप में ही उसकी और उसके साथियों की निन्दा करते थे, तथा उस पर रोष और घृणा प्रकट करते थे। वे औरंगज़ेब की अत्याचार प्रवृत्ति से ही हिन्दुओं मे जाग्रति होना पाते हैं—"भूषण कहत सब हिंदुन को भाग फिरे चढे ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं"। इसीलिए वे औरंगजेब को उसके पुरखाओं—बाबर और अकबर—की याद दिला कर शिवाजी से मेल करने की सलाह देते हैं।

ऐतिहासिकता

भूषण की कविता की दूसरी विशेषता उसकी ऐतिहासिकता है। यद्यपि उसमें तिथि और संवत् के अनुसार घटनाओं का क्रम नहीं है, तथापि शिवाजी-संबंधी सब मुख्य राजनीतिक घटनाओं का—उनकी मुख्य-मुख्य विजयों का—उल्लेख है। "ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इनकी सत्यप्रियता बहुत प्रशंसनीय है।" किसी भी घटना में भूषण ने तोड़मरोड़ नहीं की तथा अपनी ओर से कुछ जोड़ा नहीं। भूषण की कविता में जिन घटनाओं का उल्लेख है उनमें से बहुतों का हमने शिवाजी की जीवनी

मे निर्देश कर दिया है । कई स्थानों पर हमने प्रसिद्ध इतिहास लेखकों के उद्धरण भी दिए है, जिनको देखने से पता लग सकता है कि भूषण ने ऐतिहासिक सत्यों का किस तरह पालन किया है । कई स्थानों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिकों ने भूषण के पद्य का अनुवाद करके ही रख दिया है । हम तो इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मराठा इतिहास को ठीक ठीक पढ़े बिना भूषण की कविता का अर्थ लगाने का जिन्होंने प्रयत्न किया है उन्होंने स्थान स्थान पर भूले की हैं और यदि भूषण की कविता से ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेखयुक्त पद्यों को छाँट कर तिथि क्रम से रख दिया जाय तो शिवाजी की खासी अच्छी जीवनी तैयार हो सकती है । भूषण से पहले किसी भी कवि ने ऐतिहासिकता का इस तरह पालन नहीं किया ।

मौलिकता और सरलभाव व्यञ्जना

भूषण की कविता की तीसरी विशेषता है उसका मौलिक और सरल भाव व्यजना से युक्त होना। यद्यपि काल-दोष से भूषण को रीतिबद्ध ग्रंथ रचना करनी पड़ी, परन्तु उस रीति-बद्ध ग्रथ रचना मे भी भूषण ने अपनी मौलिकता और सरल भावव्यजना का परित्याग नही किया। मौलिकता के कारण ही उन्होंने तत्कालीन शृंगार-प्रणाली को छोड़कर नये रस और नयी प्रणाली को अपनाया। इसके अतिरिक्त उनकी आलोचना करते हुए हम यह दिखा चुके है कि किस तरह शुष्क ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन करते हुए उन्होंने नवीन और मौलिक ढग के अलंकार-योजना की है। उनकी कविता मे पुरानी ही उक्तियो का पिष्टपेषण नही है, तथा न केवल शब्दो का इन्द्रजाल ही है,

अपितु सीधे सरल शब्दों में प्राकृतिक तथ्यों का इतिहास से अनुपम मेल दिखाया गया है। भाषा की स्वच्छता तथा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों पर उन्होने उतना ध्यान नही दिया, जितना कि सीधे किंतु प्रभावशाली ढग पर वर्णन किया है।

इन्ही तीनों विशेषताओ के कारण भूषण ने 'अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया है।

हिन्दी साहित्य में भूषण का स्थान

भूषण का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम देख चुके हैं कि वीरगाथा-काल के कवियों में किसी भी कवि ने शुद्ध वीररस की कविता नही लिखी। उन की कविता मे शृगार का पर्याप्त पुट था, साथ ही उनकी कविता में जातीय चेतना न थी। राजाश्रित होने के कारण उसमें उच्चभावों की भी कमी थी। अत उनकी तुलना भूषण और लाल जैसे विशुद्ध वीर रस के लेखकों से नही हो सकती जिनकी कविता में जातीय भावना की पद-पद पर झलक है। वीरगाथा काल के द्वितीय उत्थान मे ही हम शुद्ध वीर रस की कविता पाते हैं। इस काल के तीन कवि प्रमुख हैं, भूषण, लाल और सूदन। सूदन की कविता में यद्यपि वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है, पर उसमें भी जातीयता की वह चेतना नही मिलती जो भूषण और लाल में है। इसके अतिरिक्त सूदन ने स्थान-स्थान पर अस्त्र-शस्त्रों की सूची देकर तथा अरबी फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग कर अपनी कविता को नीरस कर दिया है। इस प्रकार भूषण और लाल दो ही वीर-रस के प्रमुख कवि रह जाते हैं। इन में भी भूषण का पलड़ा भारी है। यद्यपि कविवर लाल की कविता

में प्राय. सब गुण हैं, और दोष बहुत कम हैं पर लाल छन्द के निर्वाचन मे चूक गये हैं। साथ ही उनकी रचना भूषण की रचना की तरह मुक्तक नही है अपितु प्रबधकाव्य है। इस कारण कई स्थानों पर वह केवल ऐतिहासिक कथा मात्र रह गई है, जिससे लालित्य कम हो गया है। इसलिए वीर-रस के कवियों में भूषण ही सर्व श्रेष्ठ ठहरते हैं।

अब प्रश्न यह है कि भूषण का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है। विद्वान् समालोचक मिश्रबंधु 'हिन्दी-नवरत्न' में लिखते हैं—"भूषण की कविता के ओज और उद्दण्डता दर्शनीय हैं। उसमे उत्कृष्ट पद्यो की संख्या बहुत है। हमने इनके प्रकृष्ट कवित्तों की गणना की, और उन्हे केशवदास एव मतिराम के पद्यो से मिलाया, तो इनकी कविता में वैसे पद्यों की सख्या या उनका औसत अधिक रहा। इसी से हमने भूषण का नवर विहारी के बाद और इन दोनों के ऊपर रक्खा है।" इस प्रकार वे हिन्दी कवियो में भूषण को तुलसी, सूर, देव और विहारी के बाद पाँचवाँ नवर देते हैं। हम उनके इस क्रम के साथ पूर्णतया सहमत नही है, परन्तु इतना हम मानते हैं कि जातीयता आदि गुणों के कारण भूषण का स्थान हिन्दी के इने-गिने कवियो मे है। "हिंदी नवरत्न, मे वीर रस के पूर्ण प्रतिपादक एक मात्र यही महाकवि हैं।" "भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीरकाव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन मे तत्पर, हिन्दू-धर्म के संरक्षक, दो इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति

हुए। भूषण की कविता कवि-कीर्त्ति-संवधी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्त्ति तव तक वरावर वनी रहेगी जव तक स्वीकृति वनी रहेगी। क्या सस्कृत साहित्य में, क्या हिन्दी साहित्य में, सहस्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशसा में ग्रन्थ रचे जिनका आज पता तक नहीं है। जिस भोज ने दान दे दे कर अपनी इतनी तारीफ कराई उसके चरितकाव्य भी कवियों ने लिखे होंगे। पर उन्हे आज कौन जानता है।"

संशोधन

भूषण की कविता इतिहास पर आश्रित है। भूमिका लिखते समय ऐतिहासिक ग्रन्थों का अवलोकन करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि पुस्तक मे दिये गये अर्थों में निम्नलिखित स्थानों पर थोड़ा सशोधन कर दिया जाय तो पद्यों का अर्थ अधिक समीचीन होगा।

पृष्ठ ७५, पद्य ९९

शब्दार्थ में लिखा है कि सन् १६४७ ई० मे शिवाजी ने कोंडाना किला जीत कर उसका नाम सिंहगढ़ रखा। यह ठीक नहीं है। कोंडाना का नाम परिवर्त्तन सन् १६७० ई० मे हुआ था, जब कि वीर तानाजी इस किले को हस्तगत करते हुए मारे गये। उस सिंह की मृत्यु पर ही शिवाजी ने कहा था 'गढ़ आया पर सिंह गया।' तभी से इस का नाम सिंहगढ़ पड़ा।

इस पद्य की चतुर्थ पंक्ति का पृष्ठ७६ पर दिया गया अर्थ ठीक नहीं है। जब तानाजी मालुसुरे के भाई सूर्याजी ने किले को जीत लिया, तो उन्होंने घुड़सवारों की फूँस की झोंपड़ियों को जला कर किले से ९ मील दूर पर बैठे हुए शिवाजी को दुर्ग-विजय की सूचना दी थी। अन्तिम पंक्ति में उसी की ओर निर्देश है। इसका अर्थ इस प्रकार होगा। ऊँचे सुन्दर छज्जों पर विजय-सूचक जलाई गई आग की ज्वाला इस प्रकार उचटी (भड़की) मानों प्रभात काल की प्रभा (छटा, लाली) फैल गई हो।

पृष्ठ १५६, पद्य २०६

इस पद्य की तीसरी पंक्ति का, पृष्ठ १६० पर दिया गया अर्थ इतिहास सम्मत नहीं है। इसका अर्थ इस प्रकार होगा—बीजापुर के सरक्षक और प्रधान मंत्री खवासखॉ ने शिवाजी से वैर किया, फलतः बीजापुर में शिवाजी की सेना की डौंडी बज गई, उनकी सेना ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। (देखिये भूमिका पृष्ठ ४०)

पृष्ठ १६४, अन्तिम पंक्ति

१७५७ के स्थान पर १६५७ चाहिये।

पृष्ठ ३४१, पद्य ४३

भूषण ने कई स्थानों में शिवाजी के लिए 'सितारे गढ़धर' का प्रयोग किया है अतएव इस पद्य का अर्थ करने मे प्रायः सब टीकाकार भूल कर गये हैं। यहॉ 'सितारे गढ़धर' से शिवाजी से तात्पर्य नहीं अपितु 'सितारे गढ़ के स्वामी' से है, जिससे शिवाजी ने यह किला जीता था। इस पद्य के तीसरे और चौथे चरण का अर्थ इस प्रकार होगा।

पन्हाले के किले के उद्भट (प्रचड) वीर योद्धाओं का मारा जाना सुनकर सितारे गढ़ के स्वामी की आँखों के तारे फिरने लगे, होश हवास नष्ट होने लगे। और बीजापुर के वीरों, गोलकुंडा के धैर्यशालियों तथा दिल्ली के अमीरों के हृदय अनार की भॉति फटने लगे।

पृष्ठ ३३४, पहली पंक्ति

पद्य ४४ के अर्थ में 'सिरोज' से फारिस के

'शीराज' का तात्पर्य लिया गया है, यह ठीक नहीं। यहाँ उस 'सिरौंज' शहर की ओर निर्देश है जो भूपाल के पास था। (विशेष पृष्ठ ३९७, पद्य ३७ में देखिये)।

पृष्ठ संख्या ३७६, पद्य १६

इस पद के तीसरे चौथे चरण का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—

भूषण कहते हैं गोलकुंडा का सुल्तान कुतुबशाह (डर कर आपको वार्षिक कर देन की)प्रतिज्ञा करता है और भोलिया (नाबालिग, minor) आदिलशाह भी आप से सब तरफ से रक्षा करने की प्रार्थना करता है। आपने औरंगजेब के हृदय को जलाकर उसमें दुखदाई दाग (घाव) कर दिये हैं, इसलिए वह फकीर बादशाह आह आह करता रहता है।

पृष्ठ ३८१, पद्य २१

इसकी तीसरी पंक्ति का अर्थ निम्नलिखित होना चाहिए, तभी यह इतिहास सम्मत हो सकता है।

भूषण कवि कहते हैं कि महावत खाँ के अत्यधिक ऊब जाने पर (असफल होने पर अथवा सलहेरि के घेरे मे पड़े-पड़े ऊब जाने पर) फिर बहादुर खाँ दिखाई दिया। यदि 'देखे' के स्थान पर 'कीन्हे' पाठ हो (जैसा कि नीचे पाठान्तर मे दिया गया है) तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है। महावतखाँ के ऊब जाने पर फिर बहादुर खाँ को सूबेदार बनाया गया था।

भूषण ग्रंथावली

शिवराज-भूषण

मंगलाचरण

(गणेशस्तुति)

कवित्त मनहरण †

विकट अपार भव-पथ के चले को स्रम-
हरन, करन-बिजना से ब्रह्म * ध्याइए।
यहि लोक परलोक सुफल करन, कोक-
नद से चरन, हिए आनि कै जुड़ाइए॥

---

†यह वर्णवृत्त है। इसमें ३१ वर्ण होते हैं, गुरु, लघु का कोई नियम नहीं होता किन्तु १६ और १५ वर्णों पर यति होती है। यदि ८, ८, ८ तथा ७ वर्णों का नियम रखा जाय तो लय अच्छी रहती है। अन्त में लघु गुरु होना चाहिए।

* "शिव, सूर्यो गणेशश्च विष्णुः शक्तिर्यथा क्रमम्" ये क्रम से पाँच देवता हैं। इन पाँचों की ईश्वर भाव से पूजा करते हैं। जो शिव को मानने वाले हैं वे 'शैव', जो सूर्य को मानते हैं वे

अलि-कुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंद-रूप-सरित मैं भूपन अन्हाइए।
पाप-तरु-भंजन, विघन-गढ़-गंजन,
जगत-मन-रंजन, द्विरदमुख गाइए ॥ १ ॥ †

'सौर', जो शक्ति (भवानी) को मानते है वे 'शाक्त', जो गणेश को मानते हैं वे 'गाणपत्य' और जो विष्णु को मानते हैं वे 'वैष्णव' कहलाते है। जो इन पाँचों की पूजा ईश्वर भाव से करते हैं वे 'स्मार्त' कहलाते हैं। "धर्मपुष्पाञ्जली" से उद्धृत ।

† यही कवित्त 'साहित्य सेवक-कार्यालय' काशी से प्रकाशित भूषणग्रथावली मे इस प्रकार दिया हुआ है—

अकथ[1] अपार भव-पंथ के चले को स्रम,
हरन करन विजना से बर-दाइएं[2]।
इहिलोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिये आनि कै जुड़ाइए॥
अलि-कुल कलित-कपोल ध्याइ[3] ललित,
अनद रूप सरित मैं भूपन अन्हाइए।
पाप-तरु-भजन विघन-गढ़ गजन,
भगत-मनरजन[4] द्विरदमुख गाइए ॥

इसका अर्थ अधिकाश में दिये हुए कवित्त न० १ के अर्थ के समान ही है। केवल जिन रेखाङ्कित पाठों में अन्तर है उनका अर्थ समझ कर पाठक स्वयं अर्थ कर ले। विशेष परिचयार्थ रेखाङ्कित पाठान्तरों के विषय में नीचे टिप्पणी दी जाती है।

(१) इस 'अकथ' पाठ के स्थान पर हमने अपने दिये कवित्त मे 'विकट' पाठ दिया है। 'विकट' पाठ प्रायः सब प्रतियों मे

शब्दार्थ—करन=कर्ण,कान। बिजना=व्यजन,पंखा। ब्रह्म=गणेश जी, भवानी, सूर्य, विष्णु और महादेव ये पाँच ब्रह्म रूप माने जाते है, यहाँ गणेशजी से तात्पर्य है। भूषण जी ने इनमें से आदि तीन की स्पष्ट रूप से स्तुति की है, विष्णु और शिव की क्रमशः चौथे और पाँचवें दोहों में केवल चर्चा-मात्र की है। कोकनद=लालकमल। जुड़ाइए=शीतल कीजिये। कुल=वंश, समूह। कलित=युक्त। ललित=सुन्दर। भजन=तोड़ना। गजन=नाश करना। द्विरद=हाथी। द्विरद-मुख=हाथी के समान मुख वाले, श्री गणेश जी।

अर्थ—ब्रह्मस्वरूप श्री गणेश जी का ध्यान कीजिए जो अपने कान रूपी पंखे (के झलने) से इस विकट अपार संसार रूपी मार्ग में

मिलता है। इस पाठ से अर्थ की रोचकता बढती है। 'विकट' शब्द भव-पथ का विशेषण है। यह 'अकथ' विशेषण से कहीं अधिक उचित प्रतीत होता है। यह मुहावरा भी प्रचलित है—विकट रास्ता (पथ) है। अत: हमें इस 'अकथ' पाठ की अपेक्षा अपना दिया हुआ 'बिकट' पाठ ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

(२) यहाँ 'बर-दाइए'—का अर्थ बलदायी अर्थात् शक्ति देने वाला है। इस पाठ के मानने पर न तो अर्थ ही ठीक बनता है न कोई रोचकता बढती है। भूषण कवि का गणेश, भवानी, सूर्य विष्णु और शिव की ग्रंथारम्भ में क्रमशः प्रार्थना करना भी इस 'बर-दाइए' पाठ के मानने पर विशेष साभिप्राय प्रतीत नहीं होता। केवल साधारण रीत्यनुसार विघ्ननाशार्थ गणेशजी की, इष्ट देवी होने से भवानी की और राजवंश का कुलदेव होने से सूर्य की प्रार्थना मात्र कही जा सकती है, किन्तु दोहे नम्बर ४—५ में जो क्रमशः विष्णु और शिव की वन्दना लक्षित होती है वह 'बर-दाइए' पाठ से सिद्ध नहीं होती। ये पाँचों प्रार्थनाएँ तो 'ब्रह्म ध्याइए' पाठ से ही उचित और साभिप्राय सिद्ध होती हैं। हमें 'ब्रह्म ध्याइए' पाठ ही

चलने की थकान को दूर करते हैं। इस लोक और परलोक में मनोरथ सफल करने के लिए श्री गणेशजी के लाल कमल के समान चरणों को हृदय में धारण कर उसे शीतल कीजिए। भूषण कवि कहते हैं कि जिनके कपोल भौंरो के समूह से युक्त हैं (मद के कारण भौंरे हाथी के गण्डस्थल पर मँडराते रहते हैं) और जिनका ध्यान धरना बड़ा सुन्दर है ऐसे श्रीगणेश जी की आनन्द देने वाली रूप नदी (अथवा आनंद रूपी नदी) मे स्नान कीजिए। पाप रूपी वृक्ष के तोडने वाले, विघ्नों के किले को नाश करने वाले और संसार के मन को प्रसन्न करने वाले श्री गणेश जी के गुणों का गान करना चाहिए।

अलंकार—भव-पथ, अनन्द-रूप-सरित, पाप-तरु, विघन-गढ, में रूपक है। कोकनद से चरन, और द्विरद-मुख, मे उपमा है। और वृत्यनुप्रास भी है।

अधिक मान्य प्रतीत होता है। यह काशीवाली प्रति को छोडकर अन्य सब प्रतियों मे मिलता है।

(३) यहाँ यह 'ध्याइ' पाठ अशुद्ध है, इसके स्थान पर 'ध्यान' पाठ होना चाहिए।

(४) यहाँ 'भगत-मनरजन' पाठ साधारण अर्थ वाला है इस मे कोई विशेष चमत्कार नहीं है। इस पाठ से केवल भक्तों के ही मन को प्रसन्न करने का अर्थ होता है किन्तु हमारे दिये पाठ 'जगत-मनरंजन' का अर्थ चमत्कार पूर्ण है। क्योंकि समस्त ससार (जगत) के मन को प्रसन्न करने वाला देव केवल भक्त के मन को प्रसन्न करने वाले देवता से कहीं अधिक उदार और विशाल हृदय का परिचय देता है। गणेश जी सचमुच 'जगत मनरजन' करनेवाले ही हैं। सारे हिन्दू भिन्न-भिन्न इष्टदेव रखते हुए भी अपने सर्व कार्यों के आरम्भ मे मगल के लिए गणेश जी की ही स्तुति करते हैं। अन्य प्रतियों मे भी यही पाठ है।

भवानी स्तुति

छप्पय अथवा षट्पद †

जै जयति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि ।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष विमर्दिनि ॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि ।
जै सुरक्त जै रक्त बीज बिड्डाल बिहंडिनि ॥
जै जै निसुंभ सुंभद्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि ।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग-जननि ॥२॥

शब्दार्थ—जयति=विजयिनी, देवी । कपर्दिनी=कपर्दि (शिव) की स्त्री पार्वती, भवानी । मधुकैटभ=मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य थे जिन्हे विष्णु भगवान ने मारा था। योगमाया (देवी) ने इनकी बुद्धि को छला था, तभी ये मारे गये । महिष=एक राक्षस जिसे दुर्गा ने मारा था । विमर्दिनी=मर्दन करने वाली, नाश करने वाली । चमुंड=चामुंडा, दुर्गा । चंड मुंड=दो राक्षस, इन्हे दुर्गा ने मारा था, ये शुंभ निशुंभ के सेनापति थे । भंडासुर=इस नाम का कोई प्रसिद्ध राक्षस नहीं पाया जाता जिसे दुर्गा ने मारा हो, यह विशेषण शब्द जान पड़ता है—भंड+असुर=भंड (पाखंडी) राक्षस, पाखंडी राक्षस । चंड मुंड भंडासुर=पाखंडी चंड और मुंड राक्षस । सुरक्त रक्तबीज=रक्तबीज और सुरक्त ये दो राक्षस थे, इन्हें दुर्गा ने मारा था । बिड्डाल=बिडालाक्ष दैत्य, इसे दुर्गा ने मारा

---

† यह छः पद का मात्रिक छन्द है, इस मे प्रथम चार पद रोला छन्द के और अन्तिम दो उल्लाला छन्द के होते है । रोला छन्द में प्रत्येक पद २४ मात्रा का होता है और उसकी ११ और १३ मात्राओं पर यति होती है । उल्लाला छन्द २८ मात्रा का होता है जिसमें पहली यति १५ वीं मात्रा पर होती है ।

था। विहडिनि=मारने वाली। निसुभ सुभ=ये दोनों दैत्य कश्यप ऋषि के पुत्र थे। तपस्या से वरदान पाकर ये बड़े प्रबल हो गये थे और बड़ा अत्याचार करने लगे थे। इन्होंने देवताओं को जीत लिया था। जब इन्होंने रक्तबीज से सुना कि देवी ने महिषासुर को मार डाला, तब इन्होंने देवी को नष्ट करने की ठानी तब देवी ने इन सब को सेना सहित मार डाला। भनि=कहता है। भननि=कहने वाली, सरस्वति। सरजा=(फारसी) सरजाह उपाधि जो ऊँचे दर्जे के लोगों को मिलती थी। शिवाजी के किसी पूर्व पुरुष को यह उपाधि मिली थी। सरजा=(अरबी) शरज:=सिंह। समत्थ=समर्थ, शक्तिशाली। कहँ=के लिए।

अर्थ—हे विजयिनी! आदि शक्ति, कालिका भवानी! आपकी जय हो। आप मधु और कैटभ दैत्यों को छलनेवाली तथा महिषासुर का नाश करने वाली हो। हे चामुंडे! आप चंड मुंड जैसे पाखंडी राक्षसों को नष्ट करने वाली हो, आपही ने सुरक्त, रक्तबीज और बिड्डाल को मारा है, आप की जय हो। भूषण कवि कहते हैं कि आप निसुम्भ और सुम्भ दैत्यों का नाश करने वाली हो और आप ही सरस्वती रूप हो अथवा 'जय-जय' शब्द कहने वाली हो, आपकी जय हो। हे जगन्माता! आप शक्तिशाली सरजा राजा शिवाजी के लिए विजय प्रदान कीजिए, आप की जय हो।

अलकार—उल्लेख और वृत्यनुप्रास 'ड' की कई बार आवृत्ति हुई है।

सूर्यस्तुति

दोहा ‡—तरनि, जगत-जलनिधि-तरनि, जै जै आनँद-ओक।
कोक-कोकनद-सोकहर, लोक लोक आलोक॥ ३॥

---

‡ यह मात्रिक छद है, इसके पहले और तीसरे चरण मे १३ और दूसरे और चौथे में ११ मात्राएँ होती है।

शब्दार्थ—तरनि=सूर्य, नौका। जलनिधि=समुद्र। जगत जल-निधि=संसार रूपी समुद्र। ओक=स्थान। कोक=चक्रवाक पक्षी, यह सूर्य को देखकर बड़ा प्रसन्न होता है। कोकनद=कमल। आलोक=प्रकाश, उजाला।

अर्थ—हे आनन्द के स्थान श्री सूर्यभगवान! आप संसार रूपी समुद्र के लिए नौका स्वरूप हैं। आपही चक्रवाक और कमलों का दुख दूर करने वाले हैं। समस्त ससार में आपही का प्रकाश है, आपकी जय हो।

अलकार—तरनि, जलनिधि-तरनि; लोक लोक-आलोक में यमक है। 'क' अक्षर की आवृत्ति कई बार होने से, वृत्यनुप्रास। जगत-जलनिधि तरनि में रूपक है।

अथ राजवश-वर्णन

दोहा—राजत है दिनराज को, वस अवनि अवतंस।
जामैं पुनि पुनि अवतरे, कंसमथन[1] प्रभुअस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दिनराज=सूर्य। अवतस=कर्णभूषण, सर्वश्रेष्ठ। कंस मथन=कस का नाश करने वाले, श्रीकृष्ण (विष्णु)। प्रभु=ईश्वर। प्रभु अंस=ईश्वरांश, अंशावतार।

अर्थ—सूर्य वंश अवनि (पृथिवी) पर सर्व श्रेष्ठ है। जिस वंश में समय समय पर विष्णु भगवान् के अशावतार हुए हैं।

अलकार—उदात्त, यहाँ सूर्यवश की प्रभुता का वर्णन है।

दो०—महावीर ता वस मैं, भयो एक अवनीस।
लियो विरद "सीसौदिया" दियो ईस[2] को सीस ॥ ५ ॥

---

१. यहाँ विष्णु नाम-निर्देश से विष्णु-वदना लक्षित होती है।
२. यहाँ भी ईश नाम निर्देश से महादेव की वदना लक्षित है।

शब्दार्थ—अवनीस=अवनीश, पृथ्वीपति, राजा। विरद=पदवी। सीसौदिया=सीसौदिया वंशज क्षत्रिय जो उदयपुर और नैपाल के राज्याधिकारी है। इनके पूर्व-पुरुषाओं मे राहप जी एक बड़े प्रतापी राजा हुए। उनके सम्बन्ध में यह किंवदन्ति प्रसिद्ध है कि उन्होंने भूल से एक बार शराब पी ली थी। इसके प्रायश्चित्त में उन्होंने गरम शीशा पीकर अथवा अपना शीश महादेव को चढ़ा कर प्राण त्याग दिये। तभी से इस वंश को 'सीसौदिया' पदवी मिली। किसी किसी का मत है कि ये सिसौदया ग्रामवासी थे। शिवाजी इसी वंश के थे। ईश=ईश्वर, महादेव।

अर्थ—इसी वंश मे एक बड़े बली राजा हुए जिन्होंने भगवान् शिव को अपना शीश देकर "सीसौदिया" की पदवी पाई।

अलंकार—निरुक्ति, यहाँ सीसौदिया नाम का अर्थ निरूपण किया गया है।

दो०—ताकुल मैं नृपवृन्द सब, उपजे वखत वलन्द।
भूमिपाल तिन मै भयो, बड़ो "माल मकरन्द" ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बखत बलन्द=(फारसी—बख्त=भाग्य, बलन्द= ऊँचा) भाग्यवान, अपने समय में ऊँचा स्थान रखने वाले। भूमिपाल= राजा। मालमकरन्द=नाम, इन्हे 'मालोजी' भी कहते हैं।

अर्थ—इस वंश मे सब राजागण बड़े भाग्यवान उत्पन्न हुए। इन्हीं में मालमकरन्द जी बड़े प्रतापी राजा हुए।

अलंकार—व्यतिरेक, यहाँ मालमकरन्द को अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक बड़ा बतलाया है।

दो०—सदा दान-किरवान मै, जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग देवगिरि खंभु ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—किरवान=कृपाण। दान किरवान मै=कृपाण दान मे, युद्ध के समय। आनन=मुख। अंभु=(अम्भस) जल, आब,

कान्ति। दुग्ग=(स० दुर्ग) किला। शाह निजाम=निजाम शाह, गोलकुडा का बादशाह।

अर्थ—जिसके मुख पर युद्ध के समय सदा आब रहती थी अथवा युद्ध और दान के लिए सदा जिसके मुख में पानी भरा रहता था। और देवगिरि किले के स्तम्भस्वरूप निजामशाह भी जिनके मित्र थे।

अलकार— स्वभावोक्ति, यहाँ मालमकरन्द जी की स्वाभाविक वीरता का वर्णन है।

दो०—तातें सरजा बिरद भो, सोभित सिंह प्रमान।
रन-भू-सिला सुभौंसिला[1], आयुषमान खुमान॥८॥

शब्दार्थ—प्रमान=समान। रन-भू-सिला=रण भूमि में पत्थर के समान अचल। खुमान=आयुष्मान, दीर्घजीवी, राजाओं को सम्बोधन करने की एक पदवी।

अर्थ—वे सिंह के समान शोभित हुए इसी हेतु उनको 'सरजा' की उपाधि मिली। रणभूमि में पत्थर की शिला के समान अचल रहने के कारण उनका नाम 'भौंसिला' पड़ा। और इस आयुष्मान (चिरजीवी) राजा का नाम खुमान भी प्रसिद्ध हुआ।

अलकार—निरुक्ति, यहाँ भौंसिला नाम के अर्थ का निरूपण किया है।

---

१ उदयपुर के महाराणा भौंसाजी के पुत्र देवराजजी अभाग्य-वश अपना देश-त्याग कर दक्षिण में चले गये और भौंसा जी के पुत्र होने के कारण 'भौंसिला' कहलाये। कुछ लोगों का यह भी मत है कि देवराज जी के वशज दक्षिण में दौलताबाद के निकट वेसल गाँव के भौंसल नामक दुर्ग मे जा बसे। इस कारण इनके वश को भौंसिला कहते हैं। मालमकरन्द जी (मालौजी) और शिवाजी इसी वश के थे।

सूचना—सरजा, भौंसिला और खुमान ये उपाधियाँ हैं। ये मालोजी को मिली थीं। भूषण जी इन्हीं उपाधियों से शिवाजी को पुकारते थे।

दो०—भूपन भनि ताके भयो, भुव-भूपन नृप साहि।
रातौं दिन संकित रहैं, साहि सबै जगमाहि॥ ९॥

शब्दार्थ—भुव=भूमि, पृथिवी। भूपन=भूषण, गहना। भुव-भूपन=पृथिवी का भूषण, सर्वश्रेष्ठ। नृपसाहि=राजा शाह जी। साहि=शाह, बादशाह।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सर्वश्रेष्ठ महाराजा शाहजी ने इन्हीं (मालो जी) के घर जन्म लिया, जिनके भय से सारी दुनियाँ के बादशाह रात दिन भयभीत रहते थे।

अलंकार—यमक। 'भूपन, भुव-भूपन' मे और 'नृप साहि, साहि मे।'

शाहजी का वैभव वर्णन

कवित्त-मनहरण

एते हाथी दीन्हे माल मकरन्दजू के नन्द,
जेते गनि सकति विरंचि हू की न तिया।
भूपन भनत जाकी साहिबी सभा के देखे,
लागै सब और छितिपाल छिति मैं छिया॥
साहस अपार, हिंदुवान को अधार, धीर,
सकल सिसौदिया सपूत कुल को दिया।
जाहिर जहान भयो, साहिजू खुमान वीर,
साहिन को सरन, सिपाहिन को तकिया॥१०॥

शब्दार्थ—नन्द=पुत्र। विरचि की तिया=विरचि (ब्रह्मा) की तिया (स्त्री) सरस्वती–भी नहीं। साहिबी=वैभव। छितिपाल=क्षिति+पाल, पृथ्वीपाल, राजा। छिया=छूए हुए, मलीन। जाहिर=

प्रकट, प्रसिद्ध। जहान=(फा०) संसार। सरन=शरण, स्थान। तकिया=आश्रय, शयन-समय सिर के नीचे लगाने की वस्तु।

अर्थ—माल मकरन्द जी के पुत्र शाहजी ने इतने हाथी दान में दिये जिनको सरस्वती भी नहीं गिन सकती। भूषण कवि कहते हैं कि इनकी सभा के वैभव को देख पृथ्वी के अन्य राजागण अत्यन्त मलीन मालूम होते थे। अपार साहसी, हिन्दुओं के अधार, धैर्यवान, समस्त सिसौदिया कुल के दीपक, वीर शाहजी खुमान, बादशाहों को शरण लेने में और सिपाहियों को आश्रय देने में संसार भर में प्रसिद्ध होगये।

अलंकार—प्रथम पक्ति मे सम्बन्धातिशयोक्ति। द्वितीय पंक्ति में व्यतिरेक,। तीसरी और चौथी में उल्लेख है।

शिवाजी का जन्म

दो०—दसरथ जू के राम भे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्री शिवराज भुवाल ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—भे=भये, पैदा हुए। भुवाल=भूपाल, राजा।

अर्थ—जिस प्रकार दशरथजी के श्रीरामचन्द्र और वसुदेव के गोपाल (श्री कृष्ण) उत्पन्न हुए उसी भाँति वही (ईश्वरावतार) शिवाजी शाहजी के प्रकट हुए।

अलकार—यहाँ शिवाजी का अवतार होना, राम, कृष्ण आदि का नाम उल्लेख कर वचनों की चतुराई से वर्णन किया है अत. पर्यायोक्ति है।

दो०—उदित होत सिवराज के, मुदित भये द्विज-देव।
कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—उदित=प्रकट। द्विज-देव=ब्राह्मण और देवता। अहमेव=अहकार, अभिमान।

अर्थ—शिवाजी के उत्पन्न होते ही सारे ब्राह्मण और देवता बड़े

प्रसन्न हुए। कलियुग मिट गया अर्थात् कलियुग का सारा दुख दूर होगया और सब म्लेच्छों का अभिमान नष्ट हो गया।

अलंकार—काव्यलिंग—क्योंकि शिवाजी के अवतार होने का समर्थन उनके जन्म होते ही ब्राह्मण और देवताओं का प्रसन्न होना धर्मापत्ति मिटना और म्लेच्छों का अभिमान नष्ट होना आदि द्वारा होता है।

कवित्त-मनहरण

जा दिन जन्म लीन्हो भू पर भुसिल भूप,
ताही दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरन मैं करन-प्रवाह को॥
भूपन भनत, बाल लीला गढ़ कोट जीत्यो,
साहि के सिवाजी, करि चहूँ चक चाह को।
बीजापुर गोलकुंडा जीत्यो लरिकाइ ही मे,
ज्वानी आए जीत्यो दिल्लीपति पातसाह को॥१३॥

शब्दार्थ—उछाह=उत्साह। छठी—जन्म से छटे दिन। छत्र-पति=राजा (छत्र धारण करने वाला)। करन-प्रवाह=राजा कर्ण के दान का प्रवाह। चक=(सं० चक्र) दिशा। चाह=चाहना, इच्छा।

अर्थ—जिस दिन पृथ्वी पर भोंसिला राजा शिवाजी ने जन्म लिया उसी दिन वैरियों के दिलों का उत्साह नष्ट होगया। छठी के दिन उन्हो ने राजाओं का भाग्य सहज ही मे जीत लिया। नामकरण के दिन इतना दान दिया गया कि राजा कर्ण के दान के प्रवाह को भी उसने जीत लिया। भूपन कवि कहते है कि साहजी के पुत्र शिवाजी ने वाल क्रीड़ा में चारों दिशाओं के किलों को सहज इच्छा से ही जीत लिया। जब किशोरावस्था (लडकाई) आई तो बीजापुर और गोलकुण्डा को विजय किया और जब जवान हुए तो दिल्ली के बादशाह औरंगजेब को परास्त किया।

अलंकार—सार, यहाँ शिवाजी के जन्म से लेकर युवावस्था तक उनके उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन है।

दो०—दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ वास ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जिति=जीति, जीतकर। सहार विलास=हार युक्त शोभा धारण किये हुए। 'हार' जगल को भी कहते हैं।

'सहार' के स्थान पर 'सँहार' पाठ भी मिलता है। यह पाठ मानने पर 'दुग्ग सँहार विलास' इस पद का यों अर्थ होगा—किलों का सहार करना जिस के लिए विलास (खेलवाड) है। यहाँ यह पद शिवा जी का विशेषण है। इस प्रकार इस दोहे के तीन अर्थ हो सकते है।

अर्थ—(१) दक्षिण के समस्त किलों को जीत कर उन सबकी हार (माला) के समान शोभा धारण किये हुए (जीते हुए किले सब चारों ओर माला की भाँति थे) रायगढ को शिव-भक्त शिवाजी ने अपना निवास स्थान बनाया। (रायगढ जीते हुए किलों के मध्य में था)।

(२) दक्षिण के सब किलों को जीतकर उन किलों के साथ जंगल में अवस्थित रायगढ को शिवभक्त शिवाजी ने अपना निवासस्थान बनाया।

(३) किलो का सहार करना जिसके लिए खिलवाड है ऐसे शिवभक्त शिवाजी ने दक्षिण के सब किले जीत कर रायगढ को अपना निवास-स्थान बनाया।

अथ रायगढ-वर्णन

मालती सवैया †

जा पर साहि तनै सिवराज सुरेस कि ऐसी सभा सुभ साजै।
यों कवि भूषन जम्पत है लखि सम्पति को अलकापति लाजै ॥

---

† सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु वर्ण का मालती सवैया होता है। इसे मत्तगयद भी कहते हैं।

जा मधि तीनिहु लोक कि दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छवि ऊपर छाजै ॥१५॥

शब्दार्थ—तनै-(स०—तनय) पुत्र। जम्पत=कहता है। अलकापति=कुबेर। दीपति=दीप्ति, छवि। गढराज=रायगढ। वारि=जल, यहाँ खाई, जिसमें जल भरा रहता है उससे तात्पर्य है। माची=कुर्सी, पुस्ती मकानों के पीछे बँधती है।

अर्थ—श्री साह जी के पुत्र शिवाजी जिस पर अपनी सुन्दर सभा सुरेस (इन्द्र) की सभा के समान करते हैं, भूषण कवि कहते हैं कि जिसके वैभव को देखकर कुबेर भी शर्माता है अर्थात् उसकी अलकापुरी भी ऐसी उत्तम नहीं, तीनों लोकों की छवि को धारण करने वाला ऐसा बड़ा सुन्दर रायगढ़ शोभित है। उसकी खाई पाताल के समान, कुर्सी पृथ्वी के समान और ऊपरी भाग अमरावती (इन्द्रपुरी) के समान शोभायमान है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति। यहाँ शिवराज की सभा से सुरेश की सभा का, रायगढ की सम्पत्ति को अलकापुरी की सम्पत्ति से, वारि का पाताल से, माची का पृथ्वी से कोई सम्बन्ध न रहते हुए भी सम्बन्ध प्रकट किया है।

हरिगीतिका छन्द *

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजही।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गन्धर्व हौसनि साजही॥
उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु बाजही।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गल गाजही॥१६॥

शब्दार्थ—जच्छ=यक्ष। किन्नर=देवताओं की एक जाति।

---

* इसमे २८ मात्रा होती हैं। १६ मात्रा पर प्रथम यति होती है, अन्त में लघु गुरु होता है।

गन्धर्व=देवताओं के गवैये। हौस=हविस, इच्छा। उत्तंग=ऊँचे। मरकत=मणि, नीलम। घन समै=वर्षा ऋतु में। घन पटल=बादल की तह। गल गाजहीं—जोर से गरजते हैं।

अर्थ—शिवाजी के रायगढ में मणि जटित महल ऐसे शोभायमान हैं जिन्हें देखकर यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सुर (देवता) और असुर (राक्षस) भी रहने की इच्छा करते हैं। ऊँचे ऊँचे नीलम जड़े हुए महलों में मृदंग ऐसे बजते हैं मानो वर्षा ऋतु में मेघ मालाएँ घिर घिर कर जोर-जोर से गर्जना करती हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, घन समै मानहु घुमरि करि में।

हरिगीतका

मुकतान की झालरनि मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं।
सन्ध्या समै मानहुँ नखत गन लाल अम्बर राजहीं॥
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन-तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥१७॥

शब्दार्थ—मुकतान=मुक्ता, मोती, मोतियों। नखत=नक्षत्र। अम्बर=आकाश। ऊरध=(सं० ऊर्ध्व) ऊँचे पर, ऊपर। तनाय=(फा० तनाव) रस्सी, जिससे तम्बू ताना जाता है।

अर्थ—मोतियों की झालरें मणिमालाओं के साथ छज्जों पर ऐसी शोभित हो रही हैं मानो सन्ध्या समय लाल आकाश में नक्षत्र (तारे) हों। और जहाँ तहाँ ऊँचे स्थानों पर जड़े हुए हीरों की किरनें ऐसी घनी चमक रही हैं मानो गगन (आकाश) में तम्बू की श्वेत रस्सियाँ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, मानो गगन तम्बू तन्यो में।

हरि गीतका

भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुप रागन की प्रभा।
प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिंधु मेघन की सभा॥

मुख नागरिन के राजही कहुँ फटिक महलन संग मै।
बिकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मै ॥१८॥

शब्दार्थ—पुहुपराग–पुखराज, इनका पीला रग होता है। प्रभा–प्रकाश। प्रभु–भगवान, कृष्ण। सिन्धु–समुद्र। सजल—जल से भरे। यहाँ सिन्धु शब्द का मेघो के साथ जोडने से कवि का अभिप्राय उन्हीं बादलों से है जो जलपूर्ण है। सिन्धु मेघन की सभा–जलपूर्ण बादलों का समूह। सभा–मडली, समूह। नागरिन–नगर की रहने वाली स्त्रियॉ, चतुर स्त्रियाँ। फटिक–स्फटिक, बिल्लोर पत्थर।

अर्थ—भूषण जी कहते हैं कि वहाँ सजल मेघों का समूह (महलों के शिखर पर जड़ी) पीली पुखराज मणियों को छूकर भगवान् कृष्ण के पीताम्बर की शोभा प्राप्त करता है। और कहीं चतुर स्त्रियों के मुख स्फटिक मणियों के महलों में ऐसे दिखाई देते है मानों स्वच्छ गगा की लहरों में कोमल कमल खिल रहे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'विकसत कोमल कमल मानहु अमल गग तरंग में' इस पद मे।

आनंद सो सुदरिन के कहुँ वदन-इन्दु उदोत हैं।
नभ सरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्ध मनि सोपान हैं।
जहँ हस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं॥१९॥

शब्दार्थ—वदन-इन्दु–मुख चन्द्र। नभ सरित–आकाश गगा। रात्रि के समय आकाश मे तारों का एक घना समूह आकाश के एक ओर से दूसरी ओर तक नदी की धारा के समान फैला हुआ दिखाई देता है। अग्रेजी मे इसे मिल्की वे (milky way) कहते हैं। इसे ही कवि लोग आकाशगगा मानते हैं। कुमुद–रात्रि मे खिलने वाले लालकमल, कुमुदिनी। मुकुलित—सकुन्चित। बद्धमनि–मणियों से जड़ी। सोपान–सीढ़ी।

अर्थ—कहीं सुन्दरियों के मुखचन्द्र (स्फटिक महलों में) आनन्द से चमक रहे हैं। जो ऐसे प्रतीत होते है मानों आकाश गगा में पूर्ण खिले कुमुद और अधखिले कमलों का समूह हो (यहाँ प्रफुलित कुमुद और मुकुलित कमल से क्रमश पूर्ण यौवना और अर्ध-स्फुटित यौवना का भाव लक्षित होता है)। कही मणि-जटित सीढ़ियों वाले तालाव, बावली और कुएँ हैं जिनमें हंस, सारस और चकवा चकवी स्नान करते हुए क्रीडा कर रहे है।

अलंकार—वदन-इन्दु मे 'रूपक'। प्रथम दोनों पक्तियों में 'गम्योत्प्रेक्षा' शेष पक्तियों में 'अतिशयोक्ति'।

किलहूँ विसाल प्रवाल जालन जटित अगन भूमि है।
जहँ ललित वागनि द्रुमलतनि मिलि रहै झिल मिल भूमि है॥
चम्पा चमेली चारु चदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाख हों लगि लेखिए॥२०॥

शब्दार्थ - प्रवाल—मूँगा। जाल—समूह, बहुत से। द्रुम—वृक्ष झिलमिल—झिलमिला प्रकाश। लवली—एक वृक्ष (हरफा—रेवडी)। यलानि—इलायची। केरे—के। लगि—लौं, तक।

अर्थ—किसी ओर आँगन में पृथ्वी पर वडे वडे बहुत से मूँगे जड़ रहे है,जहाँ पर बाग़ के सुन्दर वृक्ष और लता मिलकर झूमते और झिलमिलाते हैं अर्थात् उनके घने पत्तों से छन कर झिलमिला प्रकाश पड रहा है। चारों ओर सुन्दर चम्पा चमेली, चन्दन, लवली, लवग और इलायची आदि के लाखों प्रकार के वृक्ष दिखाई देते है।

अलकार—स्वभावोक्ति। स्वाभाविक वर्णन होने से।

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुद अरु करवीर हैं।
कहुँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत अरु जभीर हैं॥
कितहूँ कदव कदव कहुँ हिंताल ताल तमाल हैं।
पीयूष ते मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥२१॥

शब्दार्थ—कदली–केला। करवीर–कनेर। जभीर–नीबू। कदव–एक वृक्ष का नाम तथा समूह। हिताल–एक वृक्ष। ताल–ताड। तमाल–तिलक वृक्ष, आबनूस। पीयूष–अमृत। रसाल–रसीला (मीठा) तथा आम।

अर्थ—कहीं केतकी, केला, करौंदा, कुंद, कनेर, अंगूर, अनार, सेब, कटहल, शहतूत और नींबू के वृक्ष है। कहीं कदम्ब वृक्षों के झुण्ड हैं। कहीं हिंताल, ताड़, आबनूस के वृक्ष है और कहीं अमृत से भी अधिक मीठे रसीले आम फल रहे हैं।

अलंकार—'कदव कदंव' और 'रसाल रसाल' मे यमक है।

सूचना—छन्द स० २० मे आये शब्द केरे और छद स २१ के कदली मे अन्तर है। केरे का अर्थ 'के' है केला नहीं, अत पुनरुक्ति दोप नहीं है।

पुन्नाग कहुँ कहुँ नागकेसरि कतहुँ वकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर गुलाव पाटल-पटल वेला थोक हैं॥
कितहूँ नेवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसै।
जहँ भाँति भाँतिन रंग रग विहंग आनँद सो रसै॥२२॥

शब्दार्थ—पुन्नाग–देव वल्लभ, पुष्प वृक्ष। वकुल–मौलसिरी। पाटल–लाल और सुफेद गुलाव, अथवा ताम्रपुष्पी। पटल–झुण्ड समूह। थोक–समूह। नेवारी–जूही, नववल्ली। माधवी–चन्द्रवल्ली, इकवाँढ़ी। सिंगार–हार–हारसिंगार, पुष्प वृक्ष। रसैं–रसीले वोलते है या प्रफुल्लित होते है।

अर्थ—कहीं देववल्लभ, नागकेसर, मौलसिरी, और अशोक वृक्ष है, तो कहीं सुन्दर अगर, गुलाव, पाटल गुलाव (या ताम्र पुष्पी) के समूह और वेले के झुण्ड के झुण्ड खड़े है। किसी ओर जूही, चन्द्रवल्ली और हारसिंगार शोभायमान है, जहाँ अनेक प्रकार के रंग विरंगे विहंग [पक्षी] आनन्द पूर्वक रसीले वोल रहे है या प्रफुल्लित हो रहे हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

षट्पद—लसत बिहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ ।
कोकिल कीर कपोत केलि कलकल करत तहँ ॥
मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन ।
पियत मधुर मकरन्द करत झंकार भृंग घन ॥
भूषन सुवास फल फूल युत, छहुँ ऋतु बसत बसत जहँ ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ ॥२३॥

शब्दार्थ—लवनित–लावण्य युक्त, मनमोहक । कीर–तोता । कपोत–कबूतर । केलि–क्रीड़ा विहार । कलकल–सुन्दर शब्द । मंजुल–सुन्दर । महरि–ग्वालिन पक्षी । चटुल–गौरैया पक्षी । मकरन्द–पुष्परस । राजदुग्ग–रायगढ ।

अर्थ—बाग में अनेक प्रकार के अत्यधिक मनमोहक पक्षी शोभित हो रहे हैं । जिनमें कोयल, तोते, कबूतर, ग्वालिन, मयूर (मोर) गौरैया चातक (पपीहा) और चकोर आदि अनेक पक्षी विहार करते हुए सुन्दर शब्द कर रहे हैं । भौंरे मीठा मीठा मकरंद पीकर गूँज रहे हैं । भूषण कवि कहते हैं कि जहाँ छहों ऋतुओं (बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर अर्थात् बारहों महीनों) में सुगन्धित फूल फल वाली बसंत ऋतु ही रहती है वह शिवाजी को सुख देने वाला राजगढ इस प्रकार सुशोभित है ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दोहा—तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान ।
सिव सरजा रुचि दान मैं, कीन्हों सुजस जहान ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—रुचि–इच्छा, यहाँ इच्छित से तात्पर्य है ।

अर्थ— महाराज शिवाजी ने सारे तुर्कों (मुसलमानों) को जीत कर वहाँ (रायगढ) में अपनी राजधानी बनाई और इच्छित(मुँह माँगा) दान देकर अपना सुन्दर यश सारे संसार में फैलाया ।

अलंकार—हेतु । 'रुचि दान में कीन्हो सुजस जहान' यही हेतु है।

कवि-वंश-वर्णन

दो०—देसन देसन ते गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिन मे आयो एक कवि, भूषन कहियतु जाहि॥ २५॥

शब्दार्थ—गुनी–गुणी, विद्वान्। कहियतु–कहा जाता है।

अर्थ—उसके (अर्थात् शिवाजी के) पास देश देश से विद्वान् याचना (पुरस्कार प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं,उन्ही में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' नाम से पुकारा जाता था।

अलंकार—अनुप्रास।

दो०—दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि-तनूजा तीर॥ २६॥

शब्दार्थ—दुज–द्विज, ब्राह्मण। कनौजकुल–कान्यकुब्ज। रतनाकर–रत्नाकर, भूषण के पिता का नाम है। तिविक्रमपुर–त्रिविक्रमपुर, वर्तमान तिकवॉपुर,यह जिला कानपुर मे है। तनूजा–पुत्री। तरनि तनूजा–सूर्य की पुत्री, यमुना।

अर्थ—वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यप गोत्र, धैर्यवान श्री रत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर ग्राम में रहता था।

अलंकार—यहॉ 'क' और 'त' वर्णों की कई बार आवृत्ति होने से 'वृत्यनुप्रास' है।

दो०—बीर बीरबर से जहॉ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहॉ विश्वेश्वर तद्रूप॥ २७॥

शब्दार्थ—बीरबर–अकबर के मन्त्री बीरबल। विश्वेश्वर–श्री विश्वेश्वर महादेव। तद्रूप–समान।

अर्थ—(जिस गॉव में) बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए तथा श्री विश्वेश्वर महादेव के समान विहारीश्वर महादेव का जहॉ मंदिर था।

अलंकार—'बीर बीर' में यमक। 'बीरबर से कवि और भूप' मे उपमा। 'देवविहारीश्वर विश्वेश्वर तद्रूप' मे रूपक।

दो०—कुल सुलक चितकूटपति, साहस सील समुद्र।
कवि भूपन पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—कुल सुलक–सोलकी वंशीय क्षत्रिय। रुद्र–हृदय राम सोलकी के पुत्र 'रुद्रशाह', चित्रकूट के राजा।

अर्थ—हृदयरामजी के पुत्र चित्रकूट के महासाहसी, शील के समुद्र राजा रुद्रशाह सोलकी ने भूषण जी को 'कवि भूषण' की पदवी प्रदान की।

दो०—सिव चरित्र लखि यो भयो, कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूपननि सो, भूषित करों कवित्त ॥ २९ ॥

अर्थ—शिवाजी के चरित्र को देखकर भूषण कवि के चित्त में यह बात उत्पन्न हुई कि इनके विषय में भिन्न भिन्न अलकार सहित काव्य रचना करूँ।

अलकार—यमक।

सुकविन हूँ की कछु कृपा, समुझि कविन को पथ।
भूपन भूपनमय करत, "शिव भूपन" सुभ ग्रथ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—पथ–मार्ग। शिव भूपन–शिवराज भूषण (पुस्तक)।

अर्थ—भूषण जी कहते है कि श्रेष्ठ कवियों की कुछ कृपा से उनका मार्ग जान कर इस श्रेष्ठ "शिवराज भूषण" पुस्तक को अलंकारमय लिखता हूँ।

अलकार—भूषण, भूषण मे 'यमक'।

दो०—भूषन सव भूषननि मैं, उपमहि उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै, वरनत सकल निवाहि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—चाहि–देखकर, जानकर। आदि दै–आरम्भ मे, रखकर। सकल निवाहि–सव नियमों को निवाहते हुए, पालते हुए।

अर्थ—भूषण जी कहते है कि समस्त अलंकारों में उपमा को ही सबसे उत्तम जानकर, (काव्य के) सब नियमों का पालन करते हुए आरम्भ में उसका वर्णन करता हूँ।

अलंकार—यमक।

अलंकार-निरूपण

उपमा

लक्षण

दोहा—जहाँ दुहुन की देखिए, सोभा बनति समान।
उपमा भूषण ताहि को, भूषन कहत सुजान ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—दुहुन—दोनों (उपमेय और उपमान)

अर्थ—जहाँ दो वस्तुओं की [आकृति, गुण और दशा की] शोभा एक सी वर्णन की जाय वहाँ भूषण कवि कहते हैं कि विद्वान् उपमा अलङ्कार मानते हैं।

जाको बरनन कीजिए, सो उपमेय प्रमान।
जाकी सरवरि कीजिए, ताहि कहत उपमान ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—प्रमान—ठीक, निश्चय कर मानो। सरवरि—समता।

अर्थ—जिसका वर्णन किया जाता है उसे उपमेय मानते हैं और जिस वस्तु से समता की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो,
सरजा, सुरेस ज्यो दुचित ब्रजराज को।
भूपन, कुमिस गैर मिसिल खरे किए को,
किये म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को ॥

अरे ते गुसुलखाने * बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥३४॥

शब्दार्थ—कुरुख—बुरा रुख, अप्रसन्न। चकत्ता—चंगेजखाँ के

---

* इस गुसुलखाने वाली घटना का भिन्न भिन्न इतिहास-लेखकों ने भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। सभासद और चिटनीस आदि मराठा बखर के लेखकों ने लिखा है कि जब शिवाजी औरङ्गजेब के दरबार में पहुँचे तब वे अपनी श्रेणी के आगे जोधपुर नरेश (बुँदेला-मेमायर्स के मतानुसार यह उदयपुर के भीमसिंहजी का पुत्र रामसिंह सीसौदिया था) को देखकर बिगड़ गये और उसे मारने के वास्ते रामसिंह जी (मिर्जाराजा जयसिंह के पुत्र) से कटार माँगी, उसके न मिलने पर अपमान के कारण शिवाजी बेहोश होगये और गुसलखाने में लेजाकर इत्र आदि सुँघाने पर इन्हें होश हुआ। ओर्मी (Orme) ने लिखा है शिवाजी ने सम्राट की बहुत निन्दा की और पचहजारियों में खड़ा कर देने के कारण क्रोध और अपमान के मारे आत्मघात करना चाहा, परन्तु पास वालों ने रोक दिया। जनानखाने में भाग जाने वाली घटना अमरसिंह राठौर और बादशाह शाहजहाँ की प्रसिद्ध है। शिवाजी और औरंगजेब के विषय में ऐसी घटना होने का वर्णन इतिहास में नहीं मिलता। केवल भूषण कवि ने इसका वर्णन किया है। सम्भव है ऐसा हुआ हो। किसी महाशय ने 'गुसलखाने' का अर्थ गोसलखाँ किया है और इस नाम का कोई व्यक्ति विशेष औरंगजेब का अंग-रक्षक माना है, किन्तु "गुलसखाने" के आगे 'बीच' शब्द और होने से उनका गोसलखाँ वाला अर्थ ठीक नहीं बैठता।

वंशज, औरङ्गजेब। सुरेश–इन्द्र। यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार श्री ब्रजराज (कृष्ण) ने इन्द्र की पूजा बंद कर दी तब क्रुद्ध हो इन्द्र ने ब्रजमण्डल पर बड़ी वर्षा की। श्रीकृष्ण ने वर्षा से बचने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपने कर पर धारण किया। वर्षा की अधिकता के कारण एक बार श्रीकृष्ण को भी दुविधा होगई थी। दुचित्त–दुविधावान, शङ्कायुक्त। कुमिस–झूठाबहाना गैरमिसिल–(फा०) अयोग्यस्थान, बेमौके। गराज–गर्जना। दाबदार–मस्त। दीह–(सं०) दीर्घ, बड़ा। दलराय–दल का राजा, दलपति, झुण्ड का मुखिया। गडदार–भाला ले कर चलने वाले लोग जो मस्त हाथी को पुचकार कर आगे बढ़ाते हैं। अडदार–मस्त, अड़ियल।

अर्थ—शिवाजी ने औरङ्गज़ेब से मिलते ही उसे ऐसा अप्रसन्न कर दिया जैसे सुरेश (इन्द्र) ने ब्रजराज (श्रीकृष्ण) को किया था। भूषण कवि कहते हैं कि झूठे बहाने से बेमौके (अनुचित स्थान पर) खड़ा करने के कारण उन्होंने गर्जना करके सब मुसलमानों को मूर्च्छित कर दिया। गुसुलखाने के निकट अड़ने से (ठिठरने पर) ही सारे उमराव अमीर उनकी खुशामद करके ऐसे ले चले जैसे कि सोंटेमार लोग अत्यन्त क्रोधित मस्त अड़ियल बड़े दलपत्ति हाथी को पुचकार कर के लेजाते हैं।

विवरण—इसमें पहले शिवाजी और औरङ्गजेब (उपमेयों) को क्रमशः इन्द्र और कृष्ण की उपमा दी है, फिर शिवाजी को मस्त हाथी की उपमा दी गई है। इसमें औरगजेब को श्रीकृष्ण की उपमा देना उचित प्रतीत नहीं होता, वरन् कुछ लोग इसे दोष समझते हैं।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

सासताखाँ दुरजोधन सो औ दुसासन सो जसवन्त निहार्‌यो।
द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो, और सबै दलसो दल भार्‌यो॥
ताहि विगोय सिवा सरजा, भनि भूषन, औनि छता यो पछार्‌यो।
पारथ कै पुरुपारथ भारथ जैसे जगाय जयद्रथ मार्‌यो॥३५॥

शब्दार्थ—सासताखॉ—शाइस्ताखाँ, दिल्ली का एक बड़ा सरदार और सेनानायक था। यह सन् १६६३ ई० में चाकन को जीतता हुआ पूना में ठहरा। ५ अप्रैल १६६३ ई० की रात को शिवाजी २०० योद्धा साथ लेकर इसके महल में घुस गये और उन्होंने इसके पुत्र को मार डाला। इस पर भी तलवार चलाई परन्तु यह एक खिड़की से कूद गया। इसके एक हाथ की कुछ अँगुलियाँ कट गई। जसवन्त—मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह जी, ये शाइस्ता-खॉ के साथ १६६३ ई० मे गये थे। भाऊ—बूँदी के छत्रसाल हाड़ा के पुत्र थे। ये सन् १६५८ ई० में गद्दी पर बैठे और औरगजेब की तरफ से शिवाजी से लड़े। करन्न—करणसिंह, बीकानेर के महाराजा रायसिंह जी के पुत्र थे। इन्होंने सन् १६३३ ई० से सन् १६७४ ई० तक राज किया। इन्हे दो हजारी का मनसब औरगजेब ने दिया था। बिगोय—(स० विगोपन) छुपाकर, नष्ट करके। औनिछता—औनि (अवनि) पृथ्वी+छता—छत्र, पृथ्वी का छत्र, औरगजेब।*

---

* औनिछता का अर्थ मिश्रबन्धु सम्पादित भूषण-ग्रन्थावली की पाद टिप्पणी में कुकुरमुत्ता (बरसात की फूली लकड़ी) दिया है। इस अर्थ के मानने पर न अर्थ सगत बैठता है न रोचकता ही रहती है। बगवासी प्रेस वाली प्रति में इस पाठ के स्थान पर 'अलि-फतै' पाठ मिलता है जिसका अभिप्राय फतहअली से है। किन्तु फतहअली कोई इतना प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था कि जिसे 'जयद्रथ' की उपमा दी जाय। जयद्रथ के मारने में अर्जुन को अन्य शत्रुओं की अपेक्षा कहीं अधिक श्रम करना पड़ा था। दूसरे इस पाठ के रखने पर पहले से चला आया हुआ अनुप्रासों का सिलसिला भी टूटता है, अतः हमें यह 'अलिफते' वाला पाठ सर्वथा अग्राह्य जान पड़ता है। 'औनिछता' पाठ से अनुप्रास का ताँता नहीं टूटता। इस

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को दुर्योधन के समान, जसवन्तसिंह को दुःशासन के समान, भाऊ को द्रोणाचार्य और करणसिंह को कर्ण के समान और समस्त प्रबल सेना को (कौरवों की बड़ी भारी) सेना के समान देखा (समझा) तथा उन्हें नष्ट करके औरंगजेब को इस तरह से पछाड़ा (हराया) कि जैसे पार्थ (अर्जुन) ने महाभारत के युद्ध में जयद्रथ को सावधान करके मारा था।

विवरण—यहाँ शाइस्ताखाँ, जसवतसिंह, भाऊ और करणसिंह आदि उपमेयों को दुर्योधन, दु.शासन, द्रोणाचार्य और कर्णादि की उपमा दी है।

लुप्तोपमा

लक्षण—दोहा

उपमा वाचक पद धरम, उपमेयो उपमान।
जा मैं सो पूर्णोपमा, लुप्त घटत लौं मान ॥३६॥

शब्दार्थ—वाचकपद=सी, सम, जिमि आदि। धरम=धर्म, स्वभाव। गुण=काला, पीला कठोर, कोमल आदि।

अर्थ—जिस उपमा में वाचकपद, धर्म, उपमेय और उपमान ये चारों हों उसे पूर्णोपमा कहते हैं और जहाँ इनमें से किसी की कमी हो उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

का लक्ष्यार्थ 'औरंगजेब' लेने से अर्थ की उचितता एव रोचकता दोनों ही बढ़ती है। इसमे सदेह नहीं कि औरंगजेब स्वयं कभी किसी युद्ध मे शिवाजी से नहीं लडा किन्तु उस की सेना का परास्त होना ही 'औरंगजेब' को पछाड़ना है। जयद्रथ भी उस दिन लड़ा नहीं था, केवल लक्ष्य था।

उदाहरण (धर्मलुप्ता)—मालती सवैया।

पावकतुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनन्द भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को॥
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषन भाखत शत्रु मुधा को।
बदन तेज त्यो चन्दन कीरति सोधै सिंगार वधू वसुधा को॥३७॥

शब्दार्थ—धाम सुधा को=सुधा को धाम (सुधा=अमृत+धाम=स्थान)=सुधाधाम, चन्द्रमा। कुमुद=रात को खिलने वाला कमल। कुमुदावलि=कुमुद+अवलि=कुई (नीलोफर) की पंक्ति। बहुधा=बहु+धा, अनेक प्रकार। मुधा=निष्फलता अथवा असत्य। बन्दन=इंगुर, सिंदूर। सोंधे=सुगंधि।

अर्थ—शिवाजी शत्रुओं के लिए अग्नि के समान (तपाने वाले) और अपने मित्रों को अमृत के भंडार चन्द्रमा के समान वैसे ही सुखदायक होगये जैसे, गहरे समुद्र, कुमुदों, और तारों के लिए (चन्द्रमा) अनेक प्रकार से आनन्द देने वाला होता है। भूषण कवि कहते हैं कि पृथ्वी पर महाबली राजा शिवाजी निष्फलता अथवा असत्य के शत्रु होगये अर्थात् उनका कार्य सदा सफल होता था, अथवा वे कभी असत्य भाषण नहीं करते थे। और सिंदूर के समान उनका तेज और चन्दन के समान उनका यश, पृथिवी-रूपी नव-वधू के लिए सुगन्धित शृंगार की वस्तुएँ हो गईं।

विवरण—यहाँ अग्नि का धर्म 'गर्मी' और चन्द्रमा का धर्म 'शीतलता' नहीं दिया है। अतः धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—मनहरण

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करन हारे नेक हू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भए, उमराय तुजुक करन के॥

साहि रह्यो जकि, सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि, बने ब्योंत अनबन के।
ग्रीपम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के ॥३८॥

शब्दार्थ—बिललाने=व्याकुल हो कर असम्बद्ध बातें करने लगे। जापता–फा० जाब्ता, प्रबन्ध। मनके=हिले डुले। तुजुक=(तुर्की) अदब (आदर सत्कार)। जकि=जड़ीभूत, भौंचक्का सा। चकि=चकित। ब्योंत=मामला। तारे=आकाश के तारे, आँखों की पुतली।

अर्थ—शिवाजी को दरबार में आया हुआ देख कर चोबदार लोग व्याकुल हो उठे और (दरबार के) प्रबन्धक गण सब सन्न रह गये, हिले तक नहीं। भूषण कवि कहते है कि कोई कोई सरदार तो शिवाजी का अदब बजा लाने की इच्छा करने लगे। पर औरंगज़ेब भौंचक्का सा रह गया, शिवाजी भी औरंगज़ेब की ओर को देखने लगे, इस प्रकार सब अनबन होगया, सारा मामला बिगड़ गया; ग्रीष्म के सूर्य के समान शिवाजी के प्रताप को देख कर तारों के समान तुर्कों की आँखों की पुतली मुँद गईं।

विवरण—यहाँ सूर्य का धर्म 'तेज' लुप्त है।

अनन्वय

लक्षण—दोहा

जहाँ करत उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वै कहत हैं, भूपन सकल सुजान ॥२९॥

शब्दार्थ—उपमेयै=स्वयं उपमेय ही।

अर्थ—जहाँ उपमेय का उपमान स्वयं उपमेय ही वर्णन किया जाय अर्थात् एक ही वस्तु उपमान और उपमेय का काम दे वहाँ चतुर लोग अनन्वय अलङ्कार कहते है।

सूचना—इसमें दूसरी वस्तु (उपमान) नहीं होती, किन्तु

उपमेय और उपमान एक ही वस्तु होती है। उपमा अलङ्कार में उपमेय और उपमान दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ होती है।

उदाहरण—मालती सवैया।

साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुन्दुभि बाजै।
भूपन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें वढ़ि मौजनि साजै॥
राजन को गन, राजन! को गनै? साहिन मैं न इती छवि छाजै।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज विराजै॥४०॥

शब्दार्थ—दुन्दुभी=नगाड़ा। भोज=उज्जयिनी के प्रसिद्ध दानी महाराज भोज। गरीबनेवाज= फा०) गरीबों पर कृपा करने वाले।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवजी! आपके दरवाजे पर प्रतिक्षण दान के नगाड़े बजते रहते हैं। भिक्षुकों की भीड़ (आपके यहाँ) राजा भोज से भी अधिक मौज (आनन्द) प्राप्त करती है। हे राजन्! आपके सम्मुख अन्य राजाओं की तो क्या गिनती है? बादशाहों में भी इतनी छवि नहीं मिलती। आज कल पृथिवी पर दीनों पर कृपा करने वाले आप के समान हे शिवाजी! आप ही हैं।

विवरण—यहाँ 'तो सो तुही' इस पद में उपमान और उपमेय एक ही वस्तु है।

प्रथम प्रतीप

लक्षण—दोहा

जहँ प्रसिद्ध उपमान को, करि बरनत उपमेय।
तहँ प्रतीप उपमा कहत, भूपन कविता प्रेय॥४१॥

शब्दार्थ—प्रेय-प्रेमी।

अर्थ—जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय के समान वर्णन किया जाय वहाँ कविता प्रेमी सज्जन प्रतीप अलङ्कार कहते हैं।

सूचना—प्रतीप पाँच प्रकार के होते हैं। यह प्रथम है। यह

उपमा का ठीक उलटा होता है, इसमें उपमेय तो उपमान होजाता है और उपमान उपमेय होजाता है। जैसे, नेत्र से कमल।

उदाहरण—मालती सवैया

छाय रही जितही तितही अति ही छवि छीरधि रंग करारी।
भूपन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी॥
यों तम तोमहि चावि कै चन्द चहूँ दिसि चाँदनि चारु पसारी।
ज्यों अफजल्लहि मारि मही पर कीरति श्री सिवराज वगारी॥४२॥

शब्दार्थ—छीरधि=क्षीर सागर, दूध का समुद्र। करारी=चोखी, सुन्दर। सुधान=सुधा का बहुवचन, (चूना)। सौधनि=महलों को। सोधति=साफ करती। ओप=चमक। तोम=समूह। वगारी=फैलाई।

अर्थ—क्षीर-सागर के (शुभ्र) रंग की छवि के समान चाँदनी जहाँ तहाँ छाई हुई है और वह स्वच्छ चूने के बने महलों को साफ करके उज्ज्वल चमक दे रही है। भूपण कहते हैं कि चन्द्रमा ने अंधकार के समूह को दबाकर चारों ओर सुन्दर चाँदनी ऐसे फैलाई है, जैसे शिवाजी ने अफ़जलखाँ को मारकर पृथिवी पर अपनी कीर्त्ति फैलाई थी।

विवरण—यहाँ 'चाँदनी' उपमान को उपमेय कथन किया है। और कीर्ति उपमेय को उपमान बनाया गया है। यही उलटापन है।

द्वितीय प्रतीप

लक्षण—दोहा

करत अनादर वर्न्य को, पाय और उपमेय।
ताहू कहत प्रतीप जे, भूपन कविता प्रेय॥ ४३॥

शब्दार्थ—वर्न्य-उपमेय।

अर्थ—जहाँ दूसरे उपमेय के मिलने से वर्ण्य (प्रस्तुत उपमेय) का अनादर हो वहाँ कविता प्रेमी सज्जन द्वितीय प्रतीप कहते हैं।

सूचना—इसमें उपमान को उपमेय मान कर उपमेय का अनादर किया जाता है।

उदाहरण—दोहा।

शिव ! प्रताप तव तरनि सम, अरि पानिप हर मूल।
गरव करत केहि हेत है, वडवानल तो तूल ॥४४॥

शब्दार्थ—पानिप=तेज कान्ति, (पानी)। वड़वानल=समुद्र के अन्दर एक अग्नि। तूल—(स०) तुल्य, समान।

अर्थ—हे शिवाजी ! आपका प्रताप सूर्य के समान है, और वह शत्रुओं के तेज (कान्ति) को समूल नष्ट करने वाला है, परन्तु आप अभिमान क्यों करते हैं, वडवानल अग्नि भी तो आपके समान है।

विवरण—यहाँ शिवाजी का प्रताप उपमेय है। किन्तु वडवानल जो उपमान होना चाहिए उसे यहाँ उपमेय बना कर 'गरब करत केहि हेत' द्वारा उपमेय (शिवाजी के प्रताप) का अनादर किया गया है।

तृतीय प्रतीप

लक्षण—दोहा।

आदर घटत अवर्न्य को, जहाँ वर्न्य के जोर।
तृतिय प्रतीप वखानही, तहँ कविकुल सिर मौर ॥४५॥

शब्दार्थ—अवर्न्य—उपमान।

अर्थ—जहाँ उपमेय के प्रभाव के कारण उपमान का अनादर हो वहाँ सर्व श्रेष्ठ कवि तृतीय प्रतीप कहते हैं।

उदाहरण—दोहा।

गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान ॥४६॥

शब्दार्थ—कत=क्यों, क्या। छीर=क्षीर, दूध। समाजगत= दुनियाँ में।

अर्थ—हे दूध और हीरे के समान उज्ज्वल चाँदनी ! तू (अपनी उज्ज्वलता का और संसार मे व्यापक होने का) क्या घमंड करती है, खुमान राजा शिवाजी की कीर्ति भी दुनियाँ में इतनी ही फैली हुई है।

विवरण—यहाँ 'चाँदनी' उपमान है इसकी उज्ज्वलता एव व्यापकता के गर्व को शिवाजी की 'कीर्त्ति' उपमेय ने दूर किया है।

चतुर्थ प्रतीप

पाय बरन उपमान को, जहाँ न आदर और।
कहत चतुर्थ प्रतीप हैं, भूपन कवि सिर मौर ॥४७॥

शब्दार्थ—बरन–वर्ण्य, उपमेय।

अर्थ—जहाँ उपमेय को पाकर अन्य किसी उपमान का आदर न हो [अयोग्य सिद्ध किया जाय] वहाँ श्रेष्ठ कवि चतुर्थ प्रतीप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चन्दन मे नाग, मद भरयो इन्द्रनाग,
विप भरो सेस नाग, कहै उपमा अवस को।
भोर ठहरात न, कपूर वहरात मेघ,
सरद उडात वात लागे दिसि दस को॥
शम्भु नीलग्रीव, भौंर पुण्डरीक ही वसत,
सरजा सिवाजी सन भूपन सरस को?
छीरधि मैं पक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जसको ॥४८॥

शब्दार्थ—नाग=सर्प, । इन्द्रनाग=ऐरावत। अवस=व्यर्थ। वहरात=उड जाता है। भोर=प्रभात। ग्रीव=कंठ। पुंडरीक=श्वेत कमल। छीरधि=क्षीर सागर। कलानिधि=चन्द्रमा। टंक=एक तोल जो २४ रत्ती का होता है, यहाँ तात्पर्य 'रत्तीभर' से है

अर्थ—चन्दन में सर्प लिपटे रहते है, ऐरावत हाथी मदमत्त है, शेपनाग मे विप है इसलिए इन (दूपित वस्तुओं) से शिवाजी के शुभ्र यश की कौन व्यर्थ उपमा दे? अर्थात् कोई नहीं देता। प्रभात ठहरता नहीं; कपूर उड़ जाता है, वात (हवा) के लगने से शरद ऋतु के बादल भी दसों दिशाओं

को उड जाते हैं, शिवजी का कंठ नीला है और कमलो में भौरे रहते हैं। अत: भूषण कवि कहते हैं कि सरजा राजा शिवाजी की बराबरी इनमें से भी कोई नहीं कर सकता। क्षीर सागर में कीचड है, चन्द्रमा में कलंक है, इसलिए ये भी आपके यश के रूप की समानता रत्ती भर नहीं पा सकते।

विवरण—यहाँ चन्दन,ऐरावत, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि 'उपमानों'में दोष होने से उनको शिवाजी के यश 'उपमेय' से अयोग्य सिद्ध किया है। कीर्ति (यश) का रंग श्वेत माना है। उक्त चन्दन ऐरावत, पुंडरीक, शिव, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि उपमान भी श्वेत होते है, किंतु कुछ न कुछ दोष होने से वे अयोग्य सिद्ध किये गये हैं।

पंचम प्रतीप

लक्षण–दोहा

हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत उपमान।
पंचम कहत प्रतीप तेहि, भूषन सुकवि सुजान ॥४९॥

शब्दार्थ—हीन=तुच्छ, न्यून, घटकर। नष्ट होत=लुप्त होता है, व्यर्थ सिद्ध किया जाय।

अर्थ—उपमान उपमेय से किसी प्रकार घटकर होने के कारण जहाँ नष्ट होजाय (छिप जाय) वहाँ श्रेष्ठ कवि पंचम प्रतीप कहते हैं।

सूचना—भूषण जी का यह पंचम प्रतीप का लक्षण ठीक नहीं है। इसका वास्तव में लक्षण यह है—"व्यर्थ होइ उपमान जब बर्ननीय लखि सार", अर्थात् जब यह कह कर उपमान का तिरस्कार किया जाय कि उपमेय ही स्वयं उसका (उपमान का) कार्य करने में समर्थ है तब उस 'उपमान' की आवश्यकता ही क्या ? भूषण जी के दिये हुए तीन उदाहरणों में प्रथम तो उनके दिए हुए लक्षण के

अनुसार है, परन्तु शेष दो पंचम प्रतीप के वास्तविक लक्षण से मिलते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तो सम हो सेस, सो तो वसत पताल लोक,
ऐरावत गज, सो तो इन्द्रलोक सुनियै।
दुरे हंस मानसर ताहि मैं कैलासधर,
सुधा सरवर सोऊ छोड़ि गयो दुनियै।
सूर दानी सिरताज महाराज सिवराज,
रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै?।
भूपन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हारयौ,
लखिए कछू न केती बातैं चित चुनियै ॥५०॥

शब्दार्थ—कैलासधर=महादेव। सुधा सरवर=अमृत का श्रेष्ठ सरोवर। रावरे=आपके। गुनियै=जानिये। चुनियै=चुनी, ढूँढो।

अर्थ—तुम्हारे यश के समान शेषनाग शुभ्र था, पर वह तो अब पाताल में रहता है, ऐरावत हाथी था, वह अब इन्द्रलोक में सुना जाता है; हंस मानसरोवर में जा छुपे हैं, उसी में शिव जी भी लुप्त हो गए हैं और अमृत का सरोवर भी दुनियाँ को छोड़ कर चला गया है। हे बलवानों और दानियों में श्रेष्ठ शिवा जी महाराज! आपके यश के सम्मुख आज किस की गिनती की जाय अर्थात् आपके यश को किसकी उपमा दें क्योंकि आपके यश के समान शुभ्र जो पदार्थ थे वे आपके यश की उज्ज्वलता को देखकर इधर उधर जा छिपे हैं। भूषण जी कहते हैं कि जहाँ तक मैंने सोचा वहाँ तक खोज कर थक गया, सब व्यर्थ रहा, जितनी बातें मन में सोचीं उन में से कोई भी आपकी बराबरी की नहीं दिखाई देती।

विवरण—यहाँ दिखाया गया है कि शेष, ऐरावत, हाथी, हंस, शिव, अमृत, आदि 'उपमान' शिवा जी के यश 'उपमेय' से घट कर

होने के कारण क्रमशः पाताल, इन्द्रलोक, मानसरोवर और स्वर्गलोक में जा छिपे हैं।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

कुन्द कहा,पय वृन्द कहा, अरु चन्द कहा,सरजा जस आगे ?
भूषन, भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा द्विजराम कहा, बलराम कहा, रन मैं अनुरागे ?
बाज कहा,मृगराज कहा,अति साहस मैं सिवराज के आगे ?॥५१॥

शब्दार्थ—कुन्द=एक सफेद फूल। पय वृन्द=दूध का समूह, क्षीर सागर। कृसानु=आग। कहाऽब=कहा अब, अब क्या। पागे=फैले हुए। द्विजराम=परशुराम। अनुरागे=अनुरक्त होने पर। रन में अनुरागे–युद्ध मे लड़ने पर। मृगराज–सिंह।

अर्थ—शिवाजी के यश के सामने कुन्द पुष्प, क्षीरसागर और चन्द्रमा क्या हैं ? अर्थात् कुछ भी नहीं हैं। भूषण कहते हैं, खुमान राजा शिवाजी के सारी पृथ्वी पर फैलते हुए प्रताप के आगे सूर्य और कृशानु (अग्नि) भी क्या है, अर्थात् तुच्छ है। युद्ध में जब शिवाजी भिड़ जाते हैं तब उनके सामने श्रीराम, बलराम, और परशुराम भी क्या हैं ? अर्थात् शत्रुओं का इतनी भयंकरता से संहार करते हैं कि इन बड़े-बड़े बलवानों की भयंकरता भी फीकी पड जाती है। साहस में उनके सम्मुख बाज और सिंह भी क्या है ?

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश (उपमेय) के सामने कुन्द क्षीर सागर, चन्द्रमा आदि उपमान व्यर्थ दिखाये गये हैं। पुनः शिवाजी के प्रताप (उपमेय) के सामने भानु, अग्नि, आदि उपमानों की व्यर्थता प्रकट की है गई। फिर शिवाजी की वीरता 'उपमेय' के सामने राम,परशुराम बलराम आदि उपमानों की वीरता को तुच्छ दिखाया गया है, इसी प्रकार अन्त में शिवाजी के साहस 'उपमेय'के सामने बाज और सिंह 'उपमानों' की व्यर्थता दिखाई गई है।

यहाँ उपमेयों के सामने उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है उन्हें नष्ट नहीं किया गया। यह उदाहरण भूषणजी के दिए हुए लक्षण से नहीं मिलता किंतु वास्तविक लक्षण से मिलता है।

तीसरा उदाहरण--मालती सवैया

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽव कहा धुव धू है।
कामना-दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख न देवगऊ है?
भूषन भूषन‡ में कुल भूषन भौंसिला भूप धरे सव भू है।
मेरु कछू न कछू दिग्दन्ति न कुण्डलि कोल कछू न कछू है ॥५२॥

शब्दार्थ—जोऽव=जो अब। धुव=ध्रुव,तारे का नाम। धू ध्रुव=निश्चल (ध्रुव तारा निश्चल माना जाता है)। कामना दानि=मनो वाञ्छित दान देने वाला। सुररूख=कल्पवृक्ष (इस वृक्ष के नीचे जिस प्रकार की भावना की जाती है वह सिद्ध होती है)। देव गऊ=काम-धेनु, इसमें भी कल्पवृक्ष जैसा ही गुण है। दिग्दन्ति=दिग्गज दिशाओं के हाथी। कुण्टलि=सर्प, शेषनाग। कोल=शूकर, वराह। कछू=कच्छप, कछुआ।

अर्थ—श्री महादेव जी ने शिवाजी के राज को ऐसा अटल कर दिया कि ध्रुव तारा भी अब उसके सम्मुख क्या अटल है? मन वांच्छित दान देने वाले शिवाजी को देखकर कल्पवृक्ष और कामधेनु भी कुछ नहीं जँचते अर्थात् तुच्छ दिखाई देते है। भूषण कवि कहते हैं कि राजाओं के कुल में भूषण

‡ यहाँ 'भूषन' के स्थान पर 'भूषन' पाठ भी मिलता है, परन्तु वह ठीक नहीं प्रतीत होता, यदि 'भूषण भूषण मे कुल भूषण' पाठ किया जाय तो दूसरे भूषण को भूखन पढना चाहिये, जिसका अर्थ भूखण्ड अर्थात् पृथिवी है। तब अर्थ इस प्रकार करना होगा—भूषण कहते है कि भूमडल मे कुलश्रेष्ठ महाराजा शिवाजी भौंसले समस्त पृथ्वी को इस प्रकार धारण किये हुए है।

(श्रेष्ठ)भौंसिला राजा शिवाजी समस्त भूमि का भार अपने ऊपर इस तरह धारण किए हुए है कि न मेरु पर्वत की आवश्यकता है न दिग्गजों की और न शेष जी, वराह और कच्छप की आवश्यकता है।

सूचना—पुराणों में वर्णन आता है कि पृथ्वी कहीं हवा में उड़ न जाय, अतएव पृथ्वी को दबाये रखने के लिए दसों दिशाओं में दस बड़े बड़े हाथी हैं। भगवान ने वराहावतार लेकर पृथ्वी को अपने दाँत से उबारा और धारण किया था, अतएव वराह की गणना भी पृथ्वी के धारण करने वालों में है। ऐसा कहा जाता है कि सब से नीचे कच्छप है, उसकी पीठ पर शेषनाग कुंडली लगाए बैठा है। उसके फणों पर ही इस पृथ्वी का सारा भार है। अतः कच्छप और शेष भी पृथ्वी को धारण करने वाले हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी उपमेय के सम्मुख मेरु पर्वत, दिग्गज, शेष जी आदि उपमानों की व्यर्थता प्रकट की है।

उपमेयोपमा

लक्षण—दोहा

जहाँ परस्पर होत है, उपमेयो उपमान।
भूषन उपमेयोपमा, ताहि बखानत जान॥ ५३॥

शब्दार्थ—जान=जानो।

अर्थ—जहाँ आपस में उपमेय और उपमान ही एक दूसरे का उपमान और उपमेय हों, वहाँ उपमेयोपमा अलंकार होता है।

सूचना—इस में उपमेय की उपमान से और उपमान की उपमेय से उपमा दी जाती है, किसी तीसरी वस्तु की उपमा नहीं दी जाती।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।

भौंसिला भुवाल ! तेरो जस हिमकर सो है,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरौ है तेरो हिए सुखकर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि ! तेरो कर
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरो कर सो ॥५४॥

शब्दार्थ—समत्थ=(सं०) समर्थ, शक्तिशाली। दिनकर=सूर्य। सो है–समान है। सोहै–शोभित होता है। निकर=समूह। भुवाल=भूपाल। हिमकर=चन्द्रमा। अकर=आकर, खान। रतनाकर=समुद्र। सुखकर=सुखदाई। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

अर्थ—हे शक्तिशाली शिवा जी। आपका तेज सूर्य के समान है और सूर्य आपके तेज-पुञ्ज के समान शोभित है। हे भौंसिला राजा ! आपका यश(उज्ज्वलता में)चन्द्रमा के समान है और चन्द्रमा आपके यश की खान के समान शोभित है। भूषण कवि कहते हैं कि आपका हृदय (गंभीरता में) समुद्र के समान है और समुद्र आपके सुखदाई हृदय के समान गंभीर है। हे साहजी के सुपुत्र दानी शिवाजी ! (मुँह माँगा दान देने में) आपका हाथ कल्पवृक्ष के समान है और कल्पवृक्ष आपके हाथ के समान।

विवरण—यहाँ प्रथम शिवा जी का तेज, उनका यश, उनका हृदय और उनका कर, क्रमशः उपमेय है फिर ये ही, सूर्य, हिमकर, रत्नाकर और कल्पवृक्ष आदि के (जो पहिले उपमान थे और बाद में उपमेय हो गए हैं) क्रमशः उपमान कथन किये हैं।

मालोपमा

लक्षण—दोहा

जहाँ एक उपमेय के, होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा, भूषन सुकवि सुजान ॥५५॥

अर्थ—जिस स्थान पर एक ही उपमेय के बहुत से उपमान हों उसे श्रेष्ठ कवि मालोपमा अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर राम-द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
'भूपन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥५६॥

शब्दार्थ—अम्भ=(सं० अभस्)जल,यहाँ समुद्र से तात्पर्य है। दम्भ=घमण्डी। रघुकुलराज=रामचन्द्र। बारिवाह=(बारि+वाह) जल वहन करने वाला, बादल। रतिनाह=रति के स्वामी, कामदेव। रामद्विज-राज=परशुराम। दावा=वन की अग्नि। द्रुमदण्ड=वृक्षों की शाखाएँ। वितुण्ड=हाथी। तम अंस=अंधकार का समूह। कान्ह=कृष्ण।

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्र ने जम्भ राक्षस को, श्री राम ने घमंडी रावण को, महादेव जी ने रतिनाथ (कामदेव) को, परशुराम ने सहस्रबाहु को और श्रीकृष्ण ने कंस को नष्ट किया* और जैसे बाड़व (बड़वानल)

---

* जम्भ नामक राक्षस महिषासुर का पिता था। इसे इन्द्र ने मारा था। समाधिस्थ महादेव ने अपने तीसरे नेत्र द्वारा समाधि भंग करने के लिए आये हुए कामदेव को भस्म कर दिया था, यह प्रसिद्ध है। सहस्रबाहु (कार्तवीर्य) एक बड़ा पराक्रमी राजा था। इसकी एक सहस्र भुजाएँ थीं। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का सिर काटा था। इस पर क्रुद्ध परशुराम ने इसे मार डाला था।

समुद्र को, पवन बादलों को, दावाग्नि (जगल की आग) वृक्षों की शाखाओं को, चीता हिरनों के झुण्डों को, सिंह हाथियों को और सूर्य का तेज अधकार समूह को नष्ट कर देता है उसी प्रकार शिवा जी मुसलमान वंश का नाश करने वाले हैं।

विवरण—यहाँ शिवा जी 'उपमेय' के इन्द्र, राम, महादेव, कृष्ण, बड़वानल आदि अनेक उपमान कथन किये गए हैं।

ललितोपमा

लक्षण—दोहा

जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कविन के गोत ॥५७॥

शब्दार्थ—लीलादिक पद=पद विशेष, (जिनका वर्णन अगले दोहे मे है)। गोत=समूह, वंश, सब।

अर्थ—जिस स्थान पर उपमेय और उपमान की समता देने को लीलादिक पद आते हैं, उसे सब कवि ललितोपमा अलंकार कहते हैं।

बहसत, निदरत, हँसत जहँ, छवि अनुहरत बखानि।
सत्रु मित्र इमि औरऊ, लीलादिक पद जान ॥५८॥

शब्दार्थ—निदरत=अपमान करना।

अर्थ—बहस करना, अपमान करना, हँसना, छवि की नकल करना, शत्रु है, मित्र है आदि तथा इसी प्रकार के और भी शब्द लीलादिक पद कहलाते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है।
भूपन भनत जाके एक एक सिखरते,
केते धौ नदी नद की रेल उतरति है।
जोन्ह को हँसत जोति हीरा मनि मन्दिरन,
कन्दरन मैं छवि कुहू की उछरति है।

ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामै
नखतावली सो बहस दीपावली करति है ॥५९॥

शब्दार्थ—सिखर=शिखर, (स०) चोटी। रेल=रेला, प्रवाह रेल उतरति है=बहते हैं। जोन्ह=ज्योत्स्ना चाँदनी। कन्दर=कन्दरा, गुफा। कुहूकी छवि=अमावस्या की रात का अंधकार। उछरत है=उछल कर भागती है, नष्ट होती है। नखतावली=(स० नक्षत्र+अवली) तारों की पंक्ति।

अर्थ—जिस किले में शाह जी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी की ऐसी सभा है, जो कि इन्द्र की मेरु पर्वत वाली (देवताओं की) सभा को भी लज्जित करती है, भूषण कवि कहते हैं कि उस किले के पहाड़ की प्रत्येक चोटी से कितने ही नदी नालों के प्रवाह बहते हैं। उसी किले के महलों में जड़े हुए हीरे और मणियों के प्रकाश से चाँदनी की हँसी होती है और समस्त गुफाओं में रहने वाला अमावस्या की रात्रि का सा घना अँधेरा नष्ट हो जाता है। शिवाजी का यह किला इतना ऊँचा है कि इसकी दीपावली तारों की पंक्तियों से बहस करती है।

विवरण—यहाँ शिवा जी की सभा से इन्द्र की सभा का लज्जित होना, और हीरों की चमक से चाँदनी की हँसी होना वर्णित है। यही ललितोपमा है।

सूचना—ललितोपमा में प्रसिद्ध वाचक शब्दों के द्वारा उपमा न कह कर विशेष प्रकार के शब्दों (लीलादिक पदों) से उसका लक्ष्य कराया जाता है, इसलिए इसे लक्ष्योपमा भी कहते हैं।

रूपक

लक्षण—दोहा

जहाँ दुहुन को भेद नहिं, बरनत सुकवि सुजान।
रूपक भूषन ताहि को, भूषन करत बखान ॥ ६० ॥

अर्थ—जहाँ चतुर कवि उपमेय और उपमान दोनों में कुछ भेद वर्णन न करें वहाँ भूषन कवि रूपक अलंकार कहते हैं।

सूचना—उपमा मे उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है, परन्तु रूपक में दोनों मे एकरूपता होती है। यद्यपि उपमेय और उपमान दोनों का अलग अलग अस्तित्व रहता है फिर भी दोनों एक ही रूप प्रतीत होते है। जैसे—मुखचन्द्र अर्थात् मुख ही चन्द्र है। इसके दो भेद हैं—अभेद रूपक और ताद्रूप्यरूपक। भूषण जी ने केवल अभेद रूपक का वर्णन किया है। उक्त दो भेदों के भी तीन-तीन और भेद होते है—सम, अधिक और न्यून। इनमे से भूषणजी ने छन्द न० ६४ मे केवल न्यून और अधिक दिये हैं।

उदाहरण-छप्पय

कलियुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर चय॥
नृपति नदीनद वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिन्दुवान पुन्य गाहक बनिक, तासु निवाहक साहि सुव।
वर बादवान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव॥६१॥

शब्दार्थ—उद्ध=(सं० ऊर्ध्व) ऊपर उठा हुआ, प्रबल। उर्म्मिमय=लहर वाला। लच्छनिलच्छ=लक्षणि+लक्ष, लाखों। कच्छ=कछुए। चय=समूह। सुअप्प=सुन्दर जल या अपना जल। निवाहक=सं० निर्वाह करने वाला, कर्णधार। सुव—सुत, पुत्र। बादवान=(फा०)नाव मे कपड़े का पाल,जिसमे हवा भरने पर नौका चलती है। किरवान—स० कृपाण, तलवार।

अर्थ—कलियुग रूपी अपार समुद्र है। जो अधर्म की प्रबल तरंगों से युक्त है। लाखों मुसलमान ही जिसमें कछुए, मछली और मगर समूह हैं। और जिसमें छोटे छोटे राजा रूपी नदी नाले मिलकर नीरस

हो जाते हैं (नदियाँ एव नाले जब समुद्र में मिल जाते है तब उनका भी जल खारी हो जाता है)। भूषण कहते हैं कि इस प्रकार कलियुग रूपी समुद्र ने समस्त पृथ्वी को घेर कर अपने जल के वश में कर लिया है (अर्थात् कलियुग रूपी समुद्र सारे ससार में फैल गया है) उस समुद्र में हिन्दू लोग पुण्य का (सौदा) खरीदने वाले बनिये हैं। हे शाहजी के पुत्र शिवाजी ! आप ही उनको पार उतारने वाले (कर्णधार) हैं और तलवार रूपी सुन्दर पाल को धारण करने वाला आपका यश उनका जहाज है।

विवरण—यहाँ कलियुग उपमेय मे समुद्र उपमान का अभेद वर्णन किया है। दोनों में एकरूपता है। यहाँ समुद्र का पूर्ण रूप—कलियुग—समुद्र, अधर्म—ऊर्मि, म्लेच्छ—कच्छ मच्छ और मगर, राजा—नदी नद, हिन्दुवान—पुण्य ग्राहक व्यापारी, शिवाजी—कर्णधार, कृपाण—पाल, यश—जहाज वर्णित हैं, अत. अभेद रूपक है। इसे सावयव रूपक भी कहते हैं क्योंकि इसमें सब अवयवों (अगों) का वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—छप्पय

साहिन मन समरत्थ जासु नवरग साहि सिरु।
हृदय जासु अब्बास साहि बहुबल बिलास थिरु॥
एदिलसाहि कुतुब्ब जासु जुग भुज भूषन भनि।
पाय म्लेच्छ उमराय काय तुरकानि आनि गनि॥
यह रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जग दंडियव।
सरजा सिव साहस खग्ग गहि कलियुग सोइ खल खंडियव॥६२॥

शब्दार्थ—मन—मणि (श्रेष्ठ)। नवरग साहि—औरगजेब बादशाह। सिरु—सिर। बिलास—विलास, क्रीड़ा। थिरु—स्थिर। अब्बास—तत्कालीन फारस के बादशाह का नाम। इसके साथ शाहजहाँ और औरगज़ेब का मेल और लिखा पढी थी। इसका दूत औरंगजेब के दरबार मे रहता था। एदिलशाह—आदिलशाह, बीजापुर का बादशाह। शिवाजी के पिता शाहजी इसी के यहाँ नौकर थे। कुतुब्ब—कुतुबशाह,

गोलकुण्डा के बादशाह। औरंगजेब ने १६८८ ई० में गोलकुण्डा और बीजापुर जीत लिये थे। जुग=युग, दोनों। पाय=पैर। काय=शरीर। आन=अन्य, और। दडयिव=दंडित किया, सताया। खडियव=खंडित किया, मार डाला।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि बादशाहों में श्रेष्ठ, शक्तिशाली औरंगज़ेब बादशाह जिसका सिर है, महाबली किंतु विलासरत (आमोद प्रमोद में लगा हुआ) अब्बासशाह जिसका हृदय है, आदिलशाह और कुतुबशाह जिसकी दो बाहु हैं, म्लेच्छ (मुसलमान) उमराव जिसके पेर हैं और अन्य तुर्क लोग जिस के अन्यांग हैं, ऐसे शरीर से पृथ्वी पर अवतार धारण कर अत्याचारी कलियुग ने सारे संसार को बड़ा सताया। परन्तु उसी नीच को शिवाजी ने साहस की तलवार पकड़ कर खंड खंड कर डाला।

विवरण—यहाँ औरंगजेब, अब्बासशाह, कुतुब शाह आदि को कलियुग खल के अंगों का रूप दिया है। यहाँ भी सावयव रूपक है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिंह थरि जाने विन जावली जंगल भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।*
भूपन भनत, देखि भभरि, भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो॥

---

* सम्मेलन द्वारा प्रकाशित प्रति में इसका निम्नलिखित पाठ है।

सिंह थरि जाने विन जावली जगल हठी
भठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।

और भठी का अर्थ सेनापति (भटी, भट—सैनिक, भटी सैनिकों वाला) करके 'भटी गज' का अर्थ सेनापति (अफजल खाँ) रूपी हाथी किया गया है।

साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा
मद्गल अफजलै पंजाबल पटक्यो ।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो ॥६३॥

शब्दार्थ —थरि=स्थली, जगह। जावली=सतारा जिले के उत्तर-पश्चिमी कोने में पहाड़ी तथा चारों ओर जगलों से घिरा हुआ ग्राम है, इस स्थान पर शिवाजी ने बीजापुर के प्रसिद्ध सरदार अफजलखाँ का वध किया था। मठी=सिंह की भट्टी, माँद। भटक्यो=भटका, धोखा खाया, भूल की। भभरि=हड़बड़ा कर, घबड़ा कर। काहुवै=किसी ने भी। न हटक्यो=हटका नहीं, रोका नहीं। गाजी=मुसलमानों में वह वीर जो धर्म के लिए विधर्मियों से युद्ध करे, वीर। मदगल=मद झड़ता हुआ; मस्त। कहँ=को। आकुत=सिद्दी कासिम याकूतखाँ, यह बीजापुर का एक वीर सरदार था। सटक्यौ=चुपचाप चला गया। आंकुस=अंकुश।

अर्थ—हठी आदिल शाह ने जावली देश के जंगल को सिंह के रहने की भट्टी (स्थान) न जान कर (अफजलखाँ) रूपी हाथी को वहाँ भेज कर बडी भूल की। अर्थात् शिवाजी रूपी सिंह के पराक्रम को न जान कर आदिलशाह ने अफजलखाँ को भेज कर बडी भूल की। भूषण कवि कहते हैं कि वीरकेसरी शिवाजी को देख सारी सेना हड़बड़ा कर भाग गई और हृदय में हिम्मत धारण कर किसी ने उन्हें न रोका। शाह जी के समर्थ पुत्र शिवाजी रूपी सिंह ने अफ़ज़लखाँ रूपी मदमस्त हाथी को अपने पंजे के जोर से पछाड़ दिया†। उस अफजलखाँ के बिना

† बीजापुर के बादशाह ने अपने सरदार अफजलखाँ को शिवा जी को पकड़ने के लिए भेजा। शिवाजी ने उससे खुले मैदान में लड़ना उचित न समझा। वह भी शिवाजी को चालाकी से पकड़ना चाहता था। यह निश्चय हुआ कि दोनों एकान्त में मिलें। शिवाजी जानते

याकूतखाँ रूपी महावत बेकार हो अपने (प्रेरणा रूप) अंकुश को ले चुपचाप चला गया (याकूतखाँ ने अफजलखाँ को शिवाजी से एकान्त में मिलने की सलाह दी थी)।

विवरण—यहाँ शिवा जी में सिंह का, अफजलखाँ मे मदगलित हाथी का और याकूतखाँ मे महावत का आरोप किया गया है।

रूपक के दो *अन्य भेद* (*न्यून तथा अधिक*)

लक्षण—दोहा

घटि बढ़ि जहँ बरनन करै, करिकै दुहुन अभेद।
भूषन कवि औरौ कहत, द्वै रूपक के भेद ॥६४॥

अर्थ—जहाँ उपमान का उपमेय में अभेद आरोपन करके उनके गुण घटा बढ़ा कर वर्णन किये जायें वहाँ कवि रूपक के न्यून और अधिक दो और भेद करते हैं।

सूचना—जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता दिखाई जाती है, तब अधिक रूपक, और जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता दिखाई जाय तब न्यून रूपक होता है।

थे कि अफजलखाँ चालाकी करेगा। अतएव वे नीचे कवच तथा सिर पर लोहे का टोप पहनकर तथा उसके ऊपर रेशमी अगरखा तथा पगड़ी पहन कर और हाथ में बघनखा धारण करके गये। यह बघनखा दस्ताने की तरह हाथ के पंजे मे पहन लिया जाता है। साधारण समय में उसका नाखूनों जैसा नुकीला भाग छिपा रहता है परन्तु लडाई के समय झटका देते ही वह बाघ के खुले हुए पंजे का रूप धारण कर लेता है। जब भेंट होने पर अफजलखाँ ने शिवा जी पर तलवार का वार किया तब शिवाजी ने बघनखे द्वारा उसका अन्त किया।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
　　विगिरि कलंक चन्द उर आनियतु है।
पचानन एक ही बदन गनि तोहि,
　　गजानन गजबदन बिना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस कला करिबे को,
　　दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दुहूँ कर सो सहसकर मानियतु तोहि,
　　दुहूँ बाहु सो सहसबाहु जानियतु है॥६५॥

शब्दार्थ—उर=हृदय। बिगिरि=बिना, रहित। आनियतु है= लाते हैं, मानते हैं। पचानन=शिव। गजानन=हाथी के समान मुख वाले, गणेश। सहससीस=शेषनाग। बखानियतु है=कहते हैं। सहसदृग=इन्द्र, इन्द्र के हजार नेत्र माने जाते है। सहसकर=सूर्य (कर का अर्थ किरन भी है)। सहसबाहु=सहस्राबाहु।

अर्थ—हे साह जी के पुत्र शिवा जी! भूषण कवि आपके शुभ्र यश को बिना कलंक का चन्द्रमा मानते हैं। एक ही मुख वाले आपको वे पंचानन और हाथी के मुख बिना ही आपको गणेश कहते है। एक ही शीश वाले आप को वे हजार फण वाला शेषनाग और दो नेत्र वाले होने पर भी आपको हजारों आँख वाला इन्द्र मानते है। आपके दो हाथ होने पर भी वे आप को हजार (किरणों) वाला सूर्य मानते हैं और दो भुजाएँ होने पर भी आपको हजार बाहु वाला सहस्रबाहु समझते हैं।

विवरण—यहाँ "बिगरि कलंक चन्द" में अधिक रूपक है, किन्तु अन्याङ्गों में न्यूनता होने पर भी उनका क्रमश. शिव, गणेश और शेषनाग आदि उपमानों में आरोप किया है, अत' न्यून रूपक है

जेते हैं पहार भुव पारावार माहिं
तिन सुनि कै अपार कृपा गहे सुख फैल है।
भूपन भनत साहि तनै सरजा के पास,
आइवे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है॥
किरवान वज्र सो विपच्छ करिवे के डर,
आनि के कितेक आए सरन की गैल है।
मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल है॥६६॥

शब्दार्थ—पारावार=समुद्र। ऐल=रेल,जोरों का प्रवाह। हौंस=हवस, इच्छा। कोटकरि=किले बना कर। मघवा=इन्द्र।

अर्थ—समस्त पृथ्वी और समुद्र में जितने भी पहाड़ हैं उन्होंने शिवा जी की अपार कृपा को सुन कर अत्यधिक सुख पाया है। भूषण कवि कहते है कि उन सब के मन में महाराज शिवाजी के आश्रय में आने की बड़ी हवस पैदा होगयी है, उत्कट इच्छा उत्पन्न होगई है। (शिवाजी पृथ्वी पर के इन्द्र है अतएव) बहुतों ने तो उनके तलवार रुपी वज्र से पक्षहीन होने के भय से शरण मार्ग ग्रहण कर लिया, अर्थात् इस डर से कि कहीं शिवाजी अपने तलवार रूपी वज्र से हमारे पंख न काट दें, वे स्वयं शिवाजी की शरण में आगये हैं, क्योंकि महापुरुष शरणागत को कष्ट नहीं देते। इस प्रकार पृथ्वी पर तेजस्वी तथा महाबली शिवाजी रूपी इन्द्र ने इन सब पर्वतों पर किले बना बना कर उन्हें सपक्ष कर दिया अर्थात् अपने पक्ष में ले लिया। (इस पद में कवि ने ऐतिहासिक तथ्य को बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। शिवाजी ने अपने प्रबल शत्रुओं से लोहा लेने के लिए आस पास की पहाडियों पर अनेक किले बनाये थे, और इस प्रकार उन पहाड़ियों को अपने पक्ष में कर लिया था जिन पर उस समय तक अन्य किसी का राज्य न था। यह देख कर और शिवाजी के पराक्रम से डर कर आस पास

के अनेक पहाड़ी किलों के मालिक भी शिवाजी के शरण में आगये थे। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं हमने शिवाजी के विरुद्ध कार्य किया, तो शिवाजी हमारा किला नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। इसी ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने आलंकारिक ढग से वर्णन किया है)।

सूचना—यहाँ उपमेय शिवा जी में इन्द्र उपमान का आरोप है, किन्तु'शैल का सपक्ष करना'रूप गुण इन्द्र में नहीं था वह शिवाजी में आरोपण कर अधिकता प्रकट की है। अतः अधिक रूपक है।

सूचना—पुराणों मे लिखा है कि पहले पहाड़ों के पख थे, वे इधर उधर उड़ कर जहाँ तहाँ बैठते थे और इस प्रकार बड़ा जन-सहार करते थे। अत. इन्द्र ने अपने वज्र से एक बार इन पहाड़ों के पख काट डाले। केवल मैनाक पर्वत ही समुद्र में छिप जाने के कारण बच गया, उसके पख नहीं कटे और वह अभी तक छिपा पड़ा है।

परिणाम

लक्षण—दोहा

जहँ अभेद कर दुहुन सों, करत और स्वे काम।
भनि भूपन सब कहत हैं, तासु नाम परिनाम ॥६७॥

शब्दार्थ—स्वे=स्वकीय, अपना।

अर्थ—जहाँ उपमान से उपमेय एक रूप होकर अपना कार्य करे भूषण कहते हैं कि वहाँ सब परिणाम अलंकार मानते हैं।

सूचना—इसमें उपमान स्वयं किसी काम के करने मे असमर्थ होने के कारण उपमेय के साथ एक रूप होकर उस काम को करता है अथवा उपमेय के करने का काम उपमान करता है। रूपक की तरह इस अलकार में उपमान और उपमेय की एक-रूपता ही

नहीं दिखाई जाती अपितु उपमेय को उपमान में परिणित कर उसके द्वारा उस कार्य के किये जाने का भी वर्णन होता है, जो कार्य उपमान द्वारा किया जाना चाहिए था। 'यशरूपी चन्द्रमा' इतने मे केवल रूपक अलंकार है पर 'यशरूपी चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना से जगत को धवलित कर रहा है।' इसमे परिणाम अलंकार हो गया। भूषण जी का यह लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं है।

उदाहरण—मालती सवैया

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सो भरु लीनो।
भूषन तीखन तेज तरन्नि सो वैरिन को कियो पानिप हीनो॥
दारिद दौ करि बारिद सो दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।
साहि तनै कुलचन्द सिवा जस-चन्द सो चन्द कियो छबि छीनो॥६८॥

शब्दार्थ—भुजंगम=सर्प। भरु=भार। तरन्नि=तरनि, सूर्य। पानिप—आब, कान्ति। दौ=दवाग्नि (सूखे जगल में चारों ओर से लगने वाली अग्नि)। छीनो=क्षीण, हीन, मलीन। करि=हाथी।

अर्थ—वीर भौंसला राजा शिवाजी ने अपनी बलवान भुजा रूपी सर्प (शेषनाग) पर पृथ्वी का भार उठा लिया। भूषण कहते हैं कि उन्होंने अपने प्रबल तेजरूपी सूर्य से शत्रुओं के मुख की कान्ति फीकी कर डाली। दरिद्रता रूपी अग्नि को हाथी (दान) रूपी मेघों से नष्ट करके पृथ्वी तल को शीतल कर दिया अर्थात् हाथियों का दान देकर दरिद्रों की दरिद्रता को दूर कर दिया। साहजी के पुत्र, कुल के चन्द्रमा शिवाजी ने अपने यश चन्द्र से चन्द्रमा की छवि को भी मलिन कर दिया।

विवरण—यहाँ भुजा (उपमेय) से सर्प (उपमान), तेज (उपमेय) से तरनि (उपमान), करि (उपमेय) से वारिद (उपमान) और यश (उपमेय) से चन्द्र (उपमान) एक रूप होकर क्रमशः भार उठाना, पानिप (कान्ति) हीन करना, दारिद्र्याग्नि दूर करना, और प्रकाश करना आदि काम करते हैं।

सूचना—भूषण जी का यह उदाहरण कुछ बिगड़ गया है। प्रथम पक्ति मे परिणाम अलंकार ठीक बैठता है किन्तु दूसरी और तीसरी पक्ति में दो रूपक साथ होने से परिणाम न रह कर रूपक होगया है। चौथे चरण में 'परिणाम' ठीक है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बीर बिजैपुर के उजीर निसिचर,
गोलकुण्डा वारे घुघू ते उड़ाए हैं जहान सो।
मन्द करी मुखरुचि चन्द चकता की कियो,
भूषन भुषित द्विज-चक्र खान पान सो॥
तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है,
हिन्दुवान नलिनी खिलायो विविध विधान सो।
चारु सिव नाम को प्रतापी सिव साहि सुव,
तापी सब भूमि यो कृपान भासमान सो॥६९॥

शब्दार्थ—मुख रुचि=मुख की कान्ति। भासमान=सूर्य। उजीर=वजीर। घूघू=उल्लू।

अर्थ—शिव जी के शुभ नाम वाले शाहजी के बेटे प्रतापी शिवाजी ने अपने कृपाण रूपी सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमण्डल को इस प्रकार तपाया(प्रकाशित कर दिया) जिस से कि विजयपुर के वजीर रूपी निशिचर (राक्षस) और गोलकुण्डा के सर्दार रूपी उल्लू दुनियाँ से उड़ गए। (दिनमें राक्षस और उल्लू कहीं छिप जाते हैं)। चगेजखाँ के वंशज औरंगजेब के मुख चन्द्र की कान्ति फीकी पड़ गई और द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) रूपी चक्रवाक भोजन सामग्री से युक्त हो गए अर्थात् इनके प्रताप से सुख पाने लगे, (चकवा चकवी दिनमें प्रसन्न रहते है)। तुर्क रूपी कुमुदिनी को मुरझा दिया और हिन्दू रूपी कमलिनी को अनेक भाँति से प्रफुल्लित कर दिया।

विवरण—यहाँ शिवा जी के 'कृपाण' उपमेय से 'सूर्य' उपमान ने एक होकर उपर्युक्त कार्य किये हैं।

उल्लेख

लक्षण—दोहा

कै वहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि।
वहु विधि करि उल्लेख हैं, सो उल्लेख उलेख ॥७०॥

शब्दार्थ—उल्लेख=अलंकार, वर्णन करना।

अर्थ—एक वस्तु को अनेक मनुष्य वहुत तरह से कहें वा एक ही व्यक्ति उसे (विषय भेद से) अनेक प्रकार से कहे वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। (प्रथमावस्था में पहिला उल्लेख होता है द्वितीय में दूसरा)।

उदाहरण—मालती सवैया

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत हैं सब की चित चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज को यो तन मैं अति सुन्दरता है॥
भूपन, एक कहैं महि इन्दु यों राज विराजत बाढ्यो महा है।
एक कहैं नरसिंह हैं संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है॥७१॥

शब्दार्थ—पूरत=पूरी करता है। चित चाहै=इच्छा। मनोज=कामदेव। इन्दु=चन्द्रमा। संगर=संग्राम, युद्ध।

अर्थ—शिवा जी को सब की इच्छाओं का पूर्ण करने वाला जान कोई तो उसे कल्पद्रुम वताता है। उनके शरीर की अत्यधिक सुन्दरता देख कोई उन्हें काम का अवतार मानता है। भूषण कवि कहते हैं कि कोई उनके खूब फैले हुए राज की समुज्वल कीर्ति को देख कर उन्हें पृथिवी का चन्द्रमा कहता है। कोई कहता है कि शिवाजी संग्राम में मनुष्य रूप सिंह हैं और कोई उन्हें नृसिंहावतार* ही मानता है।

* कश्यप और दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने घोर तप कर ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया था कि मनुष्य देवता आदि किसी के हाथ से न मारा जाऊँ। यह वर प्राप्त कर वह अत्यधिक अत्याचार

विवरण—यहाँ अनेक मनुष्य केवल एक शिवाजी (एक ही पदार्थ) का अनेक भाँति वर्णन करते हैं, अत प्रथम उल्लेख है ।

दूसरा उदाहरण—मनहरण दडक

कवि कहैं करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यौं इमि छेव है ।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेट्यो अहमेव है ।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोई पावत न भेव है ।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है ॥७२॥

शब्दार्थ—करनजीत=कर्ण को जीतने वाला, अर्जुन । कमनैत=तीर कमान चलाने वाले, धनुषधारी । छेव=छेद, क्षत, घाव । धरेस=राजा । धराधर=पृथ्वी को धारण करने वाला, (राजा वा शेषनाग) । अहमेव=अहकार, घमंड । कहरी=कहर ढाने वाला, विपत्ति डालने वाला । यदिल=आदिलशाह । लहरी=मौजी । बहरी=एक शिकारी चिड़िया, बाज की एक जाति ।

अर्थ—कवि लोग शिवा जी को (अत्यधिक दान देने के कारण) कर्ण कहते हैं (कर्ण दानवीर के रूप में प्रसिद्ध है), उन्होंने शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार घाव किये हैं कि धनुषधारी लोग उन्हें अर्जुन मानते हैं । शिवाजी ने पृथिवी के पालन करने वाले अन्य सब

करने लगा । अपने प्रभु भक्त पुत्र प्रल्हाद को भी वह नाना प्रकार से सताने लगा । तब भगवान ने नृसिंह (आधा सिंह और आधा मनुष्य रूप में) अवतार धारण किया, और उस दैत्य को नष्ट कर भक्त प्रल्हाद की रक्षा की ।

राजाओं के अहंकार को नष्ट कर दिया अत: सारे राजा उन्हें 'पृथ्वी को धारण करने वाला शेषनाग' कहते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवा जी! आपके राजकार्यों को देख कर कोई आपका भेद नहीं पा सकता अर्थात् आपकी राजनीति बड़ी गूढ है क्योंकि आपको आदिलशाह क़हरी, (कहर ढाने वाला, ज़ालिम) कुतुबशाह मनमौजी (जो मनमें आये वही करने वाला) और निजामशाह के लोग विजयी शिकारी चिड़िया और देवता कहते है। (अन्तिम पंक्तिका का एक और अर्थ भी लगाया जाता है, जो अधिक समुचित प्रतीत होता है इस अर्थ के अनुसार "बहरी निज़ाम" को एक पद मानना चाहिये। "निज़ामुल्मुल्क बहरी" यह खिताब अहमद नगर की निज़ाम शाही के सब बादशाहों के नाम के साथ लगता था। यह अहमदनगर की सल्तनत बहमनी राज्य पर बनी पाँच सल्तनतों में से एक थी। १६०३ में दिल्ली के मुगल-सम्राट् ने इस सल्तनत से बरार प्रान्त छीन लिया था, और सन् १६३३ मे शाहजहाँ ने इस सारी सल्तनत को विजय कर लिया था। इस ऐतिहासिक घटना के अनुसार दिल्ली के बादशाह बहरीनिज़ाम के जितैया (जीतने वाले) कहे जाते हैं। अत: अर्थ इस प्रकार होगा— कि हे शिवाजी! बहरी निज़ाम को जीतने वाले दिल्ली के मुगल बादशाह तुम्हें देव (उर्दू-देओ—राक्षस) कहते है।)

विवरण—यहाँ भी शिवा जी का अनेक लोगों ने अनेक भाँति से वर्णन किया है इसीलिए यहाँ प्रथम उल्लेख है।

तीसरा उदाहरण—मनहरण—दंडक

पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल,
चहुँ चक्र को अमाल† भयो दण्डक जहान को।

---

† 'साहित्य सेवक कार्यालय, बनारस से प्रकाशित प्रति मे 'अमाल' के स्थान मे 'सम्हाल' पाठ है। उस अवस्था में इसका अर्थ चारों दिशाओं को सम्हालने वाला होगा।

साहिन को साल भयो ज्वारि को जवाल भयो,*
हर को कृपाल भयो हार के विधान को ॥‡
वीर-रस ख्याल सिवराज भुवपाल तुव
हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को ?
तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो,
हिन्दु को दिवाल भयो काल तुरकान को ॥७३॥

शब्दार्थ—पैज=(स०) प्रतिज्ञा। हमाल=(अ० हम्माल) धारण करने वाला। भूमि भार को हमाल=पृथ्वी के भार को उठाने वाला, रक्षक। चहुँचक्क=चारों दिशाएँ। अमाल=आमिल, हाकिम। साल=सालने वाला, चुभने वाला, शूल। ज्वारि=जावली प्रदेश। जवाल=आफत। हार के विधान को=हार (मुण्डमाला जो शिवजी पहनते हैं) का प्रबन्ध करने के कारण। करवाल=तलवार। ढाल=रक्षक।

अर्थ—हे शिवा जी! आपकी इस करवाल (तलवार) का कौन वर्णन

---

* भूषण ग्रन्थावली की अधिकांश प्रतियों में 'ज्वारि को जवाल भयो' की जगह 'ज्वाल को जवाल भयो' पाठ है पर उसका कुछ ठीक अर्थ नहीं बनता। प्राय. उसका अर्थ 'अग्नि का तूफान होगया' करते हैं। अत. हमने 'साहित्य सेवक कार्यालय' की प्रति के अनुसार 'ज्वारि को जवाल भयो' पाठ दिया है। पर यह भी हमें विशेष सन्तोषप्रद नहीं प्रतीत हुआ। 'दण्डक जहान को' और 'साहिन को साल भयो कह कर 'ज्वारि को जवाल भयो' कहना व्यर्थ सा है।

‡ 'साहित्य सेवक कार्यालय' की प्रति में 'हर' के स्थान पर 'कर' है उस अवस्था में यह अर्थ होगा कि तलवार हाथों के लिए कृपालु हुई क्योंकि उसने युद्ध में ऐसे ऐसे वीर शत्रुओं को मारा कि जिनके मुण्डों की महादेव जी ने माला बनाई और इस प्रकार हाथों की प्रशंसा हुई। पर यह अर्थ क्लिष्ट है अत' 'हर' पाठ उचित है।

करे यह आपकी पैज (प्रतिज्ञा,शत्रुओं को नष्ट करने की प्रतिज्ञा) को पालन कराने वाली है,भूमि के भार को धारण करने वाली है अर्थात् भूमि भार को धारण करने में सहायक है, चारों दिशाओं की अधिकारिणी (हाकिम) और संसार को दण्ड देने वाली है। वह बादशाहों को चुभने वाली, जावली प्रदेश के लिए आफत और महादेव जी की मुण्डमाला का प्रबन्ध करने से उन पर कृपा करने वाली अथवा उनकी कृपापात्र है (अर्थात् युद्ध में शत्रुओं के सिर काट कर उसने महादेव की मुण्डमाला बनाने वाली है)। वह वीररस का ख्याल(ध्यान दिलाने वाली)है और हे महाराज शिवाजी ! आप के हाथ को बड़ा करने वाली (अर्थात् बड़प्पन देने वाली) है, अथवा (यदि यहाँ 'भूषण' कवि का नाम न समझा जाय और उसका आभूषण अर्थ किया जाय तो 'बिसाल''भूषण' का विशेषण होगा और तब इसका अर्थ होगा कि यह आपके हाथ के लिए विशाल आभूषण है। इसी प्रकार 'वीररस ख्याल' 'सिवराज' का विशेषण भी हो सकता है और तब इसका अर्थ होगा— हे वीररस के ध्यान करने वाले—भारी वीर महाराज शिवाजी ! यह तलवार आपके हाथ के लिए बड़प्पन का कारण है या विशाल आभूषण है। यह दक्षिण देश की ढाल (रक्षक) है, हिन्दुओं के लिए दीवार (आक्रमण से बचाने वाली) है, और मुसलमानों का यह काल है।

विवरण—यहाँ शिवा जी के 'करवाल' को एक ही व्यक्ति ने अनेक भाँति से वर्णन किया है, अतः द्वितीय उल्लेख है।

स्मृति

लक्षण—दोहा

सम सोभा लखि आन की, सुधि आवत जेहि ठौर।
स्मृति भूषन तेहि कहत हैं, भूषन कवि सिरमौर ॥७४॥

शब्दार्थ—आन=अन्य, दूसरी वस्तु।

अर्थ—समान (गुण, आकृति, रूप) वाली किसी दूसरी वस्तु को देख कर (वा सोचकर) जहाँ किसी (पहले देखी हुई)

वस्तु की याद आजाय वहाँ श्रेष्ठ कवि स्मृति अलंकार कहते हैं। (कभी-कभी स्वप्न देख कर भी स्मृति होती है)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ।
तुम्हैं छोडि याते काहि विनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हारे गुन गाऊँ, तुम ढीले क्यों परत हौ॥
भूपन भनत वाहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥७५॥

शब्दार्थ—ब्रजराज=कृष्ण। पोषत भरत हौ=भरण पोषण करते हो, पालते हो। ढीले=शिथिल, उदासीन। बाँभनन=ब्राह्मण। सुदामा=कृष्ण जी का सहपाठी ब्राह्मण, इसे कृष्ण जी ने खूब धन दिया था। भृगु=एक ऋषि थे, ये ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। कहा जाता है कि एक बार इन्होंने यह निश्चय करना चाहा कि ब्रह्मा, शंकर और विष्णु में कौन बड़ा है। ब्रह्मा और शंकर की परीक्षा के अनन्तर विष्णु जी के रनिवास में जाकर उन्होंने उनके वक्षस्थल में लात जमाई। इस पर विष्णु बिलकुल क्रुद्ध न हुए अपितु उन्होंने भृगु जी से पूछा कि मेरी कठोर छाती पर लात मारने से आपके चरण तो नहीं दुखे। इस तरह अद्भुत सहिष्णुता दिखा करके वे सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुए।

अर्थ—हे शिवा जी! वर्तमान समय में आप ही श्री कृष्ण के अवतार हैं, क्योंकि आप ही संसार का भरण पोषण करते हैं। इस हेतु मैं आपको छोड़ कर किस से विनती करूँ? मैं तो आपका ही गुण-गान करता हूँ परन्तु पता नहीं आप मुझ से उदासीन क्यों रहते हैं? भूषण

कवि कहते हैं कि मैं भी उसी ब्राह्मण कुल (भृगु कुल) में उत्पन्न हुआ हूँ मेरा यह एक नया अपराध आप नाहक़ (व्यर्थ ही) मन में सोचते हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर तो आपको सुदामा की याद आती है अर्थात् उन पर आप प्रसन्न रहते है उनकी इच्छाओ को पूरा कर देते है और मुझे देख कर न जाने आपको भृगु ऋषि की क्यों याद आती है अर्थात् मुझ से न जाने आप क्यों नाराज़ रहते है।

विवरण – शिवाजी ब्रजराज के अवतार हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर उनको अपने सुदामा का स्मरण हो आने से और (विष्णु का अवतार होने के कारण) भूषण को देख कर भृगु का स्मरण हो आने से यहाँ स्मृति अलंकार हुआ।

भ्रम

लक्षण—दोहा

आन बात को आन मैं, होत जहाँ भ्रम आय।
तासों भ्रम सब कहत हैं, भूषन सुकवि बनाय ॥ ७६ ॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य बात में अन्य बात का भ्रम हो वहाँ श्रेष्ठ कवि भ्रम अलकार कहते है।

सूचना—भूल से किसी वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रम या भ्राति है, इसी प्रकार जब उपमेय में उपमान का भ्रम हो तब भ्रम या भ्रातिमान अलकार होता है। इस अलंकार का 'रूपक' और 'रूपकातिशयोक्ति' से यह भेद है कि उक्त दोनों अलकारों मे उपमेय मे उपमान का आरोप वास्तविक नहीं होता, कल्पित होता है पर इस अलकार में वास्तव मे भ्रम हो जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

'पीय पहारन पास न जाहु' यों तीय बहादुर सो कहैं सोपै।
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि भूषन भौंसिला भूप के रोपै ॥
बन्दि सइस्तखँहू को कियो जसवन्त से भाऊ करन्न से दोपै।
सिंह सिवा के सुवीरन सो गो अमीर न बाचि गुनीजन घोपै ॥७७॥

शब्दार्थ—पीय = प्रिय, पति। सोपै = सोखैं, सौगन्ध खिला कर। तुम्है = तुमही। रोषै = रुष्ट होने पर। दोषै = दूषित कर दिया। गो = गया। बाचि = बचकर। घोषै = घोषणा करके कहते हैं, बार-बार कहते हैं। करणसिंह और भाऊ का उल्लेख छंद ३९ में देखिए। बहादुर = बहादुर खाँ (देखिए पृ० २४१) अथवा वीर।

अर्थ—स्त्रियाँ बहादुरखाँ को अथवा अपने वीर पतियों को सौगन्ध खिला खिला कर कहती हैं कि हे प्यारे! आप पहाड़ों (दक्षिणी पहाड़ों) के निकट न जाओ, क्योंकि हे नवाब साहब! भोंसिला राजा शिवाजी के क्रुद्ध होने पर आप को कौन बचाएगा अर्थात् कोई भी नहीं बचा सकता। उन्होंने शाइस्ताखाँ को भी कैद कर दिया तथा जसवन्तसिंह, करण-सिंह और भाऊ जैसे वीरों को भी परास्त करके दूषित कर दिया फिर आपकी क्या सामर्थ्य है। सब गुणवान(पण्डित लोग)बार-बार यही कहते हैं कि शिवाजी के वीर सरदारों से कोई भी अमीर उमरा अभी तक बच कर नहीं गया अर्थात् जितने भी अमीर उमराव दक्षिण में सूबेदारी को अथवा युद्ध करने के लिए गये वे सब वहाँ मारे गये, इस हेतु आप न जाइये।

विवरण—यहाँ शाइस्ताखाँ, करण और भाऊ की दुर्गति देख अथवा सुनकर शत्रु-स्त्रियों को अपने पतियों की सुरक्षितता में भ्रम होता है कि वे भी वहाँ जाकर न बचेंगे। किन्तु वास्तव में यह उदाहरण ठीक नहीं। इसका ठीक उदाहरण यह है—"फूल समझ कर शकुन्तला-मुख, भन भन उस पर भ्रमर करें।"

सन्देह

लक्षण—दोहा

कै यह कै वह यो जहाँ, होत आनि सन्देह।
भूषण सो सन्देह है, या मैं नहि सन्देह ॥७८॥

शब्दार्थ—कै = या। सन्देह = शक, भ्रम।

अर्थ—जहाँ 'यह है वा यह है' इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सन्देह अलंकार होता है, इसमें सन्देह नहीं।

सूचना—इसमे और भ्रम अलंकार में यह भेद है कि भ्रम में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है पर सन्देह में किसी पर निश्चय नहीं जमता, संदेह ही बना रहता है। धौं, किधौं, कि, कै, या, आदि शब्दों द्वारा सन्देह प्रकट किया जाता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

आवत गुसलखाने ऐसे कछू त्यौर ठाने,
जाने अवरंग जू के प्रानन को लेवा है।
रस खोट भए ते अगोट आगरे में सातौं,
चौकी डाँकि आन घर कीन्हीं हद रेवा है॥
भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो,
पातसाही चकता की छाती माँहि छेवा है॥
जान्यो न परत ऐसे काम है करत कोऊ,
गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है ॥७९॥

शब्दार्थ—त्यौर ठाने = त्योरी चढ़ाये हुए, क्रोधित हुए हुए। रसखोट = अनरस होना, बात बिगड़ जाना। अगोट = आड़, पहरा डाँकि = उलंघन कर, लाँघ कर। रेवा = नर्मदा नदी। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाहि = इच्छा करके। छेवा = छेद, साल। अवरंग = औरंगजेब

अर्थ—(शिवाजी जिस समय औरंगज़ेब से भेंट करने आये थे तब का वर्णन है) शिवाजी भ्रकुटी चढ़ाए हुए गुसलखाने * के निकट

---

* 'आवत गुसलखाने' का अर्थ एक-दो टीकाकारों ने 'गोसल-खाँ (औरंगजेब का एक अंग रक्षक) के आने पर' भी किया है। कह नहीं सकते कि औरंगजेब का इस नाम का कोई अंगरक्षक था या नहीं।

होकर (दरबार में) आते हुए ऐसे दिखाई दिए जैसे कि औरंगजेब का काल हो। बात बिगड़ने पर (क्योंकि औरंगजेब की ओर से मिर्ज़ा जयसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आप के साथ दरबार में प्रतिष्ठा-सहित संधि हो जायगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ बल्कि शिवाजी को कैद कर लिया गया) आगरे की पहरेदारों से रक्षित सातों चौकियों को लाँघ कर वे घर आगये और उन्हों ने अपने राज की सीमा रेवा (नर्मदा) को बनाया। (राज इतना बढाया कि नर्मदा तक सीमा पहुँच गई)। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने इस भाँति चारों दिशाओं का राज्य प्राप्त करने की इच्छा कर औरंगजेब के हृदय में छेद कर दिया (शिवाजी के राज्य की बढती देख औरंगज़ेब बडा दुखी हुआ)। वे ऐसा काम करते हैं कि पता नहीं लगता कि वे गंधर्व हैं, या देवता हैं, या कोई सिद्ध है अथवा शिवा जी है।

विवरण—यहाँ 'गधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है' वाक्य में संदेह प्रकट किया गया है।

शुद्ध-अपन्हुति (शुद्धापन्हुति)

लक्षण-दोहा

आन बात आरोपिए, साँची बात दुराय।
शुद्धापन्हुति कहत हैं, भूषन सुकवि बनाय ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—आरोपिए=स्थापन कीजिए, कहिए। दुराय=छिपा कर।

अर्थ—जहाँ सच्ची बात या वास्तविक वस्तु को छिपा कर किसी दूसरी बात अथवा वस्तु का उसके स्थान में आरोप किया जाय वहाँ सुकवि शुद्धापन्हुति अलंकार कहते है। 'अपन्हुति' का अर्थ ही 'छिपाना' है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चमकती चपला न, फेरत फिरंगै भट,
इन्द्र को न चाप, रूप बैरष समाज को।

धाए धुरवा न, छाए धूरि के पटल, मेघ[1]
गाजिबो न, बाजिबो है दुन्दुभि दराज को ॥
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
पिय भजौ, देखि उदौ पावस के साज को।
घन की घटा न,गज-घटनि सनाह साज,
भूपन भनत आयो सेन सिवराज को॥८१॥

शब्दार्थ—फिरगै=विलायती तलवार। वैरष=झडा। धुरवा=बादल। पटल=तह। दुन्दुभि=नगाड़े। दराज—बडे। पावस—वर्षा। सनाह—कवच।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी के भय से डरी हुई शत्रुओं की स्त्रियाँ वर्षा के साज (वर्षा होने के लक्षणो) को देखकर अपने पतियों से कहती हैं कि ये चपला (बिजली) नहीं चमकती हैं ये शूरवीरों की विलायती तलवारें है। यह इन्द्र धनुष नहीं है, यह सेना के झण्डों का समूह है। ये आकाश में बादल नहीं दौड़ रहे हैं वरन् धूल की तह की तह उड़ रही है (जो सेना के चलने पर उड़ती है) न यह बादलों की गर्जना है यह तो ज़ोर ज़ोर से नगाड़ों का बजना है। न यह मेघों की घटा है, यह तो हाथियों के झुण्ड और कवचों से सुसज्जित होकर शिवाजी की सेना आरही है अतः प्यारे! आप भागिए, नहीं तो खैर नहीं है।

• विवरण—यहाँ बिजली की चमक,इन्द्र धनुष,बादल, मेघ गर्जन, और घटाओं को छिपाकर उनके स्थान मे तलवारों,झण्डों,धूल की तह, दुन्दुभि-ध्वनि, हाथियों और कवचों से युक्त शिवाजी की सेना आदि असत्य बातों का आरोप किया है, अतः अपन्हुति अलकार है।

---

१ 'मेघ' के स्थान पर 'व्योम' पाठ भी है।

हेतु-अपन्हुति (हेत्वपन्हुति)

जहाँ जुगति सों आन को, कहिए आन छिपाय।
हेतु अपन्हुति कहत हैं, ता कहँ कवि समुदाय ॥ ८२ ॥

अर्थ—जहाँ युक्ति द्वारा किसी बात को छिपा कर दूसरी बात कही जाती है वहाँ कवि लोग हेत्वपन्हुति अलकार कहते हैं।

सूचना—शुद्धापन्हुति में जब कोई कारण भी कहा जाता है तब हेत्वपन्हुति होती है।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेस-भुजगिनी, भखति पौन अरि-प्रान ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—भुजगेस=शेष नाग। भुजगिनी=सर्पिणी। भखति=खाती है। किरवान=कृपाण, तलवार।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी के हाथों में जो वस्तु शोभा पाती है वह तलवार नहीं है बल्कि वह उसकी भुजा रूपी शेषनाग की सर्पिणी है जो शत्रुओं के प्राण रूपी वायु को पीकर जीती है। कहा जाता है कि साँप केवल वायु ही खाता है।

विवरण—यहाँ तलवार को तलवार न कह उसे युक्ति से सर्पिणी कहा है क्योंकि वह शत्रुओं के प्राण वायु को खाती है अत' हेत्वपन्हुति अलकार हुआ।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

भाखत सकल सिवाजी को करवाल पर,
भूपन कहत यह करि कै विचार को।
लीन्हो अवतार करतार के कहे ते काली,
म्लेच्छन हरन उद्धरन भुव भार को ॥
चडी ह्वै घुमडि अरि चड-मुड चाबि करि,
पीवत रुधिर कछु लावत न वार को।

निज भरतार भूत-भूतन की भूख मेटि,
भूपित करत भूतनाथ भरतार को ॥८४॥

शब्दार्थ—करतार=ईश्वर, ब्रह्मा। उद्धरन=उद्धार करने को। चडी=कालीदेवी। घुमडि=घुमड कर। चंड=प्रचंड, भयकर, अथवा एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। मुंड=सिर, अथवा एक दैत्य जो शुंभ का सेनापति था, और उसकी आज्ञा से भगवती के साथ लडा था और उनके हाथों से मारा गया था। चड और मुंड को मारने ही के कारण चडी देवी को चामुडा कहते है। भूतनाथ=भूतों के स्वामी महादेव, अथवा प्रजा के नाथ, प्रजापति शिवाजी।

अर्थ—सब लोग शिवा जी की तलवार को तलवार कहते हैं परन्तु भूषण कवि विचार कर कहते हैं कि यह तलवार नहीं है बल्कि भगवान की आज्ञा से म्लेच्छों को मारने और भूमि भार का उद्धार करने के लिए (भूमि के भार को हलका करने के लिए) कलियुग में कालीजी ने अवतार लिया है। [चण्डी ने चंड और मुड नामक राक्षसों को मारा था और वह अपने पति (शिवजी) के नौकर भूत-प्रेतों की भूख मिटाती हुई स्वयं उन्हें (शिवजी) को मुंडमाला से सुशोभित करती है ऐसा विश्वास है कि युद्ध में मरे हुए वीर पुरुषों के मुडों की माला शिवजी पहनते हैं] यह चंडी (तलवार) घूमघूम कर प्रचण्ड शत्रुओं के सिरों को खाती है और उनका रुधिर पान करने में देर नहीं करती (अथवा यह चंडी घूम घूम कर शत्रु रूपी चंड मुंड नामक राक्षसों को चबाती हुई तत्काल उनका रक्त पी लेती है) और अपने स्वामी शिवाजी के नौकरों और

---

* साहित्य सेवक कार्यालय के प्रति मे प्रथम पंक्ति में निम्नलिखित पाठ है— 'शिवाजी के कर किरवान है कहत सब।" और तृतीय पद के आरभ में "चडी है घुमडी" के स्थान पर 'खडि कै घुमंडि पाठ है। इन पाठान्तरों से अर्थ मे कोई विशेष भेद नही पडता।

प्रजा की भूख मिटाती है, तथा अपने मालिक प्रजापति शिवाजी को भूषित करती है, उनकी कीर्त्ति बढाती है (इस तलवार द्वारा युद्ध जीतकर ही शिवाजी दुश्मनों का खजाना और राज्य हरते हैं, जिससे उनकी प्रजा की भूख मिटती है) और इस तलवार द्वारा जितना ही शत्रुओं का नाश होता है उतनी ही शिवाजी की कीर्त्ति बढती है, इस कारण इसे चडी का अवतार कहना उचित ही है ।

विवरण—यहाँ दूसरे और तीसरे चरण में कारण कथन पूर्वक तलवार का निषेध करके उसे युक्ति से चडी (काली) सिद्ध किया गया है अत. हेतु अपह्नुति है ।

पर्य्यस्तापह्नुति

लक्षण—दोहा

वस्तु गोय ताको धरम, आन वस्तु मे रोपि।
पर्यस्तापह्नुति कहत, कवि भूषन मति ओपि ॥८५॥

शब्दार्थ—गोय=छिपा कर। रोपि=आरोपित कर। मतिओपि= चमत्कृतबुद्धि, चतुर अथवा बुद्धि को चमका कर अर्थात् बुद्धि-मत्ता से ।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को छिपा कर उसका धर्म किसी अन्य वस्तु में आरोपित किया जाय वहाँ चतुर कवि पर्यस्तापह्नुति अलंकार कहते है। अथवा बुद्धि का चमत्कार करके जब किसी वस्तु (उपमान) के सच्चे गुण का निषेध कर, उसके गुण या धर्म को अन्य वस्तु में स्थापित किया जाय तब पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है ।

सूचना—पर्यस्त का अर्थ "फैका हुआ" है। इसमे एक वस्तु का अर्थ दूसरी वस्तु पर फैका जाता है। जो धर्म छिपाया जाता है, वह प्रायः दुबारा आता है ।

उदाहरण—दोहा

काल करत कलि काल मे, नही तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिव सरजा करवाल ॥८६॥

शब्दार्थ—कलि काल=कलियुग । काल=मृत्यु, मौत ।

अर्थ—कलियुग में काल (मौत) तुर्कों का अंत नहीं करता किन्तु वीरकेसरी शिवाजी की तलवार उनका अंत(नाश)करती है। अर्थात् कलियुग में तुर्क मौत से नही मरते अपितु शिवाजी की तलवार से मरते है ।

विवरण—यहाँ'काल'में 'काल करने' के धर्म का निषेध करके शिवाजी के करवाल (तलवार) मे उसका आरोप किया गया है ।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरे ही भुजन पर भूतल को भार,
कहिबे को सेस-नाग दिगनाग हिमाचल है ।
तेरो अवतार जग पोसन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है ॥
साहिन मे* सरजा समत्थ सिवराज,
कवि भूपन कहत जीबो तेरोई सफल है ।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल,
बिन काज होत काल बदनाम धरातल है ॥८७॥

शब्दार्थ—दिगनाग=दिग्गज,दिशाओं के हाथी। कहा जाता है कि इन्होंने पृथिवी को उठाया हुआ है। अमल=दखल,अधिकार।

अर्थ—(हे शिवाजी !) समस्त पृथ्वी का भार आप ही की भुजाओं पर है । शेषनाग,दिग्गज और हिमाचल तो कहने मात्र के लिए ही है, अर्थात् उन पर पृथ्वी का भार नहीं है । आपका अवतार दुनियाँ के पालन पोषण के हेतु हुआ है, इसमें करतार (ब्रह्मा) का कोई दखल नहीं है । भूषण कवि कहते है कि हे बादशाहों मे वीरकेसरी महाशक्तिशाली शिवाजी ! वास्तव में आपका जीना ही सफल है । आपकी तलवार म्लेच्छों को मारती है, मृत्यु बेचारी तो व्यर्थ ही दुनियाँ में बदनाम होती है ।

---

* कुछ प्रतियों मे "साहिन मे" के स्थान पर "साहितनै" पाठ भी है जिसका अर्थ है शाहजी का पुत्र ।

विवरण—यहाँ 'शेषनाग' और 'दिग्नाग' के पृथ्वी का धारण करना रूप धर्म को निषेध कर उस (धर्म) का शिवाजी में आरोप किया गया है। पुन ब्रह्मा के धर्म का निषेध कर शिवाजी मे उसका आरोप किया गया है। अन्तिम चरण में फिर मृत्यु के धर्म का उसमे निषेध कर शिवाजी के करवाल मे उसका आरोप किया है।

भ्रान्तापह्नुति

लक्षण—दोहा

संक आन को होत ही, जहँ भ्रम कीजै दूरि।
भ्रान्तापह्नुति कहत हैं, तहँ भूपन कवि भूरि ॥८८॥

शब्दार्थ—संक=शंका। भूरि=बहुत।

अर्थ—किसी अन्य बात की शंका होते ही जहाँ (सच्ची बात कह कर) भ्रम दूर कर दिया जाय वहाँ कवि भ्रान्तापह्नुति अलंकार कहते है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा के भय सों भगाने भूप,
मेरु मैं लुकाने ते लहत जाय ओत हैं।
भूपन तहाऊँ मरहट्टपति के प्रताप,
पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥
'सिव आयो सिव आयो' संकर के आगमन,
सुन कै परान ज्यों लगत अरि गोत हैं।
'सिव सरजा न, यह सिव है महेश' करि,
यों ही उपदेस जच्छ रच्छक मे होत हैं॥८९॥

शब्दार्थ—ओत=स० अवधि, कष्ट की कमी (आराम)। कल=चैन। मरहट्टपति=शिवाजी। उदोत=उदय, प्रकट। परान=भाजड़, दौड़। अरिगोत=शत्रुकुल। जच्छ=यक्ष, कुबेर के सेवक।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी के भय से शत्रु राजा भाग कर

मेरु पर्वत में जा छिपे और वहाँ जाकर छिपने से वे कुछ आराम पाते हैं। लेकिन भूषण जी कहते हैं कि वहाँ भी उन्हें महाराष्ट्रपति के प्रताप के कारण पूरा चैन नहीं मिलता अतएव वहाँ बड़ा तमाशा हुआ करता है। महादेवजी के वहाँ आने पर जब "शिव आये, शिव आये" ऐसा शब्द वे (शत्रु राजा) सुनते है तो वे दौडने लगते है, उनमें गड़बड़ मच जाती है (वे समझते हैं कि शिवाजी आगए)। (इस प्रकार उन्हें भागता हुआ देख) वहाँ के यक्ष यह कह कर कि 'यह वीर केसरी शिवाजी नहीं हैं अपितु शिव (महादेव) हैं' उनका भ्रम मिटा, इस आपत्ति के समय उनके रक्षक से हो जाते हैं।

विवरण—यहां शत्रु राजाओं को 'शिव' नाम से वीर केसरी शिवाजी का भ्रम उत्पन्न हो गया था वह "सिव सरजा न, यह सिव है महेस" यह सत्य बात कह कर मिटाया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
"आवत है सरजा सम्हरौ", यक ओर ते लोगन बोल जनाए॥
भूषन भो भ्रम औरग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धाय कै "सिंह" कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए॥९०॥

शब्दार्थ—आलमगीर=औरंगजेब। धाक=आतंक। धुकाए= घिरे, रोब मे आये। धाकधुकाए=आतक से घबराए हुए। करौल= शिकारी, जो लोग सिंह को उसकी मॉद से हॉक कर लाते है।

अर्थ—एक समय बादशाह औरगज़ेब समस्त सेना सजाकर शिकार खेलने गया। वहाँ (शिकार के समय) एक ओर से लोगों ने आवाज दी—'सँभलिए सरजा, (सिंह) आता है।' भूषण कवि कहते हैं कि भौंसला-नरेश शिवाजी के आतंक से घबराये हुए औरंगज़ेब को यह सुन कर शिवाजी का भ्रम हो गया (वह सरजा का अर्थ शिवाजी समझा) और वह मूर्छित होगया।

तव शिकारियो ने शीघ्रता से उसके निकट जाकर उसे 'शिवाजी नहीं, अपितु' सिंह है' ऐसा समझा कर मूर्छित पडे हुए औरंगजेब को उठाया।

विवरण—यहाँ औरगजेब सरजा का अर्थ 'शिवाजी' समझा था, परन्तु शिकारियों ने सत्यार्थ 'सिह' कह कर भ्रम दूर किया।

छेकापह्नुति

लक्षण—दोहा

जहाँ और को सक करि, साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं, भूपन कवि अवदात ॥९१॥

शब्दार्थ—संक करि=शका करके। अवदात=शुद्ध, श्रेष्ठ। कवि अवदात=श्रेष्ठ कवि।

अर्थ—जहाँ किसी दूसरी बात की शंका करके सची बात को छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि छेकापह्नुति अलंकार कहते हैं।

सूचना—यह अलकार भ्रान्तापह्नुति का ठीक उलटा है। भ्रान्तापह्नुति मे सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है, किन्तु इसके विपरीत चालाकी से जब सत्य को छिपाकर और असत्य कहकर शका दूर करने की चेष्टा की जाती है तब छेकापह्नुति अलकार होता है। शुद्धापह्नुति में जो असत्य का आरोप होता है वह किसी गुप्त बात को छिपाने के लिए नहीं होता। यहाँ एक बात कह कर उससे मुकर जाना होता है, अत इसे मुकरी भी कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

तिमिर-बस-हर अरुन-कर आयो सजनी भोर?
'सिव सरजा', चुप रह सखी, सूरज-कुल-सिरमौर ॥९२॥

शब्दार्थ—तिमिर=अंधकार, तैमूरलग। तिमिरबंसहर=अंधकार को नष्ट करने वाला सूर्य, अथवा तैमूरलग के वंश (मुगलों) को नष्ट करने वाला शिवाजी। अरुनकर=लाल किरनों वाला सूर्य, लाल

हाथों वाला (मुगलों के रक्त से लाल हाथों वाला)। भोर= प्रातःकाल। सूरज कुल सिरमौर=वंश में श्रेष्ठ सूर्य, सूर्य वंश में श्रेष्ठ।

अर्थ—हे सखि तैमूरलंग के वंश को नष्ट करने वाला (अँधेरे को नष्ट करने वाला) और लाल हाथों वाला (लाल किरणों वाला) प्रात होते ही आया। क्या सखि 'वीरकेसरी शिवाजी ?' नहीं सखि, चुप रह मैं तो सूर्य की बात करती हूँ।

विवरण—कोई स्त्री ऐसी शब्दावली में अपनी सखी से बात करती है जिससे शिवाजी और सूर्य दोनों पक्षों मे अर्थ लगता है और फिर वह 'सिवसरजा' की सच्ची बात छिपाकर सूर्य की झूठी बात कहती है, अतः यहाँ छेकापह्नुति है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

दुरगहि बल पजन प्रबल, सरजा जिति रन मोहिं।
औरँग कहै देवान सों, सपन सुनावत तोहिं ॥९३॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो, "सरजा सिव महाराज" ?
भूपन कहि चकता सकुचि, "नहिं सिकार मृगराज" ॥९४॥

शब्दार्थ—देवान=दीवान, मन्त्री। 'सरजा सिव महाराज'= क्या वीरकेसरी शिवाजी महाराज ! मृगराज=शेर।

अर्थ—औरंगज़ेब अपने वज़ीरों से कहता है कि मैं तुम्हें अपना सपना सुनाता हूँ (स्वप्न में देखा) कि दुर्गों के बल से (या दुर्गा के बल से—सिंह दुर्गा का वाहन है, अतः उसे दुर्गा की कृपा प्राप्त है) और अपनी प्रबल भुजाओं से (अपने प्रबल पंजों से)सरजा ने मुझे रण में जीत लिया। यह सुनकर वज़ीरों ने पूछा—'क्या सरजा (वीरकेसरी) शिवाजी महाराज ने ?' भूषण कहता है कि तब लज्जा से सकुचा कर (झेंप कर) औरंगज़ेब बोला—नहीं, (युद्ध में शिवाजी ने मुझे नहीं जीता) शिकार में मृगराज (सिंह) ने मुझे जीत लिया।

विवरण—यहाँ भी शब्दों के हेर फेर से सिंह की बात कह कर असल बात शिवाजी को छिपा दिया है अतः यहाँ छेकापह्नुति अलकार है ।

कैतवापह्नुति

लक्षण—दोहा

जहँ कैतव, छल, व्याज, मिस, इन सो होत दुराव ।
केतवऽपह्नुति ताहि सों, भूपन कहि सति भाव ॥९५॥

शब्दार्थ—कैतव=छल । सति भाव=सत्य भाव से, वस्तुत ।

अर्थ—जहाँ किसी वात को कैतव, छल, व्याज और मिस आदि शब्दों के द्वारा छिपाया जाय वहाँ भूपण कवि केतवापह्नुति अलंकार मानते हैं ।

सूचना—यह भी शुद्धापह्नुति का एक भेद है, पर अपह्नुति के अन्य भेदों में कोई न कोई नकारात्मक शब्द आकर वात को छिपाने में मदद पहुँचाता है, परन्तु जब ऐसा नकारात्मक शब्द न आवे और 'बहाने से', 'मिस' 'व्याज से' आदि शब्दों के द्वारा सत्य वात को छिपा कर असत्य की स्थापना की जाती है तब कैतवापह्नुति अलकार होता है । अत इस अलकार मे ऐसे शब्दों का आना जरूरी है ।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

साहितनै सरजा खुमान सलहेरि पास,
कीन्हो कुरुखेत खीझि मीर अचलन सो ।
भूपन भनत वलि करी है अरीन घर,
धरनी पै डारि नभ प्राण दै चलन सो ॥
अमर के नाम के वहाने गो अमरपुर,
चन्दावत लरि सिवराज के दलन सों ।

कालिका प्रसदा के बहाने ते खवायो महि,
बाबू उमराव राव पसु के छलन सो ॥९६॥ *

शब्दार्थ—सलहेरि=यह किला सूरत के पास था। इसे शिवाजी के प्रधान मोरोपतने १६७१ ई० मे जीत लिया था। सन् १६७२ मे दिल्ली के सेनापति दिलेरखॉ ने इसे घेरा और शिवाजी ने मोरोपंत और प्रतापराव गूजर के आधिपत्य मे एक वृहत् सेना उस से लडने को भेजी। दिलेरखॉ स्वयं तो न लडा पर उसने इखलासखॉ को एक बडी सेना सहित भेजा। इस भयङ्कर युद्ध मे मुगलों को बडी हानि पहुँची और उनके मुख्य सेनानायको मे से २२ मारे गये और अनेक बन्दी हुए एव समस्त सेना तितर-बितर हो गई। इसीलिए भूषण ने कई स्थानों पर

* इस कवित्त के दूसरे और चौथे चरणों का पाठ कहीं कहीं इस प्रकार भी मिलता है :—

भूषन भनत करि कूरम बहानो,
रन-धरनी सों जान घर प्रान दै बलन सों।
सरजा बचायो भजे काजी के बहाने, बाबू
राव, उमराव ब्रह्मचारी के छलन सों।

इस पाठ का अर्थ इस प्रकार होगा—

शब्दार्थ—कूरम=कछवाहे राजा। रन-धरनी=रण क्षेत्र। काजी=मुसलमान न्याय करनेवाले हाकिम। राव=छोटे राजा। उमराव=बड़े सरदार। छलन=बहाने।

अर्थ—(२) सेना मे प्राण देने के (भय के) कारण कछवाहे राजा घर जाने का बहाना कर के युद्ध भूमि से चले गये।

(४) काजी के बहाने से भागने वालों को शिवाजी महाराज ने बचा दिया। बाबू, राव और उमराव 'ब्रह्मचारी' (बन कर) के बहाने से भाग गये।

इसका वर्णन किया है । कुरुखेत कीन्हो=कुरुक्षेत्र सा किया, घोर युद्ध किया। बलि करी=बलि दे दी। अरीन धर=शत्रुओं को पकड कर। धरनी पै डारि नभ प्रान दै बलन सों=बल से (जबर्दस्ती उन शत्रुओं को) पृथ्वी पर पटक कर उनका प्राण आकाश को दे दिया (उन्हे मार डाला) अमर=अमरसिंह चन्दावत नाम का एक बड़ा सरदार भी सलहेरि के युद्ध मे मारा गया था, पर इतिहास में इसका पता नहीं चलता, भूषण ने उसका कई स्थानो पर नाम लिया है । कालिका प्रसाद=काली (देवी) की भेंट ।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीरकेसरी चिरजीव शिवाजी ने अटल (दुर्जय) अमीरो से नाराज होकर सलहेरि के पास कुरुक्षेत्र मचा दिया अर्थात् घमासान युद्ध किया। भूषण कवि कहते है कि उन्होंने सारे शत्रुओं को जबर्दस्ती पकड पकड कर उनकी बली दे दी, (उन्हें) पृथ्वी पर पटक कर उनके प्राण आकाश को दे दिये (उन्हें मार डाला)। अमरसिंह चन्द्रावत उनकी सेना से युद्ध कर अपने नाम (अमर) के बहाने अमरपुर (देवलोक) चला गया। और कालीजी के प्रसाद के बहाने से बावू, उमराव तथा सरदार रूपी पशुओं को उन्होंने पृथिवी को खिला दिया ।

उत्प्रेक्षा

लक्षण—दोहा

आन बात को आन मैं, जहँ सम्भावन होय ।
वस्तु हेतु फल युत कहत, उत्प्रेक्षा है सोय ॥ ९७ ॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की जाती है, वहाँ वस्तु, हेतु या फलोत्प्रेक्षा अलकार होता है । इसके वाचक शब्द है—मनु, जनु, मानो, मनहु, आदि।

सूचना—उत्प्रेक्षा (उत्+प्र+ईक्षन) शब्द का अर्थ है "बल

पूर्वक प्रधानता से देखना" । अतः इसमें कल्पना शक्ति के जोर पर कोई उपमान कल्पित किया जाता है ।

वस्तूत्प्रेक्षा

उदाहरण—मालती सवैया

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयो ।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेटिवे को निरसंक पधारयो ॥
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारयो ।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछारयो ॥९८॥

शब्दार्थ—दानव=राक्षस (यहाँ अफजलखाँ से अभिप्राय है) जावली=वह स्थान, जहाँ पर शिवाजी ने अफजलखाँ को बीछू शस्त्र से मारा था दीह=दीर्घ, बड़ा । भयारो=भयंकर । भारयो= भरा हुआ । घाय=घाव, जख्म । नरिन्द=(सं० नरेन्द्र) राजा । अरिन्द=प्रबल शत्रु । मयन्द=(सं० मृगेन्द्र) सिंह । गयन्द (सं० गजेन्द्र) हाथी ।

अर्थ—जब बड़े अभिमान में भरा हुआ महाभयंकर दानव (अफ़ज़ल खाँ) धोखा करके (छल करने की इच्छा से) जावली स्थान पर आया, भूषण कहते हैं कि, तब बाहुबली शिवाजी बिना किसी शंका के (बेधड़क) उससे मिलने को गये । (जब उसने धोखे से शिवाजी पर तलवार का वार करना चाहा तो) शिवाजी ने बघनखे के घाव से उसे नीचे गिरा दिया, (और शीघ्र ही)बीछू शस्त्र (बघनखा) के घाव से गिरे हुए अफजलखाँ के ऊपर ही वे दिखाई देने लगे । राजा शिवाजी अपने शत्रु (अफ़ज़लखाँ) को ऐसे दबाकर बैठे कि मानो किसी सिंह ने हाथी को पछाड़ा हो (और उस पर बैठा हो) ।

विवरण— यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है । कवि का तात्पर्य पछाड़े हुए अफजलखाँ पर शिवाजी के बैठने का वर्णन करना है,

परन्तु अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक हाथी पर बैठे हुए सिंह उपमान की ओर ले जाता है जिससे कि पाठक शिवाजी के उस बैठने की शोभा का अनुमान कर सकें।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानौ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिरयो उदैभानौ॥
भूपन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ।
ऊँचै सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ॥६९॥

शब्दार्थ—निसाँक=निःशंक। गढसिंह=सिंहगढ़। सुहानौ=सुहावना, सुन्दर। राठिवरो=राठौर क्षत्रिय। उदैभानो=उदयभानु, एक वीर राठौर क्षत्रिय जो औरंगज़ेब की ओर से सिंहगढ़ का किलेदार था। लोथिन=लाशों। मसानो=श्मशान। सिंहगढ़ का पहला नाम कोंडाणा था। सन् १६४७ ई० में शिवाजी ने इसे जीत कर इसका नाम सिंहगढ़ रखा। जयसिंह से संधि करते समय शिवाजी को यह किला, और बहुत से किलों के साथ, औरंगजेब को देना पड़ा। औरंगजेब की कैद से छूटने के बाद, सन् १६७० में शिवाजी ने तानाजी मालसुरे को सिंहगढ़ वापिस लेने के लिए भेजा। अँधेरी रात में तानाजी और उसके भाई सूर्याजी ने धावा किया। घमासान युद्ध हुआ। औरंगजेब की तरफ से उदयभानु राठौर किलेदार था। इस युद्ध में उदयभानु और तानाजी दोनों मारे गए और किला शिवाजी के हाथ आया। इसी घटना का यहाँ वर्णन है।

अर्थ—शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने निःशंक हो(निर्भयता पूर्वक) सिंहगढ़ को रात में युद्ध करके विजय कर लिया। समस्त राठौर क्षत्रिय(जो किले में थे)मारे गए और लड़ करके राठौर सरदार उदयभानु भी

इस युद्ध में गिर गया। भूषण कवि कहते हैं कि ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि मानों पृथ्वी तल ही लोथों (लाशों) से घिरा हुआ श्मशान होगया अर्थात् पृथ्वीतल ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो लोथों से घिरा हुआ श्मशान हो। (लाशों के गिरने और लाल लाल खून की धारा के बहने से किले के) ऊँचे ऊँचे सुन्दर छज्जों पर ऐसी शोभा दिखाई देने लगी मानो प्रभातकाल की प्रभा (छटा, लालिमा) फैली हो।

विवरण—यहाँ लाशों से पटे हुए स्थान को श्मशान के समान और रक्त से रंजित छज्जों को प्रभात की लालिमा से युक्त कल्पित किया गया है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

सूचना—अलवर-राज्य-निवासी राजकवि जगदेव जी के मतानुसार यहाँ 'छत्तज छिछ छटा उचटी प्रकटी परभा परभात की मानो' यह भी पाठ है। इस पाठ को मानने पर उपरिलिखित अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है। यथा—छत्तज (रक्त) की छिछ (छींटों) की ऐसी शोभा बनी मानो प्रात काल की लालिमा हो।

विशेष—यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह युद्ध अँधेरी रात में हुआ था। ऐसे समय में रक्त की लालिमा की झलक का प्रकट होना असंभव है। इतिहास में लिखा है कि जब यह युद्ध हुआ था तब किले में आग लगा दी गई थी।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दुरजन-दार भजि भजि वेसम्हार चढ़ी,
उत्तर पहार डरि सिवजी नरिन्द ते।
भूपन भनत, विन भूपन वसन, साधे
भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दते॥
वालक अयाने वाट वीच ही विलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरविन्द ते।

दृग जल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो,
दूजो सोत तरनि तनूजा कौ कलिन्द ते ॥१००॥

शब्दार्थ—दुरजन=खल, नीच, यहाँ मुसलमान शत्रुओं से तात्पर्य है। बेसम्हार=बेशुमार, अनगिनत अथवा बिना सँभाल के (अस्तव्यस्त)। बसन=वस्त्र। साधे=साधन किए हुए, सहते हुए। नाह=पति। अयाने=(स० अज्ञानी) अबोध। बिलाने=विलीन होगए, खो गए। अरविन्द=कमल। कलिन्द=वह पहाड़ जिस से यमुना जी निकली हैं, इसी से यमुना जी को कालिन्दी कहते हे।

अर्थ—महाराज शिवाजी के भय से शत्रुओं की अनगिनत (अथवा अस्त व्यस्त हुई) स्त्रियाँ भाग भाग कर उत्तर दिशा के पहाड़ों (विन्ध्याचल तथा हिमालय) पर चढ़ गईं। भूषण कवि कहते है कि वे न अपने गहनों कपडों को सम्हालतीं थीं और न उन्हें भूख प्यास थी (वे भूख प्यास को साधे थीं) और वे अपने अपने पतियों को कोसती जाती थी (कि उन्होंने नाहक ही शिवाजी से शत्रुता की)। उनके अबोध बच्चे मार्ग ही में (घबराहट के कारण) खो गये और स्वच्छ तथा सुन्दर कमलों से भी कोमल उनके मुख मुर्झा गये। उनकी आँखों से निकल कर कज्जल मिश्रित आँसू ऐसे बह चले मानो कलिंद पर्वत से यमुना का दूसरा स्रोत निकला हो। कवियों ने यमुना के जल का रंग काला और गंगा-जल का रंग सफेद माना है। आँखों से निकला जल भी काजल से मिला होने के कारण काला है, और स्त्रियाँ पहाड़ों पर तो चढी हुई ही हैं। काला जल ऐसे निकलने लगा मानो कलिन्द पहाड से यमुना जी का स्रोत।

विवरण—यहाँ नेत्रों के काले जल से कालिन्दी के द्वितीय स्रोत की तदात्म्य सभावना की है अत वस्तूत्प्रेक्षा है।

चौथा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज तव, सुघर धवल धुव किति।
छवि छटान सो छुवति-सी छिति-अंगन दिग-भित्ति ॥१०१॥

शब्दार्थ—ध्रुव=ध्रुव, अचल। कित्ति=(सं० कीर्ति) बड़ाई दिगभित्ति=दिशा रूपी भीत ।

अर्थ—हे महाराज शिवराज, तेरी सुंदर, शुभ्र (सफेद) और निश्चल कीर्ति अपनी कान्तिरूपी छटा से पृथ्वी रूपी आँगन और आकाशरूपी दीवारों को मानो छूरही है, पोत रही है। कई पाठों में 'छुवति' के स्थान पर 'छवति' पाठ है, वहाँ अर्थ इस प्रकार होगा—हे महाराज शिवराज तेरी सुंदर शुभ्र और निश्चल कीर्ति पृथ्वी रूपी आँगन और दिशा रूपी दीवारों पर अपनी सुन्दरता से छा रही है, छत डाल रही है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश को चारो ओर फैलते देखकर यह कल्पना की गई है कि मानों उनका यश पृथ्वी रूपी आँगन और दिशा रूपी दीवारों पर सफेदी कर रहा है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है। वस्तूत्प्रेक्षा के दो भेद होते हैं, एक उक्तविषया (जहाँ विषय कहकर फिर कल्पना की जाय) दूसरा अनुक्तविषया (जहाँ कल्पना का विषय न कहा गया हो)। इस दोहे में अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है, क्योंकि यहाँ (कीर्त्ति के फैलने का) कथन नहीं किया गया।

हेतूत्प्रेक्षा

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो कारतलबखाँ मानहुँ अमाल है।
भूषन भनत लूट्यो पूना मे सइस्तखान,
गढ़न मैं लूट्यो त्यो गढोइन को जाल है॥
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥१०२॥

शब्दार्थ—खानदौरा=इसे शाहजहाँ ने १६३४ ई० में दक्षिण का सूबेदार नियत किया था, इस का नाम नौशीरखॉ था, खान-दौरा इसकी उपाधि थी। सन १६५७ में इसके साथ शिवाजी का युद्ध हुआ था जिसमें मराठों के पैर उखड़ गए, पर मुगल सेना इतनी थक गई थी कि उसने शिवाजी का पीछा न किया। इतने में बरसात प्रारम्भ हो गई, फिर मुगल सेना कुछ न कर सकी। सफजग=सफदरजग नामक दिल्ली का एक सरदार अथवा यह किसी सरदार की उपाधि होगी। फारसी मे सैफजग का अर्थ युद्ध की तलवार होता है। कारतलबखॉ=यह शाइस्ताखॉ का सहायक सेनापति था। शाइस्ताखॉ ने पूना मे आने के बाद इसे शिवाजी को पकड़ने के लिए सेनासहित सह्याद्रि से राजगढ़ को भेजा, और कल्याण आदि स्थान जीतने का काम इसे सौंपा। यह सेना सहित लोहगढ के पास के दाक्षिणोत्तर मार्ग से एक पग-डण्डी से पर्वत के नीचे उतरा। जहाँ पगडण्डी खतम होती थी, वहाँ बड़ा भारी जगल था। जब थकी-मॉदी मुगलसेना अम्बरखिंडी के पास पहुँची तब मराठों ने उसे घेर लिया। अन्त में बहुत सा धन लेकर मराठों ने उन्हें जीवनदान दिया। यह घटना लगभग १६६१ की है। अमाल=(अरबी अमल) आमिल, अधिकारी, हाकिम। हेरि हेरि=देख देख कर, खोजकर। गढोइन=गढ़पति। रिसाल—(अ० इरसाल) खिराज, कर।

अर्थ—शिवाजी ने महाबली खानदौरा और सफ़दरजग को लूट लिया। कारतलबखाँ को भी खूब लूटा। भूषण कवि कहते हैं कि पूना में शाइस्ताखाँ को भी लूट लिया और ऐसे ही शत्रुओं के जितने किले थे उनके सारे किलेदारों को भी लूट लिया। और सलहेरि के रणस्थल

में खोज खोज कर सरदारों को कुचल डाला और चारों ओर से भयंकर सेना से भी सब कुछ छीन लिया। (यह समस्त लूट की सामग्री ऐसी मालूम होती थी) मानो शिवाजी ही शासक हैं और औरंगज़ेब उनसे डर कर अमीर उमरावों के साथ घोड़े और हाथियों का ख़िराज भेजता है। अर्थात् औरंगज़ेब अपनी सेना चढ़ाई के लिए नहीं भेजता अपितु शिवाजी को शासक समझ उनके डर से ख़िराजरूप में भेजता है।

विवरण—जहाँ अहेतु को (अर्थात् जो कारण न हो, उसे) हेतु मान कर उत्प्रेक्षा की जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यहाँ औरंगजेब के बार बार सेना भेजने का कारण शिवाजी को खिराज भेजना बताया गया है, जो कि असली कारण नहीं। अतः अहेतु को हेतु मानने से यहाँ हेतु-उत्प्रेक्षा अलंकार है।

फलोत्प्रेक्षा

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूपन भनत सिवराज तव कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिवे को काँधियतु है॥
इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार याते
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायबे को
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥१०३॥

शब्दार्थ—नाधियतु=जोडते है। काँधियतु=ठानते है, स्वीकार करते हैं। उपेन्द्र=विष्णु। पायतर=पैरों के तले, चरणाश्रय में। पाग=पगड़ी। कोट=किला।

अर्थ—मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित राजा लोग जिस के पास

शरणार्थ जाते हैं वे तो उन्हें अपनी शरण में रख नहीं सकते (उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वे उनके शत्रुओं से लडकर उन्हें बचा सकें), इस हेतु हे शिवाजी, वे (शरणार्थी) आप से अटल प्रीति जोडते है। अतएव भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपके यश के समान अन्य राजाओं के यश का वर्णन करना स्वीकृत नहीं किया जा सकता। आप इन्द्र के छोटे भाई विष्णु के अवतार हैं (हिन्दुओं की रक्षा करने के कारण विष्णु का अवतार कहा है) इस लिए (दुखी) लोग आपके बाहुबल का आश्रय ले अपनी राय निश्चित करते हैं, (आगे क्या करना है उसका निश्चय आपके बल पर करते है) । निडर बसने के लिए शरण आये लोगों के सिर पर आप पगडी क्या बाँधते हैं मानों उनके निर्भय होकर रहने के लिए क़िले ही बनवा देते हैं।

विवरण —यहाँ पगड़ी बाँधने मे किले बनवाने की तथा फल-रूप निडर होने की उत्प्रेक्षा की गई है अतएव यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

दुवन सदन सब के बदन, 'सिव सिव' आठौ याम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ॥१०४॥

शब्दार्थ—दुवन=(स० दुर्मनस्) शत्रु। बदन=मुख।

अर्थ—शत्रुओं के घरों में सब के मुख से आठों पहर (रात-दिन) 'शिव शिव' शब्द निकलता है(शिवाजी के भय से शत्रु लोग रात-दिन उनकी चर्चा करते रहते हैं) इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो तुर्क भी रक्षा के लिए शिव (महादेव) का नाम जपते है।

विवरण—हिन्दूशास्त्रानुसार शिव के नाम के जाप से प्राणरक्षा होती है, परन्तु मुसलमानों का शिव का जाप करना अफल को फल मानना है। साथ ही यहाँ शिवनामोच्चारण भय के कारण है न कि

अपनी रक्षा के हेतु, किन्तु इस फल के अर्थ उस का कथन करना ही फलोत्प्रेक्षा है।

गम्योत्प्रेक्षा

लक्षण—दोहा

मानो इत्यादिक वचन, आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गम, गुप्त सो, भूषन भनत अमौर॥ १०५॥

शब्दार्थ—अमार=अमूल्य।

अर्थ—'मानो' 'जनु' इत्यादि उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द जहाँ नहीं आते वहाँ भूषण कवि अमूल्य गम्योत्प्रेक्षा या गुप्तोत्प्रेक्षा अलंकार मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

देखत ऊँचाई उदरत पाग, सूधी राह
द्योसहू मैं चढ़ै ते जे साहस निकेत हैं।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन,
सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं॥
सावन भादों की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि
दुग्ग पर जात मावली दल सचेत हैं॥
भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी, तेरे
परताप रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं॥१०६॥

शब्दार्थ—उदरत=गिरती है। द्योस=दिवस, दिन। परनाला= एक किले का नाम जो आजकल के कोल्हापुर से २२ मील उत्तर पश्चिम की ओर था, जिसे १६५९ सन् के अन्त में शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया था, परन्तु मई १६६० में बीजापुर की ओर से सिद्दी जौहर ने इसे शिवाजी को पकड़ने के विचार से आ घेरा पर वह सफलमनोरथ न हुआ। किला उसे मिल गया, पर शिवाजी वहाँ से

निकल चुके थे। इसके बाद शिवाजी की बीजापुर वालों से संधि हो गई, अत. यह किला बीजापुर वालों के हाथ में ही रहा। सन् १६७२ मे अली आदिलशाह की मृत्यु होगई। उसके बाद १६७३ मे शिवाजी के सेनापति कान्होजी अँधेरी रात्रि में कुल ६० सिपाहियों के सहायता से इस किले पर चढ गये। किलेदार भाग गया और यह किला शिवाजी के हाथ में आगया। कुहू=अमावस्या की रात। मावली=एक पहाड़ी देश के रहने वाले लोग जो शिवाजी के पैदल सनिक थे। उज्यारी=उजाला, प्रकाश।

अर्थ—जिन किलों की ऊँचाई देखने में पगडी गिर पडती है, अर्थात् जो किले इतने ऊँचे हैं कि उनकी चोटी को देखने के लिए इतना सिर झुकाना पड़ता है कि पगडी गिर पडती है और जिन पर दिन में भी साधी राह से वे ही व्यक्ति चढ पाते हैं जो साहसनिकेत (अत्यधिक साहसी) हैं, हे शिवाजी, तेरा हुक्म पाकर होशियार मावली सेना पैदल ही सावन और भादों की अमावास्या की घोर अँधेरी रात मेंउन सलहेरि और परनाऊे के किलों पर चढ जाती है, और उन को ऐसे जीत लेती है मानो वे समतल खेत हों। भूषण कवि कहते हैं कि इतनी आसानी से ऐसी घोर अँधेरी रात्रि में उनके किले पर चढ जाने की बात को मैंने सोचा तो जान पाया कि (मानो) तेरे प्रताप रूपी सूर्य के उजियाले में ही वे किले जीत पाते हैं।

विवरण—यहाँ द्वितीय चरण मे तो 'जनु' वाचक आया है परन्तु चौथे चरण में जनु आदि कोई प्रसिद्ध वाचक नहीं है। अतः गम्मोत्प्रेक्षा है। यदि भूषण इस पद मे 'वात मैं विचारी' का प्रयोग न करते, जो एक प्रकार का वाचक ही है, तो यह उदाहरण अधिक उपयुक्त होता।

दूसरा उदाहरण—दोहा

और गढ़ोई नदीनद, सिव गढ़पाल दरयाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर ते, मिलत आनि यहि भाव ॥१०७॥

शब्दार्थ—गढोई=छोटे छोटे किलों के गढपति। गढपाल=गढपति। दरयाव=दरिया, नदी (फारसी में समुद्र)।

अर्थ—छोटे छोटे किलेदार शिवाजी की अधीनता सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं और उन से मिल जाते हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो और जितने भी छोटे छोटे किलों के स्वामी है वे सब नदी नाले हैं, गढ़पति शिवाजी ही समुद्र हैं। इसीलिए वे छोटे छोटे किलेदार चारों ओर से दौड़े दौड़े आकर इसी प्रकार शिवाजी से मिलते हैं जैसे नदी नाले समुद्र में गिरते है।

विवरण—यहाँ वाचक 'मानो' शब्द नहीं है अतः गम्योत्प्रेक्षा है।

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी की अत्यत प्रशसा के लिए बढा चढा कर लोक-सीमा के बाहर की बात कही जाय वहाँ अतिशयोक्ति, अलकार होता है। अतिशयोक्ति के पाँच मुख्य भेद हैं—रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चचलातिशयोक्ति, अत्यन्तातिशयोक्ति। भाषा-भूषण में सापह्नवातिशयोक्ति, और संबंधातिशयोक्ति दो भेद और दिये है। कहीं-कहीं इससे अधिक भेद भी मिलते है।

१ रूपकातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

ज्ञान करत उपमेय को, जहँ केवल उपमान।
रूपकातिसय-उक्ति सो, भूषण कहत सुजान ॥ १०८ ॥

अर्थ—जहाँ केवल उपमान ही उपमेय का ज्ञान कराये अर्थात् उपमान ही के कथन से उपमेय जाना जाय वहाँ चतुर लोग रूपकातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्तमनहरण

वासव से विसरत विक्रम की कहा चली,
विक्रम लखत वीर बखत-बुलन्द के।
जागे तेज-वृन्द सिवाजी नरिन्द मसनन्द,
माल-मकरन्द कुलचन्द साहिनन्द के॥
भूषन भनत देस देस बैरि नारिन मैं,
होत अचरज घर घर दुख-दन्द के।
कनक लतानि इन्दु, इन्दु माहिं अरविन्द,
झरै अरविन्दन ते बुन्द मकरन्द के॥१०९॥

शब्दार्थ—वासव=इन्द्र। विसरत=भूल जाता है। विक्रम=विक्रमादित्य, पराक्रम। बखत बुलन्द=भाग्यवान, जिसका समय चढ़ा हो, दिन अच्छे हों। नरिन्द=नरेन्द्र, राजा। मसनन्द=गद्दी। माल मकरन्द=मालोजी। दन्द=द्वन्द्व, उपद्रव। इन्दु=चन्द्रमा। अरविन्द=कमल। मकरन्द=पुष्परस।

अर्थ—सौभाग्यशाली वीर शिवाजी के पराक्रम को देखकर इन्द्र को भी भूल जाते हैं अर्थात् इन्द्र जैसे पराक्रमी की गाथाओं को भी भूल जाते हैं, राजा विक्रमादित्य की तो बात ही क्या है। भूषण कवि कहते हैं कि मालोजी के कुल में चन्द्र रूप शाहजी के पुत्र, गद्दी-स्थित महाराज शिवाजी के तेज समूह के जागरित होने पर देश देश के शत्रुओं की स्त्रियों में घर घर बड़ा दुःख और उपद्रव होता है तथा यह देख कर आश्चर्य होता है कि स्वर्णलता में जो चन्द्रमा है उस चन्द्रमा में कमल हैं और उनमें से पराग की बूँदे गिरती हैं। अर्थात् सोने की लता के समान रंग

वाली कामनियों के मुख रूपी चन्द्रमा के कमल रूपी नेत्रों से पुष्परस रूपी आँसू गिरते हैं।

विवरण—यहाँ केवल उपमान कनकलता, इन्दु, अरविन्द और मकरन्द-बुन्द ही कथित हैं उनसे ही क्रमशः स्त्रियाँ, उनके मुख तथा नेत्र और अश्रु-बूँदों का ज्ञान होता है, अतः रूपकातिशयोक्ति है।

२.भेदकातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जेहि थर आनहि भाँति की, बरनत बात कछूक।
भेदकातिसय-उक्ति सो, भूपन कहत अचूक ॥ ११० ॥

शब्दार्थ—थर (सं० स्थल)=जगह। अचूक=ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—जहाँ किसी अन्य प्रकार का ही कुछ वर्णन किया जाय भूषण कहते हैं वहाँ अवश्य भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—इसके वाचक शब्द 'और' 'न्यारी रीति है', 'और ही बात है' 'अनोखी बात है', इत्यादि होते हैं। 'भेदक' का अर्थ 'भेद करने वाला' है। जहाँ यथार्थ मे कुछ भेद न होने पर भी भेद थन किया जाय वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौर, गढ़, कुही बाज की।
मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखण्ड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की॥
भूपन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।

जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब,

न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की॥१११॥

शब्दार्थ श्रीनगर=काश्मीर की राजधानी। नयपाल=नैपाल जुमिला=सब कहीं के। चौर=चंवर। कुही=एक शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है। मेवार=उदयपुर रियासत। ढुँढार=रियासत अम्बर अर्थात् जयपुर। मारवाड=जोधपुर राज्य। झारखड=उड़ीसा। बाँधौ=बाँधव, रीवाँ। धनी=स्वामी। जैतवार= जीतने वाला।

अर्थ—श्रीनगर, नेपाल आदि सब देशों के राजा खिराज (कर) स्वरूप में जिसे चँवर, किले, कुही, बाज आदि पक्षी भेजते हैं, उदयपुर, जयपुर, मारवाड़, बुँदेलखण्ड, झारखण्ड (उडीसा में एक प्रान्त) और रीवा के राजाओं ने जिसकी नौकरी करना स्वीकार कर के ही अपना इलाज (लाभ) समझा है, भूषण कवि कहते हैं कि पूरब और पश्चिम दिशाओं के राजा भी जिस दिल्लीपति औरंगजेब की शरण ताकते हैं, संसार को जीतने वाले उस जबरदस्त औरंगज़ेब को भी शिवाजी ने जीत लिया। पृथ्वी पर शिवाजी की यह निराली ही रीति दिखाई देती है। जहाँ भारतभर के सब राजा औरंगजेब से पनाह माँगते है, उसको कर देना स्वीकार करते हैं वहाँ शिवाजी ही एक ऐसे निराले राजा हैं जो उसको भी जीत लेते हैं।

विवरण—यहाँ 'न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की' इस से भेदकातिशयोक्ति प्रकट है। यद्यपि और सब राजाओं की तरह शिवाजी भी राजा हैं, परन्तु उनकी रीति ही निराली है, वे लोक से पर है, इस मे औरों से शिवाजी का भेद प्रकट किया गया है।

३. अक्रमातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु अरु काज मिलि, होत एक ही साथ।
अक्रमातिसय-उक्ति सो, कहि भूपन कविनाथ ॥ ११२ ॥

अर्थ—जहाँ कारण और कार्य मिलकर एक साथ हों वहाँ कवीश्वर अक्रमातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। साधारण नियमानुसार कारण पहले और कार्य पीछे होता है, पर जहाँ ऐसा अंतर न हो, कारण और कार्य एक साथ हो जाँय वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—संग ही, साथ ही, एक साथ अथवा इस प्रकार के अर्थ वाले शब्दों को इस अलकार का वाचक समझना चाहिए।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

उद्धत अपार तव दुदुभी धुकार साथ,
लघैं पारावार वाल-वृन्द रिपुगन के।
तेरे चतुरग के तुरगन के अग-रज,
साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन के ॥
दच्छिन के नाथ सिवराज! तेरे हाथ चढ़ै,
धनुप के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूपन असीसै, तोहिं करत कसीसै पुनि,
वानन के साथ छूटै प्रान तुरकन के ॥११३॥

शब्दार्थ—उद्धत=उग्र, प्रचण्ड। धुकार=ध्वनि, आवाज। पारावार=समुद्र। चतुरंग=चतुरगिणी सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पेदल हों। रज=धूल, राज्यश्री। अगरज=शरीर की धूल, खुरों की धूल। परन=दूसरों, शत्रुओं। कसीसैं=कशिश करते ही, कर्षण करते ही, खींचते ही।

अर्थ—हे दक्षिण के नाथ, महाराज शिवराज ! तुम्हारे नगाड़ों की अति प्रचण्ड गड़गड़ाहट के साथ शत्रुओं के बाल-बच्चे (परिवार) समुद्र को लाँघ जाते हैं अर्थात् इधर चढ़ाई के लिए आपके नगाड़े बजे और उधर मुसलमान अपने बाल-बच्चों को अपने देश में भेजने के लिए समुद्र पार करने लगे। तुम्हारी चतुरंगिनी सेना के घोड़ों के खुरों की धूल के उड़ने के साथ ही शत्रुओं की राज्य श्री का समूह भी उड़ जाता है अर्थात् ज्यों ही चढ़ाई के लिए उद्यत तुम्हारी सेना के घोड़ों के खुरों से धूल उड़ती है त्यों ही शत्रुओं के राज्य उड़ जाते हैं और तुम्हारे धनुष चढ़ाने के साथ ही दुर्जनों के किले भी तुम्हारे हाथ में चढ़ जाते हैं। फिर भूषण कवि आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे धनुष की डोरी खींच कर बाणों के छूटने के साथ ही तुर्कों के प्राण छूट जाते हैं।

विवरण—यहाँ दुंदुभी का बजना, चतुरंग-सेना का चढ़ाई करना और धनुष चढ़ाना आदि कारण और कुटुम्ब का समुद्र पार करना राज्यश्री का उड़ना तथा तुर्कों के प्राण छूटना रूपी कर्म एक साथ ही कथित हुए है इसलिए यहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है।

चंचलातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु चरचाहि मैं, काज होत ततकाल।
चंचलातिसय उक्ति सो, भूषन कहत रसाल ॥११४॥

अर्थ—जहाँ कारण की चर्चा में ही (कहते, सुनते या देखते ही) कार्य हो जाय वहाँ रसिक भूषण चंचलातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—कहते ही, सुनते ही, चर्चा चलते ही, आदि शब्द इसके वाचक होते हैं। जैसे चंचला (बिजली) चमकते ही एक दम दिखती है इसी प्रकार कारण की चर्चा होते ही जहाँ कार्य होता दिखाई दे वहाँ यह अलंकार होता है।

उदाहरण—दोहा

'आयो आयो' सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव ।
बैरि नारि दृग-जलन-सों बूड़ि जाति अरि-गाँव ॥११५॥

शब्दार्थ — नाँव=नाम । बूड़िजात—डूब जाते हैं ।

अर्थ — 'शिवाजी आया' 'शिवाजी आया' इस प्रकार आपका नाम सुनते ही, हे वीर केसरी शिवाजी, शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रुजल से वैरियों के गाँव के गाँव डूब जाते हैं अर्थात् चारों ओर गाँवों में इतना रोना शुरू हो जाता है कि अश्रुजल में गाँव ही बह जाता है ।

विवरण — अक्रमातिशयोक्ति में कारण और कार्य एक साथ होते हैं, पर यहाँ कारण की चर्चा होते ही कार्य हो जाता है शिवाजी गाँव में नहीं आये, केवल उनके आने की चर्चा ही हुई है, कि स्त्रियों का रोना-धोना प्रारम्भ हो गया ।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण ।

गढ़नेर, गढ़चाँदा, भागनेर, बीजापुर,
नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं ।
करनाट, हबस, फिरंगहू, बिलायती,
बलख, रूम, अरि-तिय छतियाँ दलति हैं ॥
भूषन भनत साहि तनै सिवराज एते मान,
तव धाक आगे दिसा उबलति हैं ।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चले तें,
चक्रवर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति हैं ॥११६॥

शब्दार्थ— गढ़नेर=नगर गढ़ , चाँदा प्रान्त में गढ़ नाम की कई बस्तियाँ हैं, जिन में यह भी एक हो सकता है । नेर नगर ही का छोटा रूप है । चाँदा=मध्य देश के दक्षिण में एक प्रान्त तथा एक नगर है । यह नागपुर से दक्षिण है । इसी प्रान्त से होकर बाणगंगा

इसकी सीमा पर की प्रणहीत नदी से मिलती है। भागनेर=भाग नगर, गोलकुण्डा वाले मुहम्मद कुतबुल्मुल्क ने अपनी प्यारी पत्नी भागमती के नाम पर गोलकुण्डा से ४ मील पर बसाया था। करनाट= कर्नाटक, शिवाजी ने १६७६–७८ ई० में इस पर धावा किया था। फिरंग=फिरंगियों अर्थात् यूरोप-निवासियों का देश। कुछ ने इसे फिरगाना माना है। शायद भूषण का तात्पर्य हिन्दुस्तान की उस जगह से था जहाँ पुर्तगाल-वासियो (फिरंगियों) की कोठी थी। हबस=हबशियों का स्थान, एबीसीनिया। बिलायत=विदेशी राज्य, मुसलमानी देश (अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, फारस आदि)। बलख=तुर्किस्तान का एक प्रसिद्ध नगर। रूम=तुर्की, टर्की। उबलति है=खौलती है।

अर्थ—गढनेर, चाँदागढ, भागनगर और बीजापुर के राजाओं की स्त्रियाँ रो-रो कर हाथों को मलती हैं (पछताती हैं)। कर्नाटक, एबीसी-निया, फिरंगदेश, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, बलख और रूम देश के शत्रुओं की स्त्रियाँ भी शोक से अपनी छाती पीटती है। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाह जी के पुत्र शिवाजी! आपकी धाक का इतना प्रबल प्रभाव है कि उसके आगे दिशाएँ खौलने लगती है और आपकी सेना के चलने की बात सुनते ही बडे बडे बादशाहों की चतुरंगिनी सेना के भी पैर उखड जाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी की सेना के चलने रूप कारण की चर्चामात्र से शाहों की सेना का तितर-बितर होना रूप कार्य कथन किया है।

अत्यन्तातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु ते प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यन्तातिसयोक्ति सो, कहि भूषण कविराज॥ ११७॥

अर्थ—जहाँ कारण से प्रथम ही कार्य हो जाय वहाँ कविराज भूषण अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—कहीं कहीं इसके वाचक 'प्रथम ही', 'पूर्व ही' आदि शब्द होते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि,
कामधेनु कामतरु सों गनाइयतु है।
याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि,
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज,
निज बखत बढ़ाय करि तोहि ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह-दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है॥११८॥

शब्दार्थ—मंगन=माँगनेवाला, भिक्षुक। कामतरु=कल्प वृक्ष। बखतबढ़ाय=सौभाग्य बढ़ाकर। बिडारि=दूर करके, दूर फेंक कर। दीह=(दीर्घ) भारी।

अर्थ—हे शिवाजी! कविलोग तुम्हें कामधेनु और कल्पवृक्षके समान (इच्छित फल के देनेवाले) गिनाते (वर्णन करते) हैं। परन्तु तुम भिक्षुकों के (मन में) माँगने की इच्छा होने से पूर्व ही देने वाले हो इसलिए तुम्हारे समस्त गुणों का कौन वर्णन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता है (क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष मनोरथ पैदा होने पर ही वाँछित वस्तु देते हैं, किन्तु तुम तो इच्छा करने से भी पहले दे देते हो) फिर भी कवि लोग अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे कुछ गुण गाते हैं—वे तुम्हारी उपमा कामधेनु आदि से दे देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! लोग अपना भाग्य बड़ा करके(भाग्यशाली

होकर) ही तुम्हारा ध्यान करते हैं अर्थात् तुम्हारे गुण-गान करने से पहले ही वे भाग्यवान हो जाते हैं। समस्त दीनजन (गरीब मनुष्य) अपनी दीनता दूर कर, पराधीनता को नष्ट कर और भयङ्कर दरिद्रता को मार कर फिर तुम्हारे दरवाजे पर आते हैं अर्थात् तुम्हारे द्वार पर आने से पहले ही उनकी दीनता, अधीनता और गरीबी नष्ट हो जाती है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के निकट आकर दान लेना रूपी कारण है परन्तु इसस प्रथम ही याचकों का धनाढ्य हो जाना रूपी कार्य कथन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कवि-तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल॥ ११९॥

शब्दार्थ—तरुवर=सुन्दरवृक्ष। रस=जल। अचरज-मूल=आश्चर्य रूपी जड़, अद्भुत जड़। सफल होना=फलीभूत होना, फल लगना। फूल=प्रसन्नता पुष्प।

अर्थ—कविरूपी वृक्ष है। शिवाजी के सुन्दर यश रूपी जल से इस कविरूपी वृक्ष की चमत्कारपूर्ण जड के सींचे जाने से यह वृक्ष पहले सफल (सफल मनोरथ) होता है, पीछे इसमें फूल लगते हैं (प्रसन्नता होती है)। अर्थात्—कवि लोग धन पाकर पहले सफल मनोरथ होते हैं और तदनन्तर प्रसन्न।

विवरण—प्राय फूल पहले लगते है, और फिर फल लगते है। फूल कारण हैं, फल कार्य, पर यहाँ फल लगने का कार्य पहले होता है और कारण स्वरूप फूल पीछे होते हैं, अत अत्यंतातिशयोक्ति अलकार है।

सामान्य-विशेष

लक्षण—दोहा

कहिबे जहँ सामान्य है, कहै जु तहाँ विसेष।
सो सामान्य-विसेष है, बरनत सुकवि असेष ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—सामान्य=सब पर घटने वाली बात। विशेष=किसी मुख्य वस्तु पर घटने वाली बात। अशेष=समस्त।

अर्थ—जहाँ सामान्य रूप से कोई बात कहनी हो वहाँ उसे विशेष रूप से कहा जाय श्रेष्ठ कवि सामान्य-विशेष अलंकार कहते हैं।

सूचना:—भूषण जी का यह सामान्य विशेष अलकार प्राचीन आचार्यों ने कोई स्वतंत्र अलकार नहीं माना है। यह तो "अप्रस्तुत प्रशसा" अलकार का एक भेद 'विशेष निबन्धना' कहा जा सकता है। इसमें सामान्य घटना को लक्ष्य करने के लिए विशेष घटना का वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—दोहा।

और नृपति भूषन कहै, करैं न सुगमौ काज।
साहि तनै सिव सुजस तो, करै कठिनऊ आज ॥ १२१ ॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अन्य राजा लोग साधारण सा काम भी नहीं कर पाते, किन्तु हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपका यश तो आज कठिन से भी कठिन कार्य कर डालता है।

विवरण—"बड़े पुरुषों के यश से ही कठिन से कठिन कार्य हो जाते हैं" इस सामान्य बात के लिये यहाँ शिवाजी की विशेष घटना का वर्णन किया गया है तथा अन्य राजाओं की दुर्बलता दिखाकर शिवाजी के पराक्रम को विशेष रूप दिया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

जीत लई वसुधा सिगरी घमसान घमंड कै बीरनहू की,
भूषन भौंसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरनहू की।

साहितनै सिवराज की धाकनि छूट गई धृति धीरनहू की,
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूल गई सुधि पीरनहू की ॥१२२

शब्दार्थ-- वसुधा=पृथ्वी। सिगरी=समस्त। घमसान=घोरयुद्ध। जगती=पृथ्वी। धृति=धीरज। पीर=कष्ट, मुसलमानों के गुरु। मीर=सरदार, प्रधान, सैय्यद जाति के मुसलमानो को भी 'मीर' कहा जाता है।

अर्थ—घोर युद्ध करके शिवाजी भौंसिला ने बडे बडे वीर शत्रुओं की समस्त पृथिवी को जीत लिया। भूषण कहते हैं कि उन्होंने अमीर उमराओं की जमीनों को भी छीन लिया (छोडा नहीं)। शाहजी के पुत्र शिवाजी की धाक से बडे बडे धैर्यवानों का भी धीरज जाता रहा और मीरों के हृदयों में ऐसी पीडा बढ़ा कि वे अपने पीर (पैगम्बरों) की भी सुध भूल गये।

विवरण—साधारणतया देखा जाता है कि जब किसी की पृथ्वी छिन जाती है तो उसके होश-हवास भी जाते रहते हैं। यहाँ इस सामान्य बात को प्रकट करने के लिए शिवाजी के कार्यों का विशेष वर्णन किया है।

तुल्ययोगिता

लक्षण—दोहा

तुल्यजोगिता तहँ धरम, जहँ वरन्यन को एक।
कहूँ अवरन्यन को कहत, भूषन वरनि विवेक ॥ १२४ ॥

शब्दार्थ—वरन्यन–उपमेयों का। अवरन्यन–उपमानों का। तुल्ययोगिता=धर्म की एकता।

अर्थ—जहाँ बहुत से उपमेयों का धर्म एक ही कहा जाय अथवा बहुत से उपमानों का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ बुद्धिमान तुल्ययोगिता अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चढ़त तुरंग चतुरंग साजि सिवराज,
चढ़त प्रताप दिन दिन अति अंग मैं।
भूपन चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव,
खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अंग मैं॥
भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त,
अरि-जोट है चढ़त एक मेरु गिरि-शृंग मैं।
तुरकान गन व्योम-यान हैं चढ़त विनु
मान, है चढ़त बदरंग अवरंग मैं॥१२४॥

शब्दार्थ—खग्ग=खड्ग, तलवार। जोट=जत्थे, समूह। शृंग=चोटी। व्योमयान=विमान, अर्थी। विनुमान=मानरहित। बदरंग=बुरा रंग, फीका रंग।

अर्थ—जब शिवाजी अपनी चतुरंगिनी सेना सजाकर घोड़े पर चढते हैं तब उनके अंग अंग में दिन प्रतिदिन तेज चढ़ता (बढ़ता) है, मराठों के चित्त में जोश (युद्ध का उत्साह) चढता है, और तलवारें खुलकर बेरोक टोक शत्रुओं के शरीरों में चढती (घुसती) हैं। शिवाजी के हाथ में किले चढ़ते (आते) हैं और शत्रुओं के समूह पहाड़ों की चोटियों(शृंगों) पर चढ़ते (भाग जाते) हैं। मानरहित होकर तुर्क लोग विमान (अर्थी) में चढते हैं मर जाते हैं, औरंगजेब पर बदरंगी चढ़ जाती है, उसका रंग फीका पड जाता है।

विवरण—यहाँ सिवराज, प्रताप, चाव, खग्ग, गढ कोट, अरि-जोट तुरकानगन और बदरंग आदि उपमेयो (प्रस्तुत, वर्ण्य वस्तुओं) का 'चढ़त' एक ही धर्म कथित हुआ है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु धर्यो सभाग ।
भूपन अब निहचिंत हैं, सेसनाग दिगनाग ॥ १२५ ॥

शब्दार्थ—भरु=भार, बोझ ।

अर्थ—सौभाग्यशाली शिवाजी ने अपनी बलवती भुजाओं पर पृथ्वी का भार धारण कर लिया है। भूषण कहते हैं इसी कारण अब शेष नाग और दिशाओं के हाथी निश्चिन्त हो गये है। (हिन्दुओं का विश्वास है कि पृथ्वी को शेषनाग और दिग्गज थामे हुए है)।

विवरण—यहाँ शेषनाग और दिगनाग शिवाजी की भुजाओं के उपमान है। उन दोनों का "निश्चित है" यह एक धर्म बताया गया है।

द्वितीय तुल्ययोगिता

लक्षण—दोहा

हित अनहित को एक सो, जहँ वरनत व्यवहार।
तुल्यजोगिता और सो, भूपन ग्रन्थ विचार ॥ १२७ ॥

शब्दार्थ—हित=भलाई। अनहित=बुराई।

अर्थ—जहाँ हित (मित्र) और अनहित (शत्रु) परस्पर दोनों विरोधियों से समान व्यवहार कथन किया जाय वहाँ भी ग्रन्थ के विचारानुसार तुल्ययोगिता अलकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

गुननि सो इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि,
गुनन सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइयतु है ॥

भूपन भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस, रोस एक भाँति ही को पाइयतु है।
दोहा ई कहे ते कविलोग ज्याइयतु अरु,
दोहाई कहेते अरि लोग ज्याइयतु है ॥१२७॥

शब्दार्थ—गुन=(स. गुण) गुण तथा रस्सी। पाथगहे=पैर छूकर, पाकर और पकड कर (कैदकर)। ज्याइयतु=ध्यान करते हो तथा धर लाते हो। रस=स्नेह, प्रेम। रोस=रोष, क्रोध। दोहाई= दोहा ही, तथा शरण आने की पुकार 'दोहाई'। ज्याइयतु= पोषण करते हो, जिलाते हो।

अर्थ—भूपण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपका कवियों के प्रति) प्रेम और (शत्रुओ के प्रति) क्रोध एक सा ही है, क्योंकि तुम अपने गुणों से कवियो को बाँधते हो (मोहित करते हो) और तुम अपने गुण (रस्सी) से ही शत्रुओ को भी बाँध लेते हो। तुम चरण छूकर (कवियों) का नित्य ध्यान करते हो तो शत्रुओ को पाकर और पकड़ कर धर लाते हो। दोहा के ही कहने पर कविजनो की पालना करते हो, तो और उसी भाँति 'दोहाई' कहने पर शत्रुओं को अभयप्रदान करते हो उन के प्राण बचा लेते हो।

विवरण—इस पद मे शब्द-छल से हित और अनहित दोनों से एक-सा व्यवहार बताया गया है अतः दूसरी तुल्ययोगिता है।

दीपक

लक्षण—दोहा

वर्न्य अवर्न्यन को धरम, जहँ बरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं, भूषन सुकवि विवेक ॥ १२८ ॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ सुकवि भूषण दीपक अलंकार कहते हैं।

सूचना—तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है, पर 'दीपक' में उपमेय और उपमान दोनों के धर्म का एक ही साथ कथन होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

कामिनि कंत सों जामिनि चंद सों दामिनि पावस मेघ घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी, नव पूषनदेव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान, लसै हिन्दुवान खुमान सिवा सों॥१२९

शब्दार्थ—कामिनि=स्त्री। कंत=पति। जामिनि, रात्रि। दामिनि=बिजली। पावस—वर्षाऋतु। सूरति=सूरत, स्वरूप, शुक्र। तरुनी=स्त्री। नलिनी=कमलिनी। पूषनदेव (सं० पूषण+देव)=सूर्यदेव। प्रभा—कान्ति, प्रकाश। जाहिर=प्रकट, प्रसिद्ध। जहान=संसार।

अर्थ—जिस प्रकार अपने पति से स्त्री, चन्द्रमा से रात्रि, वर्षाकाल की मेघ-घटा से बिजली, दान से कीर्त्ति, ज्ञान से सूरत (स्वरूप) अत्यधिक सम्मान से प्रीति, आभूषणो से युवती, और बाल सूर्य से कमलिनी शोभा पाती है, वैसे ही चिरजीवी शिवाजी से सारी हिन्दू जाति शोभायमान है, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है

विवरण—यहाँ 'खुमान सिवा सों' उपमेय और 'कामिनी कंत सों' आदि अन्य उपमानों का 'लसै' यह एक ही धर्म कथित हुआ है, अतः दीपक अलंकार है।

दीपकावृत्ति

लक्षण—दोहा

दीपक पद के अरथ जहँ, फिर फिर करत बखान।
आवृति-दीपक तहँ कहत, भूषन सुकवि सुजान॥१३०॥

अर्थ—जहाँ बार बार एक ही अर्थ वाले (क्रिया) पदों की आवृत्ति हो वहाँ चतुर कवि दीपकावृत्ति अलंकार कहते हैं।

सूचनाः—आवृत्ति दीपक के तीन भेद हैं:—(१) पदावृत्ति दीपक (जिस में एक क्रियापद कई वार आवे पर अर्थ भिन्न हो) (२) अर्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही अर्थ वाले भिन्न-भिन्न क्रिया-पद आवे (३) पदार्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही क्रियापद उसी अर्थ में एक से अधिक वार आवे)। भूषण कवि ने इन तीनों में से अर्थावृत्ति दीपक और पदार्थावृत्ति दीपक के उदाहरण दिये हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव दान को, करि को सकत बखान।
बढ़त नदीगन दान जल, उमड़त नद गजदान॥ १२१॥

शब्दार्थ—दान=पुण्यार्थ धन देना, हाथी का मदजल, जो उसकी कनपटी के पास से झरता है। नद=बड़ी नदी,

अर्थ—हे वीर केशरी शिवाजी! आपके दान की महिमा कौन वर्णन कर सकता है? क्यों कि (आप इतना दान देते हैं कि) आपके दान के संकल्प-जल से नदियों में बाढ़ आ जाती हैं और दान में दिये हुए हाथियों के मद-जल से बड़े-बड़े नद उमड उठते हैं।

विवरण—यहाँ 'बढ़त' और 'उमड़त' पृथक पृथक (क्रिया) पद होने पर भी इनका एक ही अर्थ में दो वार कथन हुआ है (इन दोनों क्रियाओं का अर्थ एक ही है) अतः अर्थावृत्ति दीपक है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

चक्रवती चकता चतुरंगिनि, चारिउ चाप लई दिसि चंका।
भूप दरीन दुरे भनि भूषन, एक अनेकन बारिधि नका॥

औरंगसाहि सों साहि को नन्द, लरो सिवसाह बजाय कै डंका ।
सिंह की सिंह चपटे सहै, गजराज सहै गजराज को धका ॥१३२

शब्दार्थ - चकता=चकताई वंशज, औरंगजेब । चापलई=दबा ली । चक्का=(सं० चक्र) दिशा । दिसि चक्का=चारों ओर से । दरीन=गुफाओं में । नक्का=नाघा, उल्लंघन किया, पार किया । चपेट=थप्पड, चपत । धका=धक्का ।

अर्थ—चक्रवर्ती औरंगजेब की चतुरंगिनी सेना ने चारो ओर से पृथ्वी को दबा लिया (अपने अधीन कर लिया) । भूषण कवि कहते हैं कि बहुत से राजा तो उसके डर के कारण गुफाओं में छिप गये और कितने ही समुद्र पार करके चले गये । ऐसे (दबदबे वाले) बादशाह औरंगजेब से शाहजा के पुत्र शिवाजी ने ही डंका बजाकर (खुल्लमखुल्ला) लड़ाई की । सच है सिंह का थप्पड सिंह ही सहता है और हाथी का धक्का हाथी ही सह सकता है ।

विवरण—यहाँ 'सहै' क्रिया पद दो बार एक ही अर्थ में आया है अत. पदार्थावृत्ति दीपक है ।

तीसरा उदाहरण—कवित्तमनहरण

अटल रहे हैं दिग अंतन के भूप धरि,
रैयित को रूप निज देस पेस करि कै ।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूपन भनत गुन भरि कै ॥
हाड़ा रायठौर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चँवारू धरि डरि कै ।
अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि,
धीर धरि, ऐड़ धरि, तेग धरि, गढ धरि कै ॥१३३॥

शब्दार्थ—अटल=निश्चल, बेफिक्र, निश्चिन्त । दिगअतन=

दिशाओं के छोर तक, सारा ससार। रैयति=प्रजा। पेसकरि=पेशकरके, भेंट करके। बाना=वेष। हाड़ा=हाडा क्षत्रिय बूँदी और कोटा में राज करते हैं। रायठौर=जोधपुर के राजा। कछवाहे=कुश वंशी क्षत्रिय जैसे अम्बर (जयपुर) मे हैं। गौर=गौर राजाओं की रियासत (राजपूताने) मे थी, पृथ्वीराज के समय मे गौरों का अच्छा मान था। चॅवारू=चॅवर।

अर्थ—समस्त दिशाओं के राजा लोग प्रजा का रूप धारण कर अर्थात् औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर तथा अपने अपने देश उसे भेंट करके निश्चिन्त होगये। भूषण कवि कहते हैं कि उदयपुर के महाराणा भी अपने वीरता के वेश (परपरागत हठ) को छोड़कर तथा औरंगज़ेब के गुन गान कर और नौकरी का बहाना कर बेफिक्र होगये। हाड़ा (कोटा बूँदी के राजा), राठौर (जोधपुर के महाराजा) कछवाहे (जयपुर के महाराजा) और गौर वशीय क्षत्रिय भी (औरंगज़ेब से) डर कर चवँर डुलाने वाले बन कर निश्चिन्त होगये। परन्तु एक शिवाजी ही ऐसे हैं जो अपनी तलवार और किलों को रखते हुए दिल्ली को ठुकरा कर, धैर्य धारण कर अपने मान की रक्षा करते हुए निश्चिन रहे। जहाँ और राजा औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर अटल रह सके वहाँ शिवा जी अपनी तलवार और किले के बल पर अटल रहे।

विवरण—यहाँ 'अटल रहे' और 'धरि' क्रिया-पदो की क्रमश: एक ही अर्थ मे कई बार आवृत्ति हुई है अतः पदार्थावृत्ति दीपक है।

प्रतिवस्तूपमा

लक्षण—दोहा

वाक्यन को जुग होत जहँ, एकै अरथ समान।
जुदो जुदो करि भाषिए, प्रतिवस्तूपम जान॥ १३५॥

शब्दार्थ—जुग=युग, दो (उपमेय और उपमान ये दो वाक्य)।

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान दो वाक्यों का पृथक पृथक शब्दों से एक ही धर्म कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार जानना चाहिए।

उदाहरण—लीलावती छंद *

मद जल धरन द्विरद बल राजत,

बहु जल धरन जलद छवि साजै।

---

* लीलावती छंद का लक्षण इस प्रकार है।

लघुगुरु का जहँ नेम नाहिं बत्तिस कल सब जान।

तरल तुरग चाल सो लीलावती बखान॥

सूचना—लीलावती छन्द को साहित्य सेवक कार्यालय बनारस, तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से छपी भूषण ग्रंथावली में "मनहरण कवित्त" बना दिया गया है, किन्तु मिश्रबन्धु-सम्पादित एवं अन्य प्रतियों में यह लीलावती छंद ही मिलता है। हमने भी यही ठीक समझा है। उक्त प्रतियों में 'मनहरण कवित्त' इस प्रकार है:—

मद-जल-धरन द्विरद बल राजत है

बहु जल-धरन जलद छवि साजै है।

भूमि के धरन फन-पति अति लसत है,

तेज ताप धरन ग्रीषम रवि छाजै है॥

खग्ग के धरन सोहैं भट भारे रनहीं में,

भूषन लसत गुन-धरन समाजै है।

दिल्ली के दलन देस दच्छिन के थभनहु,

ऐंड के धरन सिव सरजा विराजै है॥

इस कवित्त में अन्तिम तीनों अक्षरों को गुरु रखा गया है। मनहरण कवित्त में अन्तिम अक्षर लघुगुरु होते हैं, सब गुरु नहीं होते।

पुहुमि धरन फनिनाथ लसत अति,
तेज धरन ग्रीषम रवि छाजै ॥
खरग धरन सोभा भट राजत,
रुचि भूषन गुन धरन समाजै ।
दिल्लि दलन दक्खिन दिसि थम्भन,
ऐड़ धरन सिवराज विराजै ॥ १३६ ॥

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी । फनिनाथ–शेषनाग । थम्भन= स्तंभन, रोकने वाले, सँभालने वाले, रक्षक । ऐंड धरन– स्वाभिमान धारण करने वाले ।

अर्थ—मदजल धारण करने से ही (मदमस्त होने पर ही) हाथी का बल शोभित होता है, खूब जल धारण करने से ही बादल की शोभा है । पृथ्वी को धारण करने से ही शेषनाग अत्यन्त शोभित होता है और अत्यधिक तेज युक्त होने पर ही ग्रीष्म का सूर्य शोभा पाता है । तलवार धारण करने से ही वीर पुरुष सुंदर लगते हैं और गुण धारण करने के कारण ही, अर्थात् गुणी होने से ही भूषन कवि समाज में शोभा पाता है । अथवा भूषन कवि कहते हैं कि तलवार धारण करने से ही योद्धा की शोभा है तथा गुण को धारण करने से ही (मनुष्य) समाज में शोभा पाता है । एवं दिल्ली का दलन करने से और दक्षिण दिशा का सहारा होने से तथा स्वाभिमान धारण करने से ही महाराज शिवाजी शोभा पाते हैं ।

विवरण—इस में प्रथम तीन चरण उपमान वाक्य हैं और चतुर्थ चरण उपमेय वाक्य है । उपमान वाक्यों के 'राजत' 'साजै' और 'छाजै' शब्द तथा उपमेय वाक्य का 'विराजै' शब्द एक ही धर्म के द्योतक है ।

दृष्टान्त

लक्षण—दोहा

जुग वाक्यन को अरथ जहँ, प्रतिबिम्बित सो होत ।
तहाँ कहत दृष्टान्त हैं, भूषन सुमति उदोत ॥ १३६ ॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों का (साधारण) धर्म बिम्ब प्रति-बिम्ब भाव से हो वहाँ विद्वान दृष्टान्त अलङ्कार कहते हैं ।

सूचना—इस में उपमेय और उपमान वाक्यों में समता-सी जान पड़ती है किन्तु वाचक-पद नहीं होता । 'प्रतिवस्तूपमा' में केवल साधारण-धर्म का वस्तु-प्रतिवस्तु भाव होता है अर्थात् एक ही धर्म शब्द-भेद से दोनों में होता है । किन्तु यहा उपमेय, उपमान और साधारण धर्म तीनों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है अर्थात् दोनों वाक्यों मे धर्म भिन्न-भिन्न होने पर भी जैसे दर्पण में मुख का प्रति-बिम्ब दीखता है इसी प्रकार साधारण-धर्म सहित उपमेय-वाक्य का उपमान वाक्य में छाया (प्रतिबिम्ब) भाव होता है ।

उदाहरण—दोहा

सिव औरंगहि जिति सकै, और न राजा राव ।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिनु, आन न घालै घाव ॥ १३७ ॥

शब्दार्थ—घाले घाव=जखम करे, चोट करे ।

अर्थ—औरंगजेब को शिवाजी ही जीत सक्ते हैं अन्य राजा उमराव लोग नहीं जीत सक्ते, हाथी के मस्तक पर सिंह के बिना अन्य कोई (वन्यपशु) चोट नहीं कर सकता ।

विवरण—यहाँ, पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य । 'जिति सकै' और 'घाले घाव' ये दोनों पृथक्-पृथक् धर्म हैं, परन्तु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिम्ब-

प्रतिबिम्ब भाव झलकता है। 'प्रतिवस्तूपमा' मे शब्द भेद से एक ही धर्म कथन किया जाता है, अतः उससे इस में भेद स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

देत तुरीगन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए॥
मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतैं बरसे सरसैं, उमड़ैं नदियाँ ऋतु पावस पाए॥१३८॥

शब्दार्थ—तुरीगन=तुरंग+गन, घोड़ों का समूह। करी=हाथी। भुवपाल=राजा। निहाल=संतुष्ट, मालामाल। रिझाए=प्रसन्न करने पर। सरसैं=बढ़ जाती हैं। ऋतैं=ऋतुएँ।

अर्थ—शिवाजी (अपने यश के) गीत बिना सुने ही कवियों को घोड़ों के समूह दे देते हैं और गीत सुनाने पर हाथियों का समूह दे डालते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि चिरजीवी शिवाजी का यशोगान करने पर दुनियाँ मे अन्य कोई राजा अच्छा नहीं लगता। याचना के लिए (याचकों को) और बहुत से राजा हैं, परन्तु प्रसन्न किये जाने पर शिवाजी ही उन्हें (कवियों को) निहाल करते हैं, जैसे अन्य ऋतुओं में वर्षा होने पर नदियाँ सरस(जलयुक्त)तो हो जाती हैं,पर उमड़ती हैं वे वर्षाऋतु आने पर ही। अर्थात् जैसे अन्य ऋतुओं मे वर्षा होने पर नदियों का जल थोड़ा बहुत अवश्य बढ़ जाता है, पर वे उमड़ती हैं वर्षाऋतु के आने पर ही, ऐसे ही अन्य राजाओं से थोड़ा बहुत अवश्य मिल जाता है, पर याचकों को निहाल तो केवल शिवाजी ही करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'निहाल करना' और 'नदियों का उमड़ना' में भी दो भिन्न अर्थवाली किन्तु समान सी जान पड़ती हुई वस्तुओं की एकता दो वाक्यों के द्वारा की गयी है इसी से यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

पहली निदर्शना

लक्षण—दोहा

सदृश वाक्य जुग अरथ को, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप ॥ १३९ ॥

अर्थ—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में भेद होने पर भी समता का ऐसा आरोप किया जाय कि जिसमें दोनों एक जान पड़े वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

सूचना—दृष्टान्त और निदर्शना में यह भेद है कि दृष्टान्त में वाचक पद नहीं होता, निदर्शना में होता है। इसके अतिरिक्त दृष्टान्त में यद्यपि दो वाक्यों के धर्म अलग अलग होते हैं फिर भी उनमें समानता की झलक दिखाई देती है, इससे उनकी एकता स्वाभाविक सी जान पड़ती है। निदर्शना में दोनों का संबंध असम्भव होता है, जो मजबूरी से मानना पड़ता है। प्रतिवस्तूपमा और निदर्शना में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं, पर निदर्शना में स्वतंत्र नहीं होते।

उदाहरण—मालती सवैया

मच्छहु कच्छ मैं कोल नृसिंह मैं बावन मैं भनि भूषन जो है।
जो द्विजराम मैं जो रघुराज मैं जोऽब कह्यो बलरामहु को है॥
बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम हूवे को आगे सुनो है।
साहस-भूमि-अधार सोई अब श्री सरजा सिवराज मैं सो है ॥१४०॥

शब्दार्थ—मच्छ=मत्स्य, यहाँ मत्स्यावतार से तात्पर्य है। कच्छ=कच्छपावतार। कोल=वराहावतार। नृसिंह=एक अवतार जिस में भगवान ने हिरण्यकश्यप दैत्य को मारा था और प्रह्लाद भक्त की रक्षा की थी। बावन=एक अवतार, इस में भगवान् ने बलि को छला था। बौद्ध=बुद्ध भगवान। रघुराज=श्री रामचन्द्र

भगवान्। द्विजराम=परशुराम जी। बलराम=श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता। कलकी=इस नाम का अवतार आगे होने वाला है।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो पराक्रम मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बलदेव, और बुद्धावतार में था और जो (पराक्रम) अब आगे होने वाले कलकी अवतार में होना सुनते हैं, वही भूमि का आधार-रूप (पृथ्वी को सँभालने वाला) साहस अब श्री शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उपर्युक्त अवतारों में और शिवाजी में भेद होने पर भी समता का आरोप किया गया है। यह उदाहरण कुछ बहुत अच्छा नहीं है, इस में दोनों वाक्यों मे असमता नहीं है। जैसा पराक्रम मत्स्यादि अवतारों में है वैसा ही शिवाजी मे साहस है। यहाँ उपमा की झलक है।

सूचना—इसमें जो, सो, जे, आदि पदों द्वारा असम वाक्यों को सम किया जाता है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कीरति सहित जो प्रताप सरजा मैं वर,
मारतड मध्य तेज चाँदनी सो जानी मैं।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान मैं सो,
कचन मैं मृदुता सुगंधता बखानी मैं॥
भूषन कहत सब हिन्दुन को भाग फिरै,
चढ़े ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं।
सोहत सुवेस दान कीरिति सिवा मैं सोई,
निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी मैं॥१४१॥

शब्दार्थ—मारतड=सूर्य। तेज चाँदनी=तेज युक्त प्रकाश, यहाँ चाँदनी का लक्ष्यार्थ प्रकाश है, चन्द्रमा की चाँदनी नहीं। कुमति=दुर्बुद्धि। पिसानी=पेशानी, मस्तक।

अर्थ—भूषण कहते है कि वीर-केशरी शिवाजी में जो कीर्ति-सहित प्रताप है, उसे मैं सूर्य में तेजयुक्त प्रकाश मानता हूँ। उस चिरजीवी में जो उदारता और सुशीलता शोभित है उसे मैं सोने में कोमलता और सुगन्धि कहता हूँ। भूषण जी कहते हैं कि औरंगजेब के मस्तक में कुबुद्धि (हिन्दुओं पर अत्याचार करने का कुविचार) पैदा होने से ही हिन्दुओं का भाग्य फिरा (भाग्योदय हुआ, क्योंकि औरंगज़ेब के अत्याचारों से तंग होने से हिन्दुओं में जाग्रति होगी जिससे उनका भाग्य फिरेगा)। शिवाजी में जो सुन्दर दान की कीर्ति है वही सुन्दरता मैंने अनुपम मोतियों की आब (चमक) में देखी है।

विवरण—उपर के वाक्यों के अर्थ में विभिन्नता होने पर भी उनमे जो, सो द्वारा समता भाव का आरोप किया गया है, अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

औरन को जो जनम है, सो वाकौ यक रोज।
औरन को जो राज सो, सिव सरजा की मौज ॥१४२॥

शब्दार्थ—मौज=आनन्द।

अर्थ—अन्य राजाओं का समस्त जीवन शिवाजी का एक दिन है (औरों के जीवन का कोई महत्व नहीं अथवा अन्य राजाओं के लिए जो कार्य जीवन भर में साध्य है, वह शिवाजी के लिए एक दिन का काम है) औरों का जो समस्त राज्य है वह शिवाजी की एक (तुच्छ) खेल मात्र है।

विवरण—यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है

चौथा उदाहरण—दोहा

साहिन सों रन मॉडिबो, कीबो सुकवि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल है, औरन को जजाल ॥१४३॥

शब्दार्थ—ख्याल=खेल, मनोविनोद। जंजाल=बखेड़ा, विपत्ति।

अर्थ—शिवाजी के लिए बादशाहों से युद्ध करना और श्रेष्ठ कवियों को (इच्छित दान देकर) निहाल करना एक खेल मात्र है, वही बात अन्य राजाओं के लिए बड़ा भारी बखेड़ा है (बड़ा कठिन काम है)।

विवरण—यह उदाहरण भी बहुत स्पष्ट नहीं है। सम्मेलन मे प्रकाशित प्रति मे ऊपर के ये दोनों दोहे व्यतिरेक के उदाहरण लिखे गये हैं पर इन मे व्यक्तिरेक, अलकार भी नहीं है।

दूसरी निदर्शना

लक्षण–दोहा

एक क्रिया सों निज अरथ और अर्थ को ज्ञान।
ताही सो जु निदर्शना, भूपन कहत सुजान ॥१४४॥

अर्थ—जहाँ एक क्रिया से अपने धर्म और उसी से दूसरे धर्म का ज्ञान हो उसे भी निदर्शना अलंकार कहते हैं अर्थात् जहाँ क्रिया से अपने अर्थ (कार्य) और अन्य अर्थ (कारण) का ज्ञान हो वहाँ दूसरी निदर्शना होती है।

उदाहरण–दोहा

चाहत निर्गुण सगुण को, ज्ञानवंत की बान।
प्रगट करत निर्गुण सगुन, सिवा निवाजै दान ॥१४५॥

शब्दार्थ—निर्गुण=निराकार, गुणहीन। सगुण=साकार, गुणयुक्त। निवाजै=कृपापूर्वक।

अर्थ—(गुणहीन) और सगुण (गुणवान) सब तरह के व्यक्तियों को दान देकर शिवाजी यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानी पुरुष का यह स्वभाव है कि वह निर्गुण सगुण दोनों को चाहता है। अर्थात् ज्ञानी पुरुष परमेश्वर के निराकार और साकार दोनों-रूपों को एक समान समझते हैं।

विवरण -यहाँ 'प्रगट करत' इस एक ही क्रिया से जहाँ शिवाजी का सगुण और निर्गुण को एक समान समझना और ज्ञानियों का भी निर्गुण और सगुण में अभेदभाव लक्षित होता है, वहाँ शिवाजी के सब को दान देने का कारण भी यही अभेद-भाव बताया गया है अत यहाँ निदर्शना अलंकार है।

व्यतिरेक

लक्षण—दोहा

सम छबिवान दुहून में, जहँ बरनत बढि एक।
भूषन कवि कोविद सबै, ताहि कहत व्यतिरेक ॥१४६॥

शब्दार्थ—कोविद=पडित। व्यतिरेक=(वि+अतिरेक) विशेष बढकर।

अर्थ—जहाँ समान शोभावाली दो वस्तुओं (उपमान और उपमेय में से किसी एक को बढ़ाकर वर्णन किया जाय वहाँ पण्डित एव कवि लोग व्यतिरेक अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमे प्राय उपमेय को उपमान से बढाकर अथवा उपमान को उपमेय से घटाकर ही वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—छप्पय

त्रिभुवन मैं परसिद्ध एक अरि बल वह खंडिय।
यह अनेक अरिबल बिहंडि रन मडल मडिय ॥
भूषन वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढावत।
यह छहुँ ऋतु निसदिन अपार पानिप सरसावत ॥
सिवराज साहि सुव सत्थ नित, हय गज लक्खन सचरइ।
यक्कइ गयन्द यकइ तुरग किमि सुरपति सरवरि करइ ॥१४६॥

शब्दार्थ—एक अरि=एक शत्रु, वृत्रासुर। खडिय=खण्डन किया, नाश किया। वह=उसने, इन्द्र ने। यह=यहाँ शिवाजी

से तात्पर्य है। विहंडि=(सं० विघटन) नाश करके। मडिय= शोभित किया। पुहुमि=पृथ्वी। पानिप-शोभा, पानी। सत्थ= साथ। तुरंग-घोडा। हय=घोड़ा। गय-हाथी। संचरइ=संचरण करते हैं, चलते हैं। यक्कइ=एक ही। गयन्द=गजेन्द्र, बडा हाथी। सरवरि=बराबरी।

अर्थ—यह बात तीनों लोकों मे प्रसिद्ध है कि इन्द्र ने केवल एक ही शत्रु (वृत्रासुर) को मारा है, परन्तु शिवाजी ने अनेकों शत्रुओं को मार कर रणभूमि को सुसज्जित किया है। वह इन्द्र केवल एक (वर्षा) ऋतु में ही (जल बरसाकर) पृथ्वी की शोभा को बढ़ाता है, लेकिन यह शिवाजी छओं ऋतुओं में रात दिन इस पृथ्वी को अपार शोभा से सौन्दर्य्यमयी बनाते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि उसके पास केवल एक हाथी (ऐरावत) और एक घोड़ा (उच्चैश्रवा) है और इधर शाहजी के पुत्र शिवाजी के साथ लाखों हाथी और घोड़े चलते हैं। फिर भला इन्द्र शिवाजी की समता कैसे कर सक्ता है ?

विवरण—यहाँ शिवाजी उपमेय मे उपमान इन्द्र से विशेषता बताई है अतः व्यतिरेकालंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
भूपन भनत जग राख्यो छल मढ़िकै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज, चढ़िकै॥
साहि के सिवाजी गाजी, कर्‍यो आगरे मैं,*
चंड पांडवनहू ते पुरुपारथ सु वढ़िकै।

* इतिहासकारों का कथन है कि शिवाजी की भेट औरंगजेब से आगरे में हुई थी दिल्ली में नहीं, कई प्रतियों में 'आगरे' के

सूने लाखभौन ते कढे वे पाँच राति मैं,
ज़ु द्यौस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़िकै ॥१४८॥

शब्दार्थ—दारुन=(सं० दारुण) कठोर। दुगुन=(स० द्विगुण) दुगना। छल मढिकै=कपट से ढक कर, कपट में फँसाकर। धरम=धर्म, धर्मसुत, युधिष्ठिर। अक़िल=(फा० अक़्ल) बुद्धि। पैज=प्रण, टेक। चंड=प्रचंड। कढिकै=निकल कर।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि औरंगज़ेब दुर्योधन से दुगना दुष्ट है। उसने सारे ससार को अपने कपट में फँसा लिया है। युधिष्ठिर के धर्म, भीम के बल, अर्जुन की प्रतिज्ञा, नकुल की बुद्धि और सहदेव के तेज के प्रभाव से वे पाँचो पाडव (दुर्योधन के बनवाये) सूने लाख के घर से रात को निकल कर अपना उद्धार कर सके थे परन्तु शाहजी के धर्मवीर शिवाजी ने आगरे में पांडवों से भी अधिक पराक्रम दिखाया क्योंकि वे अकेले ही उक्त पाँचों गुणों को धारण करके दिन दहाडे लाखों पहरेदारों के बीच से निकल आए।

विवरण—यहाँ 'शिवाजी' उपमेय मे 'पाँचों पाडव' उपमान से विशेषता कथन की गई है।

लक्षण—दोहा

बस्तुन को भासत जहाँ, जन रजन सहभाव।
ताहि सहोक्ति बखानही, जे भूषन कविराव॥ १४९ ॥

शब्दार्थ—सह+उक्ति=सहोक्ति, सह शब्द के साथ कथन।

स्थान पर 'दिल्ली' भी लिखा है, किन्तु वह इतिहास की दृष्टि से अशुद्ध है। छद स. ७९ में भी 'रस खोट भये ते अगोट आगरे में' पाठ है जिस से स्पष्ट है कि शिवाजी की औरंगज़ेब से आगरे मे भेंट हुई थी।

अर्थ—जहाँ 'सह' शब्द (या सह अर्थ को बताने वाले अन्य वाचक शब्दों) के बल से मनोरञ्जक सह-भाव प्रकट हो (कई वस्तुओं की संगति मनोरंजकतापूर्वक वर्णित हो) वहाँ कविराज सहोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसके वाचक शब्द, संग, सहित, सह, समेत, साथ आदि होते हैं।

उदाहरण—मनहरण दण्डक

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो,
हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही।
नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो,
सुख-रुचि मुख-रुचि त्योंही बिन रंग ही॥
भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी,
धाक बिललाने न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही॥१५०॥

शब्दार्थ—हुलास=उल्लास, प्रसन्नता। आम खास=(अरबी) महल का भीतरी मार्ग। हरम=बेगम, अथवा अन्तःपुर। सुख रुचि=सुख की इच्छा। मुख रुचि=मुख की कान्ति, या मुख का स्वाद। बिललाना—व्याकुल होकर असंबद्ध बातें कहना।

अर्थ—प्रसन्नता तथा आम खास का बैठना, एक साथ छूट गये। बेगमों का सहवास (अन्तःपुर) और लज्जा आदि भी सब एक साथ ही बुरी तरह से छूट गये। नेत्रों से जल, और हृदय का धैर्य भी एक साथ ही छूट गये। ऐसे ही सुखेच्छा और मुख का स्वाद वा मुख की कान्ति भी (बिना रंग, मलीन, उदास) होकर काफूर हो गई। भूषण कवि कहते है कि हे शिवाजी! वीर लोग भी तेरी धाक से व्याकुल हो कर असंबद्ध बातें करते हैं और अपने शरीर में बल नहीं पाते। दिल्ली के अमीर लोग

दक्षिण प्रान्त की सूबेदारी पाकर फिर उत्तर आने की आशा और अपने जीवन की आशा को एक साथ ही छोड देते है (वे समझ लेते है कि दक्षिण पहुँचकर शिवाजी के हाथ से बचना और सही-सलामत दक्षिण से फिर उत्तर पहुचना अब संभव नहीं है।

विवरण—यहाँ संग शब्द के बल से जीवन की आस और उत्तर की आस का छूटना मनोरजकता-पूर्वक कथन किया गया है।

विनोक्ति

लक्षण—दोहा

विना कछू जहँ बरनिए, कै हीनो कै नीक।
ताको कहत विनोक्ति हैं, कवि भूषन मति ठीक॥ १५१॥

शब्दार्थ—नीक=उत्तम।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के विना कोई वस्तु हीन या उत्तम कही जाय वहाँ बुद्धिमान कवि विनोक्ति अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ किसी वस्तु के बिना हीनता पाई जाय अथवा जहाँ किसी वस्तु के विना उत्तमता पाई जाय दोनों स्थानों में विनोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—इसके वाचक पद बिना, हीन, रहित आदि होते हैं। कहीं कहीं ध्वनि से भी व्यञ्जित होता है।

उदाहरण—दोहा

सोभमान जग पर किये, सरजा सिवा खुमान।
साहिन सो बिनु डर अगड, बिन गुमान को दान॥ १५२।

शब्दार्थ—सोभमान=शोभित। अगड=अकड़। गुमान=घमंड।

अर्थ—चिरजीवी वीर-केसरी शिवाजी ने बादशाहों के डर के बिना अपनी अकड और बिना अभिमान के अपने दान को पृथ्वी-तल पर सुशोभित किया। अर्थात् शिवाजी किसी बादशाह से डरते नहीं, अत

उनकी ऐंठ, उनका अभिमान सुन्दर लगता है और उनका दान बिना अभिमान के होता है, अतः वह प्रशंसनीय है।

विवरण—यहाँ बिना डर और बिना गुमान के होने से शिवाजी की ऐंठ और दान को प्रशंसनीय बताया है अतः विनोक्ति अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

को कविराज बिभूषन होत बिना कबि साहि तनै को कहाए ?
को कविराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए ?
को कविराज भुवालन भावत भौंसिला के मन मैं बिन भाए ?
को कविराज चढ़ै गज बाजि सिवाजी की मौज मही बिनु पाए ॥ १५३

शब्दार्थ—बिभूषन होत=शोभा पाता है। सभाजित=सभा को जीतने वाले, अति प्रसिद्ध कवि। भुवाल=भूपाल-राजा।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी का कवि कहाए बिना कौन श्रेष्ठ कवि शोभा पासकता है ? अथवा कौन कवि कविशिरोमणि हो सकता है ? और कौन ऐसा कवि है जो सभा में शिवाजी के गुण वर्णन किये बिना सभाजित कहला सके अर्थात् सभा में ख्याति पा सकता है ? कौन सा ऐसा कविराज है जो बिना शिवाजी को अच्छा लगे अन्य राजाओं को रुचिकर हो ? और पृथ्वी पर ऐसा कौन सा कवि है जो शिवाजी का कृपा पात्र हुए बिना हाथी घोड़ों पर चढ़ सके ? अर्थात् कोई ऐसा नहीं है।

विवरण—यहाँ बिना शिवाजी का कवि कहलाए, बिना उन की सभा के गुण गाए और बिना उनके कृपा-पात्र हुए कवियों का शोभा न पाना कथन किया गया है, अतः विनोक्ति है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना लोभ को बिवेक, बिना भय जुद्ध टेक,
साहिन सों सदा साहितनै सिरताज के।

बिना ही कपट प्रीति, बिना ही कलेस जीति,
बिना ही अनीति रीति लाज के जहाज के ॥
सुकवि समाज बिन अपजस काज भनि,
भूपन भुसिल भूप गरीबनेवाज के ।
बिना ही बुराई ओज, बिना काज घनी फौज,
बिना अभिमान मौज राज सिवराज के ॥१५४॥

शब्दार्थ—बिबेक=(सं० विवेक) विचार । टेक=प्रण, आन । अनीति=अन्याय । रीति=प्रजा के प्रति व्यवहार । लाज के जहाज=लज्जा के जहाज, अत्यन्त लज्जाशील । गरीब नेवाज=दीन दयालु ।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी महाराज का विचार लोभ रहित है और वे सदा बादशाहों से निर्भय होकर युद्ध-टेक (युद्ध की आन) रखते हैं । उनकी प्रीति बिना कपट के होती है, उनकी विजय बिना किसी कष्ट के ही होती है अर्थात् विजय प्राप्ति के लिए उन्हें बहुत कष्ट नहीं करना पड़ता और (प्रजा के साथ) उन लज्जाशील महाराज का व्यवहार बिना अन्याय के होता है । भूषण कवि कहते हैं कि दीनदयालु, भौंसिला राजा शिवाजी का सुकवि समाज अपयश के कार्यों से रहित है, और उन शिवाजी का तेज बुराई रहित है और उनकी बड़ी फौज बिना काम के रहती है अर्थात् उनके तेज के कारण सेना कार्य-रहित है, और उनकी प्रसन्नता या उल्लास अभिमान से सर्वथा रहित है ।

विवरण—यहाँ विवेक, युद्धटेक, प्रीति, जीत, रीति आदि को क्रमशः बिना लोभ, बिना भय, बिना कपट, बिना क्लेश और बिना अनीति के शोभायमान कथन किया गया है; अतः विनोक्ति है ।

चौथा उदाहरण—मनहरण कवित्त

कीरति को ताजी करी बाजि चढ़ि लूटि कीन्ही,
भइ सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की ।

भूषन भनत, भौंसिला भुवाल धाक ही सों,
धीर धरवी न फौज कुतुब के धुर की॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्ही साहिबी त्यो दिलीसुर की।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी ॥१५५॥

शब्दार्थ—बाजी=घोड़ा। बिनुबाजी भई=हार गई। धरवी=धरेगी यहाँ भूतकालिक क्रिया का अर्थ होगा (बुन्देलखंडी प्रयोग)। धुर=केन्द्र स्थान, किला। मुरकी=मुरक गई, नष्ट हो गई। सलाह=सम्मति, मेल। साहिबी=प्रभुत्व ।

अर्थ—घोड़े पर चढ़कर शिवाजी ने खूब लूट की और विजयपुर की समस्त सेना परास्त होगयी, इस तरह शिवाजी ने अपनी कीर्ति को फिर से फैलाया। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी की धाक ही से कुतुबशाह की केन्द्र-स्थान की सेना भी धैर्य न धरेगी (अथवा कुतुबशाह के किले में रहने वाली सेना भी घबड़ा जायगी) शिवाजी ने औरंगज़ेब के प्रभुत्व को उदयभानु, चतुर अमरसिंह, और मानसिंह से रहित कर दिया अर्थात् उनको मार डाला जिससे उनके बिना औरंगज़ेब का प्रभुत्व फीका पड़ गया। अथवा वीर उदयभानु तथा चतुर अमरसिंह के बिना करके अर्थात् उन प्रधान सेनापतियों से रहित करके औरंगज़ेब के प्रभुत्व को मान रहित कर दिया। भला शाहजी के पुत्र महाबली शिवाजी से मेल न रखने पर कौन ऐसा बादशाह है जिसकी बादशाहत नष्ट न हो गई हो।

विवरण—यहाँ औरंगजेब की उदयभानु, अमरसिंह और मानसिंह के बिना हीनता कथन की गई है, पुनः शिवाजी से (मेल किए बिना) अन्य बादशाहों की अशोभनता कथन की है, अतः विनोक्ति अलंकार है।

समासोक्ति

लक्षण—दोहा

वरनन कीजै आन को, ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत, कवि कोविद सब कोय ॥ १५६॥

शब्दार्थ—आन=अन्य वस्तु, प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत।

अर्थ—जहाँ वर्णन तो किसी अन्य (प्रस्तुत) वस्तु का किया जाय और उससे ज्ञान किसी अन्य (अप्रस्तुत) वस्तु का भी हो वहाँ समस्त विद्वान एवं कवि समासोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस में प्रस्तुत के वर्णन में समान अर्थ-सूचक विशेषण शब्दों के द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है कभी बिना श्लेष के ही साधारण शब्दों द्वारा।

उदाहरण—दोहा

बड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो वन थान।
धनि सरजा तू जगत मैं, ताको हर्‌यो गुमान ॥ १५७॥

शब्दार्थ—डील=शरीर। पील=(फा०) फील, हाथी।

अर्थ—हाथी का बहुत बडा डील (शरीर) देखकर समस्त पशुओं ने (भय से) वन-स्थली को छोड दिया, परन्तु हे सिंह, तू धन्य है कि तूने ऐसे हाथी का भी घमड दूर कर दिया।

विवरण—यहाँ सिंह (सरजा) का वर्णन करना अभीष्ट है किन्तु अप्रस्तुत औरंगजेब और शिवाजी का वृत्तान्त श्लिष्ट शब्द 'सरजा' द्वारा जाना जाता है। क्योंकि 'सरजा' शब्द का अर्थ (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब है। अतः इससे यह अभिप्राय निकलता है कि औरंगजेब की विशाल शक्ति को देखकर सब राजा लोग अपना अपना राज्य छोड़कर भाग गये,

परन्तु हे वीर केसरी शिवाजी आपही इस ससार में धन्य है जिन्होंने उसके गर्व को चूर्ण कर दिया। इस प्रकार प्रस्तुत से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के कारण यहाँ समासोक्ति अलकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥ १५८॥

शब्दार्थ—द्विजराज=चन्द्रमा, ब्राह्मण। शिव=महादेव, शिवाजी। कला=चन्द्रमा की कला, काव्य कला।

अर्थ—तू ही सच्चा चन्द्रमा है, तेरी कला ही माननीय है, पूज्य है, क्योंकि तुझ पर श्री महादेव जी ने कृपा की है यह बात समस्त ससार में प्रसिद्ध है।

विवरण—यहाँ कवि का तात्पर्य तो चन्द्रमा की प्रशंसा है परन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' इन दोनों पदों के श्लिष्ट होने से अप्रस्तुत कवि भूषण और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है। जैसे—हे कवि भूषण! तू ही सच्चा ब्राह्मण है और तेरी ही कला (काव्य कला) प्रामाणिक है, क्योंकि तुझ पर शिवाजी ने अनुग्रह किया है, यह सारा ससार जानता है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उत्तर पहार विधनोल खँडहर झार-
खँडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जतु जंगलीन की बसति मार रद की॥
भूषण जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी ऊँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सो बैर कै बड़ाई निज मद की॥१५९॥

शब्दार्थ—बिधनोल=बिदनूर, तुगभद्रा नदी के उद्गम स्थान के पास पश्चिमी घाट पर यह एक पहाड़ी राज्य था। शिवाप्पा नामक राजा यहाँ राज्य करता था। अलीआदिलशाह ने इस राज्य को विजय कर के करद बनाया। इस पराजय के एक वर्ष बाद शिवाप्पा मर गया। तब उसका लड़का गद्दी पर बैठा। सन् १६७६ में शिवाजी ने उसे अपना करद बना लिया। खँडहर=इस नाम का चम्बल और नर्मदा के बीच सुल्तानपुर के समीप एक कसबा था। भूषण ने शायद इसका प्रयोग कंधार के लिए किया है। झारखड= उड़ीसा में एक स्थान। केली=केलि, क्रीड़ास्थान। बिरद=यश। गोर=अफगानिस्तान का एक शहर, जहाँ से मुहम्मद गोरी आया था। बसति=बस्ती। रद की=बरबाद की, नष्ट की।

अर्थ—जिस (हाथी) का सुन्दर यश उत्तर के पहाड़ों में तथा बिदनूर खँडहर, और झारखंड आदि देशों में फैला हुआ है, गोर, (अफगानिस्तान) गुजरात और पूरब तथा पश्चिम के समस्त जगली जतुओं की बस्तियों को जिस हाथी ने चौपट कर दिया है, भूषण कहते है कि वह प्रबल मदमस्त गजराज, एक ऐसे सिंह को जो बिना जाने घोर गर्जना नहीं करता, देख कर अपने कद की ऊँचाई को भूल बैठा और उससे लड़ाई कर अपने पद की—बल की—बड़ाई को खो बैठा।

विवरण—यहाँ भी कवि की इच्छा हाथी के वर्णन की है परन्तु उस में सरजा शब्द श्लिष्ट होने से शिवाजी तथा औरगजेब के व्यवहार का भान होता है। अभिप्राय यह है कि जिस औरंगजेब का यश उत्तर के पहाड़ों, तथा बिदनूर (पश्चिमी घाट) खँडहर या कधार और झारखड के प्रान्तों में फैला हुआ है, गोर और गुजरात तथा पूरब और पश्चिम के जगल में रहने वालों की बस्तियों को भी जिस ने मार मार कर चौपट कर दिया है, भूषण कहते है कि औरगजेब रूपी वह प्रबल मदमस्त गजराज शिवाजी रूपी एक वीर केशरी से

लडाई करके अपने कद की ऊँचाई को (अपने विशाल साम्राज्य को) भुला बैठा और अपने पद की—बल की—बडाई खो बैठा। इस तरह यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

परिकर तथा परिकराङ्कुर

लक्षण—दोहा

साभिप्राय विशेषननि, भूषन परिकर मान।
साभिप्राय विशेष्य ते, परिकर अंकुर जान ॥१६०॥

शब्दार्थ—साभिप्राय=अभिप्राय सहित।

अर्थ—जहाँ अभिप्राय सहित विशेषण हों वहाँ परिकर और जहाँ अभिप्राय सहित विशेष्य हो वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है।

सूचना—साभिप्राय विशेषण एव विशेष्य से एक विशेष ध्वनि निकला करती है, अर्थ वही रहता है, उसकी वास्तविकता भी वैसी ही रहती है, उससे जो ध्वनि निकलती है केवल उसी में विशेषता है, उससे ही चमत्कार होता है।

उदाहरण परिकर—कवित्त मनहरण

बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने,
भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा ॥
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली-दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥१६१॥

शब्दार्थ—समुहाने=सम्मुख, सामने। दिल आनि=दिल मे ला, मान ले। मेरा बरजा=मेरा मना किया। अयाने=मूर्ख। सलहेरि=

छन्द ९६ का नोट देखो। दल=सेना। दलन=नाश करने वाला। मलन=मसल डालने वाला। बहलोल खॉ सन् १६३० ई० में निजामशाही दरबार में था। फिर सन् १६६१ में इसने बीजापुर सरकार की सेवा ग्रहण करली और शिवाजी से युद्ध करने को भेजा गया, परन्तु बीच में ही सिद्दी जौहर नामक सेनापति के बीजापुर से बिगड़ जाने के कारण यह शिवाजी तक न पहुँच सका। तब उसने सिद्दी को परास्त किया। सन् १६७३ में बीजापुर के वजीर खवासखॉ ने इसे शिवाजी से लड़कर पन्हाला का किला लेने भेजा, पर मरहठों ने इसे खूब ही तग किया। इसे चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया कि बेचारे को पानी पीने तक को न मिला पीछे बड़ी कठिनाइयों से इस का पिण्ड छूटा। सन् १६७५ में इसने खवास खा को मरवा डाला और स्वय बीजापुर के नाबालिग बादशाह का मुतवल्ली (Regent) बन बैठा। सन् १६७७ ई में यह कुतुबशाह से लड़ने चला परन्तु कुतुबशाह के वजीर और शिवाजी के साथी मधुनापन्त ने इसे परास्त किया। सन् १६७८ ई० में यह मर गया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अरे मूर्ख बहलोलखाँ मेरा मना करना—कहना—मान ले, अन्यथा तू शिवाजी के सामने जाने पर नहीं बचेगा। तुझ से सवाया (अधिक) वीर तेरा भाई था परन्तु उसे भी सलहेरि के युद्ध में (शिवाजी ने) कैद कर लिया और उसके साथ का कोई भी वीर चूँ तक न कर सका अर्थात् उसके किसी साथी ने भी उसके छुडाने में कुछ पुरुषार्थ प्रकट न किया। शाहों के शाह उस औरगजेब बादशाह के भी किले शिवाजी ने जीत लिये जिसका तू नौकर है और जिसकी तू प्रजा है। शाहजी के प्रिय पुत्र, दिल्ली-पति की सेना के नाश करने वाले, अफजलखाँ को मसलने वाले (मारने वाले) वीर केसरी शिवाजी आगये है। (तू यहाँ से भाग अन्यथा तुझे भी मार डालेंगे।)

विवरण—यहाँ भूषण कवि 'बहलोलखाँ' को शिवाजी के सम्मुख आने से मना करते हैं, शिवाजी को दिल्ली के दल का नाशक, अफजलखाँ का मारने वाला, इखलासखाँ को हराने वाला वर्णन करके उसके भी मरने का भय दिखलाया है इन साभिप्राय विशेषणों से यही ध्वनि निकलती है कि जो ऐसा वीर है उसके सामने, हे बहलोलखाँ तू क्यों जाता है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सूर सिरोमनि सूर-कुल, सिव सरजा मकरंद।
भूषन क्यों औरंग जितै, कुल मलिच्छ कुल-चंद ॥१६२॥

शब्दार्थ—सूर=शूरवीर, तथा सूर्य। कुल=कुटुम्ब, सब। मकरंद=माल मकरंद के वंशज। कुल मलिच्छ कुल-चन्द=समस्त म्लेच्छों के कुल का चन्द्र।

अर्थ—माल मकरन्द के वंशज वीर शिवाजी सूर्य-कुल के शूर शिरोमणि हैं, (फिर भला) औरंगजेब-रूपी समस्त म्लेच्छ-कुल का चन्द्रमा उनको कैसे जीत सकता है अर्थात् नहीं जीत सकता।

विवरण—यहाँ "शिवाजी" और "औरंगजेब" के लिए क्रमशः सूर्य और चन्द्र आदि साभिप्राय विशेषण कथन किये गये हैं, क्योंकि चन्द्र सूर्य को नहीं जीत सकता, यह सब जानते हैं। साभिप्राय विशेषण होने से यहाँ परिकर है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

भूषन भनि सबही तबहि, जीत्यो हो जुरि जंग।
क्यों जीतै सिवराज सों, अब अंधक अवरंग॥१६३॥

शब्दार्थ—अंधक=कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य जिस के सहस्र सिर थे। यह अंधक इस कारण कहलाता था कि यह देखते हुए भी मद के मारे अंधो की तरह चलता था। स्वर्ग से पारिजात लाते हुए यह शिवजी के हाथों मारा गया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अधक आदि सब दैत्यों को शिवराज ने युद्ध करके तब ही (पहले ही) जीत लिया था, सो अब अधक-रूपी औरंगजेब (शिवजी के अवतार) शिवाजी को किस प्रकार जीत सकता है ?

विवरण—यहाँ औरगजेब का अधक साभिप्राय विशेषण है, अतः परिकर अलंकार है।

परिकरांकुर

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान जाके धनद समान,
पेखियतु पासवान यों खुमान चित चाय है।
भूषन भनत देखे भूख न रहत सब,
आप ही सो जात दुख-दारिद विलाय है॥
खीझे ते खलक माँहि खलभल डारत है,
रीझे तें पलक माँहि कीन्हे रक राय है।
जग जुरि अरिन के अग को अनग कीवो,
दीवो सिव साहव को सहज सुभाय है ॥१६४॥

शब्दार्थ—धनद=देवताओं का कोषाध्यक्ष, कुबेर। पेखियतु= दिखाई पड़ते हैं। पासवान=पास रहने वाले, नौकर। खीझे तें= नाराज़ होने पर। खलबली=हल-चल। अनग=अगहीन, कामदेव।

अर्थ—इस छन्द का अर्थ शिवाजी और शिव दोनों अर्थों में लगता है।

(शिवजी के पक्ष में) जिनके पास रहने वाले कुबेर जैसे देवता है, और जिनके दर्शन मात्र से भूख मिट जाती है, तथा दु ख-दारिद्रय स्वयं नष्ट हो जाता है, और जिनके अप्रसन्न होने से ससार भर में प्रलय हो जाती है और प्रसन्न होने पर पल भर में रंक को राजा कर देते हैं, उन

शिवजी महाराज का युद्ध करके अपने शत्रु कामदेव को अनग कर देना तथा दान देना सहज स्वभाव है ।

(शिवाजी के पक्ष में) ससार में प्रसिद्ध है कि शिवाजी महाराज की ऐसी अभिरुचि है कि उनके पास रहने वाले नौकर भी (ऐसे ठाठ से रहते है कि)कुबेर के समान दिखाई देते हैं । भूषण कवि कहते हैं कि जिन (शिवाजी) के देखने से लोगों की भूख उड़ जाती है और दरिद्रता आदि अनेक कष्ट सहज ही अपने आप नष्ट हो जाते हैं, जिनके नाराज़ हो जाने पर समस्त संसार में खलबली मच जाती है और जिनकी प्रसन्नता से पलक भर में ही कंगाल भी राजा हो जाते हैं उन कृपालु शिवाजी का युद्ध में जुटकर शत्रुओं को अगहीन कर देना और दीनों को दान देना सहज स्वभाव हैं ।

विवरण—यहाँ 'सिव' शब्द साभिप्राय विशेष्य है क्योंकि 'शिव' ने ही कामदेव को भस्म करके अनंग कर दिया था अतः यहाँ परिकरांकुर अलकार है ।

श्लेप

लक्षण—दोहा

एक वचन में होत जहँ, बहु अर्थन को ज्ञान ।
स्लेस कहत हैं ताहि को, भूषन सुकवि सुजान ॥ १६५ ॥

अर्थ—जहाँ एक बात के कहने से बहुत से अर्थों का ज्ञान हो वहाँ चतुर कवि श्लेप अलंकार कहते है ।

सूचना—भूषण जी ने श्लेष को अर्थालंकार मे ही माना है । शब्दालंकार में इसे नहीं गिनाया, किन्तु उदाहरण शब्द-श्लेप और अर्थ-श्लेप दोनों के दिये है । शब्द-श्लेप और अर्थ-श्लेप मे यही अन्तर है कि शब्द-श्लेप मे श्लिष्ट (अनेक अर्थ वाले) शब्दों से अनेक अर्थों का विधान होता है किन्तु उन शब्दों के स्थान पर

उनके पर्याय (समानार्थ) शब्द रख दिये जायँ तो वह श्लिष्टता नहीं रहती। अर्थ-श्लेष मे शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है, उन शब्दों के पर्याय रख देने पर भी वह श्लेष ज्यों का त्यों रहता है।

उदाहरण—कवित्त

सीता सग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है।
भूपन भनत कुल-सूर कुल-भूपन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है॥
अरि-लक तोर जोर जाके सग बानरहैं
सिंधुरहैं बाँधे जाके दल को न पारु है॥
तेगहि कै भेटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी रामही को अवतारु है॥१६६॥

सूचना—इस कवित्त के दो अर्थ है—एक अर्थ राम पक्ष मे दूसरा शिवाजी पक्ष में, यह कवित्त के अन्तिम पद से स्पष्ट प्रकट होत है।

शब्दार्थ—(राम पक्ष में)—सीता सग सोभित=जानकी जी साथ शोभित हैं सुलच्छन=श्रेष्ठ लक्ष्मण जी। भरत=भरत जी। भाई=भ्राता। दासरथी=दशरथ के पुत्र। लक=लंका। बानरहैं=बानर हैं। सिंधु रहैं बाँधे=सिंधु को बाँधा है। ते गहि कै भेंटै=वे पकड़ कर भेटते हैं जौन राकस मरद जानै=जो राक्षसों को मर्दन करना जानते हैं।

अर्थ—(राम पक्ष में) जो श्री सीता जी के संग शोभित हैं, जिन के सहायक सुन्दर लक्ष्मण हैं, पृथ्वी पर सुन्दर नीति वाले भरत नाम के जिनके भाई हैं भूषण कहते हैं कि जो समस्त सूर्य कुल के भूषण हैं, जो दशरथ के बेटे हैं, और जिनकी भुजाओं पर समस्त पृथ्वी का भार

है, शत्रु (रावण) की लंका को तोड़ने का जिन में बल है, ऐसे बानर जिनके साथ हैं, जिन्होंने समुद्र को बाँधा था, जिनके दल का कोई पार न था जो भेंट होने पर (सामना होने पर) राक्षसों को पकड़ कर मर्दन करना जानते हैं मानों उन्हीं रामचन्द्रजी के शिवाजी अवतार हैं।

शब्दार्थ—(शिवाजी पक्ष में) —सीता संग सोभित=श्री (लक्ष्मी) ता सग शोभित। सुलच्छन=शुभ लक्षण (वाले व्यक्ति) भरत= भरना, पालन करना। भाई=भाती है। सूर=शूर, योद्धा। दासरथी= रथी है दास जिस के, बड़े बडे वीर जिसके सेवक है। लंक=कमर। बान रहै=वाण रहते हैं। सिंधुर है बाँधे=हाथी (द्वार पर) बँधे रहते हैं। जाके दल को न पारु है=जिस की सेना अनगिनत है। तेगहि कै भेंटै=तलवार ही से भेटता है। जो नराकस मरद जानै=जो [नर=मनुष्य (प्रजा)+अकस=शत्रु] प्रजा के शत्रुका मर्दन करना जानता है।

अर्थ—(शिवाजी पक्ष में)—जो सदा लक्ष्मी के सहित शोभित है, सुन्दर लक्षणों वाले व्यक्ति जिसके सहायक हैं, पृथ्वी पर जिसका भर्ता (पालन पोषण करने वाला) नाम प्रसिद्ध है, जिसकी सुन्दर नीति सबको भाती है, जो समस्त शूरवीरों का भूषण है, सब रथी जिसके दास हैं, और जिसकी भुजाओं पर सारी पृथ्वी का भार है, शत्रुओं की कमर तोड़ने का जिनमें बल है, ऐसे तीखे वाण जिसके साथ रहते हैं, जिसके (द्वार पर) हाथी बँधे हुए है और जिसकी सेना का कोई पारावार नहीं है, जो शत्रुओं को तलवार से ही भेंटता है, जो मनुष्यों के शत्रुओं का मर्दन करना जानता है, अथवा जो राक्षस अर्थात् म्लेच्छों का मर्दन करना जानता है वह वीर-केसरी शिवाजी रामचन्द्र जी का ही अवतार है।

विवरण—यहाँ 'शब्द श्लेष' है। यदि 'सीता' के स्थान पर 'जानकी' रख दिया जाय तो श्लिष्टता नहीं रहेगी। यही बात अन्य शब्दों की है। 'शब्द श्लेष' दो तरह का होता है—एक भंगपद, दूसरा

अभगपद। जहॉ दो अर्थों के लिए पदों को जोडा-तोड़ा जाता है, वहॉ भगपद और जहॉ पदच्छेद न करना पडे वहॉ अभगपद होता है। यहॉ भंगपद श्लेप है।

दूसरा उदाहरण—मनहरण कवित्त

देखत सरूप को सिहात न मिलन काज,
जग जीतिबे की जामै रीति छल बल की।
जाके पास आवै ताहि निधन करति वेगि,
भूपन भनत जाकी सगति न फल की॥
कीरति कामिनी राच्यो सरजा सिवा की एक,
बस कै सकै न बसकरनी सकल की।
चचल सरस एक काहू पै न रहै दारि,
गनिका समान सूबेदारी दिली-दल की॥१६७॥

सूचना—इस कवित्त के भी दो अर्थ हैं। एक अर्थ दक्षिण की सूबेदारी पक्ष में दूसरा वेश्या पक्ष में, यह बात कवित्त के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट है।

शब्दार्थ—को न सिहात=कौन अभिलाषा नहीं करता, कौन नहीं, ललचाता मुग्ध नहीं होता। मिलन काज=प्राप्त करने के लिए अथवा मिलन क लिए। निधन करत=निर्धन करती है, अथवा मार डालती है। वेगि=शीघ्र। राच्यो=अनुरक्त। दारी= व्यभिचारिणी एव छिनाल स्त्री। गनिका=गणिका, वेश्या। सरस= रस जानने वाली,बढ़कर।

अर्थ—(वेश्या पक्ष मे) सुन्दरी वेश्या के रूप-लावण्य को देखकर ऐसा कौन व्यक्ति है जो उससे मिलने के लिए—आलिंगन करने के लिए न ललचाता हो, जिसमें छलबल से ससार भर (के हृदयों) को जीतने की अनेक रीतियाँ हैं, अर्थात् जो कपट, और नाज-नखरों से ससार भर को जीतना जानती है वह जिसके पास आती है उसे शीघ्र ही

निर्धन कर देती है, उसका धन चूस लेती है। भूषण कहते हैं कि उसका संग करना कभी भी अच्छा फल नहीं देता। वह रस को जानने वाली चचल व्यभिचारिणी वेश्या कभी किसी एक व्यक्ति के पास नहीं रहती और वह सबको वश में करने वाली, लपेट लेने वाली है, परन्तु कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त एक शिवाजी ही ऐसे हैं जिनको वह अपने वश में नहीं कर सकी अर्थात् यशस्वी चरित्रवान् शिवाजी ही ऐसे व्यक्ति है जिन्हें वह नहीं लुभा सकी।

(सूबेदारी के पक्ष मे) दिल्ली की सेना की इस सूबेदारी, जिसमें कि ससार भर को जीतने के लिए छलबल की—कपट की अनेक रीतियाँ हैं, के सरूप(वैभव) को देखकर कौन ऐसा प्राणी है जो इसको पाने के लिए न ललचाता हो, पर यह जिसके पास जाती है, शीघ्र ही उस का नाश कर देती है, और इसका संग करना—साथ करना भी अच्छा नहीं। (क्योंकि सूबेदार बनते ही शिवाजी का सामना करने के लिए जाना आवश्यक होता है, तब शिवाजी के हाथों से कौन बच सकता है प्रत्येक सूबेदार मारा जाता है। इस तरह जो इसे पाता है, शीघ्र ही उसका नाश हो जाता है) यह (दिल्ली सेना की सूबेदारी) वेश्या के समान चचल है; वरन् उससे भी बढ़कर है, और कभी किसी एक के पास नहीं रही (अर्थात्—या तो वह सूबेदार मारा जाता है और नया सूबेदार नियुक्त हो जाता है, अथवा यदि किस्मत से बच जाय तो शिवाजी से हार खाने के कारण औरंगज़ेब उसे पदच्युत कर देता है, इस तरह सूबेदारी कभी किसी एक के पास नहीं रहती) यह सूबेदारी सब को वश में करने वाली है। कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त शिवाजी ही एक ऐसे हैं जिन्हें यह नहीं लुभा सकी—अर्थात् जसवंतसिंह आदि सब राजाओं को इस सूबेदारी के लोभ ने फँसा लिया है, एक यशस्वी शिवाजी ही ऐसे हैं जो इसके लोभ में नहीं पड़े और जिन्होंने औरंगज़ेब से स्वतंत्र रहना ही कीर्त्तिकर समझा।

विवरण—यहाँ श्लिष्ट शब्दों द्वारा उक्त कवित्त के दो अर्थ हुए हैं—एक वेश्या पक्ष में, दूसरा दक्षिण की सूबेदारी पक्ष मे। इसमें अर्थश्लेष का प्राधान्य है, क्योंकि प्रायः ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं कि यदि उनके पर्याय भी प्रयुक्त होते तब भी अर्थ यही रहता।

अप्रस्तुत-प्रशंसा

लक्षण—दोहा

प्रस्तुत लीन्हे होत जहँ अप्रस्तुति परसंस।
अप्रस्तुत-परसंस सो, कहत सुरुचि अवतंस ॥ १६८ ॥

शब्दार्थ—प्रस्तुत=जो प्रकरण में हो अर्थात् जिसके कहने की इच्छा हो। लीन्हे=लेने, ग्रहण करने। अप्रस्तुत=जिस बात का प्रकरण न हो अथवा जिस के कहने की इच्छा न हो। प्रसंस= वर्णन। अवतंस=श्रेष्ठ।

अर्थ—जहाँ प्रस्तुत के लेने (ग्रहण) के लिए अर्थात् वर्णन के लिए अप्रस्तुत का वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार कहते हैं (इसमें प्रस्तुत को सूचित करने के लिये अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है)।

सूचना—श्लेष में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों मौजूद रहते हैं। समासोक्ति मे केवल प्रस्तुत का वर्णन होता है, और उससे अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, परन्तु अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत की सूचना दी जाती है। अप्रस्तुत प्रशंसा के पाँच भेद हैं। १. कार्य-निबंधना (कार्य कह कर कारण लक्षित किया जाना,) २ कारण-निबंधना (जहाँ कहना होता है कार्य, पर कहा जाता है कारण) ३. सामान्य-निबंधना (अप्रस्तुत सामान्य के कथन के द्वारा प्रस्तुत विशेष का लक्षित करना) ४. विशेष निबंधना (अप्रस्तुत विशेष के द्वारा सामान्य का बोध कराया जाना) ६. सारूप्य निबन्धना (समान मिलता जुलता अप्रस्तुत कह कर प्रस्तुत लक्षित किया जाना)।

परन्तु महा कवि भूषण ने केवल कार्य-निबंधना का ही वर्णन किया है, और विशेष निबन्धना को 'सामान्य विशेष' नामक अलग अलंकार माना है।

उदाहरण—दोहा

हिन्दुनि सों तुरकिनि कहैं, तुम्हैं सदा सन्तोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पर, सिव सरजा कर रोष ॥१६९॥

शब्दार्थ—हिन्दुनि=हिन्दू स्त्रियाँ। तुरकिनि=मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हिन्दू स्त्रियों से तुर्कों की स्त्रियाँ कहती हैं कि तुम ही सदा सुखी हो, क्योंकि तुम्हारे पतियों पर सरजा राजा शिवाजी का क्रोध नहीं है।

विवरण—यहाँ पराक्रमी शिवाजी का मुसलमानों का शत्रु होना तथा इस कारण मुसलमान स्त्रियों का सदा अपने पतियों के जीवन के लिए दुःखित चिन्तित रहना इस प्रकार उनका अपनी दुर्दशा का वर्णन प्रस्तुत है, इसको उन्होंने हिन्दू स्त्रियों के पतियों पर शिवाजी का क्रोधित न होना अतएव हिन्दू स्त्रियों का सन्तुष्ट रहना रूप अप्रस्तुत कार्य द्वारा प्रकट किया है।

दूसरा—उदाहरण

अरितिय भिल्लिनि सों कहैं, घन बन जाय इकन्त।
सिव सरजा सों बैर नहिं, सुखी तिहारे कन्त ॥१७०॥

शब्दार्थ—भिल्लिनि=भीलिनी। घन=गहन, गहरा।

अर्थ—शत्रु-स्त्रियाँ एकान्त गहन वन में जाकर भीलनियों से कहती हैं कि तुम्हारे स्वामी ही आनन्द में हैं, क्योंकि उनकी शत्रुता सरजा राजा शिवाजी से नहीं है (पर हमारे पतियों का शिवाजी से वैर है इसलिए वे सुखी नहीं)।

विवरण—यहाँ भी शिवाजी से वैर के कारण अपने पतियों

की दुर्दशा का वर्णन न कर अपितु भीलनियों के पतियों को सुखी बता कर अप्रस्तुत वर्णन से प्रस्तुत का संकेत किया है ।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

काहू पै जात न भूपन जे गढ़पाल की मौज निहाल रहे हैं।
आवत हैं जो गुनीजन दच्छिन भौंसिला के गुन-गीत लहे हैं॥
राजन राव सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहे हैं।
संक नहीं, सरजा सिवराज सों आजु दुनी मैं गुनो निरभै है॥१७१॥

शब्दार्थ—गढपाल=गढ़ों के पालक, शिवाजी। धाक धुके=आतङ्क से घबड़ाए हुए। दुनी=दुनिया, संसार।

अर्थ—भूषण कहते है कि जो गुणीजन (पंडित कवि इत्यादि) दक्षिण में आते है और भौंसिला राजा गढपति शिवाजी के गुणों के गीत गाते हैं, वे शिवाजी की प्रसन्नता से निहाल हो गये हैं, और वे अब किसी अन्य के पास नहीं जाते। (उन्हें देख कर) चिरजीवी शिवाजी के आतङ्क से घबडाए हुए सब राजा उमराव और सरदार यह कहते हैं कि आजकल संसार में पण्डित ही निर्भय हैं (चेन में हैं) क्योंकि उन्हें शिवाजी से किसी भी प्रकार की भी शंका नहीं है।

विवरण—'शिवाजी बड़ा गुणग्राही है' इस प्रस्तुत कारण को, 'गुणियों का शिवाजी से निहाल हो जाना', रूप अप्रस्तुत कार्य कथन द्वारा प्रकट किया है। अथवा अपने निहाल हो जाने और शिवाजी को छोड़ अन्यत्र कहीं न जाने इस प्रस्तुत विषय को भूषण ने अन्य कवियों के निहाल हो जाने से व्यक्त किया है। इस हालत में यहाँ सामान्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा होगी।

पर्य्यायोक्ति

लक्षण—दोहा

वचनन की रचना जहाँ, वर्णनीय पर जानि।
परयायोकति कहत हैं, भूपन ताहि बखानि॥ १७२॥

अर्थ—जहाँ वर्ण्य वस्तु का वचनों की चातुरी द्वारा घुमा फिरा कर वर्णन किया जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार होता है। अर्थात् जिसका वर्णन करना हो उसको इस चतुरता से कहा जाय जिससे वर्णनीय का कथन भी हो जाय, और उसका उत्कर्ष भी प्रतीत हो। पर्यायोक्ति दो प्रकार की होती है—एक जहाँ व्यंग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय, दूसरा जहाँ किसी बहाने से कोई काम हो।

सूचना—अप्रस्तुत प्रशंसा मे अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है। समासोक्ति में प्रस्तुत-वर्णन से श्लिष्ट शब्दों द्वारा किसी अप्रस्तुत का भान होता है, पर पर्य्यायोक्ति मे प्रस्तुत का कथन कुछ हेर-फेर कर किया जाता है स्पष्ट शब्दों में नहीं, उस में अप्रस्तुत का आभास नहीं होता है। प्रत्युत प्रस्तुत का उत्कर्ष ज्ञात होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज तेरे वैर देखियतु,
घन वन ह्वै रहे हरम हबसीन के।
भूपन भनत रामनगर जवारि तेरे,
वैर परवाह बहे रुधिर नदीन के॥
सरजा समरथ वीर तेरे वैर बीजापुर,
वैरी वैयरनि कर चीह्न न चुरीन के।
तेरे वैर देखियतु आगरे दिली के बीच,
सिन्दुर के बुन्द मुख-इन्दु जवनीन के॥१७३॥

शब्दार्थ—रामनगर जवारि=रामनगर, तथा जवारि या जौहर नाम के कोंकण के पास ही दो कोरी राज्य थे। सन् १६७२ में सलहेरि विजय के बाद मोरोपत पिंगले ने बडी भारी फौज लेकर उन को विजय कर लिया। परवाह=प्रवाह। वैयर=(वधूवर) स्त्री। चुरीन=चूड़ियाँ। जवनीन=यवन स्त्रियाँ, मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी ! यह देखा जाता है कि आपके वैर के कारण घने जंगल हवशियों के जनानखाने बन गये हैं, अर्थात् जो तातारी हवशी पहरेदार बादशाह के अन्तःपुर में रहते थे, अब बादशाहों के जंगल में चले जाने के कारण वे हवशी गुलाम भी कुटुम्ब सहित जंगलों में चले गये हैं। भूषण कवि कहते हैं कि आपके ही वैर के कारण रामनगर और जवार नगर में रक्त की नदियों के प्रवाह बह गये। हे समर्थ वीर-केसरी शिवाजी! आपके वैर से बीजापुर के शत्रुओं की स्त्रियों के हाथों में चूड़ियों के चिह्न ही नहीं रहे अर्थात् सब विधवा हो गईं, और आपके ही वैर के कारण आगरे और दिल्ली नगर की मुसलमान स्त्रियों के चन्द्रमुखों पर सिंदूर की बिंदी दिखाई देती है। (मुसलमान स्त्रियाँ सिंदूर का टीका इसलिए लगाती हैं कि वे भी हिन्दू स्त्रियाँ ही जान पड़ें, और उनकी रक्षा हो जाय)।

विवरण—यहाँ सीधे यह न कह कर कि "शिवाजी बड़े शत्रु-विजयी हैं" यों कहा है कि तुम्हारे वैर से शत्रुओं के अन्तःपुर जंगलों में हो गये, नगरों में खून की नदियाँ बहने लगीं और स्त्रियों के हाथों से चूड़ियों के चिह्न ही मिट गए और मुसलमान स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियों की तरह सिंदूर का टीका लगाने लगी हैं। इस प्रकार यहाँ शिवाजी की विजय का चतुरता से वर्णन भी है, और उनका उत्कर्ष भी प्रकट हुआ है।

उदाहरण (द्वितीय पर्यायोक्ति)—मनहरण दण्डक

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह
सगर मैं सिंह के से जिनके सुभाव हैं।
भूषण भनत सिव सरजा की धाक ते वै
काँपत रहत चित गहत न चाव हैं॥
अफजल की अगति, सायस्तखाँ की अपति
बहलोल-विपति सों डरे उमराव हैं।

पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छाँड़ि
मक्का के ही मिसि उतरत दरियाव हैं ॥१७४॥

शब्दार्थ—सिच्छक=शिक्षक । संगर=युद्ध । चाव=उमंग, उत्साह । अगति=दुर्गति, दुर्दशा । अपति=अप्रतिष्ठा । मतो=निश्चय । मनसब=पद ।

अर्थ—राजाओं को शिक्षा देने वाले (दण्ड द्वारा ठीक कर देने वाले) वीर सिपाहियों के स्वामी तथा जो रणक्षेत्र में सिंह के समान पराक्रम दिखाने वाले हैं वे (बादशाह) भी शिवाजी की धाक से काँपते रहते हैं और उनका चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहता (सदा सशंक रहता है)। समस्त मुसलमान उमराव, अफजल खाँ की दुर्दशा, शाइस्ताखाँ की अप्रतिष्ठा और बहलोल खाँ का संकट (शिवाजी ने इन तीनों की बड़ी दुर्दशा की थी) सुनकर बहुत डर गए हैं और सब पक्का इरादा कर, अपनी मनसबदारी का पद त्याग कर और मक्का जाने का बहाना कर समुद्र पार करते हैं। (शिवाजी मक्का जाने वालों को नहीं छेड़ते थे)।

विवरण—यहाँ मक्का जाने के बहाने से मुसलमानों का प्राण बचाना दूसरी पर्यायोक्ति है, और इससे शिवाजी का उत्कर्ष भी प्रकट होता है। शत्रु उनके भय से देश छोड़कर भाग रहे हैं।

व्याजस्तुति

लक्षण—दोहा

अस्तुति में निन्दा कढ़ै, निन्दा में स्तुति होय।
व्याजस्तुति ताको कहत, कवि भूपन सब कोय ॥१७५॥

शब्दार्थ—कढ़ै=निकले, प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ स्तुति में निन्दा और निन्दा में स्तुति प्रकट हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सब पंडित व्याजस्तुति मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पीरो पीरी हुन्नै तुम देत हो मँगाय हमैं,
सुवरन हम सों परखि करि लेत हौ।
एक पल ही मैं लाख रूखन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे को सचेत हौ॥
भूषन भनत महाराज सिवराज बडे,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ ? ।
रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत,
कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहियै देत हौ ॥१७६॥

शब्दार्थ—पीरी=पीली। हुन्नै=मुहरे,अशर्फी। सुवरन=(१)सुवर्ण, सोना, (२) सु+वर्ण सुन्दर अक्षर अर्थात् छंद। परखि=परीक्षा करके, खूब देख भाल कर। लाख=(२)एक प्रकार का प्रसिद्ध लाल पदार्थ जो पीपल आदि के पेड़ों पर कई प्रकार के कीड़ों से बनता है। इसकी चूड़ियाँ बनती हैं, चपड़ी भी उसी की होती है। (२) सौ हजार की संख्या। रूखन=वृक्षों से। हाथी देत है=(१) हाथ मिलाते है, २ हाथी दान करते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि महाराज शिवाजी ! पीली-पीली मुहरें मँगा कर आप हमें देते हैं पर हम से भी तो आप परख-परख कर सुवर्ण (सोना, सुन्दर अक्षर—सुन्दर छंद) लेते हैं। अर्थात् हम से ही सुवर्ण लेकर अशरफी देने में क्या बडी बात है। लोग वृक्षों तक से पल भर में ही लाख ले लेते हैं पर आप राजा होकर भी लाख (रुपये) देते समय सचेत होकर देते है। हे महाराज, फिर आप किस लिए दुनियाँ में बड़े दानी प्रसिद्ध हो गये हैं ? (अर्थात् आप इस प्रसिद्धि के योग्य नहीं हैं)। प्रसन्न होकर तथा हँस कर क्या केवल तुम ही एक हमें हाथी (पुरस्कार में) देते हो। प्रसन्न होने पर हँस करके तो हमें सब कोई ही हाथी देते हैं (हम से हाथ मिलाते है)।

विवरण—यहाँ सुबरन, लाख, हाथी आदि श्लिष्ट शब्द प्रयुक्त कर कवि ने शिवाजी के दान को प्रत्यक्ष तौर पर तुच्छ बताया है, पर वास्तविक अर्थ लेने से शिवाजी की दान-वीरता प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तू तौ रातौ दिन जग जागत रहत वेऊ,
जागत रहत रातौ दिन वन-रत हैं।
भूषन भनत तू विराजै रज-भरो वेऊ,
रज-भरे देहिन दरी मैं विचरत हैं॥
तू तौ सूर गन को विदारि बिहरत सूर,
मडलै विदारि वेऊ सुरलोक रत हैं।
काहे ते सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होत,
तोसो अरिवर सरिवर सी करत हैं॥१७७॥

शब्दार्थ—वेऊ=वे भी, शत्रु भी। जागत=सावधान रहना, जागना। वन-रत=वन में अनुरक्त लीन, वन में बसे हुए। रज=राजश्री तथा धूल। दरी=गुफा। विचरत=घूमते हैं। सूर=शूर। सूरमण्डल=सूर्य मण्डल। विदारि=फाड़ कर। गाजी=धर्म वीर। सरिवर=बराबरी।

अर्थ—तुम जिस तरह रात दिन संसार में जागते रहते हो (सावधान रहते हो) उसी तरह तुम्हारे शत्रु भी वनवासी होकर रात-दिन (तुम्हारे भय के कारण) जागते रहते हैं (सोते नहीं, कहीं शिवाजी आकर न मार डालें)। भूषण कवि कहते हैं कि तुम रज से भरे होने के कारण (राज्य श्री से युक्त होने के कारण) शोभित हो और वे शत्रु भी रज (धूल) से भरे हुए शरीरों से पहाड़ों की गुफाओं में घूमते-फिरते हैं। तुम सूरों (शूरवीरों के) समूह को फाड़कर (युद्ध में) विचरते हो। और वे (शत्रु) भी सूर-मण्डल को भेदकर स्वर्ग-लोक में विहार करते हैं, (कहा जाता है कि युद्ध में मरे हुए लोग सूर्यमण्डल को भेदकर स्वर्ग

को जाते हैं)। हे धर्मवीर शिवाजी ! फिर तुम्हारा ही यश (संसार में) क्यों प्रसिद्ध है ? क्योंकि तुम्हारे श्रेष्ठ शत्रु भी तुम से बराबरी सी करते हैं (उनका भी वैसा ही यश होना चाहिए)।

विवरण—यहाँ प्रकट में तो शिवाजी के शत्रुओं की स्तुति की गई है, उन्हें शिवाजी के समान कहा गया है, पर वास्तव में उनकी निन्दा है और उनकी दुर्दशा का वर्णन है।

आक्षेप

लक्षण—दोहा

पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध।
ताहि कहत आच्छेप हैं, भूपन सुकवि सुमेध ॥१७८॥

शब्दार्थ—प्रतिषेध=निषेध। सुमेध=अच्छी मेधा(बुद्धि) वाले।

अर्थ—पहले कुछ बात कहकर फिर उसका प्रतिषेध (निषेध) किया जाय वहाँ बुद्धिमान कवि भूषण आक्षेप अलंकार कहते है। (इसे उक्ताक्षेप भी कहते हैं)।

सूचना—आक्षेप का अर्थ ही 'बाधा डालना' है, अर्थात् जहाँ किसी कार्य के करने में बाधा डालने से तात्पर्य सिद्ध हो। इस में पहिले कही बात का तब ही निषेध होता है, जब कि उस से कोई दूसरी बात प्राप्त हो।

उदाहरण—मालती सवैया

जाय भिरौ, न भिरे बचिहौ, भनि भूषन, भौंसिला भूप सिवा सों,
जाय दरीन दुरौ, दरिऔ तजिकै दरियाव लँघौ लघुता सों॥
सीछन काज वजीरन को कढ़ै बोल यों एदिलसाहि सभा सों।
छूटि गयो तौ गयो परनालो सलाह की राह गहौ सरजा सों ॥१७९॥

शब्दार्थ—भिरौ=भिड़ो, लड़ो। दुरौ=छिपो। दरिऔ=दरी को भी, गुफा को भी। लँघौ=उल्लंघन करो,पार करो। लघुता-सों=लाघवता से, शीघ्रता से। परनालो=एक किला (विस्तृत विवरण) छन्द १०६ में

देखिए। सीछन काज=शिक्षण के लिए, उपदेशार्थ। सलाह=सुलह, मेल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि आदिलशाह की सभा से (सभासदों द्वारा) वज़ीरों के प्रति उनके उपदेशार्थ ये वचन (आदेश) निकले हैं कि तुम्हें भौंसिला राजा शिवाजी से जाकर युद्ध करना है तो करो, परन्तु उनसे युद्ध करके बचोगे नहीं अर्थात् मारे जाओगे (इस हेतु युद्ध न करो) इसलिए या तो पहाड़ों की गुफाओं में जाकर छिपो, (परन्तु इससे अच्छा यही है कि) गुफाओं को भी छोड़कर शीघ्रता से समुद्र पार करो (क्योंकि गुफाओं में भी तुम शिवाजी से छिपकर न बचोगे, अतः सबसे अच्छा यही उपाय है)। यदि परनाले का किला हाथ से छूट गया तो जाने दो, कोई परवाह नहीं, पर अब शिवाजी से सुलह करने का ही मार्ग अपनाओ, उनसे संधि कर लो।

विवरण—यहाँ प्रथम भिरौ, दरीन दुरौ, आदि बातें कहकर पुनः उन्हीं का निषेध किया है और इससे शिवाजी की प्रबलता तथा उत्कर्ष को सूचित किया है। अतः यहाँ प्रथम आक्षेप है।

द्वितीय आक्षेप

लक्षण—दोहा

जेहि निषेध आभास ही, भनि भूपन सो और।
कहत सकल आच्छेप हैं, जे कविकुल सिरमौर ॥१८०॥

शब्दार्थ—आभास=झलक।

अर्थ—जहाँ निषेध का आभास-मात्र कहा जाय अर्थात् जहाँ स्पष्टतया निषेध न किया जाय, पर बात इस प्रकार कही गई हो कि उस से निषेध का आभास-मात्र मिलता हो वहाँ भी श्रेष्ठ कवि दूसरा आक्षेप अलंकार कहते हैं। (इसे निषेधाक्षेप भी कहते हैं)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
भूषन कहैं यों अवरंग सों वजीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करत॥१८१॥

शब्दार्थ—पछाँह=पश्चिम। मुहीम=(अरबी०) आक्रमण, चढाई। उजुर=उज्र, विरोध, इन्कार। नेक=नेकु, थोड़ा, तनिक। उबरते=बचते, जिन्दा रहते।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि वजीर लोग औरंगज़ेब से इस प्रकार विनय करते हैं कि हम पूरब, उत्तर और पश्चिम देश के सब ज़बर्दस्त बादशाहों के किलों को भी छीन लेते और पुर्तगाल विजय करने के हेतु समुद्र को भी पार कर जाते, परन्तु (क्या करें) आप हमें शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए भेजते हैं (जहाँ कि बचना कठिन है)। हजरत! हम मरने से नहीं डरते, और हम तो आपके सेवक हैं, अत कोई उज्र भी नहीं कर सकते, परन्तु यदि कुछ दिन और जीने पाते तो आपके बहुत से कार्य करते।

विवरण—यहाँ शिवाजी को दमन करने के लिए नियुक्त मुगल सिपहसालार स्पष्टतया शिवाजी पर चढाई करने का निषेध न करता हुआ केवल उसका आभासमात्र देता है कि पीछे कुछ दिन बाद शिवाजी पर भेजा जाऊँ तो बीच में बादशाह सलामत का बहुत कुछ कार्य कर दूँगा। इस प्रकार यह निषेध स्पष्ट शब्दों में नहीं है।

विरोध

लक्षण—दोहा

द्रव्य क्रिया गुन मै जहाँ, उपजत काज बिरोध।
ताको कहत बिरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध ॥१८२॥

शब्दार्थ—द्रव्य=वस्तु।

अर्थ—जहाँ द्रव्य, क्रिया, गुण आदि के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी कार्य उत्पन्न हो अथवा, जहाँ दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाय वहाँ बुद्धिमान कवि विरोध अलंकार कहते हैं।

सूचना—विरोध अलकार में विरोधी पदार्थों का वर्णन वर्णनीय की विशेषता जताने को होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा-नृप सारे॥
साहि तनै तव कोप-कृसानु ते वैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे ॥१८३॥

शब्दार्थ—सेत=श्वेत, सुफेद। अरुन्न=स०अरुण, लाल सूर्य। सपेत=सफेद। कुनबा=कुटुम्ब,कुल। कृसानु=कृशानु,अग्नि। पानिप=अभिमान, पानी। तृन ओंठ गहे=तिनके ओंठ में लेने पर, तिनके ओंठों मे लेना दीनता का चिह्न है।

अर्थ—हे वीर-केसरी शिवाजी महाराज! आपके उज्ज्वल यश (यश का रंग सफेद माना गया है) से शत्रुओं के मुख काले पड़ जाते हैं अर्थात् शिवाजी की कीर्त्ति सुनकर शत्रुओं के मुखों पर स्याही छा जाती है। और आपके रक्त प्रताप (रूपी सूर्य) को देख कर समस्त शत्रु राजाओं के कुटुंब सफेद पड़ जाते हैं अर्थात् डरसे उनके मुखों की लाली उड़ जाती है। हे शिवाजी, आपकी क्रोधाग्नि से समस्त पानिप (अभिमान=

ऐंठ) वाले शत्रु गल गये (ठंढे हो गये, निस्तेज हो गये), परन्तु एक बड़ा आश्चर्य यह है कि वे शत्रु तिनका ओठों में धारण कर लेने पर (आपकी क्रोधाग्नि से) जलाए नहीं जाते । (जब शत्रुगण ओठों में तृण धारण करके अपनी दीनावस्था का परिचय देते है तब शिवाजी का क्रोध पानी हो जाता है) ।

विवरण—यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'जस सेत' से 'वैरिन के मुँह कारे' होने का वर्णन है इसी प्रकार द्वितीय चरण में 'अरुन्न प्रताप' स,शत्रु राजाओं के कुटुम्ब का श्वेत होने का वणन है, अतः गुण से गुण का विरोध है। अग्नि से वस्तु गलती नहीं पर जल पड़ती है किन्तु इसमे 'कोप कृसानु' से शत्रुओं के गलने का वर्णन है। इसी प्रकार तिनका आग में बहुत जल्दी जलता है, पर यहाँ वर्णन किया गया है कि 'तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे' यह द्रव्य का क्रिया से विरोध है।

सूचना—अन्य कवियों ने इस अलंकार को शुद्ध द्वितीय विषम माना है, 'विरोध' नहीं माना। इस में कारण कार्य का विरोध होता है जैसा कि ऊपर के छन्द से प्रकट है।

विरोधाभास

लक्षण—दोहा

जहँ विरोध सो जानिए, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय ॥१८४॥

अर्थ—जहाँ वास्तव में विरोध न हो परन्तु विरोध सा जान पड़े वहाँ सब कोई विरोधाभास अलंकार कहते हैं।

विवरण—वास्तव में विरोधालंकार और विरोधाभास में कोई अन्तर नहीं है। विरोधालकार में भी विरोध वास्तविक नहीं होता, यदि विरोध वास्तविक होता तो उसमें अलकारता न होती,

उलटा दोष होता। महाकवि भूषण जहाँ स्पष्ट विरोध दिखाई दे वहाँ विरोधालंकार मानते हैं, पर जहाँ शब्द-छल से या समझने की भूल से विरोध की केवल जरा सी झलक दिखाई दे वहाँ विरोधाभास अलङ्कार मानते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

दच्छिन-नायक एक तुही भुव-भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै॥
श्री सिवराज भनै कवि भूपन तेरे सरूप को कोउ न पावै।
सूर सुवस मैं सूर-शिरोमनि ह्वै करि तू कुल-चन्द कहावै॥१८५॥

शब्दार्थ—दच्छिन नायक=दक्षिण देश का नायक (राजा) अथवा वह पति जिसके कई स्त्रियाँ हों और जो सबसे समान प्रेम करता हो। भामिनि=स्त्री। अनुकूल=वह पति जो एक-स्त्रीव्रत हो; अथवा मुआफिक। भावै=अच्छा लगता है, रुचिकर होता है। दीन=(हिं) गरीब; (फा०) मजहब, धर्म।

अर्थ—हे दक्षिणनायक शिवाजी! पृथ्वी-रूपी स्त्री को एक तुम ही अनुकूल होने के कारण अच्छे लगते हो। तुम्हारे समान पृथ्वी पर दीनों पर कृपा करने वाला अन्य कोई पुरुष नहीं, परन्तु आप म्लेच्छों के दीन (मज़हब) का नाश कर देते हो। भूपन कवि कहते हैं कि श्रीमान् शिवाजी! तुम्हारे रूप को कोई नहीं पा सकता। तुम सूर्यवंश में श्रेष्ठ शूरवीर होने पर भी कुल के चन्द्रमा कहलाते हो।

विवरण—यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'दक्षिण नायक' का 'भुवभामिनी को अनुकूल ह्वै भावै' में विरोध है क्योंकि दक्षिण नायक की अनेक स्त्रियाँ होती हैं और वह सब स्त्रियों को समान प्यार करने वाला होता है। सो शिवाजी यदि दक्षिणनायक है तो वह अनुकूल नायक (एकही स्त्री से प्रेम करने वाला) कैसे हो सकता

है परन्तु 'दक्षिण नायक' का अर्थ 'दक्षिण देश का राजा' और 'अनुकूल' का अर्थ अनुग्राहक होने से विरोध का परिहार हो जाता है। इसी भाँति द्वितीय चरण मे 'दीनदयालु' और 'दीनहिं मारि मिटावे' में विरोध झलकता है परन्तु दीनदयालु में 'दीन' का अर्थ 'गरीब' तथा दूसरे 'दीन' का अर्थ मजहब होने से विरोध का परिहार होता है। चतुर्थ चरण में भी इसी भाँति सूर और चन्द्र में विरोध सा लगता है, परन्तु 'कुलचन्द' का अर्थ है कुल को चमकाने वाले।

विभावना

विभावना के कोई छः भेद मानते हैं कोई चार। भूषण ने चार प्रकार की विभावना मानी हैं।

प्रथम विभावना

लक्षण—दोहा

भयो काज बिन हेतु ही, बरनत हैं जेहि ठौर।
तहँ विभावना होत है, कवि भूषन सिरमौर॥ १८६॥

अर्थ—जिस स्थान पर बिना कारण के ही कार्य होना वर्णन किया जाय वहाँ कविशिरोमणि भूषण के मतानुसार विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

वीर बड़े बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो।
भूषन आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरँगजेब को गारो॥
दीन्हों कुज्वाब दिलीपति को अरु कीन्हों वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहि दक्खिननाथ न साथ मैं फौज न हाथ हथ्यारो॥१८७॥

शब्दार्थ—मीर=सरदार। खरो=खड़ा। गन=गण, समूह। गारो=गर्व, घमंड। कुज्वाब=कुजवाब, मुँहतोड़ उत्तर।

अर्थ—(जिस समय शिवाजी औरंगजेब के दरबार में गये थे उस

समय का यह वर्णन है)। जहाँ पर बड़े बड़े शूरवीर पठान सरदार और राजपूतों का भारी समूह खड़ा था भूषण कहते हैं कि वहाँ आकर शिवाजी ने औरंगज़ेब का (समस्त) घमंड नष्ट कर दिया। शिवाजी ने औरंगज़ेब को कोरा मुँह तोड़ उत्तर दिया और उसके वज़ीरों के मुखों को काला कर दिया, (आतंक के कारण) उनके मुखों पर स्याही छा गई। यद्यपि दक्षिणेश्वर महाराज शिवाजी के पास न फौज ही थी और न हाथ में कोई हथियार ही था तो भी उन्होंने औरंगज़ेब को मस्तक नहीं नवाया (प्रणाम नहीं किया, अधीनता स्वीकार न की)।

विवरण—निर्भयता का हेतु फौज का साथ होना तथा शस्त्रादि का हाथ में होना है परन्तु यहाँ शिवाजी का इनके बिना ही निर्भय एवं सदर्प होना रूप कार्य कथन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन ॥ १८८ ॥

शब्दार्थ—टेव=आदत। ऐन=ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—साहजी के पुत्र महाराज शिवाजी की निश्चय ही यह स्वाभाविक आदत है कि वे बिना ही (किसी पर) प्रसन्न हुए (उसकी) दरिद्रता दूर करते हैं, और बिना ही क्रोधित हुए शत्रु-सेना का नाश करते हैं।

विवरण—प्रसन्न होने पर सब कोई पुरस्कार देता है,इस तरह प्रसन्नता पुरस्कारादि का कारण कही जा सकती है पर प्रसन्नता रूप कारण के बिना शिवाजी का पुरस्कारादि से "दीनों का दारिद्र्य दूर करना" वर्णन किया गया है। ऐसे ही क्रोध रूप कारण के बिना "शत्रुओं की सेना का नाश करना" रूप कार्य का वर्णन किया गया है।

द्वितिय और तृतीय विभावना

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।
कै अहेतु ते और यो, द्वै विभावना साज ॥ १८६ ॥

शब्दार्थ—साज=सामग्री, आयोजना।

अर्थ—जहाँ कारण अपूर्ण होने पर भी कार्य की उत्पत्ति हो अथवा जो वास्तविक कारण न हो उससे भी कार्य की उत्पत्ति हो इस प्रकार ये दो विभावना और होती हैं।

उदाहरण (द्वितीय विभावना)—कवित्त मनहरण

दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान,
पूना माहिं दूना करि जोर करवार को।
हिन्दुवान-खम्भ गढपति दल-थम्भ भनि,
भूषन भरैया कियो सुजस अपार को॥
मनसबदार चौकीदारन गँजाय,
महलन में मचाय महाभारत के भार को।
तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं,
जीत्यो जग सरदार सौ हजार असवार को ॥ १६० ॥

शब्दार्थ—दाबि कर=दबाकर, अधिकार में करके। करवार=करवाल, तलवार। दलथम्भ=सेना को थामने वाला, सेनापति। भरैया=(सं. भरण) पालक रक्षक। गँजाय=(सं. गंजन) कर, नाश कर। मनसबदार=एक प्रकार के पदाधिकारी। असवार=अश्वारोही, घुड़सवार सिपाही।

अर्थ—शाइस्ताखाँ दक्षिण देश को अपने अधिकार में करके और अपनी तलवारों का बल दुगना करके (पहिले से दुगुनी सेना बढ़ाकर) पूना में रहने लगा। भूषणजी कहते हैं कि हिन्दुओं के स्तम्भ-स्वरूप, किलों के स्वामी, (बड़ी बड़ी) सेनाओं का संचालन करने वाले, प्रजा के रक्षक महाराज शिवाजी

ने (पूना में टिके हुए उस शाइस्ताखाँ के) मुसाहिब तथा चौकीदारों को नष्ट करके महलों में बड़ा भारी महाभारत (युद्ध) कर पृथ्वी पर अपना अपार यश फैलाया। हे महाराज शिवाजी भला आपके समान अन्य कौन राजा हो सकता है जिसने केवल दो सौ आदमी साथ लेकर ही एक लाख सवारों के सरदार को युद्ध में हरा दिया।

विवरण—यहाँ शिवाजी के पास केवल 'दो सौ आदमी' रूपी कारण की अपूर्णता होने पर भी 'सौ हजार (एक लाख) असवारों के सेनापति को युद्ध में जीत लेना, रूप कार्य का होना कथन किया गया है, यही दूसरी विभावना है।

उदाहरण (तीसरी विभावना)—मनहरण कवित्त

ता दिन अखिल खलभलै खल खलक मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं॥
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यो न उतपात होहि बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥ १६१॥

शब्दार्थ—अखिल=समस्त। खलभलैं=खलबला उठते हैं, घबरा जाते हैं। खल=दुष्ट (मुसलमान)। खलक=(फा०) दुनियाँ, संसार। करखत हैं=उत्तेजित होते हैं, ताव खाते हैं। अगार=(स०)-आगार, घर। दारगन=दारागण, स्त्रियाँ। परखत हैं=परीक्षा करती है, सँभालती हैं। बार=(सं० द्वार) घर।

अर्थ—जिस दिन धर्मवीर शिवाजी थोड़े से भी उत्तेजित हो जाते हैं उस दिन समस्त संसार के दुष्टों (मुसलमानों) में बड़ी खलबली मच जाती

है। उनके नगारों (की ध्वनि) को सुनकर शत्रु-स्त्रियाँ अपने घरों को छोड छोड कर ऐसी भागती हैं कि शुभ और अशुभ वार (दिन अथवा समय) का भी विचार नहीं करतीं (अथवा समय की प्रतीक्षा नहीं करतीं—देर नहीं लगातीं)। उनके घर छूट गये हैं और उनके बाल खुल गये हैं, और उनके खुले हुए बालों में से गुथे हुए लाल रत्नों को (जल्दी के कारण) गिरते हुए देख कर भूषण कवि वर्णन करते हुए प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि शत्रु-समूह में क्यों न उपद्रव हों क्योंकि वहाँ काले बादल उमड उमड कर अगारे बरसा रहे हैं, अर्थात् शत्रु-स्त्रियों के काले केश-कलापरूपी बादलों से लाल-रूपी अगारे बरस रहे हैं। (बादलों से अगारे एव रक्त की वर्षा आदि अनहोनी बातों का होना अशुभ-सूचक है)।

विवरण—बादलों से जल बरसता है, अंगारे नहीं। पर यहाँ काले बादलों से लाल अगारों का झड़ना बताया गया है, इस प्रकार जो जिसका वास्तविक कारण नहीं है उससे कार्य की उत्पत्ति दिखाई गई है, अतः यहाँ तीसरी विभावना है।

चतुर्थ विभावना

लक्षण—दोहा

जहाँ प्रगट भूपन भनत, हेतु काज ते होय।
सो विभावना औरऊ, कहत सयाने लोय ॥ १६२ ॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति हो चतुर लोग उसे एक और विभावना (चतुर्थ) कहते हैं। अर्थात् साधारणतया कारण से कार्य होता है, पर जहाँ कार्य से कारण हो वहाँ भी एक (चौथी) विभावना होती है।

उदाहरण—दोहा

अचरज भूपन मन बढ्यो, श्री सिवराज खुमान।
तब कृपान-धुव-धूम ते, भयो प्रताप कृसानु ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ—धुव=ध्रुव, अचल।

अर्थ—भूषणजी कहते हैं कि हे आयुष्मान शिवाजी! (लोगों के) मन में यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आपके कृपाण (तलवार) रूपी अचल धूएँ से प्रताप रूपी कृशानु (अग्नि) उत्पन्न हो गया अर्थात् आपने तलवार के बल से अपना प्रताप फैलाया है। तलवार का रंग नीला माना गया है अतः वह धुएँ के समान है और प्रताप का रंग लाल, अतः वह आग है।

विवरण—अग्नि कारण होता है और धूम कार्य, पर यहाँ धूम (कार्य) से प्रताप रूप कृसानु (कारण) का उत्पन्न होना कहा गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सिव! तेरो सुनत पुनीत नाम,
धाम-धाम सब ही को पातक कटत हैं।
तेरो जस-काज आज सरजा निहारि कवि,
मन भोज विक्रम कथा ते उचटत हैं॥
भूषन भनत तेरो दान सकलप जल,
अचरज सकल मही मै लपटत है।
और नदी नदन तें कोकनद होत तेरो,
कर कोकनद नदी-नद प्रगटत है॥ १९४॥

शब्दार्थ—धाम=घर। पातक=पाप। उचटत=हटता है। संकलप=सकल्प, जो दान के समय हाथ मे जल लेकर करते है।

अर्थ—हे साहजी के पुत्र शिवाजी! आपके पवित्र नाम को सुनकर घर घर के सभी लोगों के पाप कट जाते हैं और हे वीर केसरी, आजकल आपके यश-कार्य को देख कर कवियों का मन (प्रसिद्ध दानी) राजा भोज और (पराक्रमी) विक्रमादित्य आदि राजाओं की कथा के वर्णन (यशोगान) से हट जाता है, (कवि

लोग अब आपका ही यश वर्णन करते हैं भोज आदि राजाओं का नहीं, क्योंकि आपके कार्य उनसे बढ़ कर हैं)। भूषण कवि कहते हैं, कि आपके दान का संकल्प-जल समस्त पृथ्वी में फैल रहा है और यह बड़ा आश्चर्य है कि और जगह तो नदी-नदों में कमल उत्पन्न होते हैं परन्तु आपके कर-कमल से (संकल्प जल द्वारा) नदियाँ उत्पन्न होती हैं। आप इतना दान देते हैं, कि दान का संकल्प जल नदियों का रूप धारण कर समस्त पृथ्वी में फैल जाता है।

विवरण—यहाँ भी 'कर कोकनद' रूपी कार्य से 'नदी-नद' रूपी कारण का उत्पन्न होना कहा गया है।

विशेषोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु समरथ भयहु, प्रगट होत नहिं काज।
तहाँ विसेसोकति कहत, भूषन कवि सिरताज ॥ १६५ ॥

अर्थ—जहाँ कारण के समर्थ होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न हो, वहाँ सर्व श्रेष्ठ कवि भूषण विशेषोक्ति अलंकार कहते हैं। (इसके पै, तो, तथापि आदि चिह्न होते हैं।)

उदाहरण—मालती सवैया

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को विचलायो ॥
भूषन कोऊ गरीबनसो भिरि भीमहुँ ते बलवन्त गनाओ।
दौलति इन्द्र समान बढी पै खुमान के नेक गुमान न आयो ॥१६६॥

शब्दार्थ—विचलायो=विचलित कर दिया। भिरि=भिड़ कर। गनायो=गिना गया, गिना जाने लगा। गुमान=घमंड।

अर्थ—कोई राजा दस पाँच रुपये (पुरस्कार या दान) देकर ही संसार में दानी कहलाने लगा और कोई (राजा) गरीब लोगों से ही भिड़

कर भीमसेन से भी अधिक बलवान गिना जाने लगा, परन्तु वीर-केसरी शिवाजी के सिपाहियों तक ने करोड़ों का दान देकर बादशाहों को भी विचलित कर दिया और चिरजीवी शिवाजी की संपत्ति देवराज इन्द्र के समान बढ़ गई, तो भी उन्हें ज़रा सा भी घमंड न हुआ।

विवरण—यहाँ 'इन्द्रदेव के समान धन होना' अभिमान का पूर्ण कारण है फिर भी 'शिवाजी को घमंड' रूप कार्य न होना कहा गया है, अतः विशेषोक्ति है।

असम्भव

लक्षण—दोहा

अनहूवे की बात कछु, प्रगट भई सी जानि।
तहाँ असम्भव बरनिए, सोई नाम बखानि ॥ १९७ ॥

शब्दार्थ—अनहूवे की=अनहोनी।

अर्थ—जहाँ कोई अनहोनी बात प्रकट हुई सी जान पड़े वहाँ असम्भव अलंकार होता है।

सूचना—इसके चिह्न 'कौन जानै' 'कौन जानता था' अथवा ऐसे ही भाव वाले अन्य शब्द होते हैं।

उदाहरण—दोहा

औरंग यों पछितात मैं, करतो जतन अनेक।
सिवा लेइगो दुरग सब, को जानै निसि एक ॥ १९८ ॥

अर्थ—औरंगज़ेब इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि यह कौन जानता था कि शिवाजी एक रात में ही समस्त किलों को विजय कर लेगा। यदि यह जानता होता तो मैं (पहले से ही) अनेकों यत्न करता।

विवरण—यहाँ समस्त किलों का एक रात मे जीत लेना रूपी अनहोनी बात का शिवाजी द्वारा संभव होना कथन किया गया है, और यह (अनहोनी बात) "को जानै" इस पद से प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो, जोऽव
इन्द्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा॥
ठान्यो न सलाम भान्यो साहि को इलाम,
धूम-धाम कै न मान्यो रामसिंहहू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगन्त ताके,
दन्त तोरि तखत तरे ते आयो सरजा॥१६६॥

शब्दार्थ—जसन (फा०)=जशन, उत्सव। जलूसै गहि=उत्सव में सम्मिलित होने वाले लोगों का समूह लगा कर, दरबार जमा कर। जोऽव=जो अब। तुजुक (फा०)=शान अथवा प्रबन्ध। लरजा (फा०)=काँपा। ठान्यो=किया। भान्यो=खण्डित किया, तोडा। इलाम (फा०)=ऐलान, हुक्म। रामसिंह=जयपुर के महाराज जयसिंह जी के पुत्र, जब शिवाजी आगरे को गये थे तब ये ही दिल्लीश्वर की ओर से उनकी अगवानी को आये थे और कहा जाता है कि उनके आगरे से निकल भागने में इन्होंने भी छिपकर सहायता की थी।

अर्थ—(यह उस समय का वर्णन है जब कि शिवाजी मिर्जा राजा जयसिंह की सलाह से औरंगजेब से मिलने आये थे) उत्सव के दिन औरंगजेब जलूस बनाकर अथवा अमीर उमरावों के साथ अपना दरबार जमाकर ऐसी शान से बैठा था कि इन्द्र भी (यदि अपने देव-समाज के साथ) आवे तो वह भी औरंगजेब की प्रजा के समान (साधारण लोगों जैसा) दिखाई दे। भूषणजी कहते हैं कि वहाँ भी महावीर शिवाजी उसकी शान देख कर थोडा भी न डरा वरन सदर्प रहा। (यहाँ तक कि) उसने

औरंगज़ेब को सलाम भी न किया और बड़ी धूम-धाम के साथ बादशाह के हुक्म को भी तोड़ दिया (बादशाह की आज्ञानुसार भरे दरबार में शिवाजी ने छोटे पदाधिकारियों में खड़ा होना स्वीकार नहीं किया)। और रामसिंहजी का मना करना अर्थात् रामसिंह जी का कहा भी न माना। जिस (पराक्रमी) बादशाह से शत्रुता करके दूर-दूर के राजा लोग भी नहीं बच सकते उसी बादशाह के दाँत खट्टे करके शिवाजी उसके तख्त के नीचे से (पास से) सही सलामत अपने देश को चला आया।

विवरण—यहाँ शिवाजी का सबको जीतने वाले औरंगजेब के दाँत खट्टे करना और उसके पास से चला आना रूप असम्भव कार्य कथित हुआ है।

प्रथम असंगति

लक्षण—दोहा

हेतु अनत ही होय जहँ, काज अनत ही होय।
ताहि असगति कहत हैं भूषन सुमति समोय॥ २००॥

शब्दार्थ—अनत=(सं०) अन्यत्र, दूसरी जगह। समोय=(स०) संयुक्त, मिला। सुमति समोय=सुबुद्धियुक्त, बुद्धिमान।

अर्थ—जहाँ कारण तो किसी दूसरी जगह हो और उसका कार्य अन्यत्र हो वहाँ बुद्धिमान लोग असंगति, अलकार कहते हैं। (इसमें कारण और कार्य एक स्थान पर नहीं होते)।

सूचना—पूर्वोक्त 'विरोध' अलकार मे भिन्न-भिन्न स्थानों मे रहने वाले विरोधी पदार्थों (जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य) की एक स्थल मे स्थिति (ससर्ग) बतलाई जाती है, असगति मे एक जगह रहने वाले कारण कार्य की भिन्न-भिन्न देशों मे स्थिति कही जाती है, इस प्रकार दोनों की सगति मे विरोध-सा जान पड़ता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥२०१॥

शब्दार्थ—ग्रीवा = गर्दन। जात नै करि = झुक जाती है। गनीम (फा०)=शत्रु। दरकत = फटती है। खरी=चोखी,खूब अच्छी। अखिल= सब। खल = दुष्ट, यवन लोग। सिगरेई = सारे ही। सूरत = यह बम्बई प्रान्त मे एक ऐतिहासिक नगर है, इसे शिवाजी ने सन् १६६४ और १६७० ई० में दो वार लूटा था।

अर्थ—जब महाराज शिवाजी घोड़े पर सवार होते हैं तो बड़े बड़े बलवान शत्रुओं की गर्दनें झुक जाती है (जब शिवाजी चढ़ाई करने के लिए चलते हैं तब शत्रु गर्दन झुकाकर अपनी चिंता प्रकट करते हैं अथवा अधीनता स्वीकार कर सिर झुका लेते है) और जब उनकी सेना पृथ्वी पर चलती है तो सब दुष्टों (यवनों) की छातियाँ फटने लगती हैं (वे घबराते हैं कि अब क्या करें? शिवाजी की सेना हमें मार डालेगी)। शिवाजी ने दौड़ कर घाव (चोट) तो अमीर उमराओं पर किया पर इससे सारी दिल्ली सेना की नाक कट गई (इज्जत मिट्टी में मिल गई)। शिवाजी ने सूरत नगर को जला कर बादशाह औरंगजेब के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया और उसकी कालिमा समस्त बादशाहत के मुख पर प्रकट हो गई (शिवाजी का सूरत जलाने का साहस देखकर औरंगजेब

गुस्से में जलभुन उठा और दिल्ली की सेना उसे बचा न सकी इस कारण सारी बादशाहत के ऊपर कलंक का टीका लग गया)।

विवरण—यहाँ प्रथम पाद में शिवाजी का घोड़े पर चढ़ना रूपी कारण अन्यत्र कथन किया गया है और शत्रुओं की गर्दन झुकना रूपी कार्य अन्यत्र हुआ है। द्वितीय पाद में शिवाजी की सेना का चलना रूप कारण अन्यत्र है और शत्रुओं की छाती फटना रूपी कार्य का कथन अन्यत्र किया है। इसी भाँति चोट अमीर-उमरावों पर की है, पर इसका फल अन्यत्र है। और शिवाजी ने जलाया सूरत शहर को पर उससे जलन हुई बादशाह के दिल में तथा उसके जलने से कालिमा सारी बादशाहत के मुँह पर पुत गई। इस प्रकार कारण अन्यत्र है और कार्य अन्यत्र है, अतः यहाँ असंगति अलकार है।

द्वितीय असगति

लक्षण—दोहा

आन ठौर करनीय सो, करैं और ही ठौर।
ताहि असगति और कवि, भूपन कहत सगौर ॥ २०२ ॥

शब्दार्थ—सगौर=ध्यान पूर्वक, विचार से।

अर्थ—जो कार्य करना चाहिये कहीं और, तथा किया जाय कहीं और, अर्थात् जिस स्थान पर करना चाहिए वहाँ न करके दूसरे स्थान पर किया जाय तो द्वितीय असंगति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

भूपति सिवाजी, तेरी धाक सो सिपाहिन के,
राजा पातसाहिन के मन ते अह गली।
भौंसिला अभग तू तौ जरतो जहाँई जग,
तेरी एक फते होत मानो सदा सग ली।

साहि के सपूत पुहुमी के पुरुहूत कवि,
भूषन भनत तेरी खरगऊ दगली।
सत्रुन की सकुमारी थहरानी सुन्दरी औ,
सत्रु के अगारन मैं राखे जतु जंगली ॥ २०३ ॥

शब्दार्थ—अहं=अहंकार। गली=गला, नष्ट होगया। अभंग=कभी न हटनेवाला, सदा विजयी। पुरहूत=इन्द्र। खरगऊ=तलवार भी। दगली=दगल(युद्ध) में ठहरनेवाली, युद्ध करनेवाली, प्रबल। थहरानी=काँप उठीं।

अर्थ—महाराज शिवाजी! आपके आतंक से (शत्रु) सिपाहियों, राजाओं और बादशाहों के मन का अहंकार नष्ट हो गया। अखंडनीय (सदा विजयी) शिवाजी! आप जहाँ कहीं युद्ध करते हैं वहाँ आपकी ही एक विजय होती है, इससे ऐसा मालूम होता है मानो उसे आपने सदा साथ ही ले रखा है। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र और पृथ्वी के इन्द्र श्री शिवाजी! आपकी तलवार भी बड़ी प्रबल युद्ध करने वाली है, (उससे) बिचारी सुंदरी कोमलांगी शत्रु स्त्रियाँ काँप जाती हैं और (उसने) शत्रुओं के घरों में जंगली जानवरों का निवास करवा दिया है। अर्थात् शत्रु लोग शिवाजी की तलवार के भय से अपने घर छोड़ गये जिससे कि वहाँ जंगली जानवर रहने लग गये।

विवरण—यहाँ कवित्त के अंतिम चरण में जंगली जंतुओं का शत्रुओं के घरों में निवास करवाना वर्णन किया है जो उनके योग्य स्थान नहीं है। वास्तव में उनका निवास स्थान जंगल है। अतः यहाँ दूसरी असंगति है।

तृतीय असंगति

लक्षण—दोहा

करन लगै औरै कछू, करै औरई काज।
तहँ असंगति होत है, कहि भूषन कविराज ॥२०४॥

अर्थ—जहाँ करना तो कोई और काम शुरू करे, और करते करते कर डाले कोई दूसरा (उसके विरुद्ध) काम, वहाँ भी कविराज (तृतीय) असंगति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा सिव के गुन नेकहु भाषि सक्यों न प्रवीनो।
उद्यत होत कछू करिवे को, करै कछु वीर महा-रस भीनो॥
ह्याँते गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
जाय दिली दरगाह सुसाहि को भूषन वैरि बनाय ही लीनो॥२०५॥

शब्दार्थ—प्रवीनो=प्रवीण बुद्धिमान। रसभीनो=रस मे लिप्त, रस में पूरित। गोसलखाने (फा०)=गुसलखाना, स्नानागार। दरगाह = (फा.) तीर्थ स्थान। दिल्ली दरगाह = दिल्ली रूपी तीर्थ स्थान, दिल्ली दरबार।

अर्थ—बड़े बड़े चतुर पुरुष भी शाहजी के पुत्र शिवाजी का थोड़ासा यश भी वर्णन नहीं कर सके (क्योंकि) वीर शिवाजी करने को तो कुछ और ही उद्यत होते हैं पर वीररस में पगे होने के कारण कर कुछ और ही बैठते हैं। यहाँ से (दक्षिण से) तो वे चगताई के वंशज औरंगजेब को प्रसन्न करने के लिए गये थे परन्तु वहाँ (दिल्ली में) जाकर उन्होंने उसे गुसलखाने में जाकर उलटा दुख दिया। (इस तरह) भूषण कवि कहते हैं कि दिल्ली दरबार में जाकर बादशाह को (प्रसन्न करना तो दूर रहा) उलटा उन्होंने उसे शत्रु ही बना लिया।

विवरण—यहाँ औरंगजेब को प्रसन्न करने के हेतु दिल्ली जाकर शिवाजी ने उलटा उसे गुसलखाने मे जाकर कष्ट दिया, यही तृतीय असंगति है—गये थे मित्र बनाने, बना लिया शत्रु।

सूचना—इस छन्द मे भी शिवाजी का दिल्ली जाना लिखा है, परन्तु यह भ्रमात्मक है। शिवाजी वास्तव में आगरे मे औरंगजेब से मिलने गये थे।

विषम

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान॥ २०६॥

अर्थ—भूषन कवि कहते हैं कि "कहाँ यह और कहाँ वह" इस प्रकार का जहाँ वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि विषम अलकार कहते हैं।

सूचना—इसमें अनमिल वस्तुओं का सम्बन्ध होता है। अन्य साहित्य-शास्त्रियों ने विषम अलकार के तीन या चार भेद कहे हैं। परन्तु भूषण ने 'विषम' का केवल एक भेद माना है। विषम के दूसर भेद को (जिसमें कारण और कार्य की गुण क्रियाओं की विषमता का वर्णन हो) उन्होंने विरोध अलकार माना है। विषम का तीसरा भेद (जिसमें क्रिया के कर्त्ता को केवल अभीष्ट फल ही न मिले अपितु अनिष्ट की प्राप्ति हो) महाकवि भूषण ने नहीं लिखा।

उदाहरण—मालती सवैया

जावलि वार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजी।
भूषन भौंसिला भूपति ते सब दूर किए करि कीरति ताजी॥
वैर कियो सिवजी सो खवासखाँ, डौंडियै सैन विजैपुर बाजी।
बापुरो एदिलसाहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी॥२०७॥

शब्दार्थ—जावलि—देखिए छ० ६३। वार = पार, जावली के पास एक ग्राम, इसी जगह अफजलखाँ ने अपना पड़ाव डाला था। सिंगारपुरी = यह नीरा नदी के दक्षिण मे और सितारा से लगभग पच्चीस कोस पूर्व है। यहाँ का राजा सूर्यराव शिवाजी से सदैव दुरगी चाले चला करता था। शिवाजी ने इसे (सन् १६६१ ई० में) अपने अधिकार में कर लिया। जवारि = (देखो छद १७३)। रामके नैरि=रामनगर (देखो छद १७३)। खवासखाँ = यह बीजापुर के प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद का लड़का और स्वय मंत्री भी था।

जब प्रसिद्ध बादशाह अली आदिलशाह (एदिलसाहि) मरने लगा तब उसने खवासखाँ को अपने पुत्र सिकन्दर का संरक्षक बनाया। शिवाजी से इसने कई युद्ध किये। सन् १६७५ ई० में यह छिपकर औरंगजेब से मिल गया और इसी कारण अन्त में बहलोलखाँ (छन्द न० ९६ देखिए) के इशारे पर मारा गया। डौंडियै=ढिंढोरा। दामनगीर=पल्ला पकड़ने वाला, पीछे पड़ने वाला, दावादार।

अर्थ—जावली, बार, सिंगारपुर, तथा रामनगर और जवारि (जौहर) को विजय करनेवाले हे भौंसला राजा शिवाजी! आपने उन प्रदेशों के समस्त राजाओं को (गद्दी से) दूर कर दिया और इस प्रकार अपनी कीर्त्ति को ताजा कर दिया। (ऐसे वीर) शिवाजी से खवासखाँ ने शत्रुता की और बीजापुर की सेना में डौंडी बज गई (अर्थात् आदिलशाह के मन्त्री खवासखाँ ने शिवाजी से शत्रुता कर अपनी सेना में उन पर चढ़ाई करने की डौंडी पिटवा दी)। (परन्तु ऐसी डौंडी पिटवाने से क्या होता है) कहाँ बिचारा आदिलशाह और कहाँ दिल्ली के बादशाह से भिड़ने वाले महाराज शिवाजी (अर्थात् शिवाजी के मुकाबिले में आदिलशाह बेचारे की क्या गिनती, क्योंकि वे तो शाहशाह औरंगजेब के मुकाबिले में लड़ने वाले हैं)।

विवरण—यहाँ आदिलशाह और शिवाजी का अयोग्य सम्बन्ध 'कहाँ' 'कहाँ' इन शब्दों द्वारा कहा है। दोनों में महदन्तर है और वह 'कहाँ' से स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

लै परनालो सिवा सरजा, करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
बैरिन के भगे बालक वृन्द, कहै कवि भूषन दूरि पहूँचे॥
नाँघत नाँघत घोर घने बन, हारि परे यों कटे मनो कूँचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे॥२०८॥

शब्दार्थ—परनालो=परनाला किला (छन्द १०६ देखिये)। करनाटक=(छं० ११६ देखिये)। विगूँचे=(सं० विकुंचन) धर दबाये, मथ डाले, बरबाद कर दिये। कूँचे=मोटी नसें जो एड़ी के ऊपर या टखने के नीचे होती हैं।

अर्थ—वीर-केसरी शिवाजी ने परनाले के किले से लेकर करनाटक तक समस्त देशों को मथ डाला। भूषण कवि कहते हैं कि शत्रुओं के बाल-बच्चे (भय के कारण) भाग कर बड़ी दूर चले गये और बड़े बड़े घोर वनों को फाँदते फाँदते हार कर (शिथिल होकर) गिर पड़े मानो उनके पैरों की नसें ही कट गई हों, कहाँ वे बेचारे सुकुमार राजकुमार और कहाँ वे बड़े ऊँचे-ऊँचे विकराल पहाड़ जिन पर शिवाजी के भय के कारण वे चढ़े थे)।

विवरण—'कहाँ सुकुमार राजकुमार और कहाँ वे ऊँचे ऊँचे विकराल पहाड़' अयोग्य सम्बन्ध कथित होने से विषम अलकार है।

सम

लक्षण—दोहा

जहाँ दुहूँ अनुरूप को, करिये उचित बखान।
सम भूषन तासों कहत, भूषण सकल सुजान॥ २०९॥

शब्दार्थ—अनुरूप=तुल्य, एक-सा, समान।

अर्थ—जहाँ दो समान वस्तुओं का उचित सम्बन्ध ठीक ठीक वर्णन किया जाय वहाँ चतुर लोग सम अलंकार कहते हैं। (यह विषमालंकार का ठीक उलटा है)।

उदाहरण—मालती सवैया

पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
भूपन यों कहि औरंगजेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥

कम्मर की न कटारी दई इसलाम नै गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया ॥२१०॥

शब्दार्थ—पंज हजारिन=पंचहजारी, पाँच हजार सेना के नायक पंचहजारी कहलाते थे। शिवाजी को, जब वे आगरे में औरंगजेब से मिलने गये थे, तब इन्हीं छोटे पदाधिकारियों में खडा किया गया था, इसी कारण वे नाराज हो गये। कम्मर=कमर। इसलाम=मुसलमानी धर्म। हत्थ=सं० हस्त, हाथ। नै=को।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि औरंगज़ेब यह कहकर, कि मुझे इसका कुछ भेद नहीं जान पडा कि तुमने शिवाजी को पंचहज़ारी मनसबदारों में क्यों खड़ा किया वज़ीरों से बहुत नाराज़ हुआ। आज इस्लाम को (इस्लाम के सेवक को) गुसलखाने ने बचा लिया—अर्थात् इस्लाम का सेवक गुसलखाने में छिपकर बच गया। यही भला था कि उसकी (शिवाजी की) कमर की कटारी उसे नहीं दी गई थी (शाही कायदे के अनुसार वह रखवा ली गई थी) और उसके हाथ कोई हथियार नहीं आया अन्यथा वह बड़ा अनर्थ करता।

विवरण—यह उदाहरण कुछ स्पष्ट नहीं है। यही कहा जा सकता है कि यहाँ हथियार हाथ न आना और अनर्थ न होना एक दूसरे के अनुरूप है, और अच्छा हुआ यह कहकर उचित वर्णन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कछु न भयो केतो गयो, हारयो सकल सिपाह।
भली करै सिवराज सो, औरग करै सलाह ॥२११॥

शब्दार्थ—कैतो=कितना क्या। सकल सिपाह=समस्त सिपाही, सब सेना। सलाह=सुलह।

अर्थ—[वज़ीर आपस में बातें कर रहे है कि] कितने ही शिवाजी

को जीतने गये, पर कुछ न हुआ, सारे सिपाही ही हार गये। यदि शाहनशाह औरंगजेब शिवाजी से अब भी मेल कर लें तो अच्छा हो।

विवरण—यहाँ औरंगजेब का बार बार हारना और संधि कर लेना इन दोनों अनुरूप बातों का वर्णन है।

विचित्र

लक्षण—दोहा

जहाँ करत है जतन फल, चित्त चाहि विपरीत।
भूषण ताहि विचित्र कहि, बरनत सुकवि विनीत ॥२१२॥

अर्थ—जहाँ वाञ्छित फल की प्राप्ति के लिये उलटा प्रयत्न किया जाय वहाँ श्रेष्ठ विनयशील कवि विचित्र अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

तैं जयसिंहहिं गढ़ दिये, सिव सरजा जस हेत।
लीन्हे कैयो बरस मैं, बार न लागी देत ॥२१३॥

शब्दार्थ—जयसिंह=जयपुर के महाराजा। औरंगजेब ने इनको "मिर्ज़ा" की उपाधि दी थी जिससे इनको 'मिर्ज़ा राजा जयसिंह' अथवा 'मिर्ज़ा राजा' भी कहते थे। ये सन् १६२१ ई० में गद्दी पर बैठे थे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह और दिलेरखाँ सन् १६६४ ई० में शिवाजी से लड़ने भेजे गये। जयसिंह ने सिंहगढ़ को घेरा और दिलेरखाँ ने पुरंदर को। तब शिवाजी ने जयसिंह से दबकर सन्धि की, जिससे शिवाजी ने मुगलों के जितने किले जीते थे वे और निजामशाही से जीते हुए ३२ किलों में से २० क़िले मिर्ज़ा राजा को भेंट किये। उन्होंने शिवाजी को मार्च सन् १६६६ ई. में आगरे भेजा; सन् १६६७ ई० में वे दक्षिण से वापिस बुलाये गये पर मार्ग ही में २० जुलाई को इनकी मृत्यु हो गई।

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! तुमने अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये

राजा जयसिंह को समस्त क़िले दे दिये। उनके विजय करने में तुम्हें कई वर्ष लगे थे, पर देने में तुम्हें कुछ भी देर न लगी, क्योंकि तुम इतने उदार हो, कि तुम मित्रता चाहने वाले को सब कुछ दे सकते हो। औरंगज़ेब ने तुमसे मित्रता करना चाहा, तुमने उसे किले दे दिये, जब उसने मित्रता के बदले धोखा दिया, तो तुमने ये किले लड़ कर ले लिये, इससे तुम्हारा यश बढ़ा।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने के लिए किलों का देना कथन किया गया है जो कि बिलकुल उलटी बात है, क्योंकि कीर्ति किलों के जीत लेने पर बढ़ती है न कि क़िलों के देने से। इसी प्रकार इच्छित फल से विपरीत क्रिया का करना विचित्र अलंकार मे कथित होता है, इस अलंकार के बल से भूषण ने अपने नायक शिवाजी का दबना भी उनके लिए यशकारी बताया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बेदर कल्यान दै परेंभा आदि कोट साहि,
एदिल गँवाय है नवाय निज सीस को।
भूपन भनत भागनगरी कुतुबसाईं,
दै करि गँवायो रामगिरि से गिरीस को।
भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन,
द्वैहू ना लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे,
सौ गुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को ॥२१४॥

शब्दार्थ—बेदर=वर्त्तमान हैदराबाद शहर से ७८ मील उत्तर-पश्चिम एक कस्बा है। यह बहमनी वंशज बादशाहों की राजधानी थी। उसके बाद बीदरशाही राज्य की राजधानी रही। औरगजेब ने बीजापुर वालों से यह किला जीत लिया था। सन् १७५७ मे इसे शिवाजी ने

ले लिया। कल्यान=इस नाम का सूबा कोकन प्रदेश के उत्तरी भाग में था। पहिले यह अहमदनगर के निजामशाही बादशाहों का था, पर सन् १६३६ ई० में बीजापुर के अधिकार मे आया और सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने इसे आदिलशाह से छीन लिया। परेंड़ा=इस नाम का कोई किला या स्थान इतिहास में नहीं मिलता, हाँ एक क़िला परेंदा नाम का था जिसका अपभ्रंश परेंड़ा जान पड़ता है। यह भी पहले अहमदनगर का था और फिर आदिलशाह के कब्जे मे आ गया, जिससे शिवाजी ने छीन लिया। भागनगर=देखो छन्द ११६, (भागनेर)। कुतुबसाई= छ० ६२ देखो। रामगिरि=पैनगंगा तथा गोदावरी के बीच गोलकुंडा रियासत में रामगिरि नामक पर्वत था। पचतीस=पैंतीस ३५। लीने=लेने के लिए।

अर्थ—भूषण कहते है कि भौंसिला राजा शाहजी के पुत्र गढ़पति महाराज शिवाजी, अली आदिलशाह ने तुम्हें बेदर तथा कल्यान के किले देकर सिर झुका कर अपने परेंड़ा आदि क़िले भी गँवा दिये और कुतुबशाह भी तुम्हें भागनगर देकर रामनगर जैसे श्रेष्ठ पर्वत को खो बैठा। तुमने (इस भाँति) पैंतीस किले जीतने मे दो दिन भी नहीं लगाये थे कि वही (सब किले) मिर्जा राजा जयसिंह से तुमने सौ गुना यश लेने के लिए औरंगजेब बादशाह को दे दिये।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने रूप फल की इच्छा के लिए किलों का देना विपरीत (उलटा) प्रयत्न कथन किया गया है।

प्रहर्षण

लक्षण—दोहा

जहँ मन-वाछित अरथ ते, प्रापति कछु अधिकाय।
तहाँ प्रहरपन कहत हैं, भूपन जे कविराय ॥२१५॥

अर्थ—जहाँ मन-वांछित (मन चाहे) अर्थ से भी अधिक अर्थ की प्राप्ति हो वहाँ श्रेष्ठ कवि प्रहर्षण अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमे इच्छा की हुई वस्तु की प्राप्ति के लिये यत्न करते हुए उस इच्छा से भी अधिक लाभ होता है।

उदाहरण—मनहरण-कवित्त

साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी वितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु हैं।
महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है।
रजत की हौंस किए हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है ॥२१६॥

शब्दार्थ—वितान = वितान, चँदोआ। छिति=क्षिति, पृथ्वी। छोर=किनारा। छाइयतु है=छा जाता है। प्रमान=परिमाण, अन्दाजा। रजत=चाँदी। हेम=सोना। हय=घोडा। हौंस=इच्छा।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीर केसरी शिवाजी की कीर्ति से चाँदनी का चँदोआ पृथ्वी के किनारों तक छा रहा है (अर्थात् शिवाजी की चाँदनी सी शुभ्र कीर्ति पृथ्वी पर दिगंत तक छा रही है)। भूषण जी कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी ऐसे हैं कि उनके घर का द्वार सदा भिक्षुकों से शोभित रहता है या भिक्षुकों से चाहा जाता है। इस पृथ्वी पर चिरजीवी शिवाजी ऐसे बड़े दानी हैं कि उनके दान का परिमाण(अंदाज़ा) इस प्रकार लगाया जाता है अथवा उनके दान की महिमा इस प्रकार गायी जाती है कि उनसे चाँदी लेने की इच्छा करने पर सुवर्ण मिलता है और घोड़े लेने की इच्छा करने पर हाथी प्राप्त होते हैं।

विवरण—यहाँ वाञ्छित चाँदी और घोड़े की याचना करने पर क्रमशः सुवर्ण और हाथी का मिलना रूपी अधिक लाभ हुआ है।

विपादन

लक्षण—दोहा

जहँ चित चाहे काज ते, उपजत काज विरुद्ध।
ताहि विपादन कहत हैं, भूषन बुद्धि-विसुद्ध ॥२१७॥

अर्थ—जहाँ मन चाहे कार्य के विरुद्ध कार्य उत्पन्न हो वहाँ निर्मल बुद्धि वाले (कवि) विपादन अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ इच्छा किसी बात की जाय और फल उसके विरुद्ध हो, वहाँ विपादन अलंकार होता है। विपादन प्रहर्षण का ठीक उलटा है।

उदाहरण—मालती सवैया

दारहिं दारि मुरादहिं मारि कै संगर साह सुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्ली की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरंग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहुँ के गढ़ कोट गँवायो॥२१८॥

शब्दार्थ—दारहि=दारा को, दारा (दाराशिकोह) औरंगजेब का सबसे बड़ा भाई था। दारि=दल कर, पीस कर। मुरादहि=मुराद को, मुरादबख्श औरंगजेब का छोटा भाई था। सन् १६५७ में बादशाह शाहजहाँ अचानक बीमार पड़ा। इस समाचार को सुनते ही उसके लड़कों—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद—में राज्य पाने के लिए प्रबल युद्ध हुआ। सबसे बड़ा लड़का दारा राजधानी में रहकर पिता के साथ राजकाज करता था। शाहशुजा बंगाल का सूबेदार था, औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था, मुराद गुजरात का। औरंगजेब ने मुराद को यह आश्वासन देकर कि राज्य मिलने पर तुम्हें दिल्ली के तख्त पर बिठाऊँगा, अपने साथ

मिला लिया। औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना ने शाही फौज के ऊपर धावा कर दिया। धौलपुर के समीप दोनों दलों में युद्ध हुआ। दारा हार गया और बंदी बना लिया गया। उसे दिल्ली की गलियों में घुमाकर अपमानित किया गया। अंत में औरंगजेब के दासों द्वारा कतल कर दिया गया। दारा को हराने के बाद औरंगजेब ने धोखा देकर मुराद का भी ग्वालियर के किले में वध करा दिया। शाहशुजा को हराकर बंगाल की तरफ भगा दिया, जिसे पीछे अराकान को तरफ भागकर शरण लेनी पड़ी। इसी ऐतिहासिक तथ्य पर भूषण ने यह पद लिखा है। संगर=संग्राम, युद्ध। साहसुजै=शाहशुजा, औरंगजेब का बड़ा भाई। निचलायो=विचिलित किया, हरा दिया। कै=करके, ले के। नौरंग=औरंगजेब, (भूषण औरंगजेब को 'नौरंग' कहा करते थे)। हुती=थी। गाँठिहु के=गाँठ के, पास के, अपने भी।

अर्थ—औरंगज़ेब ने दाराशिकोह का दलन कर मुरादबख्श को मारकर शाहशुजा को युद्ध में भगा दिया। इस प्रकार दिल्ली की समस्त दौलत अपने हाथ में करके अन्य बहुत से देशों को भी अपने राज्य में मिला लिया (अधिकार में कर लिया)। तब उसने शिवाजी से शत्रुता की, पर वहाँ उसकी इच्छित बात न हुई, उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई। उसने दक्षिण देश के किले लेने के लिए अपनी सेना भेजी परन्तु उलटे वह अपनी गाँठ के क़िले ही गँवा बैठा।

विवरण—यहाँ औरंगजेब को दक्षिण देश के 'गढ़' विजय करना चाहता था सो न होकर 'गाँठ के गढ़-कोट गँवाना' रूप विपरीत कार्य हुआ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज तव, वैरी तजि रस रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे, बूड़े सोक समुद्र ॥२१६॥

शब्दार्थ—रस रुद्र = रौद्र रस, यह नौ रसों में से एक रस है, यहाँ वीर भाव, तथा युद्ध के बाने से तात्पर्य है।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी! आपके शत्रु युद्ध का बाना (वा वीरभाव) त्याग कर अपनी रक्षा के लिए समुद्र पार करने लगे (परन्तु तो भी वे) शोक-सागर में डूब गये (वे बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि देश, धन, जन गँवाकर क्या करें ? किधर जायँ ?) ।

विवरण—यहाँ शिवाजी के शत्रुओं को समुद्र पार करने से 'रक्षा' वाञ्छित थी, परन्तु वह न हो के शोक-सागर में डूबना रूप विपरीत कार्य हुआ।

अधिक

लक्षण—दोहा

जहाँ बड़े आधार तें, बरनत बढ़ि आधेय।
ताहि अधिक भूषन कहत, जान सुग्रन्थ प्रमेय ॥२२०॥

शब्दार्थ—आधार = जो दूसरी वस्तु को अपने में रक्खे। आधेय=जो वस्तु, दूसरी वस्तु में रक्खी जावे। प्रमेय = जो प्रमाण का विषय हो सके, प्रामाणिक।

अर्थ—जहाँ बड़े आधार से भी आधेय को बढ़ाकर वर्णन किया जाय वहाँ प्रामाणिक श्रेष्ठ ग्रन्थों के ज्ञाता 'अधिकालङ्कार' कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव हाथ को, नहि बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब, त्रिभुवन में न समात ॥२२१॥

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! आपके उस हाथ का वर्णन नहीं किया जा सकता जिस हाथ में रहने वाला यश (हाथ से ही यश पैदा होता है, दान देकर, अथवा शस्त्र-ग्रहण द्वारा देश विजय कर) समस्त त्रैलोक्य में भी नहीं समाता है।

विवरण—यहाँ शिवाजी का हाथ आधार है और त्रिभुवन में न समाने वाला यश आधेय है। हाथ त्रिभुवन का एक अंश ही है परन्तु उसमें रहने वाला यश त्रिभुवन से भी बड़ा है। अतः अधिक अलङ्कार है अथवा यदि त्रिभुवन को आधार मानें तो भी आधेय यश उस में न समाने के कारण उससे भी बड़ा है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्वय से पील देत नाहिं अकुलात हैं।
भूपन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासो करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खंड महि-
मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है ॥२२२॥

शब्दार्थ—सलील=सलिल, जल, मदजल। सलील सील=जल वाले, अथवा मदजल से पूर्ण। डील=शरीर। पब्वय=पर्वत। पील (फा०)=फील, हाथी। ढेरु=ढेर, राशि। सुमेरु=एक पर्वत, यह सुवर्ण का कहा जाता है। सवाई=जयपुर के राजाओं की उपाधि थी, शिवाजी की विशेषता दिखाने के लिये भूषण ने यहाँ इसका प्रयोग किया है। टंक=चार माशे का तोल। सातों दीप=पुराणानुसार पृथ्वी के सात बडे और मुख्य विभाग—जम्बू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक, शाल्मलि और पुष्कर। नवखंड=पृथ्वी के नौ भाग, भरतखंड, इलावर्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हिरण्य, रम्य, हरि और कुरु। ब्रह्मंड=ब्रह्माण्ड, चौदहों भुवनों का मण्डल, समस्त संसार।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी महाराज जल से पूर्ण नील मेघ

के समान रंगवाले अथवा स्वाभाविक मदजल से पूर्ण मदमस्त तथा बादलों के समान नीले रंग वाले और पर्वत के समान (बड़े बड़े) शरीर वाले हाथी (दान) देने में नहीं अकुलाते (अर्थात् शिवाजी बड़े दानी हैं वे बड़े बड़े हाथी दान करते हुए भी नहीं हिचकते, सहर्ष दे डालते हैं)। और वे इतना बड़ा सुवर्ण का ढेर देते हैं जो कि सुमेरु पर्वत के समान दिखाई पड़ता है। हे सरजा राजा शिवाजी ! कौन कवि कविता करके आपके उस हाथ की बड़ाई का वर्णन कर सकता है ! (अर्थात् सब कवि आपके उस हाथ के यश के वर्णन में असमर्थ हैं) जिसका टक भर यश पृथिवी के नवखंड और सातों द्वीपों की क्या कहें ब्रह्माण्ड में (चौदह भुवनों में) भी नहीं समाता ।

विवरण—यहाँ आधार ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी की अपेक्षा आधेय "टक भर यश" वस्तुत. न्यून होने पर भी 'ना समात' इस पद से बड़ा कथन किया गया है।

अन्योन्य

लक्षण—दोहा

अन्योन्या उपकार जहँ, यह बरनन ठहराय।
ताहि अन्योन्या कहत हैं, अलंकार कविराय ॥२२३॥

शब्दार्थ—अन्योन्या = एक दूसरे के प्रति, आपस में।

अर्थ—जहाँ आपस में एक दूसरे का उपकार करना (अथवा एक दूसरे से छविमान होना) कथित हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अन्योन्य अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमे एक ही क्रिया द्वारा दो वस्तुओं का परस्पर उपकार करना कहा जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

तो कर सों छिति छाजत दान है दानहू सों अति तो कर छाजै।
तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै ॥

भूपन तोहि सो राज विराजत राज सो तू सिवराज विराजै।
तो वल सो गढ़ कोट गजैं अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजैं ॥२२४॥

शब्दार्थ—तो = तव, तुम्हारा। छाजत = शोभा पाता है। तै ही = तुझे ही, तू ही। सजै = सजती है, फबती है। साजै = साजती है, शोभित करती है। गजै = गर्जन करते है, सबल हैं। गाजै—गर्जता है।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि तुम्हारे (शिवाजी के) हाथ से ही पृथ्वी पर दान शोभा पाता है और दान से ही तुम्हारा हाथ अत्यधिक शोभित होता है। गुणवान पुरुषों की प्रशसा तुम्हें ही फबती है अथवा तू ही गुणियों की बड़ाई करता है, और तुम्हारी ही बड़ाई करने से सब गुणी शोभा पाते है। तुमसे ही राज की शोभा है और राज होने से ही तुम्हारी शोभा है। तुम्हारे बल से (सहायता पाकर) समस्त किले गर्जन करते है (अर्थात् तुम्हारे बल से सबल एव दृढ़ होने से वे किसी शत्रु की परवाह नहीं करते) और तुम भी किलों का बल पाकर गर्जना करते हो।

विवरण—यहाँ कर से दान का और दान से कर का, गुणियों की बड़ाई से शिवाजी का और शिवाजी की कीर्ति से गुणियों का, राज से शिवाजी का और शिवाजी से राज का और अन्तिम चरण मे शिवाजी से गढ़ों का और गढ़ो से शिवाजी का आपस मे एक दूसरे का शोभित होना रूप उपकार कथित हुआ है।

विशेष

लक्षण—दोहा

बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि विशेष बखानही, भूपन कवि सरदार ॥२२५॥

अर्थ—जहाँ किसी आधार के बिना ही आधेय (की स्थिति) को कहा जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि विशेष अलंकार कहते हैं।

सूचना—साधारणतया यह कहा जाता है कि जहाँ किसी

विशेष (आश्चर्यात्मक) अर्थ का वर्णन हो वहाँ विशेष अलकार होता है। कइयों ने इसके तीन भेद कहे हैं। भूषण ने दो भेदों के उदाहरण दिये हैं, एक जहाँ बिना आधार के ही आधेय की स्थिति कही जाय, दूसरा जहाँ एक वस्तु की स्थिति का एक समय में अनेक स्थानों में वर्णन हो।

उदाहरण (प्रथम प्रकार का विशेष)—दोहा

सिवसरजा सो जग जुरि, चदावत रजवत।
राव अमर गो अमर पुर, समर रही रज तत ॥२२६॥

शब्दार्थ—जग जुरि = युद्ध करके। चंदावत = राव अमरसिंह चदावत, मेवाड़ के चूँडाजी के वशज, देखो पद स. ९६। रजवत = राज्यश्री वाले, वीरता वाले। समर = युद्ध। रज तत = रज+तत्व, रजोगुण का सार, वीरता।

अर्थ—शूरवीर राव अमरसिंह चदावत महाराज शिवाजी से युद्ध करके अमरपुर चला गया (स्वर्गवासी हो गया) परन्तु उसकी वीरता युद्धस्थल में रह गई।

विवरण—यहाँ राव अमरसिंह चदावत रूप आधार के बिना ही रजतत (वीरता) रूप आधेय की स्थिति युद्धस्थल में कथन की गई है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीस-दल,
कीन्हों कतलाम करवाल गहि कर मैं।
सुभट सराहे चन्दावत कछवाहे,
मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं।
भूषन भनत भौंसिला के भट उदभट,
जीति घर आए धाक फैली घर घर मैं।

मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर मैं ॥२२७॥

शब्दार्थ—सलहेरि = छन्द न० ९६ के शब्दार्थ में देखिए। दिलीस दल = औरंगजेब की सेना। कतलाम = (अरबी) कत्ले आम, सबको कत्ल करना। सराहे=प्रशंसित। ढाहे = गिरा दिये। फरकत = फड़कते थे। फर मे = बिछावन में (यहाँ युद्धस्थल में)। उदभट = अनुपम। मारु के करैया = मारो मारो शब्द के करने वाले, वीर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि खुमान राजा शिवाजी ने हाथ में तलवार लेकर सलहेरि के मैदान में दिल्ली के बादशाह की सेना में कत्लेआम मचा दिया। बड़े बडे प्रशसनीय वीर चदावत तथा कछवाहे राजपूत और मुग़ल और पठान उन्होंने मार कर गिरा दिये, वे युद्धस्थल में पड़े पड़े फडकने लगे। भौंसिला राजा शिवाजी के अनुपम वीर विजय प्राप्त करके अपने घरों को आगये और (शत्रुओं के) घर घर में उनका रोब छा गया। यद्यपि मार काट करने वाले शत्रु वीर लड़कर स्वर्ग चले गये परन्तु उनका 'मारो, मारो' का शोर अब भी रणस्थल में गूँज रहा है।

विवरण—यहाँ 'मारु कै करैया' रूप आधार के बिना ही 'मारु मारु शोर' रूप आधेय की स्थिति कथन की गई है।

दूसरे प्रकार के विशेष का उदाहरण—मनहरण कवित्त

कोट गढ़ दै कै माल मुलुक मैं बीजापुरी,
गोलकुडा वारो पीछे ही को सरकतु है।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भुजबल,
रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है।

पेसकसैं भेजत इरान फिरगान पति,
उनहू के उर याकी धाक धरकतु है।
साहि-तनै सिवाजी खुमान या जहान पर
कौन पातसाह के न हिए खरकतु है ॥२८८॥

शब्दार्थ—कोटगढ = किले। मुलुक = फा० मुल्क, देश। सरकतु = सिरकता है, खसकता है। रेवा = नर्मदा नदी। हरकतु है = रोक देता है। पैसकसैं = फा० पेशकश, भेंट। धरकतु है = धड़कती है।

अर्थ—बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाह (शिवाजी को) अपने किले देकर देश और वैभव में पीछे ही को सरकते जाते हैं। उनके देश की सीमा और वैभव कम होता जाता है। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी का बाहुबल औरंगजेब को नर्मदा नदी के दूसरी ओर ही रोक देता है अर्थात् शिवाजी की प्रबलता के कारण औरंगजेब भी नर्मदा के पार दक्षिण में नहीं आ पाता। ईरान और विलायत के शासक भी शिवाजी को भेंट भेजते हैं और उनके हृदय भी शिवाजी की धाक से धड़कते रहते हैं। शाहजी के पुत्र चिरजीवी शिवाजी महाराज इस दुनियाँ में किस बादशाह के हृदय में नहीं खटकते—अर्थात् सबके हृदय में खटकते हैं।

विवरण—यहाँ एक समय में ही शिवाजी (की धाक) का सब के हृदयों में चढ़ा रहना कहा गया है।

नोट—कई प्रतियों में यह पद पर्याय का उदाहरण दिया गया है। परन्तु पर्याय में क्रमश. एक वस्तु के अनेक आश्रय वर्णित होते हैं अथवा क्रम-पूर्वक अनेक वस्तुओं का एक आश्रय वर्णित होता है, पर 'विशेष' में एक ही समय में एक पदार्थ की अनेक स्थलों पर स्थिति वर्णन की जाती है। जैसे उपरिलिखित पद में की गई है।

व्याघात

लक्षण—दोहा

और काज करता जहाँ, करे औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, भूषन कवि सिरताज ॥२२९॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य कार्य का करने वाला कोई दूसरा ही कार्य (विरुद्ध कार्य) करने लगे वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याघात अलंकार कहते हैं। (व्याघात का अर्थ विरुद्ध है)।

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोसत संकर सृष्टि सँहारनहारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप काज सँवारे सवै हरि वारे॥
भूषन यों अवनी जवनी कहैं कोऊ कहै सरजा सों हहारे।
तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार न मारु हमारे॥२३०॥

शब्दार्थ—पुरुषोत्तम = विष्णु। सँवारे = पूर्ण किये। हहारे = विनती, अथवा हाय! हाय!। अवनी = पृथिवी। जवनी = मुसलमान स्त्रियाँ। भतार = भर्ता, स्वामी, पति।

अर्थ—ब्रह्मा पृथ्वी की रचना करते हैं, विष्णु भगवान उसका पालन करते हैं और महादेव सृष्टि का संहार करने वाले हैं। हे महाराज शिवाजी! तुम तो विष्णु के अवतार हो, तुमने विष्णु के सब काम पूरे किये हैं अर्थात् जगत् में तुमने पालन-पोषण का कार्य अपने ऊपर लिया है। भूषण कवि कहते हैं कि (इसीलिए) पृथिवी पर सब मुसलमानियाँ इस प्रकार कहती फिरती हैं कि कोई शिवाजी से विनती करके कहे (अथवा हाय, हाय, कोई शिवाजी से जाकर कहे) कि तुम तो सब का पालन-पोषण करने वाले हो अतएव हमारे पति विचारों को मत मारो।

विवरण—यहाँ शिवाजी को जगत के प्रतिपालक विष्णु का अवतार कह कर उनका यवनों का मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है जो 'तू सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतार न मारु हमारे' इस पद से प्रकट होता है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कसत मैं बार बार वैसोई बलन्द होत,
वैसोई सरस-रूप समर भरत है।
भूषन भनत महाराज सिव राजमनि,
सघन सदाई जस फूलन धरत है।
बरछी कृपान गोली तीर केते मान,
जोरावर गोला बान तिनहू को निदरत है।
तेरो करवाल भयो जगत को ढाल, अब
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥२३१॥

शब्दार्थ—कसत=(सं० कर्षित) खैंचते, कसते हुए। बलन्द=ऊँचा। रूप भरत है=रूप धारण करता है, वेश बनाता है। राजमनि=राजाओं में श्रेष्ठ। मान=परिमाण। केते मान=कितने परिमाण में, किस गिनती में। हाल=आजकल, इस समय।

अर्थ—(यहाँ शिवाजी की तलवार को ढाल का रूप दिया गया है जो संसार की रक्षक मानी गई है) भूषण कवि कहते हैं कि हे राजाओं में श्रेष्ठ महाराज शिवाजी! आपका कृपाण युद्ध में बार-बार खैंच कर चलाने पर (हिन्दुओं की रक्षा करता हुआ) उसी भाँति ऊँचा उठता है और वैसी ही सुन्दर शोभा को धारण करता है (जैसी कि एक ढाल)। यह आपका कृपाण बड़ा दृढ है और सदा ही यश रूपी पुष्पों को अत्यधिक धारण करने वाला (ढाल में भी लोहे के फूल लगे रहते हैं और उनसे वह दृढ होती है)। यह बड़े-बड़े जोरदार गोलों और बाणों को भी लज्जित कर देता

है, फिर भला इसके सामने बर्छी, तलवार, तीर और गोलियों की क्या गिनती है, वे तो इसके सामने कुछ भी नहीं कर सकतीं—अर्थात् गोला बारूद आदि से युक्त मुसलमानों की सेना से भी आपकी तलवार हिन्दुओं की रक्षा कर गोला बारूद आदि सामग्री को लज्जित कर देती है, उनकी व्यर्थता सिद्ध कर देती है। ऐसा यह आपका करवाल (कृपाण) समस्त संसार के लिए ढाल स्वरूप है (रक्षक है) परन्तु अब वही म्लेच्छों का अंत करता है।

विवरण—यहाँ करवाल रूपी ढाल का कार्य रक्षा करना था परन्तु उसका म्लेच्छों को मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है।

गुम्फ (कारण माला)

लक्षण—दोहा

पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेतु।
या विधि धारा बरनिए, गुम्फ कहावत नेतु ॥२३२॥

शब्दार्थ—पूरब=पूर्व, पहले । हेतु=कारण । उत्तर=पीछे । धारा=क्रम । गुम्फ=गुच्छा, धारा । नेतु=निश्चय ही ।

अर्थ—पहले कही गई वस्तु को पीछे कही गई वस्तु का, अथवा पीछे कही गई वस्तु को पहले कही गई वस्तु का कारण बनाकर एक धारा की तरह वर्णन करना गुम्फ अलंकार कहाता है, इसे कारण-माला भी कहते हैं।

सूचना— इसमें पूर्वकथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण धारा (माला) के रूप में होती है अथवा उत्तरकथित वस्तु पूर्वकथित वस्तु का कारण धारा (माला) के रूप में होती है। इस प्रकार इसके दो भेद हुए। एक जिसमें पूर्व कथित पदार्थ उत्तरो-

त्तर कथित पदार्थों के कारण हों या जो पहले कार्य हों वे आगे हेतु होते चले जॉय। दूसरा जिसमें उत्तरोत्तर कथित पदार्थ पूर्व कथित पदार्थों के कारण हों, अर्थात् जो पहले हेतु हों वे आगे कार्य होते जॉय।

उदारण—मालती सवैया

सकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि भूषन गाई।
ता किरपा सों सुबुद्धि बढी भुव भौंसिला साहितनैं की सवाई॥
राज सुबुद्धि सो दान बढ्यो अरु दान सों पुन्य समूह सदाई।
पुन्य सो बाढ्यो सिवाजी खुमान खुमान सों बाढी जहान भलाई॥२३३॥

शब्दार्थ—जोर बढ़ी=जोर से बढी, खूब बढी। गाई = गाता है, कहता है। सवाई = सवा गुनी, ज्यादा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी पर शिवजी महाराज की कृपा जोर से बढी और उस कृपा से पृथ्वी पर शाहजी के पुत्र भौंसिला राजा शिवाजी की बुद्धि भी सवाई बढ गई। इस प्रकार उन्नत सुबुद्धि द्वारा उनका दान खूब बढा अर्थात् शिवाजी अधिकाधिक दान देने लगे और उनके दान से सदा पुण्य समूह की वृद्धि होने लगी। इस पुण्योदय से चिरजीवी शिवाजी की वृद्धि हुई और उनकी उन्नति से समस्त ससार की भलाई बढ़ी।

विवरण—यहॉ, पूर्वकथित शंकर की कृपा शिवाजी की सुबुद्धि का कारण है और सुबुद्धि दान का कारण है, दान पुण्य का कारण है, पुण्य शिवाजी की उन्नति का कारण है और शिवाजी की उन्नति ससार भर की भलाई का कारण कही गई है। इस प्रकार पूर्व कथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण होती गई है। अतः प्रथम प्रकार का गुफ है।

उदाहरण (द्वितीय कारण माला)—दोहा

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान ॥२३४॥

अर्थ—श्रेष्ठ यश दान से मिलता है और दान धन से होता है। धन तलवार से प्राप्त होता है (अर्थात् तलवार से देश विजय करने पर धन की प्राप्ति होती है) और उस सर्वश्रेष्ठ (सब बातों की मूल कारण) तलवार को वीरकेसरी चिरजीवी शिवाजी ने ही संसार में प्रसिद्ध किया है।

विवरण—यहाँ यश का कारण दान, दान का धन, धन का तलवार और तलवार का कारण छत्रपति शिवाजी शृंखला विधान से वर्णित है। और जो पहले कारण है वह आगे कार्य होता चला गया है, अत. यह कारण माला का दूसरा भेद है।

एकावली

लक्षण—दोहा

प्रथम वरनि जहँ छोड़िये, जहाँ अरथ की पाँति।
बरनत एकावलि अहै, कवि भूषन यहि भाँति ॥२३५॥

शब्दार्थ—पाँति=पंक्ति, शृङ्खला।

अर्थ—जहाँ पहले कुछ वर्णन करके उसे छोड़ दिया जाय (और फिर आगे वर्णन किया जाय) परन्तु अर्थ की शृंखला न टूटे (ज्यों की त्यों रहे) वहाँ भूषण कवि एकावली अलंकार कहते है।

सूचना—एकावली भी कारण माला की तरह मालारूप में गुँथी होती है, परन्तु कारणमाला मे कारण-कार्य का सम्बन्ध होता है, एकावली मे वह नहीं होता।

उदाहरण—हरिगीतिका छद

तिहुँ भुवन मै भूपन भनै नरलोक पुन्य सुसाज मै।
नरलोक मै तीरथ लसै महि तीरथो की समाज मै।।

महि में बड़ी महिमा भली महिमै महारज लाज मैं।
रज-लाज राजत आजु है महराज श्री सिवराज मैं ॥१३६॥

शब्दार्थ—तिहुँ भुवन=त्रिभुवन। नरलोक=मनुष्य लोक (मर्त्य-लोक)। सुसाज=सुसामग्री, वैभव। लसै=शोभित है। तीरथों की समाज मैं=तीर्थसमूह में। महिमै=महिमा ही, कीर्ति ही। रजलाज=लज्जायुक्त राजश्री।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि त्रिभुवन में पुण्य और सुन्दर सामग्री से युक्त मनुष्य लोक श्रेष्ठ है, और इस मनुष्य लोक में तीर्थ शोभित होते हैं और तीर्थों में पृथिवी (महाराष्ट्रभूमि) अधिक शोभायमान है। उस पृथिवी (महाराष्ट्र भूमि) में महिमा बड़ी है और महिमा में लज्जाशील राज-लक्ष्मी श्रेष्ठ है। वही लज्जाशील राज-लक्ष्मी आज महाराज शिवाजी में शोभित है। अथवा महिमा रजपूती की लाज (वीरता) में शोभित है, और वह वीरता की लाज आज शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उत्तरोत्तर पृथक्-पृथक् वस्तुओं का वर्णन किया गया है, और उत्तरोत्तर में एक एक विशेषता स्थापित की की गई है, अर्थ की शृङ्खला भी नहीं टूटी, अत. एकावली अलकार है।

माला दीपक एव सार

लक्षण—दोहा

दीपक एकावलि मिले, माला दीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय ॥२३७॥

शब्दार्थ—उतकरष=उत्कर्ष, श्रेष्ठता, आधिक्य।

अर्थ—जहाँ दीपक और एकावली अलंकार मिलें वहाँ मालादीपक और जहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष (वा अपकर्ष) का वर्णन किया जाय वहाँ सार अलंकार होता है।

सूचना—ऊपरलिखित दोहे में दो अलकारों के एक साथ लक्षण दिए गए हैं,प्रथम 'माला दीपक' का, दूसरा 'सार' का। माला दीपक मे पूर्व कथित वस्तु उत्तरोत्तरकथित वस्तु के उत्कर्ष का कारण होती है और सार में उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष का ही कथन होता है।

मालादीपक

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मन कवि भूषन को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीती साधुजन सेवा ने।
साधुजन जीते या कठिन कलिकाल,
कलिकाल महावीर महाराज महिमेवा ने॥
जगत मैं जीते महावीर महाराजन ते,
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने।
पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्ली-
पति पातसाहै जीत्यो हिन्दुपति सेवा ने ॥२३८॥

शब्दार्थ—महमेवा = महिमावान कीर्तिशाली। लेवा = लेने वाले। बावनौ = बावन, ५२। सेवा=शिवाजी।

अर्थ—भूषण कवि का मन शिव (शकर)की भक्ति ने जीत लिया है अर्थात् उनका मन शिवजी की भक्ति में लीन होगया और शिवजी की भक्ति को साधुओं की सेवा ने विजय कर लिया। समस्त साधुओं को घोर कलियुग ने जीत लिया(अर्थात् कलियुग में कोई सच्चा साधु नहीं मिलता) और इस घोर कलियुग को वीर महिमावान् राजाओं ने विजय कर लिया है। इन समस्त महावीर महाराजाओं को बादशाहत लेने का दावा रखने वाले बावन प्रधानराजाओं ने (सम्भव है कि भारतवर्ष में उस समय बावन

प्रधान नरपति हो) अपने अधीन कर लिया है। इन बावन बादशाहों को दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने अपने अधीन किया और औरंगजेब को महाराज शिवाजी ने जीत लिया।

विवरण—यहाँ 'जीत्यो' क्रियापद की बार बार आवृत्ति होने से दीपक है तथा शृङ्खलाबद्ध कथन होने से एकावली भी है। दोनों मिलकर माला दीपक बने हैं।

सार

मालती—सवैया

आदि बडी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यो रचि जीव जडो है।
ता रचना महँ जीव बडो अति काहे ते ता उर ज्ञान गडो है॥
जीवन मैं नर लोग बडो कवि भूषन भाषत पैज अड़ो है।
है नर लोग मैं राजा बड़ो सब राजन में सिवराज बडो है॥२३९॥

शब्दार्थ—जीव = जीवधारी, चेतन। जड़ो = जड़। गड़ो है= चुभा है, स्थित है।

अर्थ—सर्व प्रथम ब्रह्मा की सृष्टि बहुत बडी है, जिसमें कि जड-चेतन (चराचर) की रचना की गई है। और इस रचना में सबसे बडा जीव है क्योंकि उसमें ज्ञान विद्यमान है। इन समस्त जीवों में पैज(प्रतिज्ञा)में दृढ होने के कारण प्रतिज्ञा पूरी करने के कारण मनुष्य-जीव श्रेष्ठ है। मनुष्यों में राजा बडा है और समस्त राजाओं में महाराज शिवाजी श्रेष्ठ है।

विवरण—यहाँ सृष्टि, जीव, मनुष्य, राजा और शिवाजी का उत्तरोत्तर उत्कर्ष 'बडो है' इस शब्द द्वारा वर्णन किया गया है। अत. यहाँ 'सार' अलकार है।

सूचना—यह 'सार' अलकार कहीं कहीं उत्तरोत्तर अपकर्ष में भी माना गया है किन्तु प्राय: 'सार' उत्कर्ष मे ही होता है।

पूर्वोक्त 'कारण माला' 'एकावली' और 'सार' में शृंखला विधान तो समान होता है किन्तु 'कारण माला' में कारण-कार्य का, एकावली मे विशेष्य-विशेषण का और 'सार' मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष का सम्बन्ध होता है। तीनों मे यही भेद है।

यथासंख्य

लक्षण—दोहा

क्रम सो कहि तिनके अरथ, क्रम सो बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं, भूषन जे कविराय ॥२४०॥

अर्थ—क्रम से पहले जिन पदार्थों का वर्णन हो और फिर उनके सम्बन्ध की बातें उसी क्रम से वर्णन की जायँ वहाँ श्रेष्ठ कवि यथासंख्य अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस।
संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के।
भूषन भनत भौंसिला सों अब सनमुख,
कोऊ ना लरैया है धरैया धीर धुर के।
अफजल खान, रुस्तमै जमान, फत्ते खान,
कूटे, लूटे, जूटे ए उजीर बिजैपुर के।
अमर सुजान, मोहकम, बहलोलखान,
खाँड़े छाँडे डाडे उमराव दिलीसुर के ॥२४१॥

शब्दार्थ—संके = शंकित हुए, डर गये। दुवन = शत्रु। बड़े उर के = विशाल हृदय के, बड़े दिल (साहस) वाले। धरैया धीर-धुर के = धैर्य की धुरी को धारण करने वाले, बड़े धैर्यवान। रुस्तमे जमान = इसका वास्तविक नाम 'रन दौला' था, 'रुस्तमे जमान' इसकी उपाधि थी। यह बीजापुर का सेनापति था और

बीजापुर की ओर से दक्षिण पश्चिम भाग का सूबेदार था, अफजलखाँ की मृत्यु के बाद बीजापुर की ओर से अफजलखाँ के पुत्र फाजलखाँ को साथ लेकर इसने मराठों पर चढाई की। परनाले के निकट इसकी शिवाजी से मुठभेड़ हुई। इसमें इसे बुरी तरह से हार कर कृष्णा नदी की ओर को भागना पड़ा। यह घटना सन् १६५९ की है। फत्तेखान = फतेखाँ, यह जजीरा के सीदियों का सरदार था। सन् १६७२ ई० में जजीरा के किले म शिवाजी से लड़ा था, परन्तु कई बार परास्त होने पर अन्त में शिवाजी से मिल जाने की बात चीत कर रहा था, इसी बीच इसके तीन साथियों ने इसे मार डाला। कूटे = कूटा, मारा। जूटे = जुट गये, मेल किया, संधि की। अमरसिंह=अमर चदावत छन्द ९६ के शब्दार्थ में देखो। मोहकमसिंह = यह अमरसिंह चदावत का लड़का था। सलहेर के दुर्ग में इसे मराठों ने कैद कर लिया था, पर बाद में छोड़ दिया। बहलोल खान = छन्द न० १६१ के शब्दार्थ में देखो। खाँड़े = खड खड किया, कतल कर डाला। छाँडे = छोड़ दिया। डाँडे = दडित किया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सरजा राजा शिवाजी ने जिस देश को लेना चाहा वही ले लिया इस कारण शत्रुओं की जो बड़ी-बड़ी साहसी सेनाएँ थी वे भी डर गयीं। और धैर्य की धुरी को धारण करने वालों अर्थात् बड़े बड़े धैर्यवानों में से भी अब शिवाजी के सम्मुख लडने वाला कोई नहीं रहा। अफजलखाँ, रुस्तमेजमाँखान और फतेखाँ आदि बीजापुर के वजीरों को शिवाजी ने कूटा, लूटा और मिला लिया अर्थात् अफज़लखाँ को शिवाजी ने (कूटा) मारा, रुस्तमेजमाँखाँ को लूट लिया और फतेखाँ की शिवाजी से संधि हो गई। दिल्लीश्वर के उमराव चतुर अमरसिंह, मोहकमसिंह तथा बहलोलखाँ को कतल कर दिया, छोड़ दिया और दडित किया अर्थात् अमरसिंह (चदावत) को शिवाजी ने कतल कर दिया मोहकमसिंह को पकड़ कर छोड दिया और बहलोल खाँ को दंड दिया।

विवरण—यहाँ पूर्वकथित अफजलखाँ, रुस्तमेजमाँ खाँ, और फतेखाँ का क्रमशः कूटे, लूटे, और जूटे के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है, और अमरसिंह मोहकमसिंह और वहलोलखाँ के लिए क्रमश सम्बन्ध खाँडे, छाँडे, और डाँडे के कहा गया है। अतः यथासख्य अलंकार है।

पर्याय

लक्षण—दोहा

एक अनेकन मे रहै, एकहि मैं कि अनेक।
ताहि कहत परयाय हैं, भूषण सुकवि विवेक ॥२४०॥

अर्थ—जहाँ एक (वस्तु) का (क्रमशः) अनेक (वस्तुओं) में अथवा अनेकों का एक में होना वर्णित हो वहाँ ज्ञानी कवि पर्याय अलकार कहते हैं।

सूचना—इस लक्षण से पर्याय के दो भेद होते है—जहाँ एक वस्तु का क्रमशः अनेक वस्तुओ में रहने का वर्णन हो वहाँ प्रथम पर्याय और जहाँ अनेक वस्तुओं का एक मे वर्णन हो वहाँ द्वितीय पर्याय।

उदाहरण (प्रथम पर्याय)—दोहा

जीत रही औरंग मैं, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर माँडि ॥२४१॥

शब्दार्थ—छत्रपति = राजा। माँड़ि = मडित, शोभित। कर = को, हाथ।

अर्थ—समस्त छत्रपतियों (राजाओं) को छोड़कर विजय (लक्ष्मी) औरंगज़ेब के पास रही थी, परन्तु वह अब उसे त्याग कर महाराज शिवाजी को सुशोभित कर रही है अथवा महाराज शिवाजी के हाथ को सुशोभित कर रही है।

विवरण—यहाँ एक 'विजय' का राजाओं में, औरंगजेब में, और शिवाजी में क्रमश: होना कथन किया गया है। एक 'विजय' का अनेक में वर्णन होने से प्रथम पर्याय है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण (दूसरा पर्याय)

अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ,
उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावत अलापैं मधुर-स्वर,
तहाँई भूत प्रेत अब करत विलाप हैं।
भूषन सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन में परे मनो काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं ॥२४४॥

शब्दार्थ—अगर=एक सुगंधित लकड़ी। बगूरे=बगूले, बवंडर। अमाप=बेमाप, बेहद। कलावत=गायक। अलापैं=गाते थे। विलाप=रुदन, रोना। डेरन में=निवास स्थानों में। बाजत हे=बजते थे। गाजत=गर्जना करते है। मतंग=हाथी। दाप=दर्प, घमंड।

अर्थ—जहाँ पहले शत्रुओं के महलों एवं शिवरों में अगर की धूप जलने के कारण सुगन्धित धूआँ उठा करता था अब वहाँ (शिवाजी से शत्रुता होने के कारण महलों के उजाड़ होने से) धूल के बड़े बड़े बगूले उठते हैं। और जहाँ कलावत (गायक) लोग सुन्दर मधुर स्वर से अलापते थे, अब वहाँ भूत प्रेत रोते और चिल्लाते हैं। भूषण कवि कहते है कि ऐसा मालूम होता है, मानो शिवाजी की शत्रुता के कारण शत्रुओं के उन डेरों पर किसी का शाप पढ़ गया है, अर्थात् किसी के शाप से वे नष्ट हो गए हैं, (क्योंकि) जिन महलों में पहले गम्भीर ध्वनिसे

मृदंग गूँजा करते थे अब वहाँ बड़े बड़े भयंकर सिंह, बाघ और हाथी घोर गर्जना करते है, अर्थात् शत्रुओं के डेरे अब जंगल बन गये हैं ।

विवरण—यहाँ एक महल में अनेक पदार्थों, धूप, धूम और वगूरे आदि का होना वर्णन किया गया है अतः दूसरा पर्याय है ।

परिवृत्ति

लक्षण—दोहा

एक बात को दै जहाँ, आन बात को लेत ।
ताहि कहत परिवृत्ति हैं भूषन सुकवि सचेत ॥२४५॥

अर्थ—जहाँ एक वस्तु को देकर बदले में कोई दूसरी वस्तु ली जाय वहां श्रेष्ठ सावधान कवि परिवृत्ति अलंकार कहते है ।

सूचना—परिवृत्ति का अर्थ है अदला बदला अर्थात् एक वस्तु लेकर उसके बदले में दूसरी वस्तु देना ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़,
लेत गढ़धरन सों धरम दुवारु दै ।
साहि नरनाह को सपूत महावाहु लेत,
मुलुक महान छीनि साहिन को मारु दै ॥
सगर मे सरजा सिवाजी अरि सैनन को,
सारु हरि लेत हिंदुवान सिर सारु दै ।
भूषन भुसिल जय जस को पहारु लेत,
हरजू को हारु हर गन को अहारु दै ॥२४६॥

शब्दार्थ—धरन=धारण करने वाले। दच्छिन धरन=दक्षिण को धारण करने वाले, शिवाजी । गढ़धरन=गढों को धारण करने वाले, राजा । धरमदुवारु=धर्मराज का दरवाजा, यमपुरी का दरवाजा । नरनाह=नरनाथ,राजा । मारु दै=मार देकर (मारकर)।

सारु=बड़ाई। हारु=हार (मुडमाला)। हरगन=शिवजी के गन, भूत प्रेत आदि। अहारु=भोजन।

अर्थ—दक्षिणाधीश, धैर्यशाली, चिरजीवी शिवाजी महाराज क़िलेदारों को यमपुरी का दरवाजा देकर (यमपुरी पहुँचाकर—मारकर) उनसे किले ले लेते हैं। महाराज शाहजी के सुपुत्र महाबाहु (पराक्रमी) शिवाजी बादशाहों को मृत्यु देकर उनसे बडे बडे देश छीन लेते हैं। युद्ध में वीर-केसरी शिवाजी हिन्दुओं के सिर बडाई देकर (उनको विजयी कहलवा कर) शत्रु सेना के सार (तेज) को हर लेते हैं। भूषण कहते हैं कि श्री महादेवजी को मुण्डमाला तथा उनके गणो (भूत प्रेत आदि) को खूब भोजन देकर भौंसिला राजा शिवाजी विजय के यश के पहाड़ लेते हैं अर्थात् शिवाजी शत्रुओ के सिर काटकर विजय की बड़ाई लेते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी का गढपालों को धर्मद्वार देकर क़िले लेने, शाहों को मृत्यु देकर उनका मुलक लेने हिन्दुओं को बडाई देकर शत्रु सेना का तेज हर लेने और महादेव को मुडमाला तथा उनके गणों को आहार देकर विजय लेने में वस्तु-विनिमय दिखाया गया है, अत परिवृत्ति अलकार है।

परिसख्या

लक्षण—दोहा

अनत बरजि कछु वस्तु जहँ, बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसख्या कहत हैं, भूषन कवि दिलदौर ॥२४७॥

शब्दार्थ—दिलदौर = उदार हृदय, रसिक।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को अन्य स्थान से निषेध कर किसी एक विशेष स्थान पर स्थापित किया जाय वहाँ रसिक कवि परिसंख्या अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियतु,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है।
भूषन भनत जहाँ पर लगैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहि माहिं बिछुरन रीति है॥
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधैं जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है।
कम्प कदली मैं, बारि-बुंद बदली मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है॥२५८॥

शब्दार्थ—दुरदै = द्विरद, हाथी। परकीति = सं० प्रकृति, स्वभाव। पर = शत्रु, पंख। कोक = चक्रवाक। गुन = गुण, रस्सी। कम्प = काँपना। कदली = केला। बारिबुंद = पानी की बूँद, आँसू। अदली = (फा० आदिल) न्यायी।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि न्यायशील महाराज शिवाजी की राजनीति (शासन-व्यवस्था) ऐसी (श्रेष्ठ) है कि समस्त राज्य भर में केवल हाथी ही बड़े मदमस्त दिखाई पड़ते हैं, कोई मनुष्य मतवाला (शराब आदि नशे की चीज़ें पीकर मस्त होने वाला) नहीं दिखाई देता, चंचलता केवल घोड़ों की प्रकृति(स्वभाव)में ही पाई जाती है, और किसी में नहीं। यहाँ पर(पंख)केवल बाणों में ही लगते हैं,अन्यथा कोई किसी का पर (शत्रु) नहीं लगता, नहीं होता। बिछुड़ने की रीति केवल चक्रवाक पक्षियों में ही पाई जाती है और कोई अपने प्रियजन से नहीं बिछुड़ता। समस्त राज्य में केवल गुणी पुरुष ही अपने गुणों से दूसरों के चित्तों को चुराने वाले हैं और कोई मनुष्य चोर नहीं दिखाई देता। यहाँ केवल शिवाजी की प्रेम-रूप रस्सी का बंधन है जिससे प्रजा बँधी है और किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं है। यदि कंप है तो केवल केले के वृक्षों में ही

है, कोई मनुष्य भय से नहीं काँपता । जल की बूँदें केवल बादलों में ही हैं किसी मनुष्य एव स्त्री के नेत्रों में वे नहीं हैं अर्थात् कोई मनुष्य दुखी होकर रोता नहीं है—शिवाजी के राज में सब सुखी हैं ।

विवरण—यहाँ शिवाजी के राज्य में मत्तता, चचलता, बिछुरना, चोरी, बधन और कंप आदि का अन्य स्थानों से निषेध करके क्रमशः हाथी, घोड़े, कोक पक्षी, गुणी, प्रेमपाश और केले में ही होना कथन किया गया है । अतः परिसख्या अलंकार है ।

विकल्प

लक्षण—दोहा

कै वह कै यह कीजिए, जहँ कहनावति होय ।
ताहि विकल्प बखानहीं, भूषन कवि सब कोय ॥२४६॥

शब्दार्थ—कै = या । कहनावति = कथन ।

अर्थ—जहाँ 'या तो यह करो या वह करो' इस प्रकार का कथन हो वहाँ सब कवि विकल्प अलकार कहते हैं ।

उदाहरण—मालती सवैया

मोरँग जाहु कि जाहु कमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए ।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए ॥
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए ।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए॥२५०॥

शब्दार्थ—मोरँग = कूच बिहार के पश्चिम और पूर्निया के उत्तर का एक राज्य, यह हिमालय की तराई में है । कुमाऊँ = गढवाल की रियासत । सिरीनगरै = श्रीनगर (काश्मीर) । बाँधव = बाँधव की रियासत (रीवाँ) । अमेरि = आमर, जयपुर; आमेर नाम का किला जयपुर मे है । बनिहै चित चाह = मन की इच्छा पूर्ण होगी ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कवित्त बनाकर मोरँग जाओ, या

कुमाऊँ जाओ या श्रीनगर जाओ अथवा रीवाँ जाओ, या आमेर जाओ या जोधपुर अथवा चित्तौड़ को दौड़ो और चाहे कुतुबशाह के पास(गोलकुण्डा) या बीजापुर के बादशाह आदिलशाह के पास जाओ, अथवा निमंत्रित होकर दिल्लीश्वर के पास ही चले जाओ, या सारी पृथ्वी पर गाते फिरो किन्तु तुम्हारी मन की अभिलाषा शिवाजी को रिझाने पर ही पूरी होगी।

विवरण—यहाँ "मोरँग जाहु कि जाहु कुमाँऊँ" आदि कथन करके विकल्प प्रकट किया गया है। परन्तु अत में भूषण ने शिवाजी के पास जाने की निश्चयात्मक बात कह दी है अतः यहाँ अलंकार में त्रुटि आगई है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

देसन देसन नारि नरेसन भूपन यों सिख देहिं दया सों।
मगन ह्वै करि, दंत गहौ तिन, कंत तुम्हैं हैं अनंत महा सों॥
कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों।
और करो किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों॥२५१॥

शब्दार्थ—सिख = शिक्षा, उपदेश। मंगन = भिक्षुक। तिन= तिनका। दंत गहौ तिन = दाँतों मे तिनका पकडो अर्थात् दीनता प्रकट करो। अनंत महा = अनेकों बडी-बड़ी। सों = सौंह, सौंगध, शपथ। कोट गहौ = किले का आश्रय लो, किले मे बैठो। ओट = आड़। जोट=झुंड, समूह। प्रभुता सों=वैभव के साथ, समारोह से।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि देश देश के राजाओं को उनकी स्त्रियाँ विकल होकर(इस प्रकार)सीख देती हैं कि हे पतिदेव तुम्हें बडी बड़ी सौगध है कि तुम भिक्षुक बनकर शिवाजी के सम्मुख मुख में तृन धारण कर लो (अर्थात् शिवाजी के सम्मुख दीन भाव प्रकट करो), क्योंकि तुम चाहे क़िलों का आश्रय लो, या वनों की आड़में जा छिपो अथवा प्रभुता से—गौरव से—फौज़ों के झुंड इकट्ठे करो और चाहे अन्य करोड़ों ही उपाय

क्यों न करो परन्तु बिना शिवाजी से मेल किये (संधि किये) आप का बचाव नहीं है ।

विवरण—यहाँ 'कोट गहौ कि गहो बन ओट कि फौज की जोट सजौ' इस पद से विकल्प प्रकट होता है । यहाँ भी अंत में निश्चित पथ बता कर भूषण ने अलंकार में त्रुटि दिखाई है ।

समाधि

लक्षण—दोहा

और हेतु मिलि कै जहाँ, होत सुगम अति काज ।
ताहि समाधि बखानही, भूषन जे कविराज ॥२५२॥

अर्थ—जहाँ अन्य कारण के मिलने से कार्य में अत्यधिक सुगमता हो जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि समाधि अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण—मालती सवैया

बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो ।
यों ही मलिच्छहि छाँडैं नहीं सरजा मन तापर रोस मैं पैठो ॥
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो ।
बीछू के घाव धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि* बैठो ॥२५३॥

शब्दार्थ—बाह्यौ = चलाया, वार किया । कठैठो = कठोर । अठपाव = (सं० अष्टपाद) उपद्रव, शरारत । उमैठो = मरोड़ा । बीछू = बघनखा, जिससे शिवाजी ने अफज़लखाँ को मारा था । धुक्योई = गिरा ही था । धरक्क = धड़क, धक्क से ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी तो बैर करना चाहते ही थे (अर्थात् अफज़लखाँ के पास वे मेल करने गये थे, यह तो बहाना ही था,

---

* बाबू ब्रजरत्न दास ने धरा धरि के स्थान पर धराधर पाठ दिया है और उसका अर्थ किया है पृथ्वीपति, अर्थात् राजा शिवाजी।

वास्तव में वे लड़ना ही चाहते थे) कि इतने ही में शत्रु (अफ़ज़लखाँ) ने अपनी कठोर तलवार का वार उन पर कर दिया। वीर केसरी शिवाजी यों ही म्लेच्छों को नहीं छोडते, तिस पर (अब तो) उनका मन क्रोध से भर गया था। भूषण कहते है कि भला अफ़ज़लखाँ फिर कैसे बचता उसने तो शरारत कर के सिंह का पॉव मरोड दिया। (अर्थात् उसने शिवाजी पर तलवार चला कर गुस्ताखी की)। बीछू के घाव से अफ़ज़लखाँ काँप कर गिरा हीं था कि इतने में राजा शिवाजी दौडकर उसे पृथिवी पर पकड़ बैठ गए।

विवरण—शिवाजी अफजलखॉ से शत्रुता रखना एवं उसे मारना चाहते ही थे कि अचानक उसका शिवाजी पर तलवार का वार करना रूप कारण और मिल गया, जिससे शिवाजी का क्रोध और बढ गया तथा अफजलखॉ की मृत्यु रूप कार्य सुगम हो गया।

प्रथम समुच्चय

लक्षण—दोहा

एक बार,ही जहँ भयो, बहु काजन को बध।
ताहि समुच्चय कहत हैं, भूपन जे मतिवध ॥२५४॥

शब्दार्थ—बंध = ग्रन्थि, गुम्फ, योग। मतिबंध = बुद्धिमान्।

अर्थ—जहाँ बहुत से कार्यों का गुम्फ (गठन) एक ही समय में वर्णन किया जाय वहॉ बुद्धिमान् लोग प्रथम समुच्चय अलकार कहते है।

उदाहरण—मालती सवैया

माँगि पठाये सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यो भूपन जो दिन दोय लगे ना ॥
धाक सो खाक विजैपुर भो मुख आय गो खानखवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहि की सेना ॥२५५॥

शब्दार्थ—अजानन=अज्ञानियों ने, अथवा (अज+आनन) बकरे के समान मुखवाले (मुसल्मानों का दाढीदार मुँह बकरे के मुख के समान दिखाई देता है) । बोल=बात । गहे ना=ग्रहण नहीं किया, माना नही । परनालो=छन्द नं० १०६ का शब्दार्थ देखिए । खाक=भस्म, राख । खानखवास=खवास खाँ, छद २०७ का शब्दार्थ देखो । फेना=झाग । भै=भय से । भरकी= भडक गई । करकी=टूट गई, छिन्न-भिन्न हो गई । धरकी= धडकने लगी, काँपने लगी । दरकी=फटगई, टूट गई । दिल=मन, साहस हिम्मत ।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि शिवाजी ने कुछ देश आदिलशाह से माँग भेजे परन्तु उसके मूर्ख अथवा(दाढियों के कारण) बकरे के समान मुख वाले वज़ीरों ने इस बात पर ध्यान न दिया । तब शिवाजी ने धावा बोलकर परनाले के किले को ले लिया यहाँ तक कि उसको विजय करने में उनको दो दिन भी न लगे । इस विजय के आतक से समस्त बीजापुर ख़ाक हो गया और खवासखाँ के मुख में बेहोशी के कारण झाग आ गई । आदिलशाह की समस्त सेना भय के कारण भड़क गई,छिन्न भिन्न हो गई, दहल गई और उसका दिल (साहस) टूट गया ।

विवरण—यहाँ अन्तिम चरण मे "भै भरकी, करकी, धरकी, दरकी दिल एदिलसाहि की सेना" में कई कार्यों का एक समय मे ही होना कथन किया गया है अतः प्रथम समुच्चय है ।

सूचना—'समुच्चय' के इस प्रथमभेद मे गुण, क्रिया आदि कार्य भावों का एक साथ होना वर्णित होता है, और पूर्वोक्त 'कारक दीपक' में केवल क्रियाओं का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है, इस समुच्चय मे क्रम नहीं होता ।

द्वितीय समुच्चय

लक्षण—दोहा

वस्तु अनेकन को जहाँ, बरनत एकहि ठौर।
दुतिय समुच्चय ताहि को, कहि भूषन कवि मौर ॥२५६॥

अर्थ—जहाँ बहुत सी वस्तुएं एक ही स्थान पर वर्णित हों वहाँ श्रेष्ठ कवि द्वितीय समुच्चय अलकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

सुन्दरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होत है आदर जामैं।
सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं॥
दान कृपानहु को करिवो करिवो अभै दीनन को बर जामैं।
साहन सों रन टेक बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं॥२५७॥

शब्दार्थ—गुरुता=बड़प्पन। प्रभुता=स्वामित्व। दान कृपानहु को करिवो=तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना। अभै=निर्भय। वर=बल। रन टेक=युद्ध करने की प्रतिज्ञा।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि शिवाजी में सुन्दरता, बड़प्पन और प्रभुता'आदि गुण, जिनसे कि आदर प्राप्त होता है, तथा प्रजा के प्रति सज्जनता, दयालुता, नम्रता, एवं कोमलता आदि झलकती हैं। और तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना तथा दीनों को अभय या वरदान देना तथा बादशाहों से युद्ध के करने का प्रण और विचार, अकेले शिवाजी में इतने गुण विद्यमान हैं।

विवरण—यहाँ केवल एक शिवाजी में ही सुन्दरता, बड़प्पन, प्रभुता, सज्जनता, नम्रता आदि गुण तथा दान देना आदि अनेक क्रियाओं का होना कथन किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त पर्याय अलकार के द्वितीय भेद मे अनेक वस्तुओं का क्रम पूर्वक एक आश्रय होता है और इस द्वितीय

समुच्चय में अनेक वस्तुओं का एक आश्रय अवश्य होता है किन्तु वस्तुओं मे कोई क्रम नहीं होता।

प्रत्यनीक

लक्षण—दोहा

जहँ जोरावर सत्रु के, पच्छी पै कर जोर।
प्रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर ॥२५८॥

शब्दार्थ—पच्छी=पक्ष वाला, सबधी। प्रत्यनीक=प्रति+अनीक (सेना), सेना के प्रति, सम्बन्धी के प्रति।

अर्थ—जहाँ बलवान शत्रु पर बस न चलने पर उसके पक्षवालों पर जोर (जुल्म) किया जाय वहाँ पर श्रेष्ठ बुद्धि मनुष्य प्रत्यनीक अलंकार कहते हैं।

सूचना—जहाँ शत्रु पक्ष वालों से वैर अथवा मित्र पक्ष वालों से प्रेम कथन किया जाय वहाँ यह अलकार होता है। प्रत्यनीक का अर्थ ही 'सम्बन्धी के प्रति' है।

उदाहरण—अरसात सवैया *

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै ॥
हिन्दुन के पति सों न बिसात सतावत हिन्दु गरीबन पाय कै।
लीजै कलक न दिल्ली के बालम आलम आलमगीर कहाय कै ॥२५९॥

शब्दार्थ—लाज धरौ=लज्जा धारण करो, अपनी मान मर्यादा का खयाल करो, कुछ शर्म करो। पठाय कै=भेजकर। रिसाय कै=क्रोधित होकर। हिन्दुन के पति=शिवाजी। बिसात=बस चलना।

---

* इसमें पहले सात भगण (ऽ।।) और अन्त में एक रगण (ऽ।ऽ) होता है।

आलम=(अ० आलिम) इल्म वाला, विद्वान्, पंडित। वालम=(सं० वल्लभ) प्रिय,पति। आलमगीर=संसार विजयी,औरंगजेब की पदवी।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि हे आलमगीर तुम्हें यदि कुछ शर्म हो तो सब सैयद शेख और पठानों (प्रमुख सरदारों) को भेजकर शिवाजी से लड़ो। इधर दक्षिण में जब तुम कुछ अपने किले हार गये तो गुस्से होकर (झुँझलाकर) तुमने वहाँ (मथुरा और काशी आदि पवित्र स्थानों में) देवालय क्यों तोड़ दिये? हिन्दूपति शिवाजी से तुम्हारा कुछ बस नहीं चलता तो बेचारे हिन्दुओं को गरीब देखकर क्यों कष्ट देते हो? (इसमें भला, कोई बहादुरी प्रकट होती है?) हे दिल्लीपति विद्वान् और आलमगीर कहला कर तुम्हें (ऐसे अनुचित कार्य करके) अपने नाम पर कलंक नहीं लगाना चाहिए।

विवरण—यहाँ गढ़ को हार जाने पर मठों पर जाकर अपना जोर दिखाने तथा हिन्दूपति पर वश न चलने पर गरीब हिन्दुओं पर अत्याचार करने का वर्णन किया गया है अतः प्रत्यनीक अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गौर गरबीले अरबीले राठवर गह्यो
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरप ते,
कोट के कँगूरन मैं गोलदाज तीरदाज,
राखे हैं लगाय, गोली तीरन वरपते॥
कै कै सावधान किरवान कसि कम्मरन,
सुभट अमान चहुँ ओरन करपते।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो,
राति के सहारे ते अराति अमरप ते॥२५६॥

शब्दार्थ—गौर=छन्द १३३ के शब्दार्थ में देखो। गरबीले=

गर्व वाले, अभिमानी। अरबीले = अड़नेवाले, हठीले। राठवर = राठौर, क्षत्रियों की एक जाति, जिनका जोधपुर में राज्य रहा है। यहाँ उदयभानु (छन्द ९९ देखो) से तात्पर्य है। लोहगढ़ = जुनेर के दक्षिण में इन्द्रायणी की घाटी के पश्चिम और पहाड़ पर यह किला है। मिर्जा राजा जयसिंह ने जब शिवाजी की संधि औरंगजेब से कराई थी, तब यह किला भी शिवाजी ने औरंगजेब को दे दिया था। पीछे १६७० में सिंहगढ़ विजय के अनन्तर शिवाजी के सेनापति मोरोपंत ने इसे विजय कर मराठा राज्य में मिलाया था। सिंहगढ़=सिंहगढ़ नामक किला (छं० नं० ९९ देखिए)। हरषतें= हर्षित होते हुए, खुशी खुशी। कँगूरन=कंगूरे, किले की दीवार पर छोटी छोटी चोटियाँ सी बनी होती हैं, वे ही कँगूरे कहलाते हैं। गोली तीरन बरपतें=गोली और तीरों की वर्षा करते हुए। कम्मरन= कमर में। अमान=अनगिनत। करषतें=उत्तेजित करते हुए। तैं=तू (शिवाजी)। राति के सहारे=रात्रि के अंधकार में। अराति=शत्रु। अमरष=(सं० अमर्ष) क्रोध।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अभिमानी गौड़ क्षत्रियों एवं हठी राठौड़ों ने हिम्मत से और खुशी होते हुए जिन लोहगढ़ और सिंहगढ़ के किलों को लिया था और जिन किलों के कँगूरों पर उन्हों ने गोलंदाज और तीरंदाज गोली और तीर बरसाते हुए खड़े कर रक्खे थे, हे शिवाजी तुम शत्रु पर क्रोध करके (शत्रु के नाश की इच्छा से) कमर में तलवार कसे हुए अनेक वीरों को चारों ओर से बढ़ावा देते हुए (या बटोरते हुए) और उन्हें सावधान कर के रात का सहारा (रात के अंधकार का सहारा) पाकर उन किलों पर चढ़ गये।

विवरण—यहाँ अलंकार स्पष्ट नहीं है। इसमें प्रत्यनीक

अलंकार इस प्रकार घटाया जा सकता है कि शिवाजी को चढ़ाई करनी चाहिए थी दिल्ली पर, पर उन्होंने चढाई की औरंगजेब के पक्षपाती हिन्दू राजाओं पर, पर भूषण का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता।

नोट—इस कवित्त के अन्तिमचरण "भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तें चढ़ो राति के सहारे ते अराति अमरष तें" से यह प्रकट होता है कि शिवाजी ने सिंहगढ पर स्वयं चढाई की, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। यह किला शिवाजी की आज्ञा से उनके परम स्वामिभक्त वीर सेनापति तानाजी ने जीता था और वे स्वयं इस युद्ध में स्वर्गवासी भी हो गये।

अर्थापत्ति (काव्यार्थापत्ति)

लक्षण—दोहा

वह कीन्ह्यो तो यह कहा, यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति बखानहीं, तहाँ सयाने लोय ॥२६१॥

शब्दार्थ—अर्थापत्ति=अर्थ+अपत्ति=अर्थ का आपात, अर्थ का आ पड़ना। लोय=लोग।

भावार्थ—'जब वह कर डाला तो यह क्या चीज है?' जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ चतुर लोग अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस अलंकार द्वारा काव्य मे न कहे हुए अर्थ की सिद्धि होती है एवं इस में दुष्कर कार्य की सिद्धि के द्वारा सहज कार्य की सुगम सिद्धि का वर्णन होता है। इस अलंकार मे यही दिखाया जाता है कि जब इतनी बडी बात हो गई तो इतनी सुगम बात के होने में क्या संदेह है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

सयन मैं साहन को सुंदरी सिखावैं ऐसे,
सरजा सों बैर जनि करो महाबली है।
पेसकसैं भेजत विलायति पुरुतगाल,
सुनि कै सहमि जात करनाट-थली है॥
भूषन भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सों सलाह राखिये तौ बात भली हैं।
जाहि देते दंड सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दल मली तो तिहारी कहा चली है॥२६२॥

शब्दार्थ—सयन = शयन, सोते समय। पेसकसैं=भेंट, नजर। करनाट-थली = करनाटक देश, कृष्णा नदी की घाटी से रासकुमारी तक फैला हुआ प्रान्त। इसके पूर्व कारोमंडल घाट है। वर्त्तमान मद्रास प्रान्त का पश्चिम दक्षिण भाग तथा मैसोर इसी के अंतर्गत है। इस में दक्षिणी भारत का वह सब प्रान्त सम्मिलित है जो कि अपनी सुन्दरता एवं मन्दिरों के लिए भारत के इतिहास में प्रख्यात है। अखंड = अखंडनीय (औरंगजेब)। मली = पीस डाली, रौंद डाली।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि (शत्रु) स्त्रियाँ शयन के समय अपने पति शाहों को (दक्षिण के सुलतानों को) इस प्रकार समझाती हैं कि आप सरजा राजा शिवाजी से शत्रुता न करो क्योंकि वह बड़ा बलवान है। उसे पुर्तगाल एवं अन्य विलायतों (विदेशों)के बादशाह भी नजरें भेजते हैं और उसका नाम सुनकर ही सारा करनाटक देश भय से सहम जाता है। अतः आप किले, माल-असबाब एवं कुछ देश आदि देकर उससे सन्धि ही रखें तो अच्छी बात है,इसमें आपका कल्याण है। सब सुलतान डरकर जिसे खिराज देते हैं उसी अखंडनीय(अदमनीय)औरंगजेब की दिल्ली की सेना को जब (शिवाजी ने) रौंद डाला तो भला तुम्हारी उसके सामने क्या चलेगी।

विवरण—जिस शिवाजी ने औरंगजेब को जीत लिया उनका अन्य (गोलकुण्डा, बीजापुर और अहमदनगर आदि रियासतों के) बादशाहों को जीतना क्या मुश्किल है। यही अर्थापत्ति अलकार है।

काव्यलिंग

लक्षण—दोहा

है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।
काव्यलिंग तासों कहैं, भूषन जे कविराव ॥२६३॥

शब्दार्थ—दिढाइबे = दृढ़ करने, समर्थन करने।

अर्थ—जो वस्तु समर्थन करने योग्य हो उसका जहाँ (ज्ञापक हेतु द्वारा) समर्थन किया जाय वहाँ कविराज काव्यलिंग अलकार कहते हैं।

उदाहरण—मनहरण दंडक

साइति लै लीजिए विलाइति को सर कीजै,
बलख विलायति को वदी अरि डावरे।
भूपन भनत कीजै उत्तरी भुवाल वस,
पूरब के लीजिए रसाल गज छावरे॥
दच्छिन के नाथ के सिपाहिन सों वैर करि,
अवरग साहिजू कहाइए न बावरे।
कैसे सिवराज मानु देत अवरगै गढ़,
गाढ़े गढ़पती गढ़ लीन्हें और रावरे ॥२६४॥

शब्दार्थ—साइति = मुहूर्त्त। सर = (फा०) विजय। बलख = तुर्किस्तान में एक शहर। डावरे = लड़के, बच्चे (मारवाड़ी भाषा)। रसाल = सुन्दर। छावरे = शावक, बच्चे। गज-छावरे = गज-शावक, हाथी के बच्चे। दच्छिन के नाथ = शिवाजी। मानु = सम्मान। गाढे = गाढ़ा, मजबूत, दृढ़।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगजेब बादशाह! चाहे तुम मुहूर्त निकलवा कर विलायत को विजय कर लो और बलख आदि विदेशों के शत्रुओं के बच्चों को बन्दी बनालो, चाहे तुम उत्तर के (समस्त) राजाओं को अपने अधीन कर लो, और पूर्व दिशा के सुन्दर सुन्दर हाथियों के बच्चों को भी (उनके स्वामी राजाओं से भेंट रूप में) ले लो, अथवा जीत लो, परन्तु हे औरंगज़ेब बादशाह,दक्षिणाधीश राजा शिवाजी के वीर सिपाहियों से शत्रुता करके तुम पागल न कहलाओ। क्योंकि जिस (शिवाजी) ने तुम्हारे बड़े-बड़े गढ़पतियों के दृढ़ किले भी विजय कर लिये वह भला कैसे तुम्हें सम्मान और किले देगा।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को शिवाजी से न लड़ने की सलाह दी है और इसका समर्थन कवित्त के अन्तिम चरण मे 'गढ लीन्हे और रावरे' से किया है।

अर्थान्तरन्यास

लक्षण—दोहा

कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ उल्लेख।
सो अर्थान्तरन्यास है, कहि सामान्य विसेख ॥२६५॥

शब्दार्थ—सामान्य = साधारण। विसेख = विशेष। अर्थान्तर न्यास=अन्य अर्थ की स्थापना करना।

अर्थ—कथितार्थ के समर्थन के लिए जहाँ अन्य अर्थ का उल्लेख किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है। इसमें सामान्य बात का समर्थन विशेष बात से होता है और विशेष बात का समर्थन सामान्य बात से होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिध को लंक रघुनंदन जराई है।

पारथ अकेले द्रोन भीपम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी विराट मैं बड़ाई है ॥
भूपन भनत है गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिवी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचभो महाराज सिवराज सदा,
वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥२६६॥

शब्दार्थ—साहिवी = वैभव, प्रतिष्ठा, इज्जत। अवरग साहिवी= औरगजेब का बडप्पन, इज्जत। हथ्याय = हस्तगत कर, जबर्दस्ती हाथ मे लेकर। हरि लाई=छीन ली। हिम्मतै = हिम्मत ही।

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने बिना किसी चतुरंगिनी-सेना की सहायता के, केवल वन्दरों को साथ लेकर समुद्र का पुल बाँध लंका को जला दिया (लका को हनुमान जी ने जलाया था और वह भी लंका की चढ़ाई से पूर्व। जलाने से यहाँ नष्ट करने का तात्पर्य समझना चाहिए)। अकेले अर्जुन ने भी द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह जैसे महावली लाखों वीरों को जीत कर विराट नगर में कीर्ति प्राप्त की। भूपण कवि कहते हैं कि हे चिरजीवी शिवाजी महाराज, यदि तुम गुसलखाने में औरंगज़ेब का प्रभुत्व (प्रतिष्ठा) हर कर ले आये—औरंगज़ेब का मान-मर्दन कर साफ़ नकल आये—तो क्या आश्चर्य हो गया, क्योंकि वीरों की तो सदा हिम्मत ही हथियार होती आई है।

विवरण—यहाँ छद के प्रथम तीन चरणों मे कही गई विशेष बातों का चौथे चरण के "वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है" इस सामान्य वाक्य से पुष्टि की गई है, अतः अर्थान्तरन्यास है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा समरत्थ करी करनी धरनी पर नीकी।
भूलिगे भोज से विक्रम से औ भई वलि वेनु की कीरति फीकी।

भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की।
नैसुक रीझि धनेस करै,लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की ॥२६७॥

शब्दार्थ—करनी = कार्य। धरनी = पृथ्वी। नीकी = अच्छी। बलि = राजा बलि, जिसे वामन ने छला था। वेनु = चक्रवर्त्ती राजा वेणु, जिसकी जघाओं के मथने से निपाद और पृथु की उत्पत्ति हुई। भलि भीख लै = भली भिक्षा लेकर, खूब भिक्षा लेकर। नैसुक = थोड़ा सा। धनेस = कुवेर,देवताओ का खजानची।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सब प्रकार से समर्थ वीर-केसरी महाराज शिवाजी ने धरनी (पृथ्वी) पर ऐसे-ऐसे उत्तम कार्य किये हैं कि उनके सम्मुख लोग राजा भोज और विक्रमादित्य आदि प्रतापी राजाओं के नाम भूल गये है और बलि और वेणु जैसे महादानी राजाओं का यश भी फीका पड गया है। भिक्षुक लोग केवल भौंसिला राजा शिवाजी की ही अत्यधिक भिक्षा लेकर राजा बन गये हैं। शिवाजी का सदा ऐसा ही ढग देखा गया है कि किसी पर थोडा-सा ही खुश होनेपर उसे कुवेर के समान धनपति कर देते हैं।

विवरण—यहाँ पहले शिवाजी की प्रशंसा मे विशेष-विशेष बातें कही गई है, पुन. अन्तिम चरण में उसका 'लखि ऐसी रीति सदा सिवजी की' इस साधारण बात द्वारा उसका समर्थन किया गया है। यह उदाहरण ठीक नहीं है। यदि यहाँ लिखा जाता है कि बड़े लोग थोड़े में ही प्रसन्न होकर बड़ा-बड़ा दान कर देते हैं, और फिर बलि और शिवाजी के उदाहरणों से उसका समर्थन किया जाता तब उदाहरण ठीक बैठता।

प्रौढोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ उतकरप अहेत को, बरनत हैं करि हेत।
प्रौढोकति तासों कहत, भूषन कवि-बिरदेत ॥२६८॥

शब्दार्थ—अहेत = अहेतु, कारण का अभाव। विरदेत = नामी प्रसिद्ध।

अर्थ—जहाँ उत्कर्ष के अहेतु को हेतु कह कर वर्णन किया जाय अर्थात् जो उत्कर्ष का कारण न हो उसे कारण मान कर वर्णन किया जाय, वहाँ प्रसिद्ध कवि प्रौढोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मानसर-वासी हंस वंस न समान होत,
चन्दन सो घस्यो घनसारऊ घरीक है।
नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुण्डरीक है॥
भूपन भनत छक्यो छीरधि में थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै?
कयलास-ईस, ईस-सीस रजनीस वहौ,
अवनीस सिवा के न जस को सरीक है॥२६६॥

शब्दार्थ—मानसर=मानसरोवर। घनसारऊ=कपूर भी। घरीक= घड़ी एक, एक घड़ी, कुछ देर। सारद = शारदा, सरस्वती। आभ = प्रकाश। सुरसरी=गंगा। पुंडरीक = श्वेत कमल। छक्यो= मस्त, थकित। छीरधि = क्षीर सागर, दूध का समुद्र। ऐरावत = इन्द्र का श्वेत रंग का हाथी। करी = करि, हाथी। कयलास-ईस= कैलाश के स्वामी, शिवजी। ईस = ईश, महादेव। रजनीस = चन्द्रमा। वहौ = वह भी। सरीक=(फा०) शरीक, हिस्सेदार, बराबर समान।

अर्थ—मानसरोवर में रहने वाला हंस-समूह (उज्ज्वलता में शिवाजी के यश की) समता नहीं कर सकता, चन्दन में घिसा हुआ कपूर भी घड़ी भर ही (शिवाजी के यश के सम्मुख) ठहर सकता

है। नारद और सरस्वती की हँसी में भी वह आभा कहाँ और शरद ऋतु की सुरसरी (गंगाजी) में (शरद ऋतु में नदियाँ निर्मल होती हैं) पैदा हुआ श्वेत कमल भी शुभ्रता में उसके बराबर नहीं है। भूषणकवि कहते हैं कि क्षीर समुद्र की थाह लेने में थके हुए (अर्थात् दूध के सागर में बहुत नहाये हुए) और उसकी (सफेद) फेन को लिपटाए हुए ऐरावत (इन्द्र का सफेद हाथी) को भी (शिवाजी के यश के समान) कौन कह सकता है? (शुभ्र) कैलाश का स्वामी महादेव, और उस महादेव के सिर पर रहने वाला वह निशानाथ चंद्रमा भी पृथ्वीपति शिवाजी के यश की बराबरी नहीं कर सकता।

विवरण—मानसर वासी होने से हंस कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते, इसी प्रकार चन्दन के संग से कपूर, नारद और शारदा की होने से हँसी और शरदऋतु की गंगा में पैदा होने से श्वेत कमल, क्षीर सागर की फेन लिपट जाने से ऐरावत और कैलाश-वासी होने से शिव और शिव के सिर पर होने से चन्द्रमा अधिक उज्वल नहीं होते, पर यहाँ उन्हें ही उत्कर्ष का कारण माना गया है, अत. यहाँ प्रौढोक्ति अलंकार है।

सम्भावना

लक्षण—दोहा

"जु यों होय तो होय इमि," जहँ सम्भावन होय।
ताहि कहत सम्भावना, कवि भूपन सब कोय ॥२७०॥

अर्थ—'यदि ऐसा हो तो ऐसा हो जाता' जहाँ इस प्रकार की संभावना पाई जाय वहाँ सब कवि सम्भावना अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लोमस की ऐसी आयु होय कौनहू उपाय,
तापर कवच जो करनवारो धरिए।

ताहू पर ह्वजिए सहसबाहु तापर,
सहस्र गुनो साहस जो भीमहुँ ते करिए ॥
भूषन कहैं यों अवरंगजू सो उमराव,
नाहक कहो तौ जाय दच्छिन मैं मरिए।
चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज,
ऐसो होय साज तौ सिवा सो जाय लरिए ॥२७०॥

शब्दार्थ—लोमस=लोमश एक ऋषि, जो बड़ी लंबी आयु वाले माने जाते हैं। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, लोमश तथा मार्कण्डेय ये सात दीर्घजीवी माने जाते हैं। कवच करनवारो= राजा कर्ण वाला अभेद्य कवच। भीमहु ते=भीम से भी। सहसबाहु= सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य,यह एक पराक्रमी राजा था। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का सिर काट लिया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब से उसके उमराव इस प्रकार निवेदन करते हैं यदि किसी उपाय से लोमश के समान (दीर्घ) आयु हो जाय, और उस के बाद कर्ण वाला (अभेद्य) कवच धारण कर लें और उस पर सहस्रबाहु की तरह सहस्र-भुजाएँ होजायँ, फिर भीमसेन में जितना साहस था उससे भी हज़ारगुणा साहस हममें होजाय—यदि ऐसा साज हो जाय—तब तो हम जाकर शिवाजी से लड़ें, अन्यथा वहाँ जाना व्यर्थ है, कहें तो हम नाहक दक्षिण में जाकर मरें, क्योंकि हमारा तो वहाँ कुछ वस नहीं चलता, व्यर्थ ही आप हमें वहाँ भेजते हैं।

विवरण—यदि हम लोमश ऋषि के समान दीर्घजीवी हों और कर्ण का कवच धारण करलें,सहस्रभुज के समान सहस्रभुजाओं और भीमसेन से अधिक पराक्रमी हों तब तो हम शिवाजी से युद्ध कर सकते हैं। इस कथन द्वारा 'यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है' इस भाव को सूचित किया गया है, जो कि संभावना अलंकार में अभीष्ट है।

मिथ्याध्यवसित

लक्षण—दोहा

झूठ अरथ की सिद्धि को, झूठो बरनत आन ।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं, भूषन सुकवि सुजान ॥२७२॥

शब्दार्थ—मिथ्याध्यवसित = मिथ्या (झूठ) का निश्चय ।

अर्थ—किसी मिथ्या को सिद्ध करने के लिए जहाँ अन्य मिथ्या (झूठ) बात कही जाय वहाँ चतुर कवि मिथ्याध्यवसित अलंकार कहते हैं ।

सूचना—यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि किसी मिथ्या बात की सिद्धि के लिए दूसरी मिथ्या बात इसलिए कही जाती है कि वह दूसरी झूठी बात, सिद्ध की जाने वाली झूठी बात की वास्तविकता को प्रकट कर दे ।

उदाहरण—दोहा

पग रन मैं चल यों लसैं, ज्यों अंगद पद ऐन।
ध्रुव सो भुव सो मेरु सो, सिव सरजा को बैन ॥२७३॥

शब्दार्थ—चल = चलायमान, अस्थिर । अंगद = बालि का पुत्र, जो रामचन्द्र जी की ओर से रावण की सभा मे गया था, और वहाँ अपना पैर जमा कर खड़ा होगया था तो किसी राक्षस से उसका पैर न उठा था । ऐन = ठीक । ध्रुव = ध्रुव तारा, यह तारा सबसे ऊँचा और अचल माना जाता है ।

अर्थ—शिवाजी के पैर युद्ध-भूमि में ठीक उसी प्रकार चलायमान हैं जिस प्रकार (रावण की सभा में) अंगद का पैर था और उनका वचन भी ध्रुव तारा, पृथिवी (हिन्दू पृथ्वी को स्थिर मानते हैं) और मेरु पर्वत के समान चलायमान है ।

विवरण—यहाँ युद्ध में शिवाजी के पैरों की अस्थिरता तथा उनके वचनों की अस्थिरता कवि ने कही है, जो कि मिथ्या है ।

इस मिथ्या की पुष्टि के लिए उपमा अंगद के पैर, ध्रुव, पृथ्वी और मेरु से दी है जो कि जगत् में अपनी स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस तरह अपने पूर्व कथन की पुष्टि के लिए एक और मिथ्या बात कही है। अतः तात्पर्य यह निकलता है कि जिस तरह अंगद के पैर स्थिर थे जिस तरह ध्रुव, पृथ्वी और मेरु स्थिर हैं, उसी तरह शिवाजी रण में स्थिर और वचन के पक्के हैं।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

मेरु सम छोटो पन, सागर सो छोटो मन,
धनद को धन ऐसो छोटो जग जाहि को।
सूरज सो सीरो तेज, चाँदनी सी कारी कित्ति,
अमिय सो कटु लागै दरसन ताहि को।
कुलिस सो कोमल कृपान अरि भंजिवे को,
भूपन भनत भारी भूप भौंसिलाहि को।
भुव सम चल पद सदा महि मंडल मैं,
ध्रुव सो चपल ध्रुव बल सिव साहि को ॥२७४॥

शब्दार्थ—पन=प्रण। धनद=कुबेर। सीरो=ठंढा। कित्ति=कीर्ति। अमिय=अमृत। कुलिस=कुलिश,वज्र। भंजिवे=मारने को।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि संसार में शिवाजी का प्रण मेरु पर्वत के समान छोटा, मन समुद्र के समान संकुचित और धन कुबेर के धन के समान अल्प है। उनका तेज सूर्य के समान शीतल, कीर्ति चाँदनी के समान काली और दर्शन अमृत के तुल्य कड़ुवा लगता है। शत्रुओं का नाश करने के लिए भौंसिला महाराजा शिवाजी की जो तलवार है वह वज्र के समान कोमल है, महिमंडल में उनके पैर पृथ्वी के समान सदा चलायमान हैं (काव्य-परम्परा में पृथ्वी अचल है) और उनका अचल बल ध्रुव तारे के समान चंचल है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रण की लघुता, मन की छुटाई, धन का थोड़ापन, तेज की शीतलता, कीर्ति की श्यामता, दर्शन की कटुता, तलवार की कोमलता, पैरों और बल की चचलता आदि झूठी बातों को सच्चा सिद्ध करने के लिए क्रमशः मेरु, समुद्र, कुबेर का धन, सूर्य, चाँदनी, अमृत, वज्र, पृथ्वी, तथा ध्रुव नक्षत्र की उपमा दी है, जो क्रमशः अपनी महत्ता, विशालता, अधिकता, ताप, शुभ्रता, मधुरता, कठोरता तथा स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इस तरह एक मिथ्या को दूसरी मिथ्या बात से पुष्ट करने पर उसका अर्थ दूसरा ही हो जाना है।

उल्लास

लक्षण—दोहा

एकहि के गुन दोष ते, औरै को गुन दोस।
बरनत हैं उल्लास सो, सकल सुकवि मति पोस ॥२७५॥

शब्दार्थ—मतिपोस=मति पुष्ट, विशाल बुद्धि, श्रेष्ठ बुद्धि वाले।

अर्थ—जहाँ एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु में भी गुण या दोष होना वर्णन किया जाय वहाँ श्रेष्ठबुद्धि कवि उल्लास अलंकार कहते हैं।

सूचना—उल्लास शब्द का अर्थ "प्रबल सम्बन्ध" है। इस के चार भेद है। एक के गुण से दूसरे में दोष का होना, या दोष से गुण का होना अथवा गुण से गुण का होना, या दोष से दोष का होना।

उदाहरण (गुण से दोष)—मालती सवैया

काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूपन भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥

हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।
चंद अलोक ते लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै ।।२७६।।

शब्दार्थ—ऊटै = मन्सूबे बाँधता है, उमंग में आता है। जूटै = जुटता है, ठानता है। टूटै = टूटता है, आ गिरता है। अलोक = आलोक, प्रकाश, (चाँदनी)। लोक = दुनिया।

अर्थ—महाबली शिवाजी पृथ्वी पर हिन्दुओं का काम बढ़ाने के लिए हृदय में मन्सूबे बाँधते अथवा पृथ्वी पर हिन्दुओं की उन्नति के लिए शिवाजी हृदय में उत्साहित होते हैं (कई प्रतियों में 'काज' के स्थान पर 'राज' पाठ है, जो अधिक उपयुक्त लगता है, उसका अर्थ इस प्रकार होगा, कि महाबली शिवाजी पृथिवी पर हिन्दुओं का राज्य बढ़ाने के मन्सुबे बाँधते हैं) भूषण कहते हैं कि वे पृथिवी को म्लेच्छों से रहित करना चाहते हैं (अतः) म्लेच्छों को मारने के लिए ही वे युद्ध में जुटते हैं—युद्ध ठानते हैं। युद्ध में हिन्दुओं को बचाते बचाते भी अमरसिंह चंदावत-सा कोई हिन्दू बीच में आ ही टूटता है, बीच में आकर मारा ही जाता है। यद्यपि चन्द्रमा के प्रकाश से समस्त संसार के प्राणी सुखी रहते हैं परन्तु अभागे चक्रवाक का शोक नहीं मिटता (अर्थात् शिवाजी रूपी चन्द्र की कीर्तिरूपी प्रकाश से सब हिन्दू प्रजा प्रसन्न है परन्तु किसी किसी अमरसिंह चंदावत रूपी चक्रवाक को उससे कष्ट ही होता है। अमरसिंह चदावत मुसलमानों का साथी होने से शिवाजी का विरोधी था)।

विवरण—यहाँ शिवाजी का हिन्दू राज्य स्थापन के हेतु युद्ध करना एव हिन्दुओं को बचाने रूप गुण कार्य से चदावत अमरसिंह का मारा जाना रूप दोष होना कथन किया गया है, और इसी प्रकार (शिवाजी के यशरूपी) चन्द्र के प्रकाश से ससार के सुखी होने (रूप) गुण से (अमरसिंहरूपी) चक्रवाक का दुखी होना (रूप) दोष प्रकट किया गया है।

दूसरा उदाहरण (दोष से गुण)—मनहरण दंडक

देस दहपट्ट कीने लूटिकै खजाने लीने,
बचै न गढोई काहू गढ़ सिरताज के।
तोरादार सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े, जिनके सुभाय जग दै मिजाज के॥
भूषन भनत बादसाह को यों लोग सब,
बचन सिखावत सलाह की इलाज के।
डाबरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै बैरु,
रावरे के बैर होत काज सिवराज के॥२८७॥*

शब्दार्थ—दहपट्ट = बरबाद, नष्टभ्रष्ट। गढ सिरताज = गढ श्रेष्ठ। तोरादार = मनसबदार, वे सरदार जिनके पैरों में सोने के तोड़े (कड़े) पड़े हों, इन्हें ताजीमी भी कहते हैं अथवा बंदूकधारी। जग दे = युद्ध करके। मिजाज के = अभिमानी। इलाज = उपाय। डाबरे = बालक।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सब लोग बादशाह औरंगजेब को मेल करने के उपाय का उपदेश करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि शिवाजी ने समस्त देशों को उजाड़ कर बरबाद कर दिया और सारे खजाने लूट लिये और किसी भी श्रेष्ठ गढ (प्रसिद्ध गढ़ के) गढपति

---

*'साहित्य-सेवक-कार्यालय' की प्रति में दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—

तोरि डारे सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े जिनके सुभाय जय्यद मिजाज के।

अर्थात् तुम्हारे सब मनसबदारों को मारकर निर्बल कर दिया और जो जयद्द मिजाज (शाही ख़याल वाले या बड़े मिजाजी स्वभाव वाले) थे, उनको दंडित किया।

नहीं बचे। बड़े अभिमानी स्वभाव वाले जितने भी आपके तोड़ेदार तथा मनसबदार सरदार हैं, उन सबको उसने युद्ध कर के दंडित कर दिया है। अतः आप बालक-बुद्धि होकर तथा बावले होकर उससे वैर न करो क्योंकि आपके इस भाँति उससे वैर करने पर उसका काम बनता है।

विवरण—यहाँ औरगजेब के वैर करने रूप दोष से शिवाजी का 'काम बनना' रूप गुण प्रकट होना कथन किया है।

तीसरा उदाहरण (गुण से गुण)—दोहा

नृप सभान मे आपनी, होन बड़ाई काज।
साहितनै सिवराज के, करत कवित कविराज ॥२७८॥

शब्दार्थ—होन बड़ाई काज = बड़ाई होने के लिए।

अर्थ—राजसभाओं मे अपनी बडाई होने के लिए बड़े बड़े श्रेष्ठ कवि महाराज शिवाजी (की प्रशसा एवं गुणों) के कवित्त बनाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रशसामय कवित्त बनाने रूप गुण से कवियों का राजसभाओं में मान होना रूप गुण का प्रकट होना कथन किया गया है।

चौथा उदाहरण (दोष से दोष)—दोहा

सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गये वजीर ॥२७९॥

अर्थ—हे जगद्विजयी औरगजेब बादशाह! शिवाजी से शत्रुता करने का यह फल हुआ कि तुम्हारे हाथ से (कब्ज़े से) सारे क़िले छूट गये और तुम्हारे वज़ीर भी पीटे गये।

विवरण—यहाँ औरंगजेब का शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से क़िलों का हाथ से जाना एव वजीरों का पिटना रूप दोष का प्रकट होना कथन किया गया है।

पाँचवाँ उदाहरण (दोष से दोष)—कवित्त मनहरण

दौलति दिल्ली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
भूषन भनत लरि लरि सरजा सों जंग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं॥
सुधरयो न एकौ काज भेजि भेजि बेही काज,
बड़े बड़े बे इलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेर करु, सिवाजी सो बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं॥२८७॥

शब्दार्थ—बब्बर = बाबर, भारतवर्ष में मुगल वंश का सब से पहिला बादशाह, अकबर का दादा। अकब्बर = अकबर, औरंगजेब का परदादा। बिरद = यश, नेकनामी। तैं = तूने, बिसारे = भुलाये। अभंग = अखण्ड, सुदृढ। बेइलाज = निरुपाय, बेबश होकर। मेर = मेल। गैर करि = बेजा करके, अनुचित करके पराया बना कर। नैर = नगर, शहर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब! दिल्ली के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके आलमगीर नाम से तो तू प्रसिद्ध हो गया परन्तु तूने (अपने पूर्व पुरखा) बाबर और अकबर की कीर्ति को भुला दिया (अर्थात् हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एकसा समझने के कारण उनकी जो प्रसिद्धि थी, उसे तूने भुला दिया)। शिवाजी से लड़ लड़ कर अपने समस्त सर्वथा अभेद्य (सुदृढ़) क़िले भी तूने खो दिये हैं। तेरा एक भी काम नहीं बना, तूने बेबस (निरुपाय) बड़े बड़े उमरावों को उसी काम के लिए (शिवाजी को विजय करने के लिए) भेज भेज कर मरवा डाला। अथवा बे काज ही (व्यर्थ ही) बड़े बड़े निरुपाय उमरावों को भेजकर मरवा डाला। मेरी सम्मति से तो तू अब शिवाजी से मेल (संधि) कर ले।

उससे शत्रुता पैदा कर के और अनुचित कार्रवाई करके या उसे पराया बनाकर तूने अपने शहर व्यर्थ ही उजड़वा दिये।

विवरण—यहाँ औरंगजेब का शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से नगरों का उजड़ना रूप दोष कथन किया गया है।

अवज्ञा

लक्षण—दोहा

औरे के गुन दोस ते, होत न जहँ गुन दोस।
तहाँ अवज्ञा होत है, भनि भूपन मतिपोस ॥२८१॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के गुण-दोष (सम्बन्ध) से अन्य वस्तु में गुण-दोष न हों वहाँ उन्नत-बुद्धि भूषण अवज्ञा अलंकार कहते हैं।

सूचना—यह 'उल्लास' का ठीक उलटा है। इसमें एक वस्तु के गुण दोष से दूसरी वस्तु का गुण वा दोष न प्राप्त करना दिखाया जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

औरन के अनवाढ़े कहा अरु वाढ़े कहा नहिं होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा न मिटावत हा है॥
भूषन श्री सिवराजहि माँगिए एक दुनी विच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तौ कहा न गए तौ कहा है ॥२८२॥

शब्दार्थ—वाढ़े = बढ़ने पर उन्नत होने पर। चहा = इच्छित बात, इच्छा। हा = दुःख बोधक शब्द, 'हाय हाय', कष्ट।

अर्थ—अन्य लोगों के न बढ़ने से और बढ़ने से क्या लाभ, जब कि उनसे याचकों की इच्छा पूरी नहीं होती। अन्य लोगों के अप्रसन्न होने से या प्रसन्न होने से ही क्या हुआ जब कि वे उनकी "हा हा" को नहीं मिटा सकते—उनके कष्ट दूर नहीं कर सकते। भूषण कवि कहते हैं कि

इसलिए केवल एक शिवाजी से ही माँगना चाहिए क्योंकि दुनियाँ में वे ही एक बड़े दानी हैं। माँगने के लिए अन्य राजाओं के दरबार में गये तो भी क्या और न गये तो भी क्या (अर्थात् अन्य स्थानों पर जाने से थोड़ा बहुत चाहे मिल भी जाय पर याचकों की इच्छा-पूर्ति नहीं होती)।

विवरण—यहाँ यह दिखाया गया है कि शिवाजी के अतिरिक्त अन्य राजाओं की उन्नति का और अवनति का, अथवा उनकी प्रसन्नता एव अप्रसन्नता का कवियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अतः अवज्ञा अलंकार है।

अनुज्ञा

लक्षण—दोहा

जहाँ सरस गुन देखि कै, करै दोस की हौस।
तहाँ अनुज्ञा होत है, भूपन कवि यहि रौस ॥२८३॥

शब्दार्थ—हौस = हवस, इच्छा। यहि रौस = इसी रविश से, इसी ढग से, इसी क्रम से।

अर्थ—जहाँ सुन्दर गुण देखकर दोष की इच्छा की जाय अर्थात् जहाँ विशेष गुण की लालसा से दोष वाली वस्तु की भी इच्छा की जाय वहाँ भूपण कवि अनुज्ञा अलकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिब-नेवाज के।
भूषन जवाहिर जलूस जरबाफ-जोति,
देखि देखि सरजा की सुकवि-समाज के॥
तप करि करि कमलापति सों माँगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।

वैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के ॥२८४॥

शब्दार्थ—जरबाफ=जरदोज, कलाबत्तू मे कढा हुआ रेशमी कपड़ा। कमलापति=कमला+पति, लक्ष्मीपति, विष्णु। वैपारी जहाज के=जहाजी व्यापारी।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि आजकल महादानी, दीन-प्रतिपालक साहजी के पुत्र महाराज शिवाजी के संसार-प्रसिद्ध दान की महिमा का बखान सुनकर और सवारी के समय वीर-केसरी शिवाजी की कवि-मंडली के (उनके द्वारा पहने हुए)जवाहरात और कलाबत्तू के काम वाले रेशमी कपड़ों की उज्ज्वल चमक दमक को देखकर लोग तपस्या कर-करके कमला-पति विष्णु-भगवान से ऐसी अभिलाषा कर (वरदान) माँगते है कि हमें आप न तो जहाज़ी व्यापारी बनाइए (जो बहुत कमा कर लाते हैं) और न किसी बड़े भारी राज्य के राजा ही बनाइये वरन् हमें तो केवल महाराज शिवाजी के भिक्षुक ही बनाइए(जिससे कि हमें खूब मनचाहा दान मिले)।

विवरण—यहां शिवाजी के अत्यधिक दान (गुण) को देख कर भिखारी के नीच पद की अभिलाषा की गई है, अतः अनुज्ञा है।

लेश

लक्षण—दोहा

जहँ बरनत गुन दोष कैं, कहै दोष गुन रूप।
भूपन ताको लेस कहि, गावत सुकवि अनूप ॥२८५॥

अर्थ—जहाँ गुण को दोष रूप से और दोष को गुण रूप से वर्णन किया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि लेश अलङ्कार कहते है।

उदाहरण—दोहा (गुण को दोष)

उदैभानु राठौर वर, धरि धीरज, गढ़ ऐड़।
प्रगटै फल ताकौ लह्यौ, परिगौ सुर-पुर पैड़ ॥२८६॥

शब्दार्थ—परिगौ=पड़ गया। पैड=पैंड़ा, रास्ता। ऐंड़=ऐंठ।

अर्थ—वीर-श्रेष्ठ उदयभानु राठौड़ ने धैर्य, गढ़ और अपनी ऐंठ को धारण करके उनका प्रत्यक्ष ही फल पा लिया कि वह स्वर्ग के मार्ग में पड गया, अर्थात् वह मारा गया।

विवरण—यहाँ उदयभानु के धैर्य, गढ, और ऐंड़ धारन करना रूप गुणों को उसकी मृत्यु का कारण कहकर उनका दोष रूप से वर्णन किया गया है।

उदाहरण—दोहा (दोष को गुण)

कोऊ बचत न सामुहें, सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय ! समर ते, जिय लै आये भाजि ॥२८७॥

शब्दार्थ—सामुहें=सामने। समर=युद्ध।

अर्थ—(शत्रु स्त्रियाँ अपने पतियों से कहती है कि) हे प्रियतम ! आपने अच्छा किया जो युद्ध से अपने प्राण (सही सलामत) लेकर दौड आये, क्योंकि शिवाजी के सामने युद्ध करके कोई (शत्रु) उनसे बच नहीं सकता (अवश्य मारा जाता है)।

विवरण—यहाँ युद्ध से भाग आने रूप दोष को गुण रूप में कथन किया गया है।

अलकार भेद—पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त होता है पर यहाँ 'लेश' में किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप से कल्पित किया जाता है।

तद्‌गुण

लक्षण—दोहा

जहाँ आपनो रग तजि, गहै और को रग।
ताको तदगुन कहत हैं, भूपन बुद्धि उतग ॥२८८॥

शब्दार्थ—बुद्धि उतंग = उत्तग बुद्धि, प्रौढ बुद्धि ।

अर्थ—जहाँ (कोई पदार्थ) अपना रंग त्याग कर दूसरे (पदार्थ) का रग ग्रहण करे, वहाँ प्रौढ़ बुद्धि मनुष्य तद्गुण अलंकार कहते हैं, अर्थात् जहाँ अपना गुण (विशेषता) छोड़कर दूसरी वस्तु के गुण का ग्रहण किया जाना वर्णन किया जाय, वहाँ तद्गुण अलंकार होता है ।

सूचना—तद्गुण अलकार मे हिन्दी कवियों ने प्रायः 'रग' का ही वर्णन किया है । किन्तु कुछ कवियों ने इस में 'गुण' शब्द का अर्थ रूप, रस और गंध माना है, जैसे—

अहिमुख परयो सु विष भयो, कदली भयो कपूर ।
सीप परयो मोती भयो, सगति के फल सूर ॥

यहाँ स्वाति-जल-बिन्दु का सर्प के मुख में गिरने से विष (रस) होना, कदली मे गिरने से कपूर (गध) होना और सीप मे गिरने से मोती (रूप) होना वर्णन किया गया है । इस तरह स्वाति-बूँद के रस, गन्ध, और रूप तीनों गुणा का ग्रहण किया जाना कहा गया है ।

अलकार भेद—पूर्वोक्त 'उल्लास अलकार' में एक के गुण से दूसरे का गुणी होना कहा जाता है, किन्तु वहाँ 'गुण' शब्द 'दोष' का विरोधी होता है, अर्थात् 'उल्लास' में किसी के गुण (उत्तमता एव निकृष्टता) के सग से किसी में गुण (उत्तमता वा निकृष्टता) का होना कहा जाता है । तद्गुण अलकार मे कोई पदार्थ अपना गुण (विशेषता—रूप रस और गध) आदि त्याग कर दूसरे का गुण (रूप, रस, और गध) ग्रहण करता है । अर्थात् तद्गुण में 'गुण' से रूप, रस और गन्ध का अभिप्राय है और उल्लास मे 'गुण' से गुण (उत्तमता और निकृष्टता) का अर्थ ग्रहण किया जाता है ।

उदाहरण—मनहरण दंडक

पंपा मानसर आदि अगन तलाब लागे,
जाहि के पारन मैं अकथयुत गथ के।
भूषन यों साज्यो राजगढ़ सिवराज रहे,
देव चक चाहि कै बनाए राजपथ के॥
बिन अवलम्ब कलिकानि आसमान मैं ह्वै,
होत बिसराम जहाँ इन्दु औ उदथ के।
महत उतंग मनि जोतिन के संग आनि,
कैयो रंग चकहा गहत रवि-रथ के॥२८९॥

शब्दार्थ—पंपा = किष्किन्धा का एक बड़ा तालाब, इसी के तट पर शबरी ने रामचन्द्र जी का स्वागत किया था और इसी के पूर्व में ऋष्यमूक पर्वत था, जहाँ श्री रामचन्द्र की सुग्रीव से भेंट हुई थी। आजकल यह निजाम राज्य में दक्षिणी छोर पर अनगुँडी गाँव के निकट है, वहाँ तुंगभद्रा का किनारा है। अगन = अगणित, अनेक। पारन = पक्षों बगलों। अकथ = अकथनीय। गथ = गाथा, कहानी, ऐतिहासिक बातें। चक = चकित। चाहि कै = देखकर। राजपथ = सदर सड़क। कलिकान = (अ०) कलक, रंज, बेचैनी घबराहट। उदथ = उदय होने वाला, सूर्य। मनि ज्योतिन = मणियों का प्रकाश, चमक। चकहा = पहिया, चक्र।

अर्थ—जिस (रायगढ) के इस ओर और उस ओर, दोनों पाखों में, पम्पा, मानसरोवर आदि अगणित इतिहास-प्रसिद्ध अकथनीय गाथा युक्त-तालाब लगे हैं (अर्थात् चित्रित हैं) अथवा अकथनीय गाथायुक्त, पंपासर, मानसरोवर आदि जैसे तालाब जिस रायगढ में सुशोभित हैं, भूषण कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी ने जिस रायगढ को ऐसा सजाया है कि देवता भी उस में बनाए गए राजपथ (मुख्य सड़क) को देखकर चकित

होगये और आकाश में कोई आश्रय न पाने के कारण परेशान—बेचैन—होकर जहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा भी विश्राम लेते हैं, उस ही रायगढ़ की अत्यन्त ऊँची (अत्यधिक ऊँचे महलों में) जड़ी हुई रंग-बिरंगी मणियों की आभा के मेल से सूर्य के रथ के पहिए कई प्रकार के रंग धारण करते हैं अर्थात् उन ऊँची जड़ी हुई रंग-बिरंगी मणियों की कान्ति सूर्य के रथ पर पड़ती है, और उसके पहिए रंग-बिरंगे हो जाते हैं।

विवरण—यहाँ सूर्य के रथ के चक्र ने अपना रंग त्याग कर रायगढ़ के ऊँचे महलों पर जड़ी हुई मणियों की ज्योतियों का रंग ग्रहण किया है अतः तद्गुण अलंकार है।

पूर्वरूप

लक्षण—दोहा

प्रथम रूप मिटि जात जहँ, फिर वैसोई होय।
भूषन पूरबरूप सो, कहत सयाने लोय ॥२६०॥

अर्थ—जहाँ पहले रूप का नाश (लोप) हो जाता है और फिर वैसा ही रूप हो जाता है, अर्थात् जहाँ प्रथम मिट गए हुए रूप की पुनः प्राप्ति हो वहाँ चतुर लोग पूर्वरूप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी॥
भूषन यो कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी,
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥२६१॥

शब्दार्थ—ब्रह्म = ब्रह्मा। आनन = मुख। पुनीत = पवित्र।

अर्थ—जो वाणी (सरस्वती) श्री ब्रह्माजी के मुख से निकलने के कारण तीनों लोकों में अत्यंत पवित्र मानी गई, फिर (मर्यादा पुरुषोत्तम) श्रीरामचन्द्र जी और (धर्मराज) युधिष्ठिर के चरित्र वर्णन करने में

जो वाल्मीकि और महर्षि व्यास के अगों (मुखों) में सुशोभित हुई, भूषण कहते हैं कि उस पवित्र सरस्वती को ही कलियुग के कवियों ने (विषयी) राजाओं का यश वर्णन करके नष्ट एवं अपवित्र कर दिया था। वही अब वीर-केसरी शिवाजी के पुण्य-चरित्र रूपी सरोवर में स्नान करके फिर पवित्र हो गई है।

विवरण—अत्यन्त पवित्र सरस्वती को कलियुग के कवियों ने विषयी राजाओं के गुणगान का साधन बनाकर कलुषित और नष्ट कर दिया था। वही अब शिवाजी के यश-रुपी तालाब में स्नान कर पुन. पवित्र होगई, अत. पूर्वरूप अलकार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवया

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठै असमान बगूरे।
भूषन भूधरऊ धरकै जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे।
सुडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे॥२६२॥

शब्दार्थ—छहरावत = छितराते, फैलाते, उड़ाते। छार = खाक, धूलि। भूधरऊ = पहाड भी। धरकै = कॉपते हैं, हिल जाते हैं। रूरे = श्रेष्ठ। बलरूरे = श्रेष्ठ बली, महाबली। गरूरे = गरूर वाले, मतवाले। सोखि कै = चूस कर, पीकर। पूरे = भर दिये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो मदमस्त हाथी सिर पर इस प्रकार (इतनी अधिक) धूल डालते हैं कि जिससे आसमान में बवडर उठने लग जाते है, (हाथी का यह स्वभाव है कि वह अपनी सूँड में धूल लेकर अपनी पीठ और मस्तक पर डाला करता है) भूषण कहते हैं कि जो हाथी इतने बलशाली हैं कि उनकी गर्जना और टक्करों से पहाड तक डोल जाते हैं, हिल जाते हैं, और जिन्होंने सूँडों से पहले बडे-बडे नदो को सुखाकर फिर अपनी प्रबल मद की धारा से पूर्ण कर दिया, वे मदमस्त गजराज वीर-केशरी शिवाजी ने कविराजों को दिये।

विवरण—यहाँ पहले हाथियों द्वारा नदी का सुखाया जाना और फिर अपने मद-जल से पूर्ण कर नदी को पूर्व अवस्था में पहुँचा देना वर्णित है, अतः पूर्वरूप अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

श्री सरजा सलहेरि के जुद्ध घने उमरावन के घर घाले।
कुंभ चँदावत सैद पठान कवंधन धावत भूधर हाले॥
भूपन यों सिवराज की धाक भए पियरे अरुने रँग वाले।
लोहै कटे लपटे अति लोहु भए मुँह मीरन के पुनि लाले॥२६३॥

शब्दार्थ—घने = बहुत, अनेक। घर घाले = घर नष्ट कर दिये। कबंध = सिर रहित धड़। युद्ध में वीर गण जब बड़े जोश में आकर लड़ते हैं तब उनके रक्त में इतनी उष्णता आजाती है कि सिर कट जाने पर भी उनके हाथ कुछ देर तक पहले की तरह तलवार चलाते रहते हैं। कई बार इसी उष्णता के कारण पृथ्वी पर गिर कर भी उठकर कुछ दूर तक दौड़ते हैं, और उष्णता के कम होते ही गिर पड़ते हैं। हाले = हिल गये। अरुने = लाल। अरुने रंग वाले = लाल रंग वाले,। लोहै=लोहे से, तलवार से। लोहु = लोहू, रक्त, खून।

अर्थ—वीर-केसरी श्री शिवाजी ने सलहेरि के युद्ध में अनेकों (शत्रु) उमराओं के घरों को नष्ट कर दिया (अर्थात् उन्हें मार कर उनके घरों को बरबाद कर दिया)। वहाँ युद्ध क्षेत्र में कुम्भावत, चंदावत आदि क्षत्रिय वीरों और सैयद, पठान आदि मुसलमानों के कबंधों के दौड़ने से, पहाड़ भी हिल गये। भूषण कहते हैं कि इस प्रकार शिवाजी की धाक से अमीरों के लाल रंगवाले मुख पीले पड़ गये परन्तु शीघ्र ही तलवारों से कटने से और अत्यधिक लोहू में लथपथ होने से वे फिर लाल हो गये।

विवरण—यहाँ मुसलमानों के लाल रंग वाले मुख भय से पीले हो

जाने के कारण उन पर से जो लालिमा चली गई थी, वही लोहूलुहान होने से फिर आगई, अतः पूर्वरूप अलंकार है।

चौथा उदाहरण—मालती सवैया

यों कवि भूषन भाषत है यक तौ पहिले कलिकाल की सैली।
तापर हिन्दुन की सब राह सु नौरंगसाह करी अति मैली॥
साहितनै सिव के डर सों तुरकौ गहि वारिधि की गति पैली।
बेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज-देवन की फिर फैली॥२६४॥

शब्दार्थ—सैली=(सं०) शैली, रीति, परिपाटी। वारिधि= समुद्र। पैली=दूसरा तट, परले पार, उस पार।

अर्थ—भूषण कवि इस प्रकार कहते हैं कि प्रथम तो कलियुग की ही ऐसी शैली (परिपाटी) है (कि उसमें कोई धर्म कर्म नहीं रहता), तिस पर औरंगज़ेब बादशाह ने हिन्दुओं के सब धर्म मार्गों को और भी अपवित्र कर डाला। परन्तु अब शिवाजी के भय से तुर्कों ने समुद्र के उस पार का रास्ता पकड़ लिया (अर्थात् सारे मुसलमान समुद्र पार भाग गये) और अब फिर वेद-पुराणों की चर्चा (स्वाध्याय तथा कथा) और देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा फिर से चारों ओर फैल गई।

विवरण—यहाँ वेद-पुराण की चर्चा तथा देवता और ब्राह्मणों की पूजा आदि हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों का कलिकाल के आने से तथा मुसलमानों के अत्याचारों से लोप हो जाना और शिवाजी द्वारा फिर उनका प्रचलित होना कथन किया गया है।

अतद्गुण

लक्षण—दोहा

जहँ संगति तें और को गुन कछूक नहिं लेत।
ताहि अतद्गुन कहत हैं भूषन सुकवि सचेत॥२६५॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु की संगति होने पर भी उसके गुणों का

ग्रहण न करना वर्णन किया जाता है अर्थात् जहाँ एक वस्तु का दूसरी के साथ संसर्ग होता है, फिर भी वह वस्तु दूसरी वस्तु के गुण ग्रहण नहीं करती, वहाँ सावधान श्रेष्ठ कवि अतद्गुण अलंकार कहते है। यह तद्गुण का ठीक उलटा है, इसमें भी गुण का अभिप्राय रूप, रंग, स्वभाव, गंध आदि से है।

उदाहरण—मालती सवैया

दीनदयाल दुनी प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के।
भूपन भूधर उद्धरिवो सुने और जिते गुन ते सिवजी के॥
या कलि मैं अवतार लियो तऊ तेई सुभाव सिवाजी बली के।
आय धरयो हरि ते नररूप पै काज करै सिगरे हरि ही के॥२६६॥

शब्दार्थ—निरम्लेच्छ = म्लेच्छों से रहित, मुसलमानों से रहित। भूधर उद्धरिवो = पहाड़ का उद्धार करना, विष्णु-पक्ष मे गोवर्द्धन धारण करना, शिवाजी पक्ष मे पहाड़ी किलों का उद्धार करना; देखो छंद सं० ९९। सुभाय = स्वभाव, आदतें। सिगरे = सब।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि दीनों पर दयालु होना, दुनियाँ के पालक होना, पृथ्वी को म्लेच्छों से रहित करने वाला होना और पहाड़ का उद्धार करना आदि जितने भी विष्णु भगवान के गुण सुने जाते हैं वे सब शिवाजी में मौजूद हैं। यद्यपि बली शिवाजी ने इस घोर कलियुग में अवतार धारण किया है तब भी उनका स्वभाव वैसा ही (विष्णु भगवान् के समान ही) है। (अवतार होने के कारण) शिवाजी ने विष्णु भगवान से अब मनुष्य का रूप धारण किया है, परन्तु वे विष्णु भगवान के ही सब काम करते हैं।

विवरण—शिवाजी ने यद्यपि नर-रूप धारण किया है तब भी उन पर नर-गुणों का प्रभाव नहीं पड़ा, अतः अतद्गुण अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान तेरो खग्ग बढ़े मान बढ़े,
मानस लौं बदलत कुरुष उछाह तें।
भूषन भनत क्यों न जाहिर जहान होय,
प्यार पाय तो सं ही दिपत नरनाह तें॥
परताप फेंटो रहो सुजस लपेटो रहो,
बरतन खरो नर पानिप अथाह ते।
रगरग रिपुन के रकत सों रगो रहै,
रातो दिन रातो पै न रातो होत स्याह ते॥२६७॥

शब्दार्थ—कुरुष = कुरुख, क्रोध। उछाह = उत्साह, प्रसन्नता। मानस लौं = मन की भाँति। दिपत = दीप्त प्रकाशित, तेजस्वी। नरनाह = नरनाथ, राजा। फेंटो=चक्कर, प्रभाव। खरो = अच्छा, खूब। पानिप = कान्ति, आब, इज्जत। रग रग=भाँति भाँति के। रातो = रात, सलग्न, लाल।

अर्थ—हे चिरजीवी शिवाजी आपकी तलवार बढ़े और उसका मान बढ़े, वह तलवार मन की तरह क्रोध और उत्साह से बदलती रहती है—(क्रोध करके किसी को मार देती है और उत्साह से किसी की रक्षा करती है)। भूषण कहते हैं कि आप जैसे तेजस्वी नरेश का प्रेम पाकर यह तलवार ससार में प्रसिद्ध क्यो न हो (अवश्य होनी ही चाहिये) प्रताप इस तलवार की फेंट में है—चक्कर में है, वश में है, सुयश इस तलवार से लिपटा रहता है, और मनुष्यो के अथाह पानिप (कान्ति, आब और जल) का यह खरा बरतन है, अर्थात् बड़े बड़े वीरों के पानिप को पीकर (ऐंठ को नष्ट कर) भी यह भरी नहीं और यद्यपि यह तलवार रग रग के शत्रुओ के खून से रँगी रहती है और रात दिन इसी कार्य में (खून बहाने में) लगी रहती है फिर भी स्वय काली से लाल नहीं होती।

विवरण—तलवार रात दिन लाल रक्त में डूबे रहने पर भी काली से लाल नही होती, अतः अतद्गुण अलकार है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

सिव सरजा की जगत मैं, राजत कीरति नौल।
अरि-तिय-दृग-अजन हरै, तऊ धौल की धौल ॥२९८॥

शब्दार्थ—नौल = (सं० नवल) नई, उज्ज्वल। धौल = (स०) धवल, सुफेद।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी की उज्ज्वल कीर्ति संसार में सदा शोभायमान है। यद्यपि वह उज्ज्वल कीर्ति शत्रु स्त्रियों के नेत्रों के कज्जल को हर लेती है (पति की मृत्यु सुनते ही उनकी आँखों में लगा अंजन अश्रु-जल-प्रवाह के कारण धुल जाता है,अथवा विधवा स्त्रियाँ कज्जल नहीं लगातीं) तो भी यह सफेद की सफेद ही है, काली नहीं हुई।

विवरण—यहाँ 'कीर्ति' का शत्रु-स्त्रियों के नेत्रों से कज्जल को हर लेने पर भी उज्ज्वल रहना कथन किया गया है, और उसका काले रग को ग्रहण न करना दिखाया गया है।

अनुगुण

लक्षण—दोहा

जहाँ और के संग ते, बढ़ै आपनो रग।
ता कहँ अनुगुन कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग ॥२९९॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु के संग से अपना रंग बढ़े वहाँ उन्नत-बुद्धि लोग अनुगुण अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ दूसरों की संगति से किसी के स्वाभाविक गुणों का अधिक विकसित होना वर्णन किया जाय वहाँ अनुगुण अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा सिवा के सनमुख आय,
कोऊ बचि जाय न गनीम भुज-बल-मै ॥
भूषन भनत भौंसिला की दिलदौर सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरँग के दल मैं ॥
रातौ दिन रोवत रहत जवनी हैं सोक,
परोई रहत दिली आगरे सकल मै ।
कज्जल कलित अँसुवान के उमग सग,
दूनो होत रोज रग यमुना के जल मैं ॥३००॥

शब्दार्थ—गनीम = शत्रु । भुज-बल-मै=भुजबलमय, प्रबल । दिलदौर = दिल के इरादे, मनसूबे । कज्जल-कलित = कज्जल से युक्त, काजल-मिले । उमंग = उभाड़, प्रवाह ।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी के सम्मुख आकर कोई भी पराक्रमी शत्रु बच कर नहीं जाता । भूषण कवि कहते है कि औरंगज़ेब की सेना के मुसलमान तो शिवाजी के मनसूबों को सुन कर उसके आतक से ही मर जाते हैं । मुसलमानियाँ रात-दिन रोती रहती हैं, समस्त आगरे और दिल्ली में हर समय शोक ही छाया रहता है । मुसल-मानियों के नेत्रों के कज्जल-मिले आँसुओं की झडी के साथ यमुनाजी का जल दिन प्रति दिन रग में दुगुना होता जाता है, दुगुनी श्यामता धारण करता है ।

विवरण—यहाँ कज्जल युक्त अश्रुजल मिलने से यमुना जी का स्वाभाविक श्याम जल का और अधिक काला होना कथन किया गया है ।

सूचना—इस अलकार मे भी 'गुण' से केवल 'रंग' का ही ग्रहण नहीं करना चाहिए वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण करना चाहिए । भूषण ने केवल रंग का ही वर्णन किया है ।

मीलित

लक्षण—दोहा

सदस वस्तु मैं मिलि जहाँ, भेद न नेक लखाय।
ताको मीलित कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥३०१॥

अर्थ—जहाँ सदृश वस्तु में मिल जाने से कोई वस्तु स्पष्ट लक्षित न हो अर्थात् समान रूप रंग वाली वस्तुएँ ऐसी मिल जायँ कि उनमें थोड़ा भी भेद न मालूम दे, वहाँ श्रेष्ठ कवि मीलित अलकार कहते हैं।

सूचना—मीलित में भिन्न वस्तु होते हुए भी समान धर्म (रूप, रस, गंध) वाली वस्तु मे वह मिल जाती है। तद्‌गुण में ऐसा नही होता, उसमें एक वस्तु अपना प्रथम गुण त्याग कर दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण करती है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को।
भूषन भनत सुर-सरिता को हंस हेरैं,
विधि हेरै हस को चकोर रजनीस को॥
साहितनै सिवराज करनी करी है तै जु,
होत है अचम्भो देव कोटियो तैतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने निज,
गिरि को गिरीस हेरै गिरिजा गिरीस को ॥३०२॥

शब्दार्थ—हेरत = ढूँढता है। गज-इन्द्र = गजेन्द्र, ऐरावत। इन्द्र को अनुज=इन्द्र का छोटा भाई,वामन,विष्णु। दुगध-नदीस= क्षीर सागर। सुरसरिता = गगाजी। विधि = ब्रह्मा। रजनीस = चन्द्रमा। करनी = काम। हिराने = खो गये। गिरीस = महादेव।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी, तुमने यह जो

(त्रिभुवन को अपने श्वेत यश से छा देने का अद्भुत) काम किया है, उससे तैंतीस करोड़ देवताओं को भी आश्चर्य होता है। तुम्हारी श्वेतकीर्त्ति में (सब श्वेत वस्तुओं के) खो जाने से—मिल जाने से, इन्द्र अपने गजराज ऐरावत को ढूँढता फिरता है और इन्द्र का छोटा भाई विष्णु क्षीर-सागर की तलाश कर रहा है, हँस गगा को खोज रहे हैं, तथा ब्रह्मा (अपने वाहन) हँस को और चकोर चाँद को ढूँढ रहा है, ऐसे ही महादेव अपने पहाड (कैलाश) को ढूँढ रहे हैं और पार्वती महादेवजी की खोज कर रही हैं, परन्तु वे खोजते हुए भी उनको नहीं पाते।

विवरण— शिवाजी की श्वेत कीर्ति में मिल जाने से ऐरावत, क्षीरसागर, गंगाजी, हस, चन्द्रमा, कैलाश और महेश आदि पहचाने नहीं जाते, अत. मीलित अलंकार है।

उन्मीलित

लक्षण—दोहा

सदृस वस्तु मैं मिलत पुनि, जानत कौनेहु हेत।
उनमीलित तासो कहत, भूपन सुकवि सचेत ॥३०३॥

अर्थ—जहाँ कोई वस्तु पहले सदृश वस्तु में मिल जाय और फिर किसी कारण द्वारा किसी प्रकार पहचानी जाय, वहाँ सुचेत सुकवि उन्मीलित अलकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव सुजस मैं, मिले धौल छवि तूल।
बोल वास ते जानिए, हस चमेली फूल ॥३०४॥

शब्दार्थ—छवि = शोभा। तूल = तुल्य, समान।

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! तुम्हारे उज्वल यश में समान श्वेत कान्ति वाले (अर्थात् सफेद ही रग वाले) हंस और-चमेली के पुष्प बिलकुल मिल गये हैं, परन्तु वे केवल बोली से (हस) और सुगंधि से (चमेली के फूल) जाने जाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के (श्वेत) यश में छिपे हुए हंस और चमेली का भेद क्रमशः उनकी बोली और गंध के द्वारा जाना गया है; अतः उन्मीलित अलंकार है।

सामान्य

लक्षण—दोहा

भिन्न रूप जहँ सदृस ते, भेद न जान्यो जाय।
ताहि कहत सामान्य हैं, भूषन कवि समुदाय ॥२०५॥

अर्थ—भिन्न वस्तु होने पर भी सादृश्य के कारण जहाँ भेद न जाना जाय वहाँ समस्त कवि सामान्य अलंकार कहते हैं।

सूचना—पूर्वोक्त मीलित अलंकार मे एक वस्तु का गुण (धर्म) दूसरी वस्तु मे दूध-पानी की भाँति मिल जाता है, अतः मिलने वाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है, और यहाँ केवल गुण-सादृश्य से भेद-मात्र का तिरोधान (लोप) होता है किन्तु दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न प्रतीत होते रहते हैं, दोनो के आकार रहते है, यही दोनों अलंकारों मे भिन्नता है।

उदाहरण—मालती सवैया

पावस की यक राति भली सु महाबली सिंह सिवा गमके ते।
म्लेच्छ हजारन ही कटिगे दस ही मरहट्टन के झमके ते॥
भूषन हालि उठे गढ़-भूमि पठान कबंधन के धमके ते।
मीरन के अवसान गये मिलि धोपनि सो चपला चमके ते ॥२०६॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षाऋतु। गमके तें=गूँज से, उत्साह-पूर्वक हुंकारने पर। कटिगे=कट गये। झमके ते=लड़ाई में हथियारों के चमकने और खनकने से। धमके तें=धमक से, जोर-जोर से चलने पर जो पैरों का शब्द होता है वह 'धमक' कहलाती है। अवसान=(फा० औसान) सुध-बुध, होशहवास। धोपनि=तलवारें।

अर्थ—वर्षाऋतु की एक सुन्दर रात को महाबली वीर शिवाजी के उत्साहपूर्वक हुंकार मारने पर और केवल दस ही मराठों के हथियारों के चमकने और खनकने से हज़ारों म्लेच्छ (मुसलमान) कट गये। भूषण कवि कहते हैं कि (इस भाँति म्लेच्छों के कट जाने पर) पठानों के ववधों के दौड़ने की धमक से किले की पृथ्वी तक हिलने लगी और तलवारों के साथ मिल कर बिजली के चमकने से सारे अमीर उमरावों के होश-हवास उड़ गये। वे यह न जान सके कि यह तलवारें चमक रही है अथवा बिजली, अर्थात् इधर तलवार चमकती थी उधर वर्षाऋतु होने के कारण बिजली चमकती थी। मीर लोग इन दोनों में भेद न कर पाते थे।

विवरण—यहाँ कहा गया है कि मीरों को तलवारों के चमकने और बिजली के दमकने में भेद न जान पड़ता था, अतः सामान्य अलकार हुआ।

सूचना—भूषण का यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है। इसका उदाहरण इस प्रकार ठीक होता है—"भरत राम एकै अनुहारी। सहसा लखि न सकै नरनारी", अर्थात् राम और भरत जी का एक रूप होने से वे सहसा पहचाने नहीं जाते।

विशेषक

लक्षण—दोहा

भिन्न रूप सादृश्य मैं, लहिए कछू विसेख।
ताहि विशेषक कहत हैं, भूषन सुमति उलेख ॥३०७॥

अर्थ—जहाँ दो भिन्न वस्तुओं में रूप सादृश्य होने पर भी किसी विशेषता को पाकर भिन्नता लक्षित हो जाय वहाँ विशेषक अलकार होता है।

सूचना—पूर्वोक्त उन्मीलित में एक का गुण दूसरे में 'मीलित' की भाँति विलीन हो जाने पर फिर किसी कारण से पृथकता जानी जाती है, और यहाँ दोनों वस्तुओं की स्थिति 'सामान्य' की भाँति

भिन्न भिन्न रहती है केवल पहले उनके भेद का तिरोधान होता है और फिर किसी कारण से उनमें पृथकता जानी जाती है। यही दोनों में भेद है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अहमदनगर के थान किरवान लै कै,
नवसेरीखान ते खुमान भिर्यो बल ते।
प्यादन सो प्यादे पखरैतन सो पखरैत,
बखतरवारे बखतरवारे हल ते॥
भूषन भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल ते।
सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत, मीर जाने चल ते॥३०८॥

शब्दार्थ—अहमदनगर=निजामशाही बादशाहों की राजधानी थी। यह राज्य १४८९ से १६३७ई० तक रहा। इसका विस्तार उत्तर मे खान देश से दक्षिण मे नीरा नदी तक और पश्चिम में समुद्र से पूर्व बरार तथा बीदर तक था। अहमदनगर, राजधानी भीमा नदी पर समुद्र से साठ कोस पूर्व हट कर है। सन् १६३७ ई० में शाहजहाँ ने इसे विजय किया। यहीं सन्१६५७में शिवाजी का नौशेरी खाँ के साथ युद्ध हुआ था। थान=स्थान। नवसेरीखान= नौशेरी खाँ, छंद० १०२ मे "खान दौरा" देखिए। भिर्यो बल तें= जोर से भिड गये। पखरैत=पाखर वाले, झूले वाले, वे शूरवीर, सवार जिनके हाथी-घोडों पर झूले पडी हुई थीं। बखतर वारे= कवच वाले। एते मान=इस परिमाण का, ऐसा जबर्दस्त।

अर्थ—चिरजीवी शिवाजी तलवार लेकर अहमदनगर के स्थान पर नौशेरखाँ से बड़े ज़ोर के साथ भिड गये। पैदल सिपाही पैदल सिपाहियों से पखरैत पखरैतों से, (सवार सवारों से) कवचधारी कवचधारियों

से हल्ले के साथ जुट गये। भूषण कवि कहते हैं कि इतना अधिक घमासान युद्ध हुआ कि इसमें यह मालूम नहीं पडता था कि किस सेना से कौन योद्धा आया है, क्योंकि उन सबके ही वेष समान थे। वहाँ महाराज शिवाजी के बाँके वीर हुकार मारते हुए या खदेडते हुए और मीर लोग भागते हुए पहचाने जाते थे (अर्थात् ललकार देने वाले शिवाजी के वीर सैनिक थे और भागने वाले मुसलमान थे)।

विवरण—शिवाजी और नौशेरखाँ की सेनाएँ समवेष होने से परस्पर मिल गई थी पर हुंकारने से शिवाजी के वीरों का पता चल जाता था और भागने से मीर लोग पहचाने जाते थे।

पिहित

लक्षण—दोहा

परके मन की जान गति, ताको देत जनाय।
कछू क्रिया करि कहत हैं, पिहित ताहि कविराय॥३०९॥

अर्थ—दूसरे के मन की बात को जानकर जहाँ किसी क्रिया द्वारा उस पर प्रकट किया जाय वहाँ कवि लोग पिहित अलकार कहते हैं, अर्थात् आकार अथवा चेष्टा को देखकर जहाँ किसी के मन की बात जान ली जाय और फिर कुछ ऐसी क्रिया की जाय जिससे यह लक्षित हो जाय कि क्रिया करने वाले ने बात जानली है, वहाँ पिहित अलंकार होता है।

उदाहरण—दोहा

गैर मिसल ठाढ़ौ सिवा, अन्तरजामी नाम।
प्रकट करी रिस, साह को, सरजा करि न सलाम॥३१०॥

शब्दार्थ—गैर मिसल=अनुचित स्थान पर। रिस=रोष, क्रोध।

अर्थ—अन्तर्यामी नाम वाले शिवाजी अनुचित स्थान पर खडे किये गये (किन्तु अतर्यामी होने के कारण शिवाजी ने बादशाह के इस नीच भाव को ताड लिया) इस पर बादशाह को सलाम न करके उस वीर केसरी ने अपना क्रोध प्रकट कर दिया।

विवरण—यहाँ औरंगजेब को सलाम न करके शिवाजी ने यह बतला दिया कि अनुचित स्थान पर खड़ा कराने का भाव मैं समझ गया हूँ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

आनि मिल्यो अरि यों गह्यो, चखन चकत्ता चाव।
साहितनै सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥३११॥

शब्दार्थ—चखन=(सं० चक्षु) नेत्रों में। चाव=आनन्द।

अर्थ—'शत्रु आकर मिला' यह देखकर, औरंगज़ेब के नेत्रों में प्रसन्नता झलकने लगी। परन्तु शाहजी के पुत्र शिवाजी ने (उसकी इस प्रसन्नता को जान) अपनी मूछों पर ताव दिया (अर्थात् मूछों पर ताव देकर यह सूचित किया कि मैं तेरी चाल में नहीं आने का)।

विवरण—यहाँ शिवाजी ने औरंगजेब के मन की प्रसन्नता का ज्ञान मूछों पर ताव देकर उसे जताया है।

प्रश्नोत्तर

लक्षण—दोहा

कोऊ बूझै बात कछु, कोऊ उत्तर देत।
प्रश्नोत्तर ताको कहत, भूपन सुकवि सचेत ॥३१२॥

अर्थ—कोई कुछ बात पूछे और कोई उसका उत्तर दे, श्रेष्ठ कवि उसे प्रश्नोत्तर अलंकार कहते हैं। अर्थात् एक व्यक्ति प्रश्न करे और दूसरा उसका उत्तर दे, इस प्रकार प्रश्नोत्तर के रूप में किसी बात का जहाँ वर्णन किया जाय वहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

आगन सों भनि भूपन यों कहै खान खवास कहा सिख दैहो।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ ॥

एदिल की सभा बोल उठी यों सलाह करो ऽब कहाँ भजि जैहौ ।
लीन्हो कहा लरिकै अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ ॥३१३॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सभा में खवासखाँ लोगों से कहने लगा कि तुम क्या सलाह देते हो ? सरजा राजा शिवाजी देशों के देश लेता हुआ आ रहा है, उससे मेल करोगे, लडोगे या अथवा भाग जाओगे ? (खवासखाँ की बातें सुनकर) आदिलशाह की सभा के आदमी इस प्रकार बोल उठे कि अब मेल ही करलो (यही अच्छा है), भला भाग कर कहाँ जाओगे ? और उससे लडकर अफजलखाँ ने क्या पाया ? और तुम भी अब लड कर क्या ले लोगे ?

विवरण—यहाँ पहले खवासखाँ ने प्रश्न किया और सभा ने उत्तर दिया । इस प्रश्नोत्तर के रूप मे कवि ने एदिलशाह की सभा के निर्णय का वर्णन किया है, अत प्रश्नोत्तर अलकार है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

को दाता, को रन चढ़ो, को जग पालनहार ? ।
कवि भूपन उत्तर दियो, सिव नृप हरि अवतार ॥३१४॥

अर्थ—दाता कौन है, कौन लडाई पर चढता है, और कौन ससार को पालने वाला है । भूषण कवि उत्तर देते हैं, शिव, राजा और विष्णु का अवतार—अर्थात् दाता शिव है, लडाई पर राजा चढते है, और ससार की पालना विष्णु का अवतार करता है ।

अथवा दाता कौन है, किसने युद्ध के लिए चढाई की है, और ससार की पालना कौन करता है, भूषण इन सब प्रश्नों का (एक) उत्तर देते है विष्णु के अवतार महाराज शिवाजी—अर्थात् शिवाजी ही दानी है, वही युद्ध के लिए चढाई करते हैं, और वही ससार को पालने वाले है ।

तीसरा उदाहरण—छप्पय

कौन करै वस वस्तु कौन इहि लोक बड़ो अति ?
को साहस को सिंधु कौन रज-लाज धरे मति ॥

को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि ?
अष्टसिद्धि नव-निद्धि देत, माँगे को सो कहि ॥
जग बूझत उत्तर देत इमि, कवि भूषन कवि-कुल-सचिव ।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनन्द मकरन्द सिव' ॥३१५॥

शब्दार्थ—दच्छिन=दक्षिण, चतुर । रज-लाज=रजपूती लाज । सचिव=मंत्री ।

अर्थ—दुनियाँ के लोग पूछते हैं कि सब वस्तुओं को कौन वश में करता है, इस ससार मे कौन बड़ा है, साहस का समुद्र कौन है, और रजपूती लाज का किसको विचार है, चक्रवर्ती अथवा चकवे को सुख देने वाला कौन है, सब सुमनों (सहृदयों, सज्जनों के मनों) में कौन बसता है, याचकों को माँगने पर अष्टसिद्धि और नवनिधि कौन देता है । कविकुल के मन्त्री (प्रतिनिधि) भूषण कवि इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर देते है, कि इन सब कामों के करने वाले दक्षिणाधीश, वीरकेसरी, शाहजी के पुत्र और माल मकरन्द के पौत्र शिवाजी हैं, अर्थात् शिवाजी ही सब वस्तुओ को वश में करने वाले हैं, वे ही ससार में सबसे बड़े हैं, वे ही साहस के समुद्र हैं, उन्हें ही रजपूती लाज का विचार है, वे ही चक्रवर्त्ती को सुख देने वाले है, अथवा सूर्यकुल के होने से चकवा-चकवी को सुख देने वाले है, वे ही सब सज्जनो के मन मे बसते हैं और वे ही अष्टसिद्धि नवनिधि देते हैं ।

पद संख्या ३१४ की तरह इस पद के भी अन्तिम पंक्ति के शब्दो को अलग अलग कर इन सब प्रश्नो का दूसरा उत्तर भी दिया जाता है ।

१ वस्तुओं को कौन वश में करता है—दक्षिण (चतुर) । २. ससार में कौन बड़े हैं ?—नरेश । ३ साहस का समुद्र (अत्यन्त साहसी) कौन है ?—सरजा (सिंह) । ४. रजपूती लाज को कौन मस्तक में धारण करता है ?—सुभट । ५. (चकवा) चक्रवर्ती को कौन सुख

देता है ?—साहिपुत्र (ज्येष्ठ पुत्र) ६ सब सुमनों (पुष्पों) में कौन बसता है—मकरंद (पुष्परस)। ७ अष्ट सिद्धि और नवनिधि देने वाला कौन है ?—शिव।

व्याजोक्ति

लक्षण—दोहा

आन हेतु सों आपनो, जहाँ छिपावै रूप।
व्याज उकति तासों कहत, भूषन सुकवि अनूप ॥३१६॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य हेतु (बहाने) से अपना रूप या हाल प्रकट हो जाने पर छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याजोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यो हमही दुनियाँ ते उदास भए हैं ॥३१७॥

शब्दार्थ—जितेक=जितने भी। दच्छिन-जेय-सिसौदिया=दक्षिण जीतने वाला, सिसौदिया-वंशज शिवाजी। हाल ठए है=हालत की है।

अर्थ—जितने भी बादशाहों के अमीर उमराव थे उन सब को सरजा राजा शिवाजी ने लूट लिया। भूषण कवि कहते हैं कि वे सब निर्धन होकर फकीर बन कर देश विदेश में भटकने लगे। उनकी ऐसी हालत देखकर लोग उनसे पूछने लगे कि 'क्या दक्षिण को जीतने वाले सिसौदिया-वंशज शिवाजी ने तुम्हारी यह हालत की है ?' इस बात को सुन कर क्रोधित होकर वे कहते हैं कि हम स्वयं ही संसार से विरक्त हो गये हैं (शिवाजी के भय से हमारी यह हालत नहीं हुई)

विवरण—यहाँ अपने फकीर होने का असली भेद खुल जाने पर उसे वैराग्य के बहाने से छिपाया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिवा बैर औरँग बदन, लगी रहै नित आहि ।
कवि भूषन बूझे सदा, कहै देत दुख साहि ॥३१८॥

शब्दार्थ—बदन = मुँह । आहि = आह । साहि=बादशाहत, राज्य ।

अर्थ—शिवाजी से शत्रुता होने के कारण औरंगज़ेब के मुख से सदा 'आह' निकलती रहती है । भूषण कवि कहते हैं कि पूछने पर वह कहता है कि बादशाहत का कार्य-भार दुख देता है, अतः आह निकलती है ।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब ने अपनी 'आह' के असली कारण के प्रकट होने पर उसको राज्य-झंझट कह कर छिपाया है ।

लोकोक्ति एवं छेकोक्ति

लक्षण—दोहा

कहनावति जो लोक की, लोक उकति सो जान ।
जहाँ कहत उपमान है, छेक उकति तेहि मान ॥३१९॥

शब्दार्थ—लोक मे प्रचलित कहावत का नाम लोकोक्ति है ।

अर्थ—जहाँ (काव्य में) लोकोक्ति आये वहाँ लोकोक्ति अलकार होता है और जहाँ इसी लोकोक्ति को उपमान-वाक्य की भाँति (पहले कही हुई बात के लिए) कहा जाय वहाँ छेकोक्ति अलकार माना जाता है ।

लोकोक्ति का उदाहरण—दोहा

सिव सरजा की सुधि करौ, भलो न कीन्हौ पीव ।
सूबा ह्वै दच्छिन चले, धरे जात कित जीव ॥३२०॥

शब्दार्थ—पीव = प्रियतम पति । सूबा = सूबेदार ।

अर्थ—(यहाँ शत्रु स्त्रियाँ अपने अपने पतियों से कहती हैं कि) हे प्रियतम ! सरजा राजा शिवाजी को तो याद करो (वह कितना प्रबल है); आप जो दक्षिण के सूबेदार बनकर जाते हैं, यह आपने अच्छा नहीं किया ।

भला अपने प्राण कहाँ रखे जाते हैं—अर्थात् दक्षिण जाने पर आपके प्राण नहीं बचेंगे।

विवरण—यहाँ "धरे जात कित जीव" यह कहावत कथन की गई है, पर यह उदाहरण अच्छा नहीं, क्योंकि यह कोई अच्छी प्रसिद्ध लोकोक्ति नहीं है।

छेकोक्ति

उदाहरण—दोहा

जे सोहात सिवराज को, ते कवित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल ॥३२१॥

अर्थ—भगवान पर जो पुष्प चढ़ते हैं वे ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, ऐसे ही शिवाजी को जो कवित्त अच्छे लगते हैं वे ही वास्तव में अत्यन्त रसीले हैं, (अन्य नहीं)।

विवरण—यहाँ भी 'जो परमेश्वर पै चढ़ै, तेई आछे फूल' यह लोकोक्ति कही गई है और यह पूर्व कथित 'ज सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल' के उपमान रूप में कही गई है, अतः यहाँ छेकोक्ति है।

दूसरा उदाहरण—किरीट सवैया *

औरंग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्याँ ते सिधावै सोऊ बिनु कप्पर।
दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयन्द को झप्पर॥
सासताखाँ सग वे हठि हारे जे साहब सातएँ ठीक भुवप्पर।
ये अब सूबहु आवैं सिवा पर कालिह के जोगी कलीदे को खप्पर॥

शब्दार्थ—सिधावै = जावे। बिनु कप्पर = बिना कपड़े, नंगा। भार = बोझा, उत्तरदायित्व, काम। बहादुर खाँ—यह गुजरात का सूबेदार था, इसे 'खाँजहाँ' का खिताब मिला था। सलहेरि के युद्ध में जब मुसलमानों का पूर्ण पराजय हुआ तब औरंगजेब

* इस सवैये में आठ भगण (ऽ।।) होते हैं।

ने महावत खाँ और शाहजादा मुअज्जम को वापिस बुला लिया, और इसे दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। मराठों से लड़ने की इसकी हिम्मत न होती थी, इसलिए इसने युद्ध बंद कर दिया और भीमा नदी के किनारे पेड़गाँव में छावनी डाल कर रहने लगा। यहीं इसने एक किला बनाया जिसका नाम बहादुरगढ़ रक्खा। छागो=बकरा। झप्पर = थप्पड़, तमाचा। भुवप्पर = भूमि पर। साहब सातएँ ठीक भुवप्पर = जो लोग ठीक सातवें आसमान पर थे, बहुत अभिमानी थे। कालिह = कल। कलींदे = तरबूज। खप्पर = भिक्षा माँगने का पात्र।

अर्थ—यदि औरंगज़ेब स्वयं दक्षिण पर चढ़ाई करके आवे तो उसे भी यहाँ से बिना कपड़े के ही अर्थात् अपना सब कुछ गवाँ कर लौटना पड़ेगा। तिस पर भी उसने बहादुरखाँ को युद्ध (चढ़ाई) का भार देकर(दक्षिण में) लड़ने भेज दिया, भला! बकरा हाथी की चपेट कैसे सह सकता है (अर्थात् शिवाजी के हमले को बहादुरखाँ कैसे सह सकता है) शाइस्ताखाँ के साथ-साथ वे भी तो हठकर के हार गए जो कि सातवें आसमान पर थे अर्थात् जो बड़े अभिमानी थे। अब ये सूबेदार (बहादुरखाँ) शिवाजी पर चढ़ाई करने आ रहे हैं (भला ये शिवाजी का क्या कर सकेंगे?) यह तो वह बात हुई कि 'कल का जोगी और कलींदे का खप्पर' अर्थात् कल ही योगी हुए और तरबूज़ों का खप्पर ले लिया! अर्थात् जिस तरह ऐसे योगी से योग नहीं सधता वैसे ही ये नये सूबेदार कुछ न कर सकेंगे।

विवरण—यहाँ भी 'कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर' यह कहावत उपमान वाक्यरूप से और साभिप्राय कथन की गई है अतः छेकोक्ति है। लोकोक्ति में और छेकोक्ति मे यह भेद है कि लोकोक्ति

में केवल 'कहावत' का कथन मात्र होता है और छेकोक्ति में 'कहावत' साभिप्राय एव उपमान वाक्य रूप कथित होती है।

वक्रोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ श्लेष सों काकु सों, अरथ लगावै और।
बक्र उकति ताको कहत, भूषन कवि सिरमौर ॥३२३॥

शब्दार्थ—काकु=कठध्वनि विशेष जिससे शब्दों का दूसरा अभिप्राय लिया जाय।

अर्थ—जहाँ श्लिष्ट शब्द होने के कारण या काकु (कण्ठध्वनि) से कथन का अर्थ कुछ और ही लगाया जाय वहाँ श्रेष्ठकवि वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—श्लेष-वक्रोक्ति में श्लिष्ट शब्द होते है, जिनके अर्थ के हेर-फेर से वक्रोक्ति होती है। परन्तु काकु वक्रोक्ति में कठध्वनि के कारण अर्थ में हेर फेर होता है, और कठध्वनि कान का विषय होने के कारण यह शुद्ध शब्दालकार है। कई प्रमुख अलकार-शास्त्रियों ने 'काकु वक्रोक्ति' को शब्दालङ्कारों में लिखा है। किन्तु भूषण एव अन्य कई कवियों ने इसका अर्थालकारों में ही वर्णन किया है।

श्लेप से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै तेरे वैर वैरिन को कौतुक सों,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचिहौ ?
सरजा के डर हम आए इतै भाजि, तब,
सिंह सों डराय याहू ठौर ते उकचिहौ ॥
भूषन भनत, वै कहैं कि हम सिव कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रुचि हौ ॥
सिव जापै रूठै तौ निपट कठिनाई,
तुम बैर त्रिपुरारि के त्रिलोक में न बचिहौ ॥३२४॥

शब्दार्थ—कौतुक=आश्चर्य, दिल्लगी। तचि=संतप्त, दुखी, व्याकुल। उकचि=उठ भागना, अलग होना। बात रचि=बात बनाकर। त्रिपुरारि=महादेव, त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु। यह राक्षस राजा बलि का पुत्र था। तीनों लोकों में इसने अपना निवासस्थान बनाया हुआ था। इसलिए किसी को पता ही न चलता था कि वह किस समय किस लोक मे है। अतः शिवजी ने एक साथ तीन बाणों को छोडकर इसे मारा था।

अर्थ—हे साहजी के पुत्र शिवाजी! तुम्हारे साथ वैर करने के कारण शत्रुओं को (व्याकुल देखकर लोग) आश्चर्य से (अथवा दिल्लगी के लिए) पूछते हैं कि तुम ऐसे व्याकुल क्यों हो? (वे इसका उत्तर देते हैं कि) हम 'सरजा' के भय से इधर को भाग कर चले आये हैं। (सरजा से उनका अर्थ शिवाजी था, पर श्लेष से सरजा का अर्थ 'सिंह' मान वे कहने लगे कि) सिंह के भय से तो तुम अब इस स्थान से भी उठ भागोगे। भूषण कवि कहते हैं कि इस बात पर शत्रु लोग कहते हैं कि हम तो शिव (शिवाजी) की बात कहते हैं (सिंह नहीं), तुम तो चतुराई से और ही बात बनाकर कहते हो। इस पर उन्होंने फिर कहा कि शिवजी जिस पर नाराज हो जाँय उसे तो बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। त्रिपुरारि (महादेव) से शत्रुता करके तो तुम त्रिलोकी में भी न बच पाओगे।

विवरण—यहाँ 'सरजा' और 'शिव' इन दोनों श्लिष्ट शब्दों से वक्ता के अभिप्रेत अर्थ को न लेकर अपितु क्रमशः 'सिंह' और 'महादेव' अर्थ लेकर शत्रुओं की हँसी उडाई गई है, अतः वक्रोक्ति अलंकार है।

काकु से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

सासताखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है।

भूषन भनत जौ लौं भेजौ उत औरै तिन,
वे ही काज बरजोर कटक कटायो है।
जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि तासों,
अवरँगसाहि इमि कहै मन भायो है।
मुलुक लुटायो तौ लुटायो, कहा भयो, तन
आपनो बचायो महाकाज करि आयो है ॥३२५॥

शब्दार्थ—सासताखाँ=शाइस्ताखाँ,देखो छद न.३५। गॅवायो=खोया। जौ लौं=जब तक। वे ही काज=व्यर्थ ही। बरजोर=प्रबल। कटक = सेना।

अर्थ—(औरंगजेब ने) पहले पहल शाइस्ताखाँ को दक्षिण में भेजा परन्तु उसने वहाँ जाकर (कुछ नहीं किया, उलटा) अपने पुत्र (अब्दुल फतेखाँ) के साथ साथ अपना हाथ गँवा दिया (शाइस्ताखाँ का अंगूठा शिवाजी ने काट डाला था)। भूषण कवि कहते हैं कि जब तक और सेना (शाइस्ताखाँ की मदद को)भेजी गई तब तक उसने इधर दक्षिण में सारी प्रबल सेना व्यर्थ ही कटवा डाली। जो भी सूबेदार शिवाजी से हारकर औरंगजेब के पास जाता है, उससे वह इस तरह मनभाई बात कहता है कि यदि समस्त देश लुटा दिया तो उस लुटाने से क्या हुआ ? (अर्थात् कुछ नहीं हुआ) तुमने अपने शरीर को बचा लिया यही बहुत बडा काम तुम कर आये हो।

विवरण—यहाँ शिवाजी से परास्त एव लूटे गये सूबेदारों के प्रति औरगजेब ने यह कहा है 'यदि देश को लुटा दिया वा हार गये तो क्या हुआ ? तुम अपना शरीर तो सही-सलामत ले आये यही बड़ा काम किया', किन्तु इस का तात्पर्य बिलकुल उलटा है। 'काकु' से यही कथन है कि तुम्हें लज्जा नहीं आई कि प्राण बचाने के लिये हार कर चले आये।

दूसरा उदाहरण—दोहा

करि मुहीम आए कहत, हजरत मनसब दैन।
सिव सरजा सो जग जुरि, ऐहैं बचिकै है न॥ ३२६॥

शब्दार्थ—मुहीम=चढ़ाई, युद्ध। हजरत=श्रीमान् (औरंगजेब) मनसब=उच्चपद।

अर्थ—युद्ध कर आने के बाद श्रीमान मनसब देने को कहते हैं। पर वीर-केसरी शिवाजी से युद्ध करके बचकर आयँगे तब न !

विवरण—यहाँ युद्ध करके आने के बाद 'हजरत मनसब देने कहते हैं' इसका काकु से यही तात्पर्य होता है कि 'हजरत मनसब देना नही चाहते' क्योंकि शिवाजी से युद्ध कर के वापिस जीवित लौटना असम्भव है, तब मनसब कैसा ?

स्वभावोक्ति

लक्षण—दोहा

साँचो तैसो बरनिए, जैसो जाति स्वभाव।
ताहि सुभावोकति कहत, भूषन जे कविराव॥३२७॥

अर्थ—जैसा जिसका जातीय स्वभाव हो उसका जहाँ वैसा ही ठीक ठीक वर्णन किया जाय वहाँ कविराज स्वभावोक्ति अलंकार कहते है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की,
सम्पत्ति लुटाइबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिवसाहि के वदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥
भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सो लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा दृगन के उछाह छलकत है॥३२८॥

शब्दार्थ—ललकत हैं=लालायित होता है, उमग से भर जाता है। खलकत=खौल उठता है, जोश में आ जाता है।

अर्थ—दान देने के समय ब्राह्मणों को देखकर सुमेरु पर्वत तथा कुबेर की दौलत को भी लुटाने के लिए शिवाजी का हृदय लालायित हो उठता है, उमगित हो उठता है। और शाहजी के पुत्र शिवाजी के बदन पर श्री महादेवजी की कथाओं में (कथाओं को सुनने में) बड़ा प्रेम झलकने लगता है। भूषण कवि कहते हैं कि ससार भर के हिन्दुओं के उद्धार के लिए और तुर्कों के नाश के लिए वह वीर खौल उठता है, (जोश में आजाता है)। बादशाहों से युद्ध करने की बात चलने पर ही वीर-केसरी शिवाजी के नेत्रों में उत्साह उमड़ आता है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के दान, भक्तिभाव, वीर भाव आदि का स्वाभाविक वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं ताही,
ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।
कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन जहत है॥
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे बैठे खरे खर हम,
को हैं कहा करत यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि,
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं॥३२९॥

शब्दार्थ—चहत है=देखते हैं। जहत=(स०जुहोति) छोड़ते है। पौढ़े=लेटे हुए। ज्ञान न गहत है=सुध नहीं ग्रहण करते, सुध बुध मारी गई है।

अर्थ—किसी के कहने सुनने पर जिस ओर देखने लगते हैं, उसी

और एकटक तीन चार घड़ी तक देखते रहते हैं। कहने पर ही बात करते हैं, कहने सुनने पर ही खाते पीते हैं, और भूषण कहते है कि वे सदा लंबी लंबी साँसे छोड़ते रहते है। लेटे हैं तो लेटे ही हैं, बैठे हैं तो बैठे ही है, और खड़े हैं तो खड़े ही है, हम कौन हैं क्या करते हैं इस प्रकार का उन्हें ज्ञान नहीं है। हे शाहजी के सुपुत्र शिवाजी, तेरी शत्रुता के कारण इसी प्रकार सब बादशाह रात दिन सोचते रहते हैं।

विवरण—शिवाजी की शत्रुता के कारण चिंतित बादशाहों की अवस्था का स्वाभाविक चित्र कवि ने यहाँ खींच दिखाया है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उमड़ि कुडाल मैं खवास खान आए भनि,
भूषन त्यो धाए सिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख वीर धीर जन के॥
एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के॥३३०॥

शब्दार्थ—कुडाल=सावतवाड़ी से १३ मील उत्तर काली नदी पर स्थित है। जिस समय शिवाजी ने कुडाल पर चढ़ाई की, उस समय खवासखाँ एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी को परास्त करने आया। नवंबर १६६४ ई० में शिवाजी ने खवासखाँ को हरा कर भगा दिया। इसके बाद बीजापुर के मददगार तथा कुडाल के जागीरदार लक्ष्मण सावंत देसाई से लड़ाई हुई। सावंत जान लेकर भाग गया। कुडाल पर शिवाजी का अधिकार होगया। पूरे मन के=बड़े उत्साह से। हय=घोड़े। घोर=जोर से। तरराने=खड़ी हो गई। सम्हरि=

सँभलो। मार=लड़ाई,युद्ध। बेसम्हार=बेसुध। कुंडन=लोहे का टोप। जीरन=जिरह बख्तर,कवच। खड़ाका=तलवार बजने की आवाज।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि ज्योंही (बीजापुर का सेनापति) खवासखाँ (सेना सहित) कुडाल स्थान पर चढकर आया, त्योंही शिवाजी ने उस पर पूर्ण उत्साह से धावा बोल दिया। तब मरदाने (युद्ध के मारू) बाजे सुन सुन कर घोड़े जोर से हिनहिनाने लगे और धैर्यशील वीर पुरुषों के मुखों पर मूछें तन गईं—खडी हो गईं। कोई मारो मारो कहते थे, कोई सँभलो सँभलो कहने लगे और शरीर की सुध बुध भूलकर लड़ाई के बीच में म्लेच्छ गिरने लगे। जगह-जगह पर सिर के टोपों पर चोट पडने से कटाक कटाक शब्द होता था और जिरह बख्तर पर तलवारों के पडने से खड़ाक खडाक की आवाज आती थी।

विवरण—यहाँ युद्ध का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

चौथा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आगे आगे तरुन तरायले चलत चले,
तिनके अमोद मद मद मोद सकसै।
अड़दार बड़े गडदारन के हाँके सुनि,
अड़े गैर-गैर माहिं रोस रस अकसै।
तुडनाय सुनि गरजत गुजरत भौंर,
भूषन भनत तेऊ महामद छकसै।
कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कविराजन को बकसै ॥३३१॥

शब्दार्थ—तरायले=तरल, चञ्चल, चपल। अमोद=आमोद, सुगंधि। मोद=आह्लाद। सकसै=फैलता है। अड़दार=अडियल। गडदार=वे नौकर जो मस्त हाथी को कभी रिझाकर और कभी डंडे से मार कर ठीक करते है। हाँके=हाँक, टिचकार,

पशुओं को चलाने की एक आवाज। गैर = गैल, राह, रास्ता। रोस रस = क्रोध। अकसे = बिगड़े। तुंडनाय = नरसिंहा, एक प्रकार का बाजा, तुरही अथवा (तुंडनाद) सूँड से निकला हुआ शब्द। मद छकसै = मद छके, मतवाले। बकसै=देते हैं।

अर्थ—चलते समय जो नौजवान और चंचल हाथी (सबसे) आगे आगे चलते है, और जिनके मद की मद मंद सुगध से आल्हाद फैलता है, (मदमस्त होने के कारण) जो बड़े अड़ियल हैं, और गडदारों (साँटे दारों) की हाँकों का सुनकर क्रोध से बिगड़े हुए मार्ग मे (स्थान स्थान पर) अड़ जाते हैं, जो नरसिंहे की आवाज़ सुनकर गर्जे उठते हैं तथा जिनके मद के ऊपर भौंरे गूँज रहे है, अथवा जिनके (सूँड से निकली) गरजने की आवाज़ सुनकर भौंरे गूँजने लगते हैं, और जो बड़े मद से छके हुए हैं, अर्थात् बड़े मदमस्त हैं, भूषण कहते है कि वैसे ही अनेक गजराज महाराज शिवाजी यश पाने के लिए कविराजों को देते हैं।

विवरण—यहाँ मदमस्त हाथियों का स्वाभाविक वर्णन है।

भाविक

लक्षण—दोहा

भयो, होनहारो अरथ, बरनत जहँ परतच्छ।
ताको भाविक कहत हैं, भूषन कवि मतिस्वच्छ॥३२२॥

शब्दार्थ—भयो = हुआ, गत, भूत। होन हारो = होने वाला, भविष्यत्। मतिस्वच्छ = निर्मल बुद्धि।

अर्थ—जहाँ भूत और भविष्यत् की घटनाएँ वर्तमान की तरह वर्णन की जायँ वहाँ निर्मल-बुद्धि पुरुष भाविक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अजौं भूतनाथ मुण्डमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।

भूषन भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन परी कठिन कराह है।
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम दिली-दल को सिपाह है।
नदी रन मंडल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रविमंडल रुहेलन की राह है ॥३३३॥

शब्दार्थ—अजौं = आज भी, अब भी। कुंजरन = हाथियों। कराह=पीडा प्रकट करने वाली आवाज, चिंग्घाड़। रनमंडल= रण भूमि। रुहेलनि=रुहेलखंड के रहने वाले लोग, पठान।

अर्थ—वीरकेसरी शिवाजी ने सलहेरि के पास दिल्ली की सेना के सिपाहियों का ऐसा कत्ले-आम किया कि आज भी (वहाँ से) भूतनाथ (श्री महादेवजी) मुण्डमाला लेते हुए बड़े आनन्दित होते हैं और भूत-प्रेत गणों को अब भी आहार लेने में बड़ा उत्साह है। भूषण कवि कहते हैं कि तलवारों से कटे हुए काले काले हाथी अब भी बड़े जोर जोर से कराह रहे हैं और युद्ध भूमि में आज भी रुहेलों के खून से निकली हुई नदी बह रही है और अब भी सूर्य मण्डल में रुहेलों का रास्ता है (जो वीर युद्ध में मरते हैं वे सूर्य-मंडल को भेद कर स्वर्ग को जाते हैं)।

विवरण—यहाँ सलहेरि के युद्ध में हुई भूतकालीन घटना का 'अजौं' इस पद से कवि ने वर्तमानवत् वर्णन किया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गज-घटा उमडी महा घन-घटा सी घोर,
भूतल सकल मदजल सो पटत है।
बेला छाँड़ि उछलत सातौं सिंधु-बारि,
मन मुदित महेस भग नाचत कढ़त है॥
भूषन बढ़त भौंसिला भुवाल को यों तेज,
जेतो सब बारहौ तरनि में बढ़त है।

सिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर,
आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है ॥२३४॥

शब्दार्थ—गजघटा = हाथियों का समूह। पटत है = पट जाता है, भर जाता है। वेला = समुद्र का किनारा। कढ़त है = निकलते हैं। बढ़त = बढ़ता है, फैलता है। बारहौ तरनि = बारहों सूर्य, प्रलयकाल में बारहों सूर्य एक साथ उदित होते हैं।

अर्थ—हाथियों का झुण्ड बादलों की बड़ी घनघोर घटा के समान उमड़कर समस्त पृथ्वी को अपने मदजल से पाट देता है, छा देता है। सातों समुद्रों का जल अपने अपने किनारों को—अपनी मर्यादा को—त्याग कर उछल रहा है और मन में अति प्रसन्न होकर श्री महादेव जी मार्ग में नाचते हुए तांडव नृत्य करते हुए निकलते हैं (महादेव सृष्टि के संहारक हैं, अतः प्रलय के चिह्न देख कर प्रसन्न होते हैं)। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी का तेज ऐसा बढ़ रहा है जैसा कि बारहों सूर्यों का तेज प्रकट होता है। इस भाँति जब उनकी सेना संसार पर चढ़ाई करती है तो तुर्कों के लिए प्रलय सी होती हुई दिखाई पड़ती है। (प्रलय के समय में मेघों का घोर वर्षा करना, समुद्र का मर्यादा त्यागना, और बारहों सूर्यों का एक समय ही प्रकट होना आदि बातें होती हैं, वे ही बातें शिवाजी की सेना चलने पर यहाँ प्रकट हुई हैं)।

विवरण—यहाँ भविष्य में होने वाली प्रलय का 'शिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है' इस पद से वर्तमान में प्रकट होना कथन किया गया है।

भाविक छवि

लक्षण—दोहा

जहाँ दूरस्थित वस्तु को, देखत बरनत कोय।
भूषन भूषन-राज भनि, भाविक छबि सो होय॥२३५॥

शब्दार्थ—दूरस्थित = दूर स्थान पर स्थित, दूर रक्खी हुई ।

अर्थ—जहाँ दूरस्थित (परोक्ष) वस्तु को भी प्रत्यक्ष देखने के समान वर्णन किया जाय वहाँ भूषन कवि भविक छवि अलंकार कहते है ।

उदाहरण—मालती सवैया

सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी ।
औरँग आपनि दुग्ग जमाति विलोकत तेरियै फौज दरेरी ॥
साहितनै सिवसाहि भई भनि भूषन यों तुव धाक घनेरी ।
रातहु द्योस दिलीस तकै तुव सैनिक सूरति सूरति घेरी ॥३३८॥

शब्दार्थ —सूबा=सूबेदार । केरी=की । तेरियै=तेरी ही । दरेरी=मर्दित,नष्ट भ्रष्ट की गई । द्योस=स० दिवस,दिन । तकै=देखता है । सूरति=शक्ल, सूरत शहर ।

अर्थ—प्रतिदिन मरांठों की फौज को देखकर औरंगजेब अपने सूबेदारों को भली भाँति सुसज्जित करके भेजता है, हे शिवाजी(फिर भी) वह तेरी सेना द्वारा अपने दुर्ग-समूहों को नष्ट-भ्रष्ट किया हुआ ही देखता है । भूषण कहते है कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी तुम्हारी इतनी अधिक धाक होगई है , तुम्हारा इतना आतंक छा गया है कि दिल्लीश्वर औरंगज़ेब रात-दिन सूरत शहर को घेरे हुए तुम्हारे सैनिकों की शक्लें देखा करता है ।

विवरण—यहाँ आगरे में बैठे हुए औरंगजेब का दूरस्थ सूरत नगर को रात-दिन शत्रुओं से घिरा हुआ देखना कथन किया है । अतः भाविक छवि अलंकार है ।

सूचना—अन्य कवियों ने इस अलङ्कार को भाविक अलंकार के ही अन्तर्गत माना है । परन्तु भूषण ने इसे भिन्न माना है । भाविक अलंकार में 'काल' विषयक वर्णन किया जाता है और इस में 'स्थान' विषयक वर्णन होता है ।

उदात्त

उदाहरण—दोहा

अति सम्पति वरनन जहाँ, तासौं कहत उदात।
कै आनै सु लखाइए, बड़ी आन की बात ॥२३७॥

शब्दार्थ—आनै=अन्य की, किसी व्यक्ति की। बड़ी आन=बड़ी शान, महत्व।

अर्थ—जहाँ अति सपत्ति (लोकोत्तर समृद्धि) का वर्णन हो अथवा किसी महान पुरुष के संसर्ग से किसी अन्य वस्तु का महत्व दिखाया जाय वहाँ उदात्त अलंकार होता है।

सूचना—उदात्त के उपर्युक्त लक्षण के अनुसार दो भेद हुए (१) जहाँ अत्यन्त सम्पत्ति का वर्णन हो (२) जहाँ महापुरुष के सम्बन्ध से किसी वस्तु को महान कहा जाय।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं,
बन्दीजन बारन असीस जसरत हैं।
भूषन बखानैं जरबाफ के सम्याने ताने,
झालरन मोतिन के झुण्ड झलरत हैं॥
महाराज सिवा के नेवाजे कविराज ऐसे,
साजि कै समाज तेहि ठौर बिहरत हैं।
लाल करैं प्रात तहाँ नीलमनि करै रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं ॥२३८॥

शब्दार्थ—मतंग=हाथी। दीसैं=दृष्टिगत होते हैं, दिखाई देते हैं। हीसैं=हिनहिनाते हैं। बारन=द्वारों पर। जसरत=यश मे रत, गुण-गान मे मग्न। झलरत=झूलते हैं, लटकते है। विहरत है॥ विहार करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, आनंद-मौज उड़ाते ।

अर्थ—द्वारों पर हाथी खड़े दिखाई देते हैं, आँगनों में घोड़े हिन-हिना रहे हैं, और बंदीजन दरवाजों पर खड़े आशीर्वाद दे रहे हैं, और यशोगान में मग्न हैं। भूषण कहते हैं, कि वहाँ कलाबत्तू के काम किये हुए शामियाने तने हैं और उनकी झालरों में मोतियों के झुंड लटक रहे हैं। इस प्रकार के साज सजाकर शिवाजी के कृपापात्र (शिवाजी से जिन्होंने दान पाया है वे) कविराज उस स्थान पर विचरते हैं जहाँ लालमणि (के प्रकाश से) प्रातःकाल होता है, और नीलमणि (की चमक) से रात्रि होती है, अर्थात् लालमणि की ललाई से उषाकाल होजाता है और नीलम की नीलिमा से रात की तरह अन्धकार छा जाता है। इस प्रकार (ऐश्वर्य पाकर) वे कवि वीर-केसरी शिवाजी की चर्चा किया करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के कृपापात्र कवियों की लोकोत्तर समृद्धि का वर्णन है, अतः प्रथम प्रकार का उदात्त अलंकार है।

दूसरे भेद का उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो,
गढ़-नाह के डरन कहैं खान यो बखान कै।
भूपन खुमान यह सो है जेहि पूना माहिं,
लाखन मैं सासताखाँ डारयो बिन मान कै॥
हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज,
झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।
वहै है सिवाजी जेहि भीम ह्वै अकेले मारयो,
अफजल-कीचक को कीच घमसान कै॥३३९॥

शब्दार्थ—खता = (अरबी) भूल, गलती। गढनाह = गढपति, शिवाजी। खान = पठान, प्रायः काबुली लोगों को खान कहते हैं, अथवा खाँजहाँ बहादुर जिसे औरंगजेब ने सन् १६७२ ई० में दक्षिण का गवर्नर नियत किया था। बिन मान = बेइज्जत।

द्रुपदी = द्रौपदी। प्रमान कै=प्रतिज्ञा करके। कीचक = राजा विराट का साला, जिसने द्रौपदी का सतीत्व नष्ट करना चाहा था, उसे भीम ने मार डाला था (महा-भारत विराट पर्व)। कीच घमसान कै = घोर युद्ध करके।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी के डर से डरे हुए खान (पठान आदि वा खाँजहाँ बहादुर) इस प्रकार कहते हैं कि मित्रो! आगे (दक्षिण में) न जाओ, धोखा न खाओ या भूल मत करो। यह वही गढ़पति चिरजीवी (शिवाजी) है जिन्होंने पूना में लाखों सिपाहियों के बीच में शाइस्ताखाँ की बेइज्जत कर डाला था और यह वही शिवाजी हैं, जिन्होंने भीम होकर अकेले ही हिन्दू-रूपी द्रौपदी की इज़्ज़त को बचाने के लिए प्रतिज्ञा करके विराट नगर (की भाँति दुर्ग) से बाहर निकल कर (भीमसेन ने कीचक को नगर के बाहर मारा था, इसी तरह शिवाजी ने भी अपने किले से बाहर निकल कर अफ़ज़लखाँ को मारा था) अफ-ज़लखाँ रूपी कीचक को घोर युद्ध करके मार डाला।

विवरण—यहाँ भीम की कीचक-वध विषयक वार्त्ता का शिवाजी द्वारा अफ़ज़लखाँ के मारे जाने रूप कार्य से सम्बन्ध जोडकर शिवाजी का महत्व प्रकट किया गया है अतः द्वितीय उदात्त अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

या पूना मैं मति टिकौ, खानबहादुर आय।
ह्याँई साइस्तखान को, दीन्ही सिवा सजाय ॥३४०॥

अर्थ—हे खाँजहाँबहादुर! इस पूना नगर में आकर तुम न ठहरो क्योंकि यहाँ ही शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को सजा दी थी।

विवरण—यहाँ शिवाजी के द्वारा शाइस्ताखाँ को दण्डित करने रूप महान कार्य के सम्बन्ध से पूना नगर को महत्व दिया गया है।

अत्युक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ सूरतादिकन की, अति अधिकाई होय।
ताहि कहत अतिउक्ति हैं, भूषन जे कवि लोय ॥३४१॥

शब्दार्थ—सूरतादिकन = सूरता (शूरता) आदि बातों की।

अर्थ—जहाँ वीरता आदि बातों का अत्यधिक वर्णन हो वहाँ कविजन अत्युक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस अलंकार में शूरता, दान-वीरता, सत्यवीरता, उदारता, आदि भावों का वर्णन होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज बेफिकिरि हैं।
भूलत झलमलात भूलैं जरबाफन की,
जकरे जँजीर जोर करत किरिरि हैं॥
भूपन भँवर भननात घननात घट,
पग झननात मानो घन रहे घिरि हैं।
जिन की गरज सुने दिग्गज बे-आब होत
मद ही के आब गरकाव होत गिरि हैं॥३४२॥

शब्दार्थ—बेफिकिरि=बेफिक्र, निश्चिंत। झूलैं=घोड़ों और हाथियों की पीठ पर ओढ़ाया जानेवाला कीमती कपड़ा। जरबाफ= सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा। जकरे = जकड़े हुए, बँधे हुए। किरिरि = कट कटा कर। बे-आब = निस्तेज, फीका। आब=(फा०) पानी। गरकाब=(फा०) गर्क+आब; पानी में डूबना।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी कवियों को ऐसे हाथी देते हैं कि जिन्हें पाकर वे निश्चिंत हो जाते हैं, उन्हें किसी

तरह का फिक्र नहीं रहता और जिन हाथियों पर कलाबत्तू के काम की चमचमाती झूलें झूलती रहती हैं,जो जंजीरों से बँधे हैं तथा कट कटा कर (छुड़ाने के लिए) बल लगाते हैं, जिन पर (मद-रस-लोभी) भौंरे सदा गुंजारते रहते हैं, जिनके घंटे बजते रहते हैं और पैरों में पड़ी जंजीरे और घंटियाँ ऐसी खनखनाती है, मानो बादल घिरे हुए (गरज रहे) हों और जिनके गर्जन को सुनकर दिग्गज निस्तेज हो जाते हैं और जिनके मदजल मे पहाड़ भी डूब जाते हैं।

विवरण—यहाँ महाराज शिवाजी के दान की अत्युक्ति है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो।
भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो वहि खरीक सो॥
चन्दकर किंजलक चाँदनी पराग, उड़
वृन्द मकरन्द वुन्द पुंज के सरीक सो।
कन्द सम कयलास नाक-गंग नाल तेरे,
जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो॥२४३॥

शब्दार्थ—जगदेव = पँवार-वंशीय राजपूतों में एक प्रसिद्ध एवं तेजस्वी राजा। इनका नाम राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि देशों में वीरता तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध है। जजाति = ययाति एक प्रतापी राजा, जिनके पुत्र यदु के नाम से यादव वंश चला। अम्बरीक=अम्बरीष एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे। पुराणों में ये परम वैष्णव प्रसिद्ध हैं। खरीक = तिनका। किंजलक = किञ्जल्क, कमल फूल के बीच की बहुत बारीक पीली पीली सींकें। पराग = पुष्प-धूलि। उड़वृन्द=तारागण। पुंज=समूह। सरीक सो=शरीक

हुआ हुआ सा, सदृश। कंद = जड़। नाक-गंग = आकाश गंगा पुंडरीक = श्वेत कमल। चंचरीक = भौंरा। नाल = कमल के फूल की डंडी।

अर्थ—आजकल के इस समय में (जगत् में) हे शिवाजी! जगदेव, जनक ययाति और अंबरीष के समान (यशस्वी) तू ही है। भूषण कहते हैं कि तेरे दान के संकल्प-जल के समुद्र में तिनके के समान गुणियों का दारिद्र्य बह गया। चन्द्रमा की किरणें तेरे यशरूपी श्वेत कमल का केसर है, चाँदनी उसका पराग है, और तारागण मकरंद की बूँदों के समूह के समान हैं। कैलाश पर्वत उसकी जड़ है, आकाशगंगा उसकी नाल (डंडी) है और आकाश (उस पर मंडराने वाले) भौंरे के समान है। अर्थात् यश इतना विस्तीर्ण है कि आकाश उसी के विस्तार में आ जाता है।

विवरण—यहाँ दान और यश की अत्युक्ति है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज के, जेते सहज सुभाय।
औरन को अति-उक्ति से, भूषन कहत बनाय ॥३४४॥

अर्थ—महाराज शिवाजी की जो बातें स्वाभाविक हैं उन्हीं को भूषण कवि अन्य राजाओं के लिए अत्युक्ति के समान वर्णन करते हैं। अर्थात् जो गुण शिवाजी में स्वाभाविक हैं, यदि उन गुणों का किसी दूसरे में होना वर्णन किया जाय तो उसे अत्युक्ति ही समझनी चाहिये।

विवरण—यहाँ शिवाजी के अलौकिक गुणों की अत्युक्ति है।

निरुक्ति

लक्षण—दोहा

नामन को निज बुद्धि सों, कहिए अरथ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं, भूषन जे कबिराय ॥३४५॥

अर्थ—जहाँ अपनी बुद्धि से नामों (संज्ञा शब्दों) का कोई दूसरा ही अर्थ बनाकर कहा जाय वहाँ कवि लोग निरुक्ति अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण—दोहा

कवि गन को दारिद-द्विरद, याही दल्यो अमान ।
याते श्री सिवराज को, सरजा कहत जहान ॥३४६॥

शब्दार्थ—दारिद-द्विरद=दारिद्रय-रूपी हाथी । दल्यो=दलन किया, नाश किया । अमान = बहुत ।

अर्थ—कवि लोगों के दारिद्र्यरूपी महान हाथी को इन्होंने नष्ट कर दिया, इसीलिये महाराज शिवाजी को संसार सरजा (सिंह) कहता है ।

विवरण—वस्तुतः सरजा शिवाजी की उपाधि है । परन्तु कवियों के दारिद्र्यरूपी हाथी को मारने से उन्हें ससार सरजा (सिह) कहता है, यह 'सरजा' शब्द की मनमानी किन्तु युक्ति-युक्त व्युत्पत्ति है, इसलिए यहाँ निरुक्ति अलंकार है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

हर्‌यो रूप इन मदन को, याते भो सिव नाम ।
लियो विरद सरजा सबल, अरि-गज दलि सग्राम ॥३४७॥

शब्दार्थ—मदन = कामदेव ।

अर्थ—इन्होंने कामदेव का रूप हर लिया है अर्थात् कामदेव की सुंदरता को इन्होंने छीन लिया है अतः इनका नाम शिव (शिवाजी) पड़ा (क्योंकि शिवजी ने भी मदन का रूप उसे भस्म करके हर लिया था)और शत्रु रूपी हाथियों को दलन कर के इन्होंने सरजा (सिह) की सबल उपाधि पाई ।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'शिव' नाम प्रकृत है । परन्तु मदन के रूप को नष्ट करने से उनका नाम 'शिव' हुआ यह अर्थ कल्पित किया गया है । इसी प्रकार शत्रुरूपी हाथी मारने से 'सरजा' पदवी मिली, यह भी कल्पित अर्थ है, वास्तव मे 'सरजा' शिवाजी की उपाधि है ।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आजु सिवराज महाराज एक तुही सर-
नागत जनन को दिवैया अभै-दान को।
फैली महिमंडल बड़ाई चहुँ ओर ताते,
कहिए कहाँ लौं ऐसे वड़े परिमान को॥
निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत वीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊखान को।
'दिल दरियाव' क्यो न कहैं कविराव तोहिं,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को॥३४८॥

शब्दार्थ—सरनागत=शरण में आये हुए। गभीर=गहरा। भाऊ खान=भाऊसिंह, छन्द नं० ३५ देखो। दरियाव=समुद्र। दिलदरियाव=दरयादिल, उदार।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी! आजकल एक आप ही शरणागत लोगों को अभयदान देने वाले हैं। इसलिए आपकी कीर्ति समस्त संसार में चारो ओर ऐसी फैल गई है कि उसके परिमाण को (विस्तार को) कोई कहाँ तक वर्णन कर सकता है। भाऊसिंह जैसे वीर योद्धाओं को आप सदा रण देते हो—युद्ध में लड़कर उन्हें मार डालते हो और आप बडे गम्भीर हो इसलिए कोई भी वीर आपका उल्लघन नहीं कर सकता (अर्थात् आपकी बात कोई नहीं टाल सकता)। फिर समस्त कवि आपको दरियादिल (उदारचेता) क्यों न कहें जबकि उसमें समस्त ससार का पानिप भी (जल तथा इज्जत) आकर जमा होता है। (अर्थात् शिवाजी समुद्र की तरह अपरिमेय और गंभीर हैं और सब का पानी रखने वाले हैं इसलिये कवि लोग उन्हें दिलदरियाव क्यों न कहें)।

विवरण—यहाँ कवि की उक्ति शिवाजी के प्रति है कि आप में ससार का पानी आकर ठहरने से ही आप को दिलदरियाव

क्यों न कहा जाय। यह उदाहरण ठीक नहीं है। 'दिल्दरियाव' विशेपण है, नाम नहीं है।

हेतु

लक्षण—दोहा

"या निमित्त यहई भयो", यों जहँ बरनन होय।
भूपन हेतु बखानहीं, कवि कोविद सब कोय ॥३४९॥

अर्थ—इसी कारण से यह कार्य हुआ, अर्थात् इसके ऐसा होने का निमित्त यही है, जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ सब विद्वान् कवि लोग हेतु अलकार कहते हैं।

सूचना—जहाँ कारण का कार्य के साथ वर्णन हो वहाँ हेतु अलंकार समझना चाहिए। किसी-किसी ने इस हेतु अलकार को काव्यलिंग मे ही सम्मिलित किया है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दइत हरनाकुस विदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज विकरार है।
भूपन भनत त्योंही रावन के मारिबे को,
रामचन्द भयो रघुकुल सरदार है।
कंस के कुटिल बल-बंसन विधुसिबे को,
भयो जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है ॥३५०॥

शब्दार्थ—दारुन = दारुण, भयानक। दइत = दैत्य। विदारिबै को = फाड़ने को। विधुंसिबे को = विध्वस करने को,नाश करने केलिए। पुरहूत = इन्द्र। हरिनाकुस = हिरण्यकशिपु, यह दैत्यराज प्रसिद्ध विष्णु-भक्त प्रह्लाद का पिता था, जब इसने अपने पुत्र को

विष्णु भक्त होने के कारण बहुत तंग किया तब भगवान ने नृसिंहावतार धारण कर इसका अंत किया।

अर्थ—महादारुण (भयंकर) हिरण्यकशिपु दैत्य को विदीर्ण करने के लिए (भगवान का) विकराल तेजवाला नृसिंह अवतार हुआ। भूपण कवि कहते हैं कि उसी प्रकार रावण को मारने के लिए रघुकुल के सरदार श्री रामचन्द्रजी (अवतीर्ण) हुए और कंस के कुटिल एवं बलवान वंश को नष्ट करने के लिए यदुपति वसुदेव के बेटे श्री कृष्णचन्द्र का अवतार हुआ। इसी भाँति हे पृथ्वी पर इन्द्र-रूप, साहजी के सुपुत्र, महाराज शिवाजी! म्लेच्छों का नाश करने के लिए आपका अवतार हुआ है।

विवरण—"म्लेच्छों को मारने के लिए ही आपका अवतार हुआ है" इसमें कार्य के साथ कारण के कथन होने से हेतु अलंकार है।

अनुमान

लक्षण—दोहा

जहाँ काज तें हेतु कै, जहाँ हेतु ते काज।
जानि परत अनुमान तहँ, कहि भूपन कविराज ॥३५१॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण और कारण से कार्य का बोध हो वहाँ कवि अनुमान अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीवी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूपन भनत बूझे आए दरबार ते,
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहिनै॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय तुम्हे,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥३५२॥

शब्दार्थ—अनचैन = बेचैन, व्याकुल। कहियत काहिनै=क्यों नहीं कहते। हीनो=क्षीण, फीका। चितौत=चितवन, देखते।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि अपने अपने स्वामियों के चित्त में बेचैनी एवं उनके नेत्रों में जल उमड़ा हुआ देखकर मुसलमानियाँ कहती हैं कि आप पूछने पर भी बतलाते क्यों नहीं? (आप को क्या दुख है?) जब से आप दरबार से आये हैं तब से बार-बार क्यों काँप रहे हैं, आपको शरीर की सुध-बुध भी नहीं है (क्या होगया?) आपका दिल धड़क रहा है, सारे शरीर में पसीना आ रहा है, रूप रंग फीका पड़ गया है और न आप दाईं बाँईं ओर को देखते ही है (सीधे सामने को ही आपकी नज़र बँधी है)। जान पड़ता है, कि बादशाह (औरंगज़ेब) ने आपको दक्षिण देश का सूबेदार बनाया है इसी कारण आप शिवाजी के भय से सूख गये है (आपके शरीर की ऐसी दशा हो गई है)।

विवरण — सुध-बुध भूलना, पसीना आना, फीका रग पड़ जाना आदि कार्यों द्वारा दक्षिण की सूबेदारी मिलने का अनुमान किया गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

झंझा-सी दिन की भई सझा-सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।
चील्ह गीध बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारो ओर तम मँडराय है॥
भूषन अँदेस देस-देस के नरेस गन,
आपुस में कहत यो गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को जितवार चहुँघा को दल,
सरजा सिवा को जानियत इत आय है॥२५३॥

शब्दार्थ—अंझा = (सं० अनध्याय, प्राकृत अनज्झा) नागा। सझा = संध्या। लगन=लगी। बायस = कौवा। रोर = शब्द,

चिल्लाहट। अदेस=(फा०) अदेशा, सदेह। वडवा = वडवानल समुद्र की आग।

अर्थ—दिन का अनध्याय सा हो गया है अर्थात् दिन छिप सा गया है, सब दिशाओं में सन्ध्या सी होगई है। आकाश में लगकर चारों ओर धूल छा रही है। चील, गीध और कौवों का समूह भयंकर शब्द कर रहा है, स्थान स्थान पर चारों ओर अन्धकार छा रहा है। (यह सब देखकर) भूषण कहते है कि देश देश के शकित(डरे हुए)राजा लोग अपना अभिमान गँवा कर आपस में कहते है कि बडवानल से भी (तेज में) अधिक और चारों दिशाओं को जीतने वाली (जगद्विजयी)शिवाजी की सेना इधर आती मालूम पडती है।

विवरण—यहाँ आकाश मे छाई हुई धूल को देखकर शिवाजी की सेना के आगमन का बोध होता है, अत अनुमान अलकार है।

शब्दालकार

दोहा

जे अरथालकार ते, भूपन कहे उदार।
अब शब्दालकार ये, कहत सुमति अनुसार ॥३५४॥

अर्थ—जितने भी अर्थालङ्कार हैं उन सब का वर्णन उदार भूषण ने कर दिया है। अब इन शब्दालकारों का भी वे अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ वर्णन करते है।

छेक एवं लाटानुप्रास

लक्षण—दोहा

स्वर समेत अच्छर पदनि, आवत सदृस प्रकास।
भिन्न अभिन्नन पदन सों, छेक लाट अनुप्रास ॥३५५॥

शब्दार्थ—सदृस प्रकास = समानता प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ भिन्न-भिन्न पदों में स्वर युक्त अक्षरों के सादृश्य का प्रकाश हो वहाँ छेकानुप्रास और जहाँ अभिन्न पदों का सादृश्य प्रकाश हो वहाँ लाटानुप्रास होता है—अर्थात् छेकानुप्रास में वर्णों का सादृश्य होता है और लाटानुप्रास में शब्दों का ।

सूचना—अन्य आचार्यों ने अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद माने हैं—छेक, वृत्ति श्रुति, अन्त्य और लाट । इनमे से छेक, वृत्ति और लाट प्रमुख हैं । छेक मे एक वर्ण की या अनेक वर्णों की एक बार ही आवृत्ति होती है, परन्तु वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णों की अनेक वार आवृत्ति होती है । महाकवि भूषण ने छेक और वृत्ति मे भेद नही किया, अतः उन्होंने अनुप्रास के दो ही भेद दिये है । उनके दिये हुए प्राय सब उदाहरणो मे वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास दोनों ही मिलते हैं । इस तरह उन्होंने वृत्यनुप्रास को 'छेक' के ही अन्तर्गत माना है ।

छेकानुप्रास का उदाहरण—अमृतध्वनि *

दिल्लिय दलन दबाय करि सिव सरजा निरसंक ।
लूटि लियो सूरति सहर बंकक्करि अति डंक ॥

---

* इसमे छः पंक्ति होती हैं । प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएँ होती है । प्रथम दो पंक्तियाँ मिलकर एक दोहा होता है, और चार अंतिम पदो मे काव्य छंद होता है । अंत के चारों पदों में आठ-आठ मात्राओं पर यति होती है और अन्त मे कम से कम दो वर्ण लघु अवश्य होते है । पद के आदि तथा अंत मे जो पद होते हैं, वे एक अवश्य होते है । प्रथम चरण के शुरु के अक्षर छठे चरण के अन्त में रक्खे जाते हैं और द्वितीय चरण के अंतिम अक्षर तीसरे चरण के आदि मे रखे जाते है ।

चक्ककरि अति डक्ककरि अस सक्कक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोंचच्चलिय विमोचच्चख जल ॥
तट्ठट्ठइमन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठट्ठिल्लिय ।
सद्दद्दिसि दिसि भद्दद्दवि भइ रद्दद्दिल्लिय ॥३५६॥

शब्दार्थ—निरसक=निश्शंक, निर्भय। चक्ककरि अति डक= अत्यंत टेढ़ा डंका करके, जोरों से डंका बजाकर अथवा अपने डंक को टेढ़ा करके—बिच्छू आदि डंक मारने वाले जीव जब कुपित होते है तब मारने के लिए अपना डंक टेढ़ा कर लेते है, भाव यह कि उनकी तरह कुपित होकर। सक्कक्कुलि=शंकाकु-लित करके, डरा करके। सोचच्चकित=चकित हो सोचते हैं। भरोंचच्चलिय=भड़ोंच शहर की ओर चले। भड़ोंच शहर सूरत से ४० मील दूर नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित है। विमोचच्चख जल=(विमोचत+चख जल)आँखों से आँसू गिराते हुए। तट्ठट्ठइमन= (तत्+ठई+मन) तत् अर्थात् परमात्मा (शिव) को मन में ठान कर। कट्ठट्ठिक=कट=हाथियों के गंड-स्थल, उनको ठिकाने लगाकर। सोई=उसी को, अर्थात् शिवजी के नाम को। रट्ठट्ठिल्लिय=(रट्+ठट्+ठिल्लिय) रट (बार बार कह) कर ठट (समूह) को ठेल दिया, भगा दिया। सद्दद्दिसिदिसि=(सद्य:दिश दिशि) तुरंत सब दिशाओं में। भद्दद्दवि=भद्द होकर और दबकर। भई रद्दद्दिल्लिय=दिल्ली रद्द होगई।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने निर्भय हो कर दिल्ली की सेना को दबाकर और बड़े ज़ोर से डंका बजा कर (अथवा अत्यधिक कुपित होकर) सूरत नगर को लूट लिया। उन्होंने ज़ोर से डंका बजा कर (अथवा अत्य-धिक कुपित होकर) दुष्टों को ऐसा शंकित कर दिया कि वे सोच से चकित हो (सोचते-सोचते हैरान होकर) नेत्रों से जल गिराते हुए भड़ोंच शहर

की ओर भाग गये। शिवाजी ने शिवजी को मन में ठान कर हाथियों के गंड-स्थलों को ठिकाने लगाकर अर्थात् विदीर्ण करके उसी अर्थात् शिवजी के नाम को रटते हुए (हर हर महादेव के नारे लगाते हुए) शत्रु समूह को ढकेल दिया। इस भाँति उनके परास्त होजाने पर समस्त दिशाओं में तुरत उनकी भद्द होगई और साथ ही दिल्ली भी दब कर रद्द होगई (अर्थात् दिल्ली की वादशाहत की कीर्त्ति मिट्टी में मिल गई, दिल्ली दबकर चौपट होगई)

विवरण—कई शब्दों की एक बार और कइयों की अनेक बार आवृत्ति होने से यह छेक और वृत्यनुप्रास का उदाहरण है, जिनमें महाकवि भूषण ने कोई भेद नहीं किया।

सूचना—भूषण ने छेकानुप्रास का जो लक्षण दिया है। उसमें 'स्वर समेत' पद विचारणीय है, क्योंकि स्वर बिना मिले भी छेकानुप्रास होता है। जैसे—'दिल्लिय दलन' में 'द्' का छेकानुप्रास है, किंतु 'दिल्लिय' का 'द्' 'इ' स्वर वाला है इसी प्रकार 'दलन' का 'द्', 'अ' स्वर वाला है। अतः यही कहना पड़ता है कि यदि स्वर की समानता हो तो और अच्छा है।

दूसरा उदाहरण—अमृतध्वनि

गतबल खानदलेल हुव, खान बहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेरि ढिग क्रुद्धद्धर किय जुद्ध॥
क्रुद्धद्धरि किय जुद्धद्धुव अरि अद्धद्धरि करि।
मुण्डुरि तहँ रुण्डुकरत डुण्डुग भरि॥
खेद्दिदर वर छेद्दिदय करि मेद्दधि दल।
जंग्गति सुनि रंग्गलि अवरंग्गत बल॥२५७॥

शब्दार्थ—गतबल=बलहीन। खान दलेल=दिलेरखाँ, यह औरंगजेब की ओर से दाक्षिण का सूबेदार था। शिवाजी से हारने के वाद

यह दक्षिण और मालवा का सूबेदार रहा। सन् १६७२ ई० में इसने चाकन और सलहेरि को साथ साथ घेरा। सलहेरि में शिवाजी ने इसे बहुत बुरी तरह हराया। इसकी सारी सेना तहस-नहस हो गई। सन् १६७६ ई० में इसने गोलकुण्डा पर धावा किया तब मधुनापन्त से इसे हारना पड़ा। खान बहादुर=खाँजहाँ बहादुर। मुद्ध=मुधा, व्यर्थ, अथवा मुग्ध, मूढ़। सलहेरि=छन्द ९६ के शब्दार्थ देखो। क्रुद्धद्धरि=क्रोध धारण करके। किय जुद्धद्धुव=ध्रुव युद्ध किया, घोर लड़ाई की। अद्धद्धरि करि=शत्रुओं को पकड़ कर आधा काट कर—आधा आधा करके। मुंडड्डुरि=मुंड डालकर। रुडड्डकरत=रुंड डकार रहे हैं, बोल रहे हैं। डुंटड्डग भरि=डुड (टुँडे) डग भरते हैं, हाथ कटे वीर दौड़ते हैं। खेदिद्दर=(खेदिद्+दर) दर (दल को) खेदकर—भगाकर। छेदिद्दय=छेदकर। मेदद्दधि दल=फौज की मेदा (चर्बी) को दही की तरह बिलो डाला। जंगग्गति=जंग का हाल। रंगग्गलि=रंग गल गया। अवरंगग्गत बल=औरंगजेब का बल जाता रहा, हिम्मत टूट गई।

अर्थ—सलहेरि के पास सरजा राजा शिवाजी ने क्रोध धारण करके ऐसा युद्ध किया कि दिलेरखाँ बलहीन होगया और बहादुरखाँ व्यर्थ सिद्ध हुआ (कुछ न कर सका) अथवा मुग्ध (मूढ़) होगया। क्रोध धारण करके शिवाजी ने घोर लड़ाई की और शत्रुओं को पकड़ पकड़ कर काट डाला। वहाँ मुंड लुढ़कने लगे, रुण्ड डकारने (धाड़ मारने) लगे और हाथकटे वीर (इधर उधर) दौड़ने लगे। मुसलमानों की सेना को खदेड़ कर उसके बल को छेद डाला और सारी सेना की चर्बी को ऐसा मथ डाला जैसे कि दही को मथ डालते हैं। युद्ध की ऐसी दशा सुन कर बादशाह औरंगजेब का

रंग उड़ गया। (अर्थात् उसका मुंह फीका पड़ गया) और उसकी समस्त हिम्मत जाती रही।

विवरण—अलंकार स्पष्ट है।

तीसरा उदाहरण—अमृतध्वनि

लिय धरि मोहकम सिंह कहँ अरु किसोर नृपकुम्म।
श्री सरजा संग्राम किय भुम्मिम्मधि करि धुम्म ॥
भुम्मिम्मधि किय धुम्मम्मड़ि रिपु जुम्मम्मलि करि।
जंगग्गरजि उतग्गगरब मतंगग्गन हरि ॥
लक्खक्खन रन दक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि।
मोलल्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि ॥३५८॥

शब्दार्थ—मोहकमसिंह = छंद २४१ का शब्दार्थ देखिए। किशोर नृप कुम्म = नृप कुमार किशोरसिंह, कोटा-नरेश महाराजा माधवसिंह के पुत्र थे। दक्षिण में ये मुगलों की ओर से लड़ने गये थे। वहीं शिवाजी से भी ये लड़े होंगे। किसी-किसी का कहना है कि ये भी मोहकमसिंह के साथ सलहेरि के धावे में मराठों द्वारा पकड़े गए थे, और पीछे मोहकमसिंह की तरह इन्हें भी छोड़ दिया गया था। भुम्मिम्मधि = भूमि में। धुम्मम्मडि = धूम से मढ़कर, धूमधाम से सजकर। जुम्मम्मलि करि=जोम (समूह)को मलकर। जंगग्गरजि= जंग में गर्ज कर। उतग्गगरब=बड़े गर्व वाले। मतंगग्गन=हाथियों के समूह। लक्खक्खन=लाखों को क्षण भर में। दक्खक्खलनि = दक्ष दुष्टों से। अलक्खक्खिति भर = क्षिति (पृथ्वी) को ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित हो गई। मोलल्लहि जस नोलल्लरि = लड़ कर नवल (नया) यश मोल लिया (प्राप्त किया)। बहलोलल्लिय धरि = बहलोल को पकड़ लिया। बहलोल खाँ के लिए छन्द १६१ देखिये।

अर्थ—वीर-केसरी शिवाजी ने पृथ्वी पर धूम मचाकर युद्ध किया और मोहकमसिंह तथा नृप कुमार किशोरसिंह को पकड़ लिया और धूम-धाम के साथ शत्रुओं के समूहों को मल कर (नष्ट कर) युद्ध में गर्जना करके, बड़े घमंड वाले हाथियों के समूह को हर करके, क्षणभर में लाखों दक्ष दुष्टों (मुसलमानों) से युद्धभूमि को ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित होगई। इस भाँति युद्ध करके और बहलोल खाँ को पकड़ कर शिवाजी ने नूतन यश मोल लिया (अर्थात् बहलोल खाँ को परास्त करने से शिवाजी की कीर्ति और भी बढ़ गई)।

चौथा उदाहरण—अमृतध्वनि

लिय जिति दिल्ली मुलुक सब, सिव सरजा जुरि जंग।
भनि भूषन भूपति भजे, भंगग्गरब तिलंग॥
भंगग्गरब तिलंगभ्भयउ कलिंगग्गलि अति।
दुद्दबि दुहु दद्दलनि बिलंदद्दहसति॥
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय, किय रच्छच्छवि छिति।
हल्लल्लगि नरपल्लल्लरि परनल्लल्लिय जिति॥३५६॥

शब्दार्थ—भंगग्गरब=(भंग+गर्व) जिनका गर्व भग (चूरचूर) हो गया हो। तिलंग=इस देश का नाम तिलगाना या संस्कृत मे तैलंग है। यह दक्षिण भारत का प्राचीन देश है। इस देश की भाषा तेलगू कहलाती है। भयउ कलिंगग्गलिअति=कलिंग देश (आधुनिक उड़ीसा प्रदेश के आसपास का प्राचीन समुद्र तटस्थ देश) अत्यन्त गल गया (अस्त व्यस्त हो गया)। दुद्दबि दुहु दद्दलनि= (युद्ध में) दबकर दोनों दलों (तिलंग और कालिंग) को दद (दुःख) हुआ। बिलंदद्दहसति=बिलंद (बुलंद, बड़ा) दहशत (डर)=बड़ा डर। लच्छच्छिन=क्षण भर में लाखों। म्लेच्छच्छय=म्लेच्छों का नाश। किय रच्छच्छवि छिति=छिति (पृथ्वी, भारत भूमि) की शोभा की

रक्षा की। हल्लल्लगि = हल्ला (धावा) करके। नरपल्लल्लरि = (नरपाल + लरि) राजाओं से लड़ कर। परनल्लल्लिय जिति = परनाले को जीत लिया। परनाला, छन्द० १०६ के शब्दार्थ में देखिये।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने युद्ध करके दिल्ली के सब (दक्षिणी) मुल्क(परगने)जीत लिये। भूषण कवि कहते हैं कि उन देशों के राजा लोग भाग उठे और तैलङ्ग देश के राजा का घमंड नष्ट होगया तथा कलिङ्ग देश भी अत्यन्त गल गया—अस्त-व्यस्त हो गया। युद्ध में दब जाने से उन दोनों (तैलङ्ग और कलिङ्ग देश के राजाओं) को बड़ा दुःख और भारी डर होगया। क्षणभर मे लाखों म्लेच्छों का नाश करके महाराज शिवाजी ने भारत भूमि की शोभा की रक्षा की और हल्ला करके (धावा बोलकर) तथा राजाओं से लडकर परनाले के किले को विजय कर लिया।

पाँचवाँ उदाहरण—छप्पय

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि चूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल॥३६०॥

शब्दार्थ—मुंड=मूँड, सिर। पटत=पाट रही है, भर रही है। घन=बहुत। सिद्ध=वे तान्त्रिक लोग जो मुर्दों पर बैठकर अपना योग तन्त्र सिद्ध करते हैं। रसत मन=मन मे आनन्दित होते हैं। चूत=चूता, शक्ति। मंडि=इकट्ठे होकर। गन=भूत प्रेतादि गण। डंडि = द्वंद (झगड़ा)। दलि = दलन करके, नष्ट करके। अडोल = अचल।

अर्थ—कहीं मूँड (सिर) कटते हैं, कहीं कबंध नाचते हैं, कहीं हाथियों

की बहुत सी सूँडें कटकर पृथ्वी को पाट दे रही हैं (भर रही हैं)। कहीं मुर्दों पर बैठे गिद्धपक्षी शोभा पाते है। कहीं सिद्ध (तांत्रिक) लोग हँसते हैं और उनके मन में आनन्द बढ़ रहा है(क्योंकि मुर्दे बहुत से हैं)। कहीं भूत फिरते हुए आपस में बल पूर्वक लड़ते हैं, कहीं देवदूत (मृतक वीर पुरुषों की आत्माओं को स्वर्ग ले जाने के लिए) इकट्ठे होरहे हैं। कहीं कालिका नृत्य करती है तो कहीं भूत गण मंडल बनाकर इकट्ठे होकर शोर मचा रहे हैं, और झगड़ा कर रहे है। भूषण कवि कहते हैं कि इस भाँति शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने घोर युद्ध कर और बहलोल खाँ की अचल सेना को नष्ट करके तलवार के बल से अपना तेज अटल कर दिया।

छठा उदाहरण—छप्पय

क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि बग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
दुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रंग रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर अतिही विषम भूपन सुजस कियो अचल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोलदल॥२६१॥

शब्दार्थ—रुद्ध=रुके हुए। बग्ग=घोड़े की बाग, लगाम। चट=तुरत। दुक्कि = घात में छिपकर। मद झुक्कि=मद में झूमकर। कुक्कि=कूक, चीख। हर = महादेव। संग = साथ, साथी। संगर=युद्ध।

अर्थ—वीरगण क्रोधित हो घूम घूम कर युद्ध में जुड़ते हैं और शत्रु-द्वारा आगे से रुकने पर भी वापिस नहीं लौटते (अर्थात् युद्ध किये ही जाते हैं)। तलवारें जोर से चल रही है,शत्रुओं के हाथों से घोड़ों की लगामें छूट रही हैं (तलवार का घाव लगने पर योद्धा) झटपट बस पर सिर की पगड़ी बाँध देते है। कई योद्धा शत्रु की घात में छिपे फिरते हैं, कोई मदोन्मत्त होकर लड़ रहे हैं और कोई चीख मार कर गिर पड़ते हैं। महादेव के साथी

भूत प्रेतादि रक्तपान करके अघा जाते हैं और चतुरंगिनी सेना थक जाती है। भूषण कवि कहते हैं कि इस प्रकार बड़ा भयंकर युद्ध करके और अपनी तलवार के ज़ोर से बहलोल खाँ की अचल सेना को नष्ट कर महाराज शिवाजी ने अपना सुयश अटल कर दिया।

सातवाँ उदाहरण—कवित्त मनहरण

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग,
बगरे बराह जानवरन के जोम हैं।
भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं,
भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं॥
ऐंडायल गजगन गैंड़ा गररात गनि,
गेहन मैं गोहन गरूर गहे गोम हैं।
शिवाजी की धाक मिले खलकुल खाक बसे
खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं॥३६२॥

शब्दार्थ—बरार = बरिआर, प्रबल। बैहर = भयंकर। बिग = (सं० वृक) भेड़िया। बगरे = फैले। बराह=सूअर। जोम=समूह, झुण्ड। भालुक=भालू, रीछ। लीलगऊ = नीलगाय। लोम = लोमड़ी। ऐंडायल = अड़ियल, मतवाले। गररात = गर्जना करते हैं। गेहन = घरों। गोहन = गोह, छिपकली की जाति का जंतु। गोम = स्थान, अड्डा। खेरन = खेड़ों में, गाँवों में। खबीस = (फा०) दुष्ट आत्मा, भूत प्रेत, बोल चाल में बूढ़े और कंजूस आदमी को भी खबीस कहते हैं। खोम = (अ० कौम) समूह।

अर्थ—बली एवं भयंकर बन्दर, व्याघ्र, बिलाव, भेड़िये और सूअर आदि जानवरों के झुण्ड के झुण्ड (चारों ओर) फैल गये। भूषण कवि कहते हैं कि बड़े भयंकर भालू (रीछ) नीलगाय, और लोमड़ियाँ शत्रुओं के घरों के भीतर भर गये (अर्थात् उन्होंने वहाँ उजाड़ समझ अपना निवास स्थान बना

लिया)। मतवाले हाथी और गैंडों के झुण्ड जोर जोर से गर्जना करते हैं और अभिमानी गोहों ने घरों में अपना अड्डा जमा लिया है *। इस तरह शिवाजी महाराज की धाक से दुष्टों (मुसलमानों) के वश के वंश धूल में मिल गये हैं और अब उनके ग्रामों में (डेरों में) भूत प्रेतों के झुण्ड बस गये है।

लाटानुप्रास का उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुरमती तहखाने तीतर गुसुलखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं।
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढे पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं॥
भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भये खीस हैं।
खड्गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं॥३६३॥

शब्दार्थ—तुरमती=(तु० तुरमता) बाज की किस्म का एक शिकारी पक्षी। सिलहखाने=हथियार रखने का स्थान, शस्त्रालय। करीस=गजराज। हरमखाने=अन्त पुर, जनानखाना। स्याही=सही, एक छोटा सा जन्तु जिसके शरीर पर लबे लबे काँटे होते है। सुतुरखानै=ऊँटों का बाड़ा। पाढा=एक प्रकार का हिरण। पीलखाना=हाथियों का स्थान। करजखाना=मुरगों के रहने का स्थान। कीस=बंदर। खपाए=नष्ट किये। खाने खाने=

---

* कई टीकाकारों ने गोम का अर्थ गोमायु (गीदड़) किया है। उस पक्ष में अर्थ इस प्रकार होगा—गोह और गरूर-गहे (अभिमानी) गीदड़ घरों में है।

स्थान स्थान । खीस = नष्ट, बरबाद । खीसैं=दाँत । खडगी = गैंडा । खिलवतखाने=(फा०) सलाह का एकान्त कमरा । खसखाने=खस की टट्टी लगा हुआ कमरा ।

अर्थ—तहखाने में बाज, स्नानागार में तीतर तथा शस्त्रालय में सूअर और हाथी जोर जोर से शब्द कर रहे हैं । अन्त:पुर में हिरन, शुतरखाने में सेही, फीलखाने में पाढ़े और मुर्गों के स्थान पर कीस (बन्दर) रहते हैं । भूषण कवि कहते हैं कि विजयी महाराज शिवाजी ने अपनी तलवार से दुष्टों (मुसलमानों) को नष्ट कर दिया और उनके घर और गाँव बरबाद होगये हैं । उनके खज़ानों में गैंडे रहने लग गये हैं, एकान्त कमरों में खरगोश और खसखाने में भूत प्रेत दाँत निकाल निकाल कर खाँसते हैं (अर्थात् सब स्थान उजाड़ होगए हैं, शिवाजी के शत्रुओं के घरों में कहीं मनुष्य नहीं रहते) ।

विवरण—'खाने' शब्द की एक ही अर्थ में भिन्न-भिन्न पदों के साथ आवृति होने से लाटानुप्रास है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

औरन के जाँचे कहा नहिं जाँच्यो सिवराज ? ।
औरन के जाँचे कहा जो जाँच्यो सिवराज ? ॥३६४॥

शब्दार्थ—जाँच्यो=याचना की, माँगा ।

अर्थ—यदि शिवाजी से याचना नहीं की—यदि शिवाजी से नहीं माँगा तो औरों से याचना करना किस काम का ? पर्याप्त धन कभी न मिलेगा । और यदि शिवाजी से याचना करली तो औरों से माँगना ही क्या ? शिवाजी याचकों को इतना धन देते हैं कि याचक को फिर किसी से माँगने की आवश्यकता ही नहीं रहती ।

सूचना—छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास 'अक्षरों' के अनुप्रास हैं । इसी प्रकार लाटानुप्रास शब्दों का अनुप्रास है । इसमें 'शब्द'

और उसका अर्थ एक सा ही रहता है, केवल अन्वय-भेद से तात्पर्य में भेद हो जाता है। लाटानुप्रास के दो भेद होते हैं— १. शब्दावृत्ति २. वाक्यावृत्ति। 'शब्दावृत्ति' में एक ही शब्द की एक अर्थ में आवृत्ति होती है, जैसे, तहखाने, सिलहखाने, गुसलखाने, हरमखाने, आदि में 'खाने' शब्द की एक ही अर्थ में भिन्न भिन्न शब्दों के साथ आवृत्ति है। 'वाक्यवृत्ति' में वाक्य (अनेक शब्द समूह) की आवृति होती है, जैसे—दूसरे उदाहरण में। यहाँ शब्द एवं अर्थ में भेद नहीं है, केवल पूर्वार्ध के 'नहीं' का उत्तरार्द्ध के 'जो' के साथ अन्वय होने से तात्पर्य में भिन्नता हुई है।

यमक

लक्षण—दोहा

भिन्न अरथ फिरि फिरि जहाँ, वेई अच्छर वृन्द।
आवत हैं, सो जमक करि, वरनत बुद्धि विलन्द ॥३६५॥

अर्थ—जहाँ वही अक्षर-समूह बार बार आवे परन्तु अर्थ भिन्न हो, वहाँ विशाल-बुद्धि मनुष्य यमक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पूनावारी सुनि कै अमीरन की गति लई,
भागिवे को मीरन समीरन की गति है।
मारयो जुरि जग जसवंत जसवंत जाके,
संग केते रजपूत रजपूत-पति है ॥
भूपन भनै यों कुलभूपन भुसिल सिव-
राज तोहिं दीन्ही सिवराज वरकति है।
नौहू खंड दीप भूप भूतल के दीप आजु,
समै के दिलीप दिलीपति को मिटति है ॥३६६॥

शब्दार्थ—समीरन=वायु। जसवत=(१) मारवाड़ के महाराज यशवन्तसिंह (२) यशवाले, यशस्वी। रजपूत=राजपूत। रजपूत-पति=(रज=राजपूती, पूत=पवित्र, पति=स्वामी) पवित्र राजपूती आन के स्वामी। राज-बरकति=राज्य की वृद्धि। दिलीप= अयोध्या के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु-वंशी राजा जिनकी स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए थे। ये बड़े गो भक्त थे। महर्षि वसिष्ठ की कामधेनु गौ के लिए अपनी जान देने को तैयार हो गए थे, इसी कारण भूषण ने ब्राह्मण और गौ के भक्त शिवाजी को दिलीप कहा है। सिदति=(सं० सीदति) कष्ट देते हैं।

अर्थ—पूना में अमीरों (शाइस्ताखाँ आदि) की जो दुर्दशा हुई थी उसे सुनकर मीर लोगों ने भागने के लिए हवा की गति ली है, अर्थात् (वे वहाँ से हवा हो गये) अत्यन्त तेजी से भाग गये। वीरकेसरी शिवाजी ने उस यशस्वी जसवंतसिंह को युद्ध में भिड़कर मार भगाया जिसके साथ कितने ही पवित्र रजपूती आन को निबाहने वाले राजपूत थे। भूषण कहते हैं कि हे नौखण्ड और सप्तद्वीपों के राजा, पृथ्वी के दीपक (पृथ्वी में श्रेष्ठ) और आजकल के दिलीप तथा कुल-भूषण भोंसिला राजा शिवाजी, तुझे शिवजी ने राज्य में इतनी बरकत दी है, तेरी इतनी राज्य वृद्धि की है कि वह दिल्लीपति औरंगज़ेब को कष्ट देती है, चुभती है।

विवरण—यहाँ मीरन, जसवन्त, रजपूत, भूपन, सिवराज, दीप और दिलीप आदि अक्षर-समूह की आवृत्ति भिन्न भिन्न अर्थ मे होने से यमक है।

सूचना—यमकालंकार और लाटानुप्रास में यह भेद है कि यमकालंकार में जिन शब्दों या शब्द-खण्डों की आवृत्ति होती है उनके अर्थ भिन्न भिन्न होते हैं, परन्तु लाटानुप्रास में एक ही अर्थ वाले शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति होती है, केवल अन्वय से ही तात्पर्य में भेद होता है।

पुनरुक्तवदाभास

लक्षण—दोहा

भासति है पुनरुक्ति सी, नहिं निदान पुनरुक्ति।
वदाभासपुनरुक्त सो, भूषन बरनत जुक्ति ॥३६७॥

अर्थ—जहाँ पुनरुक्ति का आभास मात्र हो, अर्थात् जहाँ पुनरुक्ति-सी जान पड़े, परन्तु वास्तव में पुनरुक्ति न हो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अरिन के दल सैन संग रमैं समुहाने,
टूक टूक सकल कै डारे घमसान मैं।
बार बार रूरो महानद परवाह पूरो,
बहत है हाथिन के मद जल दान मैं॥
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर, रवि कैसो तेज तीखन कृपान मैं।
माल मकरन्द जू के नन्द कलानिधि तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥३६८॥

शब्दार्थ—सैन संग रमैं=शयन (में) संग रमैं अर्थात् साथ ही साथ मरे पड़े हैं। समुहाने=सामने आने पर, मुकाबला करने पर कै डारे=कर डाले। रूरो=सुन्दर। सूर=शूर। जगत=जगता है, प्रसिद्ध है। जहान=दुनिया।

अर्थ—हे शिवाजी, घोर घमासान में शत्रुओं की सेना के सामने आने पर आपने उन सबके टुकड़े टुकड़े कर दिये, और वे अब सब शयन में साथ ही रमते हैं—साथ साथ मरे पड़े हैं। और आप ने अपने दान के उस संकल्प जल से जिसमें हाथियों का मद बह रहा है, बार बार सुन्दर नदियों के प्रवाह को भर दिया है। भूषण कवि कहते हैं कि हे विशाल-

बाहु वीर भौंसिला राजा ! आपकी तीक्ष्ण तलवार में सूर्य के समान तेज है। हे माल मकरन्द जी के कुलचन्द्र महाराज वीरकेसरी शिवाजी ! आपका यश सारे संसार मे जग रहा है, फैल रहा है।

विवरण—यहाँ दल और सैन, मंगर और घमसान, सूर और रवि,जगत और जहान तथा मद और दान आदि शब्दो का एक ही अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः पृथक् पृथक् अर्थ है। अतः यहाँ पुनरुक्तवदाभास है।

चित्र

लक्षण—दोहा

लिखे सुने अचरज बढ़े, रचना होय विचित्र।
कामधेनु आदिक घने, भूषन बरनत चित्र ॥३६६॥

अर्थ—जिस विचित्र वाक्य रचना के देखने और पढने में आश्चर्य उत्पन्न हो उसे चित्र कहते हैं। ऐसे अलंकार कामधेनु आदिक अनेक प्रकार के होते हैं।

सूचना—ऐसी रचना में चित्र भी बनते है, जैसै कमल, चॅवर, कृपाण, धनुष आदि।

उदाहरण (कामधेनु चित्र)—दुर्मिल सवैया

धुव जो	गुरता	तिनको	गुरु भूपन	दानि बड़ो	गिरजा	पिव है
हुव जो	हरता	रिन को	तरु भूपन	दानि बड़ो	सिरजा	छिव है
भुव जो	भरता	दिन को	नर भूपन	दानि बड़ो	सरजा	सिव है
तुव जो	करता	इन को	अरु भूपन	दानि बड़ो	वरजा	निव है

शब्दार्थ—धुव=ध्रुव, अचल। भूपन=अलंकार, श्रेष्ठ। गिरजा-

पिव=गिरिजापति, महादेव। हुव=हुआ। हरता=हरने वाला। रिन=ऋण। तरु भषण=वृक्षों में श्रेष्ठ, कल्पवृक्ष। सिरजा=बनाया गया है। भरता=भरण-पोषण करने वाला, स्वामी। दिन को=प्रतिदिन,आज कल। करतो=कर्ता, रचयिता। वर+जानि+वहै=उसे श्रेष्ठ जान।

अर्थ—(इस छन्द के रूप-भेद से कई अर्थ हो सकते हैं उन में से एक इस प्रकार होगा) जिनकी गुरुता (उत्कृष्टता) अचल है उन (देवताओं) में परमदानी महादेव जी सर्व-श्रेष्ठ (उपस्थित) हैं। और धन संकट को दूर करने वाला महादान की सीमा कल्प-वृक्ष भी उपस्थित है। परन्तु आजकल पृथ्वी का भरण पोषण करने वाला मनुष्यों में श्रेष्ठ सरजा राजा शिवाजी ही बड़ा दानी प्रसिद्ध है। हे भूषण, तू जो इन कामधेनु आदि अन्य अलंकारों को बनाने वाला है तू उन्हीं शिवाजी को सभी बड़े दानियों में श्रेष्ठ समझ।

सूचना—इस विचित्र शब्द-योजना वाले छद से ७×४=२८ सवैये बन सकते हैं। भिन्न भिन्न सवैयों का अर्थ भी भिन्न भिन्न होगा। पर उनमे बड़ी खींचातानी करनी पड़ती है अतः उनका उल्लेख नही किया गया।

संकर

लक्षण—दोहा

भूषन एक कवित्त मैं भूषन होत अनेक।
संकर ताको कहत हैं जिन्हैं कवित की टेक ॥३७१॥

अर्थ—जहाँ एक कवित्त में अनेक अलंकार हों वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन 'संकर' नामक उभयालंकार कहते हैं।

सूचना—उभयालंकार के दो भेद होते हैं—'संसृष्टि' और

'संकर'। जहाँ पर अलकार तिल-तंडुल (तिल और चावल) की भाँति मिले रहते है वहाँ 'संसृष्टि' और जहाँ नीर-क्षीर की तरह मिले रहते है वहाँ सकर होता है। भूषण का दिया हुआ लक्षण सकर का न होकर उभयालंकार का लक्षण है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषन जे बाज की समाजै निदरत हैं।
पौन पायहीन, दृग घूँघट मै लीन, मीन,
जल मै बिलीन, क्यो बराबरी करत हैं?॥
सबते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर मैं धीर न धरत हैं।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर,
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं॥३७२॥

शब्दार्थ—बाजिराज=श्रेष्ठ घोड़ा। पायहीन=बिना पाँव के। लीन=छिपे। मीन=मछली। बिलीन=लुप्त। कुलि आलम=कुल आलम, समस्त संसार। उर अन्तर=हृदय के भीतर। तीर एक भरि=जितनी दूर पर जाकर एक तीर गिरे उतनी दूर को एक तीर कहते है।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि शिवाजी महाराज ऐसे श्रेष्ठ घोड़े देते हैं कि जो (अपनी तेजी के सम्मुख) बाज पक्षियों की समाज को भी मात करते है। पवन चरण-हीन है अर्थात् हवा के पैर नहीं हैं, (युवतियों के चंचल) नेत्र घूँघट में छिपे हुए हैं, और मछली पानी में छिपी रहती है इसलिए ये सब उन (चञ्चल घोड़ों) की समता कैसे कर सकते है? सबसे

अधिक चञ्चल मन है परन्तु वह भी समस्त संसार के प्राणियों के हृदयों में रहता है और (घोड़ों की चञ्चलता की समता न कर सकने के कारण) धैर्य नहीं धारण करता। (वे ऐसे चचल एवं तेज हैं कि) जिन पर चढकर आगे को तीर चलाने पर तीर एक तीर के फासले पर पीछे ही को पडते हैं (अर्थात् उनपर चढकर जो आगे को तीर चलाते हैं तो तीर घोड़ों से एक तीर के फासले पर पीछे रह जाते हैं, घोड़े तेज़ गति होने के कारण छूटे हुए तीर के लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने से पहले ही उससे कहीं आगे बढ जाते हैं) ।

विवरण—यहाँ प्रथम चरण में अनुप्रास एवं ललितोपमा, द्वितीय और तृतीय चरण में अनुप्रास एवं चतुर्थ प्रतीप तथा अन्तिम चरण में यमक एव अत्युक्ति अलंकार होने से संकर अलकार है ।

ग्रंथालकार नामावली—गीता छन्द*

उपमा अनन्वै कहि बहुरि उपमा-प्रतीप प्रतीप ।
उपमेय-उपमा है बहुरि मालोपमा कवि-दीप ॥
ललितोपमा रूपक बहुरि परिनाम पुनि उल्लेख ।
सुमिरन भ्रमौ संदेह सुद्धापह्नुत्यौ सुभ-भ्रेख ॥३७३॥

हेतु-अपह्नुत्यौ बहुरि परजस्तपह्नुति जान ।
सुभ्रांतपूर्णअपह्नुत्यौ छेकाअपह्नुति मान ॥
वर कैतवापह्नुति गनौ उत्प्रेक्ष बहुरि बखानि ।
पुनि रूपकातिसयोक्ति भेदक अतिसयोक्ति सु जानि ॥३७४॥

---

* गीता छन्द में २६ मात्राएँ होती हैं १४, १२ पर यति होती है, अन्त में गुरु लघु होते है ।

अरु अक्रमातिसयोक्ति चचल अतिसयोक्तिहि लेखि ।
अत्यन्तअतिसै उक्ति पुनि सामान्य चारु विसेखि ॥
तुलियोगिता दीपकअवृति प्रतिवस्तुपम दृष्टान्त ।
सु निदसेना व्यतिरेक और सहोक्ति बरनत शान्त ॥३७५॥

सु बिनोक्ति भूषन समासोक्तिहु परिकरौ अरु वंस ।
परिकर सुअकुर स्लेष त्यो अप्रस्तुतौपरसस ॥
परयायउक्ति गनाइए व्याजस्तुतिहु आक्षेप ।
बहुरो बिरोध विरोधभास बिभावना सुख-खेप ॥३७६॥

सु विसेषउक्ति असभवौ बहुरे असगति लेखि ।
पुनि विषम सम सुविचित्र प्रहपन अरु विपादन पेखि ॥
कहि अधिक अन्योन्यहु विसेप व्याघात भूषन चारु ।
अरु गुम्फ एकावली मालादीपकहु पुनि सारु ॥३७७॥

पुनि यथासंख्य बखानिए परयाय अरु परिवृत्ति ।
परिसख्य कहत विकल्प हैं जिनके सुमति-सम्पत्ति ॥
बहुरयो समाधि समुच्चयो पुनि प्रत्यनीक बखानि ।
पुनि कहत अर्थापत्ति कविजन काव्यलिंगहि जानि ॥३७८॥

अरु अर्थअंतरन्यास भूषन प्रौढ़ उक्ति गनाय ।
संभावना मिथ्याध्यवसितऽरु यो उलासहि गाय ॥
अवज्ञा अनुज्ञा लेस तदगुन पूर्वरूप उलेखि ।
अनुगुन अतदगुन मिलित उन्मीलितहि पुनि अवरेखि ॥३७९॥

सामान्य और विसेप पिहितौ प्रश्नउत्तर जानि।
पुनि व्याजउक्तिरु लोकउक्ति सु छेकउक्ति वखानि॥
वक्रोक्ति जान सुभावउक्तिहु भाविकौ निरधारि।
भाविकछबिहु सु उदात्त कहि अत्युक्ति वहुरि बिचारि॥३८०॥

वरने निरुक्तिहु हेतु पुनि अनुमान कहि अनुप्रास।
भूषन भनत पुनि जमक गनि पुनरुक्तवदआभास॥
युत चित्र सकर एकसत भूषन कहे अरु पॉच।
लखि चारु ग्रथन निज मतो युत सुकवि मानहु सॉच॥३८१॥

सूचना—पिछले वर्णन किये गये अलकारों की सूची भूषण ने यहॉ दी है, जो कुल १०५ हैं।

दोहा

सुभ सत्रहसै तीस पर, बुध सुदि तेरस मान।
भूषण सिव-भूषण कियो, पढियो सुनो सुजान॥३८२॥*

अर्थ—भूषण कवि ने शुभ सवत् १७३० (श्रावण) सुदी तेरस बुधवार को यह 'शिवराज भूषण' समाप्त किया। पण्डित लोग इसे पढ़ें और सुनें।

---

* यहॉ मास नहीं लिखा है। महामहोपाध्याय श्री पंडित सुधाकर ने मिश्रबन्धुओं की प्रार्थना से एक पचाग सवत् १७३० का बनाया थी जिसमें शुक्ला त्रयोदशी बुधवार, कार्तिक में १४ दड ५५ पल थी और श्रावण में ३६ दंड ४० पल थी। जान पड़ता है कि श्रावण मास में ही यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

कई प्रतियों में इस दोहे की प्रथम पक्ति का पाठ इस प्रकार है—

आशीर्वाद—मनहरण कवित्त

एक प्रभुता को धाम, दूजे तीनौ वेद काम,
रहैं पचआनन षडानन सरवदा।
सातौ वार आठौ याम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा ॥
सिवराज भूषण अटल रहै तौलौ जौलौ,
त्रिदस भुवन सब, गंग औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज-वंस,
दासरथि राज तौलौ सरजा थिर सदा ॥३८३॥

शब्दार्थ—तीनौ वेद=ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद। पच आनन=पाँच मुख वाले, महादेव। षडानन=षट आनन, कार्तिकेय, देवताओं के सेनापति। कृपन=कृपाण, तलवार। त्रिदस=देवता। साहसिक=साहसी। दासरथि=रामचन्द्र।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी एक तो प्रभुता के धाम रहे, संसार मे सदा शासन करें, दूसरे तीनों वेदों के अनुसार कार्य करें और सदा सर्वदा पंचानन महादेव के समान दानी रहें तथा षडानन (कार्तिकेय) की भाँति सेनापति रहें, असुरों का संहार करते रहें। सातों दिन, आठों पहर (चौबीसों घंटे) नये नये याचकों को दान दें। गदाधारी विष्णु की भाँति इन कृपाणधारी शिवाजी का अवतार सदा स्थिर रहे। और शिवाजी का राज्य तब तक अटल रहे जब तक देवता, सब (चौदह) भुवन, गंगा और

संवत सतरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि भान।

अर्थात् सवत् १७३० के आषाढ़ (या ज्येष्ठ क्योंकि शुचि ज्येष्ठ और अषाढ दोनों मासों को कहते हैं) की वदी त्रयोदश आदित्य-वार के दिन शिवराज-भूषण समाप्त हुआ।

नर्मदा हैं, और सूर्यवंशी, साहसी, भोंसिला शाहजी के पुत्र शिवाजी तब तक स्थिर रहें, जब तक पृथ्वी में राम-राज्य प्रख्यात है।

अलंकार—भूषण ने इस पद में क्रम से एक से लेकर चौदह तक गिनती कही है, एक, दूजे, तीनों, वेद (चार) पञ्च (पाँच) षट (छ.) सातौ, आठौं, नव, अवतार (दस) ग्यारह (शिव) भूषण (बारह) त्रिदस (तेरह) भुवन (चौदह)। अत यहां रत्नावली अलंकार है, अर्थात् यहाँ प्रस्तुतार्थ के वर्णन में अन्य क्रमिक पदार्थों के नाम भी यथाक्रम रखे गए हैं।

दोहा

पुहुमि पानि रवि ससि पवन, जब लौं रहै अकास।
सिव सरजा तब लौं जियौ, भूपन सुजस प्रकास ॥३८४॥

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी। पानि=पानी।

अर्थ—भूषण कवि आशीर्वाद देते हैं कि जब तक पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और आकाश है तब तक हे वीर-केसरी शिवाजी आप जीवित रहें और आपके सुयश का प्रकाश होवे।

शिवा-बावनी

कवित्त-मनहरण *

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि[1]
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥१॥

शब्दार्थ—चतुरंग = रथ,हाथी,घोड़े और पैदलों की चतुरंगिनी सेना। सरजा = (सरजाह) सर्वशिरोमणि,यह उपाधि अहमदनगर के बादशाह ने शिवाजी के पुरखा मालोजी को दी थी। भूषण शिवाजी को इसी नाम से पुकारते हैं। नाद = शब्द, आवाज। बिहद = बेहद।

---

*मनहरण कवित्त में प्रत्येक पद में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और १५ (या ८,८,८, और ७ पर) यति होती है।

पाठान्तर—

१ साजि चतुरंग सैन अंग मे उमंग धरि—अर्थात् चतुरंगिनी सेना सजा कर और शरीर मे उत्साह धारण कर।

गैवरन = गय+वरन, श्रेष्ठ हाथियों अर्थात् मतवाले हाथियों। रलत = मिलता है, मिलकर बहता है। ऐल = समूह (यहाँ सेना)। फैल = फैलने से। खैल-भैल = खलबली। खलक = संसार। गैल = मार्ग। ठेल-पेल = धक्कमधक्का। सैल = पहाड़। उसलत = उखड़ते हैं। तरनि=सूर्य। धूरिधारा = धूल का समूह। थारा=थाल। पारावार = समुद्र।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जब सरजा शिवाजी महाराज बड़े वीर-रंग (उत्साह) से अपनी चतुरंगिनी सेना तैयार कर घोड़े पर सवार हो कर युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए चलते हैं, तब बेहद नगाड़ों का शब्द होता है, और श्रेष्ठ हाथियों का मद नदी और नदों के रूप में मिल कर बहता है। फौज के फैलने से संसार में गली-गली में खलबली मच जाती है और हाथियों के धक्कमधक्के से पहाड़ तक उखड़ जाते हैं। (सेना के चलने से) उड़ी हुई धूल के समूह में सूर्य तारे के समान (मंद और बहुत छोटा) दीखता है और (सेना की हलचल के कारण पृथ्वी के काँप उठने से) समुद्र थाली में रक्खे हुए पारे की भाँति हिलता है।

अलंकार— उपमा और अनुप्रास और अत्युक्ति।

बाने फहराने घहराने घटा गजन के,
नाही ठहराने राव-राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के॥२॥

शब्दार्थ—बाने=भाले की तरह का एक हथियार जिस के सिरे

पर कभी-कभी झडा बाँध देते है । फहराने=उड़ने लगे । घहराने= बजने लगे । गजन=हाथियों । नग=पहाड़ । भहराने=भरभरा कर गिर गये । पराने=(पलायन कर गए)भाग गये । निसाने=डके । उकसाने= अपने स्थान से खिसक गये, हट गये । कुम-कुजर के=हाथियों के मस्तक के । भौन=भवन,घर । दरारन=दरेरे, दबाव,रगड़ । कमठ= कच्छप, कछुवा । करारे=कठोर । केरा=केला । पात=पत्ता । बिहराने=बिदराने, बिदारित हो गये, फट गये ।

अर्थ—(शिवाजी की सेना के) झंडों के फहराने और हाथियों के घटे बजने पर देश-देश के छोटे-बड़े राजे-महाराजे (शिवाजी की सेना के सम्मुख) नहीं ठहर सके । महाराज शिवाजी के डंके की आवाज से नग (पहाड) भरभरा कर गिर पडे । गाँवों और शहरों के लोग उसे (घटों की आवाज को) सुनकर भाग गये । हाथियों के हौदे हिल गये और उनके मस्तकों के भौंरे (मद के कारण हाथियों के मस्तकों पर भौंरे उडते हैं) अपने अपने घरों को भाग गये । (शत्रु-स्त्रियों के) के बालों की लटें छूट गईं । सेना के दबाव के कारण कठोर कच्छप (की पीठ) भी फूट गई और शेषनाग के सहस्र फन केले के पत्तों की तरह फट गये । (पुराणों में लिखा है कि कच्छप की पीठ पर शेषनाग रहते हैं और शेषनाग के फन पर पृथ्वी ठहरी हुई है ।

अलकार—उपमा, अनुप्रास और अत्युक्ति ।

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस मे गावत बधाई है ।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है ।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगबर बजाई है ।

सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है॥ ३ ॥

शब्दार्थ—निसाचर=रात में घूमने वाले, राक्षस। बधाई=आनन्द-सूचक गीत। भैरों=भैरव। भूरि=बहुत, अनेकों। भूधर=पर्वत। जुत्थ=यूथ, झुण्ड, समूह। जोगिनी=योगिनी। जुरि आई है=इकट्ठी हो गई है। किलकि=जोर से चिल्लाकर। कुतूहल=कौतुक, खेल, क्रीड़ा। डमरू=शिवजी के बजाने का बाजा, डमडमा। दिगम्बर=दिशाएँ ही हैं अंबर (कपडे) जिसके अर्थात् शिवजी। भृकुटी चढ़ाई है =क्रोधित हुए हैं।

अर्थ—(युद्ध में मरे हुए वीरों का रुधिर और मांस मिलने की आशा से) प्रेतिनी, पिशाच, राक्षस और राक्षसियाँ आपस में मिलजुल कर आनन्द-गीत गा रही हैं। पहाड़ों के समान डरावने अनेकों भैरव, भूत, प्रेत और योगिनियों के झुण्ड के झुण्ड मडली बाँध बाँध कर इकट्ठे हो रहे हैं। कालिका प्रसन्नता के कारण किलकारी मारती हुई क्रीड़ा करती है (अर्थात नृत्यादि करती है), शिवजी डिम-डिम डमरू बजा रहे हैं। (शिवजी के समाज का यह सब आनन्दोत्सव देखकर) शिवा (पार्वती जी) शिवजी से पूछती हैं कि आज यह आपकी मडली कहाँ चली है? वे उत्तर देते हैं कि महाराज शिवाजी किसी पर क्रोधित हुए हैं।

अलकार—अनुप्रास और अप्रस्तुत-प्रशसा। रणभूमि मे हमारे गण भूत-प्रेत माँस भक्षण करेगे, इस मुख्य बात को न कह कर 'काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढाई है' इतना ही सकेत किया है।

बद्दल न होहि दल दच्छिन उमडि आए,
घटा ये न होय इभ सिवाजी हँकारी के।
दामिनी-दमक नाहिं खुले खग्ग बीरन के,
इन्द्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के॥

देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठै बहत बयारी के।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर घन,
बाजत नगारे ये सितारे-गढधारी के * ॥

शब्दार्थ---इभ=हाथी। हँकारी = अहंकारी। दामिनी = बिजली। दमक = चमक । खग्ग = खड्ग, तलवार । इन्द्रधनु=इन्द्रधनुष ।

---

*कुछ प्रतियों में इस पद्य का पाठ इस प्रकार है—

बद्दल न होहिं दल दच्छिन घमड माँहि,
घटा जु न होहिं दल सिवाजी हँकारी के।
दामिनी-दमक नाहिं खुले खग्ग बीरन के
बीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के॥
देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के ।
दिल्ली मति-भूली कहै बात घन घोर-घोर,
बाजत नगारे ये सितारे गढधारी के ॥

अर्थात् ये बादल नहीं पर घमड में भरी दक्षिण की सेना है। यह घटा नही पर अहंकारी शिवाजी की सेना है । यह बिजली की चमक नहीं, पर वीरों की नगी तलवारें और तीज की सवारी में निकले हुए वीरों के सिरपेंच हैं। इस प्रकार बादलों को शिवाजी की फौज समझ कर मुगलों की बेगमें अपने-अपने घरों को छोड कर भाग जाती हैं और हवा के शब्द से बार बार चौंक उठती है। बादलों की गरज को सुन कर बुद्धि-भ्रष्ट दिल्ली-निवासी यह बात कहते हैं कि यह सितारा किले के स्वामी शिवाजी के नगाड़े बज रहे हैं।

निसान = झंडा। हरमैं = बेगमें, रानियाँ। भवन = महल। उझकि उठैं=चौंक उठती हैं। बयारी=हवा। गाजत=गर्जते हैं। घोरघन= बड़े बड़े बादल। सितारे गढधारी = सितारागढ के स्वामी, शिवाजी।

अर्थ—(शिवाजी के आतंक से भयभीत हुए दिल्ली-निवासियों और मुगल-स्त्रियों को वर्षा ऋतु के बादलों और बिजलियों में शिवाजी के दल का ही आभास होता है)। बादलों को देख कर वे कहते हैं कि यह बादल नहीं हैं, दक्षिण की सेना उमड आई है। ये (बादलों की) घटाएँ नहीं हैं, ये अहंकारी शिवाजी के दल के हाथी हैं। यह बिजलियों की दमक नहीं है, ये तो-वीरों के नंगी तलवारें हैं और यह इन्द्रधनुष भी नहीं है, ये सवारों के रंग बिरंगे झंडे हैं। (इस भाँति बादलों को शिवाजी की सेना समझ कर) मुगलों की बेगमें अपने अपने महलों को छोड़ कर भाग जाती हैं तथा बहती हुई हवा के शब्द से बार-बार चौंक उठती हैं और कहती हैं कि हे दिल्लीपति भूल मत कर, ये घोर बादल नहीं गरज रहे हैं, ये सितारागढ़ के मालिक शिवाजी के नगाड़े बज रहे हैं।

अलंकार—शुद्धापह्नुति। सत्य बात, बादल और बिजली आदि को छिपा कर इनके स्थान पर सेना हाथी और खड्ग आदि को स्थापित किया गया है।

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की।[१]
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न,
घामैं घुमराती छोड़ि सेजियाँ सुखन की॥

पाठान्तर—

१ दिल्ली दल गही दसा दीरघ दुखन की—अर्थात् दिल्ली की सेना दीर्घ दुखों की दशा प्राप्त कर लेती है (दिल्ली दल की दशा बड़ी दुखपूर्ण होजाती है)

'भूषन' भनत पति-बाँह-बहियान' तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥५॥

शब्दार्थ—बाजि = घोड़ा। सैन = सेना। दिल्गीर = (फारसी) दुखी, दीन। तनिया = चोली, कचुकी। तिलक = मुसलमानी ढीला और पिंडली तक लबा कुर्ता। सुथनियाँ = पायजामा। पगनिया = जूतियाँ। घामे = धूप में। घुमराती = घूमतीं। पति-बाँह-बहियान = जो अपने पतियों की बाहों पर वहन की जाती थीं, अर्थात् जिन्हें उनके पति बड़े प्यार से रखते थे। छहियाँ = छाँह। छबीली = छबिवाली, सुन्दरी। ताकी रहियाँ = ढूँढ रही हैं। रुखन = रूखों, (पेड़ों) की। बालियाँ = बालों की लटें। बिथुर = बिखरी हुई। आलियाँ = अलियाँ, भ्रमरियाँ। नलिन = कमल। लालियाँ = लालिमा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि युद्धार्थ शिवाजी की सेना के घोड़े और हाथी सजते ही दीन दिल्ली-निवासियों की अति दुःखमय दशा हो जाती है। घबड़ाहट के कारण मुगलों की स्त्रियाँ बिना चोली, कुर्ते, पायजामे और जूतियाँ पहिने सुख-शैया त्याग कर कड़ी घाम (धूप) में भागती फिरती हैं। वे सुन्दर युवतियाँ जो पति की बाहों पर वहन की जाती थीं अर्थात् जिन्हें पति बड़े प्यार से रखते थे अब पेड़ों की छाया ढूँढ रही हैं। उनके मुखों पर बालों की लटें ऐसी बिथुरी (तितर-बितर) पड़ी हुई हैं जैसे कि कमलों पर भौंरियाँ मँडरा रही हों; और भय के कारण उनके मुखों की लाली मलिन हो गई है (अर्थात् भय से और जगल में इधर-उधर फिरने से उनके मुखों का रग फीका पड़ गया है)।

अलकार—चचलातिशयोक्ति (प्रथम चरण में) उपमा (चतुर्थ चरण में) और अनुप्रास।

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
'भूषन' भनत तिहुँ लोक[1] मैं तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ॥
आगरे अगारन कौं नाँघतीं पगारन[2],
सँभारती[3] न बारन बदन[4] कुम्हिलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥ ६॥

शब्दार्थ—कत्ता = बाँका, एक प्रकार का तलवार जैसा शस्त्र। कराकनि = कड़ाकों से, चोटों से। चकत्ता = चगेजखाँ के वंशज मुगल, औरंगजेब। कटक = सेना। अकह = अकथनीय। धाक = आतंक। बिलाइत = विदेशी राज्य। बिललानियाँ = घबरा गईं, व्याकुल हो गईं। अगारन = मकानों में, महलों मे। पगारन = चारदीवारियों को। कहा कीबी = क्या करेंगी। नीबी = धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ नाभि के नीचे खोंसती हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे वीर शिवाजी! आपने कत्ता शस्त्र की चोट से औरंगज़ेब की सेना को काट काट कर वीरता की अकथनीय कहानियाँ बना दी। तीनो लोकों में आपका आतंक ऐसा छा गया है कि उस से दिल्ली एवं अन्यान्य विदेशी रियासतें सब व्याकुल हो गई हैं। भय

पाठान्तर—

१ और मुलक।

२ आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै—अर्थात् आगरे के महलों की मुँडेरों को पकड़-पकड़ कर कूदकर भाग रही हैं।

३ बाँधती। ४ मुखन।

के कारण (बेगमें और रानियाँ) आगरे के महलों की चहारदीवारी को फाँद कर भाग रही हैं। उनके मुख मंडल कुम्हला गये हैं और जल्दी के कारण वे अपने बालों को भी नहीं सम्हालती (अर्थात् उनके बाल बिखर रहे है)। दीन दशा ग्रस्त बेगमें पायजामा और रानियाँ नीवी पकड़े भागती हुई कहती जाती हैं कि अब हम क्या करेंगी ?

अलंकार—वृत्यनुप्रास।

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन (बीन) बेर खाती हैं॥
भूपन सिथिल अंग भूपन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥ ७॥

शब्दार्थ—घोर = बड़ा। मंदर = मंदिर, महल। मंदर = पर्वत। कंद मूल=ऐसे पदार्थ जिन मे कंद (मीठा) पड़ा हो, अर्थात् बढ़िया मिठाई। कंदमूल=कन्द और जड़ गाजर, मूली आदि। तीन बेर=तीन बार। तीन बेर = बेरी के तीन बेर। भूपन = जेवरों से। भूपन = भूख से। बिजन = व्यजन, पंखा। बिजन = जन रहित अर्थात् जंगल। तेऽब = ते (वे) अब। नगन जड़ाती = गहनों में नग जड़वाती थीं। नगन जड़ाती = नग्न होने के कारण जाड़े मे मरती हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे वीरवर शिवाजी! आपके भय के कारण जो मुगल घराने की स्त्रियाँ बड़े बड़े ऊँचे महलों के भीतर रहती थीं, वे अब ऊँचे ऊँचे भयानक पर्वतों में छिपी रहती हैं। जो पहले मिठाई

खाती थीं वे अब कंद और मूल (अर्थात् शकरकंद और गाजर मूली आदि जड़ें) खाती है। तीन बार भोजन करने वाली अब केवल बेरी के तीन बेर खाकर ही गुज़ारा करती हैं (यदि 'बीन बेर' पाठ हो तो अर्थ होगा बेर चुन चुन कर खाती हैं) । (नाज़ुक होने के कारण) गहनों के भार के कारण जिनके अंग शिथिल थे अब वे भूख के मारे दुर्बल हो रही हैं। जो सदा पंखे झलवाती थीं वे अब निर्जन जंगल में मारी मारी फिरती हैं और जो रत्नजटित गहने पहनती थीं वे अब बिना वस्त्र के नग्न जाड़े में मरती हैं।

अलंकार—यमक।

> उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
> तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती है।
> अति अकुलातीं मुरझाती न छिपाती गात,
> बात न सुहाती बोलै अति अनखाती हैं॥
> 'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
> तेरी धाक सुनै अरिनारी बिललाती हैं।
> कोऊ करै घाती कोऊ रोती पीट छाती घरै[1]
> तीन बेर खाती तेऽब तीन (बीन) बेर खाती हैं॥८॥

शब्दार्थ—सगबग=भयभीत या शीघ्रता पूर्वक। सोहाती= अच्छी लगती। अनखाती=नाराज होती है, झुँझलाती है। घाती = आत्मघात।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे सिंह के समान वीर साहजी के

पाठान्तर—

१ "जोन्ह मैं न जातीं ते वै धूपै चली जातीं पुनि—अर्थात् जो जोन्ह (ज्योत्स्ना, चाँदनी) मे भी नहीं निकलती थीं वे अब धूप मे चली जा रही हैं।

सुपुत्र महाराज शिवाजी! आपके प्रताप को सुनकर शत्रु स्त्रियाँ व्याकुल हो रुदन करती है। जिन सुकुमार स्त्रियों ने कभी पलंग से उतर कर पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा था, अब वे भयभीत हुई हुई रात दिन भागी चली जा रही हैं। वे अत्यन्त व्याकुल हुई हुई हैं और मुरझा रही हैं तथा उन्हें गात (शरीर) ढकने तक का ध्यान नहीं है। किसी की बात उन्हें अच्छी नहीं लगती उलटा कुछ बोलने पर झुँझला उठती हैं। कोई आत्म-घात करती है, कोई छाती पीट पीट कर रोती हैं। जो घर में पहले तीन तीन बार भोजन करती थीं वे ही अब केवल बेरी के तीन बेर खाकर गुजारा करती हैं या बेर चुन चुन कर गुज़ारा करती हैं।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

अन्दर ते निकसी न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन की भीर मैं सम्हारती न छाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि[1] मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं॥

शब्दार्थ—निकसी = निकली। मन्दिर = महल। पथ = रास्ता। उघारे = नंगे। बिहाल = बेहाल, व्याकुल। हयादारी = लज्जा। चीर = वस्त्र (बुर्का)। फारि = फाड़ कर। झुंझलाती = क्रुद्ध होती। नरम = नम्र, दीन। बनासपाती = वनस्पति, शाक-पात।

पाठान्तर—

१ हार डारि चीर फारि—(हारों को फेंक और वस्त्रों को फाड़ कर)।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी महाराज! आपकी धाक (आतंक) सुनकर बादशाह की वे बेगमें जिन्होंने कभी भीतर से निकल कर महलों का दरवाज़ा भी नहीं देखा था, अब बिना रथ (सवारी) के नगे पैर रास्ते में जाती हैं। जिनको कभी हवा भी नहीं लगती थी (अर्थात् जो महल के अन्दर ही रहती थीं) अब वे ही हवा से व्याकुल हो रही हैं और ऐसी घबरा रही हैं कि लाखों मनुष्यों की भीड़ में भी वे अपनी छाती को नहीं सँभालतीं (कि उन पर वस्त्र पड़ा है या नहीं)। (घबराहट के कारण) उन्होंने लज्जा रखने के वस्त्र (बुर्के) को भी फाड़ दिया है, अथवा लज्जा रूपी वस्त्र को भी फाड़ दिया है—दूर कर दिया है और मन में झुँझला रही हैं। इस भाँति बादशाह की बेगमों पर ऐसी दीनावस्था उपस्थित हुई है कि जो पहले नासपाती आदि फल खाती थीं अब वे सागपात खाकर ही गुज़ारा करती हैं।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

अतर गुलाब रसचोवा घनसार सब,
सहज सुवास की सुरति बिसराती हैं[१]।
पल भरि पलंग ते भूमि न धरति पाँव,
भूली[२] खान-पान फिरैं[३] बन बिललाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
दारा हार बार न सम्हारैं अकुलाती हैं[४]।

पाठान्तर—

१ अतर गुलाब चोवा चंदन सुगंध सब, सहज सरीर की सुबास बिकसाती हैं—(जो बेगमे शरीर की स्वाभाविक सुगध से गुलाब के इत्र, चोवा, चदन आदि की सुगध उत्पन्न करती थीं अर्थात् जिनके शरीर से ऐसी सुगध निकलती थी)

२ तेई (वे ही)। ३. छोड़ि (छोड़ कर)।

४ भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास, हार-भार तोरि

ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं ॥ १० ॥

शब्दार्थ—अतर गुलाब = गुलाब का इत्र। चोवारस = सुगन्धित द्रव्य, जो केसर कस्तूरी आदि से बनाया जाता है। घनसार = कपूर। सहज = स्वाभाविक, साधारण। सुरति = ध्यान। बिललाती = रोती। दारा = स्त्रियाँ। हार = माला। बार = बाल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी! आप की धाक (आतंक) को सुन कर बादशाहों की बेगमें भय के कारण गुलाब का इत्र, चोवारस और कपूर आदि साधारण सुगंध की सामग्रियाँ भी भूल गई हैं। जिन्होंने सुकुमारता के कारण पलँग से उतर कर पृथ्वी पर पल भर भी पैर न रक्खे थे, वे खाना पीना भूल कर वन-वन मारी-मारी फिर रही हैं। व्याकुलता के कारण वे स्त्रियाँ न अपने हारों को सँभाल पाती हैं और न केशों को। बादशाहों की बेगमों की ऐसी दीन दशा हो गई कि जो पहले नासपाती आदि फल खाती थीं अब उन्हें सागपात पर ही गुजारा करना पड़ता है।

अलंकार—यमक।

सोंधे को अधार किसमिस जिन को अहार,
चार को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं[1]।
ऐसी अरिनारी सिवराज बीर तेरे त्रास,
पायन में छाले परे, कन्दमूल खाती हैं[2]॥

निज सुधि बिसराती हैं—(हे वीर, शिवराज, तुम्हारे डर से वे हारों का भार छोड़ कर—हारों को फेंक कर—अपनी सुध भूल रही हैं)।

१. चार-अंक-लंक मुख चंद के समानी है—(जिनकी कमर ४ के अंक के समान है और मुख चन्द्रमा के समान है)।

२. काय कुम्हलानी है (जिनका शरीर कुम्हला गया है)

ग्रीषम तपनि ऐसी तपती न सुनी कान,
कज कैसी कली विन पानी मुरझाती हैं ।
तोरि तोरि आछे मे पिछौरा सो निचोरि मुख
कहैं सब कहाँ पानी मुकतो मै पाती है ॥११॥

शब्दार्थ—सौंधे = सुगंध । अहार = भोजन । चार को मो अक लंक = चार के अक (४) के समान (पतली) कमर । तपनि=गर्मी । कंज = कमल । आछे से = अच्छे से । पिछौरा = चादर । कहाँ पानी मुकतों मै = मोतियों में पानी कहाँ है ? (मोतियों का पानी उनकी चमक होती है, परन्तु प्यासी स्त्रियों ने उसे सचमुच का पानी माना है) ।

अर्थ—जिनका जीवन सुगंधि पर निर्भर था, जिनका भोजन किशमिश आदि मेवे थे, चार के अंक के (मध्यभाग के) समान जिनकी बहुत पतली कमर थी, और जो (अपने सौन्दर्य से) चन्द्रमा को भी लज्जित करती थीं, ऐसी शत्रुस्त्रियों के हे वीर शिवाजी ! आपके भय के कारण भागते-भागते पैरों में छाले पड़ गये हैं, और वे अब कंदमूल खाकर अपना गुजारा करती हैं । ग्रीष्म ऋतु की ऐसी तेज़ गर्मी में जैसी

---

३ ग्रीषम की तपती की विपती न कान सुनी कंज की कली सी विनु पानी मुरझानी है (जिन्हों ने ग्रीष्म ऋतु की गर्मी की विपत्ति कानों से भी नहीं सुनी थी वे कमल की कली की तरह विना पानी के मुरझा गई है) ।

४ तोरि के छरासों अच्छरा-सी यो निचोरि कहै, 'तुम नै कहे ते कंत मुकता मैं पानी हैं'—(अच्छरा सी [अप्सरा जैसी स्त्रियॉ] छरा [इजारबद, नाला] से मोती तोड तोड कर उन्हें निचोड़ कर, [पानी न निकलता देख कर] कहती है—"हे नाथ आपने तो कहा था इन मोतियों मे 'पानी' है")

कभी सुनी भी नहीं गई थी, वे स्त्रियाँ प्यास के कारण कज (कमल) की कलियों की भाँति कुम्हला रही है। वे सब बढ़िया चादरों से मोती तोड तोड कर मुँह में निचोडती हुई कहती हैं कि इन मे पानी कहाँ ? ('आब' का अर्थ पानी भी है और चमक भी, मोती में आब अर्थात् चमक होती है, परन्तु वेगमें घवराहट के कारण मोतियों को निचोडती हैं और कहती है कि इनमें पानी नहीं है) ।

अलङ्कार—उपमा, प्रतीप, और भ्रम । उपमा—'चार को सो अक ल्क' । प्रतीप—'चद सरमाती है । भ्रम—'तोरि तोरि आछे · · कहाँ पानी में मुकतो पाती है ।'

किबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है ।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि कै मारि डार्यो',
मेहर हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है ।
बन्धु तौ मुरादबकस बादि चूक करिबे को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है ।
'भूषन' सुकवि कहै सुनौ नवरगजेब,
एते काम कीन्हें तब पातसाही पाई है ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—किबले=फा० किबला, मुसलमानों का तीर्थ स्थान, पूज्य व्यक्ति या देवता । आगि लाई है=आग लगा दी । मेहर=कृपा, दया । बादि=व्यर्थ । चूक=दोष, गलती, बुराई ।

पाठान्तर—

१ कैद कियो ।

२ खाइ कै कसम, त्यो मुराद को मनाई लियो, फेरि ताहू साथ अति कीन्ही तै ठगाई है—(अर्थ स्पष्ट है)

३ ऐसे ही अनीति करि ।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि हे औरगज़ेब ! तुमने अपने पिता शाहजहाँ को जो पूज्य देवता के (समान) थे कैद कर ऐसा घोर अनर्थ किया मानो अपने तीर्थ-स्थान मक्का को जला दिया हो। दारा को पकड़ कर तुमने मार दिया, उस पर तुम्हें कुछ भी दया न आई यद्यपि वह तुम्हारा माँ का जाया सगा भाई था। और अपने भाई मुरादबख्श के साथ किसी प्रकार की चूक (बुराई, धोखा) न करने की तुमने कुरान बीच में रख कर व्यर्थ ही कसम खाई थी (अर्थात् मुरादबख्श को बाद-शाह बनाने के लिए धर्म-ग्रन्थ की सौगन्ध खाने पर भी धोके से उसे मार डाला)। इतने अनर्थ कार्य करने के पश्चात् तुम्हें बादशाहत मिली है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'मानो मक्के आगि लाई है', मे।

हाथ तसबीह लिये प्रात उठै[1] बन्दगी को,[2]
आपही कपटरूप कपट सुजपके[3]।
आगरे मै जाय दारा चौक मैं चुनाय लीन्हो,
छत्र हू छिनायो मानों मरे बूढे बप के[4]।
कीन्हों है सगोत घात सो मै नाहिं कहौ फेरि,[5]
पील पै तुरायो चार चुगल के गपके[5]।
'भूपन' भनत छरछंदी मतिमंद महा,[6]
सौ सौ चूहे खाइ कै बिलारी बैठी तपके ॥१३॥

---

१ करै। २ सी। ३ मन के कपट सबै सँभारत जपके—(जप कर के मन के कपट को सँभालता है)। ४ छत्र हू छिनाय लीन्हो मारि बूढ़े बप के। ५ सूजा बिचलाई कैद करि कै मुराद मारे, ऐसे ही अनेक हने गोत्र निज बप के—(शुजा को धोखा देकर विचलित कर दिया और मुराद को कैद कर के मार डाला, ऐसे ही अपने वश के और कई लोगो को चुप-चाप मार दिया)। ६ भूषण भनत अब साह भये साँचे जैसे,

शब्दार्थ—तसबीह=(फा०) माला। बंदगी=ईश्वर का भजन। कपट सुजप कै=कपट का जप करके। मानों मरे=मानो मर गया हो। बप=बाप। सगोत=अपने वंश वाले। घात=नाश। पील=(फा०) फील, हाथी। चार=चर, दूत। गप कै=गप्प उड़ाने से, झूठ कहने से। छरछंदी=छली। तप के=तप करने के लिए।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब! तुम स्वयं कपट रूप हो, प्रातःकाल उठकर ईश्वर भजन के लिए माला हाथ में लेकर कोरा कपट का ही जप जपते हो। तुमने अपने सगे भाई दारा को आगरे के किले के चौक में गड़वा दिया। बूढे जीवित बाप को मरा मान कर उसका राज-छत्र छीन लिया। मैं और अधिक कहाँ तक कहूँ, तुमने बिना विचार किये ही चुगलखोर दूतों की झूठी बातों पर अपने वंश वालों को हाथी से दबवा कर मरवा डाला। तुम बड़े ही चालबाज और खोटी बुद्धि वाले हो, (परन्तु लोगों की दृष्टि में महात्मा बन रहे हो लेकिन यह ऐसी ही बात है जैसे) सैंकड़ों चूहे खाकर बिल्ली तपस्या करने बैठी हो।

अलंकार—छेकोक्ति, क्योंकि अन्तिम पंक्ति में लोकोक्ति का प्रयोग है।

कैयक हजार किए[1] गुर्ज-बरदार ठाढ़े,
करिकै हुस्यार नीति पकरि[2] समाज की।
राजा जसवंत को बुलायकै निकट राख्यो,
तेऊ लखैं नीरे जिन्हैं[3] लाज स्वामि-काज की॥
'भूषन' तबहुँ ठठकत ही गुसलखाने[4],
सिंह लौं झपट गुनि[5] साहि[6] महाराज की।

१. जहाँ। २. सिखई। ३. जिन को सदाई रही—(यह जसवंतसिंह का विशेषण है अर्थात् जिस जसवंतसिंह को सदा स्वामि काज की लाज रही) ४. भूषण भनत ठाढ़ो पीठ है गुसुल खान—(भूषण कहते हैं कि पीठ की तरफ—पीछे—गोसलखान खड़ा है)। ५ मन। ६ मानी।

हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की[1],
कीन्ही[2] तब नौरँग ने भेंट सिवराज की ॥१४॥

शब्दार्थ—कैयक=कई एक। गुर्जबरदार=गदाधारी। नीति पकरि समाज की=शाही दरबार के नियमानुसार। नीरे=समीप। जिन्हें लाज स्वामि काज की=जिनको स्वामी के काज की लाज है अर्थात् स्वामिभक्त। ठठकत=डरते डरते। गुनि=गुन कर, समझ कर। फड=कतार।

अर्थ—(शिवाजी से मिलने के समय औरंगज़ेब ने) शाही दरबार के नियमानुसार कई हज़ार गदाधारी वीर पुरुष बड़ी सावधानी के साथ खड़े कर दिये। जोधपुर के महाराजा यशवंतसिंह जी को अपने निकट ही बुला लिया और अन्य बहुत से स्वामिभक्त सरदार भी समीप ही दिखाई देते थे। भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब ने यह समझ कर कि शिवाजी सिंह की भाँति (अचानक) न झपट पड़े, हथियारों की मनाही करके और अपने सरदारों की कतार बाँध कर डरते डरते गुसलखाने (स्नानागार) के पास शिवाजी से भेंट की।

अलंकार—'सिंहलों झपट' में, उपमा। हेतु।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हज़ारिन[3] के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसैल[4] गुसा धारि उर[5]
कीन्हो न सलाम न बचन बोले सियरे॥

---

१. हठते हथ्यार फेंट बाँधि उमराव राखे—(हठ पूर्वक उमरावों को फेंट में हथियार बँधवा कर उन्हें अपने निकट खड़ा किया)। २ लीन्ही।

३. जाय ज़ारिन (जारिन, नीच, छोटा, यहाँ पन्चहज़ारी से तात्पर्य है।) ४. गुसील। ५. मन।

'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥१५॥

शब्दार्थ—ठाढो=खड़ा। रहिबे=रहने। नियरे=समीप। गैर मिसिल=अनुचित। गुसैल=क्रोधी। उर=हृदय। सियरे=शीतल, नम्र। बलकन लाग्यो=क्रोधित होने लगे, बिगड़ उठे। उड़ाय गये जियरे=जी उड़ गये, प्राण सूख गये, बहुत घबरा गये। तमक= क्रोध। निरखि=देख कर। पियरे=पीले।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो शिवाजी सबसे उच्च स्थान पाने के योग्य थे उन्हें औरंगजेब ने अपने छ हजारी जैसे छोटे छोटे सरदारों के निकट खडा कर दिया। इस अनुचित व्यवहार को देख कर गुस्सावर शिवाजी ने मन में अत्यन्त क्रोधित हो औरङ्गजेब को न सलाम किया, न शीतल वचन ही कहे, उलटे बिगड उठे। जिससे समस्त पातसाही (शाही दरबार) के प्राण सूख गये (अर्थात् वे अत्यन्त भयभीत हो गये) शिवाजी का तमक (क्रोध) से लाल मुख देख औरंगज़ेब का चेहरा स्याह तथा सिपाहियों का पीला पड गया।

अलकार—विषम। 'लाल मुख सिवा' रूप कारण से 'स्याह मुख नवरग' आदि विरुद्ध कार्य है। तीसरा विषम है। ९।९

राना भो चमेली[1] और बेला सब राजा भये,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।

---

१. केतकी भो राना (उदयपुर का राणा केतकी अर्थात् केवडे का फूल है)।

सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर[1],
भ्रमत भ्रमर जैसे[2] फूल की समाज है ॥
'भूषन' भनत सिवराज वीर तैंहीं देस-
देसन मैं राखी सब दच्छिन की लाज है[3] ।
त्यागे सदा षटपद-पद अनुमान यह[4],
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥१६॥

शब्दार्थ—भो = हुआ। भये = हुए। ठौर-ठौर = स्थान-स्थान पर। सिगरे = सब। आनि = अन्य। कुंद = एक फूल। भ्रमत = घूमता है। भ्रमर = भौंरा। तैंहीं = तू ने ही। षटपद = भौंरा। षटपद-पद = भौंरे का पद (अधिकार), भौंरे का काम, अर्थात् पुष्प रस लेना। चंपा = पुष्प विशेष, इस पर भौंरा नहीं बैठता।

अर्थ—उदयपुर के राणा चमेली के समान तथा अन्य सब राजा बेला के समान हैं। औरंगज़ेब रूप भौंरा स्थान स्थान पर (मँडरता हुआ) इन फूलों से रस लेता है (कर वसूल करता है अथवा सेवा करवाता है)। और सब अमीर कुँद फूल के समान हैं। वह (औरंगज़ेब) घरघर (राज्य राज्य में) इस भाँति घूमता है जैसे फूलों पर भ्रमर मँडराता हो। किंतु हे वीरवर शिवाजी! तुमने ही समस्त देशों में दक्षिण देश की लज्जा रखी है (अर्थात् तुमने दक्षिण देश को परास्त होने से बचाकर औरंगजेब रूपी भ्रमर को वहाँ का पुष्प रस नहीं दिया)। ऐसा अनुमान

पाठान्तर—

१. सिगरे अमीर भये कुन्द मकरंद भरे (सब अमीर रस युक्त कुन्द का फूल हैं)। २. भृंग सो भ्रमत लखि (भौंरे के समान घूमता है)। ३. भूषन भनत सिवराज देस देसन की राखी है बटोरि एक दच्छिन मे लाज है (अर्थ स्पष्ट है)। ४. तजत मिलिंद जैसे तैसे तजि दूर भाग्यो।

होता है कि औरंगज़ेब भ्रमर है, तो शिवाजी चम्पा के फूल हैं, क्योंकि चम्पा को पाकर ही भ्रमर अपना रसास्वादन कार्य त्यागता है।

अलंकार—उपमामिश्रित रूपक।

कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी* विराज है।
पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
सरस बुंदेला सो चमेली साज बाज है[1]॥
'भूषन' भनत मुचुकुंद बड़गूजर हैं,
बघेले बसंत सब कुसुम-समाज हैं।
लेइ रस एतेन कों बैठ न सकत अहै,
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है॥१७॥

शब्दार्थ—कूरम = कूर्म, कछुआ अर्थात् कछवाहे क्षत्रिय (जयपुर के महाराज)। कमधुज = कबंधज, जोधपुर के महाराजा युद्ध में इनके पूर्वज कन्नौज नरेश जयचंद का कबंध उठा था, (रुंड उठकर लड़ा था) इसी से ये कबंधज कहलाते हैं। कदम = कदम्ब, एक फूल। गौर=गौड़ क्षत्रिय। पाँडर = एक फूल, कुंद।

---

* छन्द नं० १६ मे महाराणा उदयपुर को चमेली पुष्प की उपमा दी है परन्तु वह इतनी फबती नहीं जितनी इस छन्द में केतकी की उपमा। वास्तव में केतकी के रसास्वादन में भौंरे को उसके काँटों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, वैसे ही औरंगजेब ने भी बड़ी-बड़ी आपत्तियों का सामना करके महाराणा [राजसिंह] को वश में किया था।

पाठान्तर—

१. बकुल बुँदेला अरु हाड़ा हंसराज है (बुंदेले मौलसिरी और हाडा हंसराज पुष्प हैं)। २. सब ही को रस लेकै।

पवार = परमार(राजपूतों की एक जाति) चंदावत = राजपूतों की एक जाति। सरस = श्रेष्ठ। मुचुकुन्द = एक फूल। वडगूजर = राजपूतों का एक कुल। बघेले = बघेल खंड के राजपूत। कुसुम = फूल।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि कछवाह वंशी जयपुर नरेश कमल हैं, कबंधज जोधपुर के महाराज कदम्ब के पुष्प हैं, गौर क्षत्रिय लोग गुलाब है, उदयपुर के महाराणा कँटीली केतकी (केवड़े का फूल) हैं, पँवार वंशी क्षत्रिय पाँडर (कुंद) हैं, चंदावत राजपूत जूही हैं, श्रेष्ठ बुँदेले लोग खिली हुई चमेली हैं, बडगूजर वंशी क्षत्रिय मुचुकुन्द-पुष्प है, और बघेले लोग वसंत ऋतु में खिलने वाले अन्य फूलों का समूह हैं। औरंगजेब रूपी भ्रमर इन समस्त पुष्पों का रस लेता है किंतु वह शिवाजी रूपी चम्पा पुष्प पर नहीं बैठ सकता (अर्थात औरंगज़ेब ने इन समस्त क्षत्रिय वंश के राजा महाराजाओं को परास्त कर दिया, किंतु तीक्ष्ण गन्ध वाले चम्पा पुष्प के समान प्रचण्ड प्रतापी महाराज शिवाजी के पास नहीं फटक सका)।

अलंकार—उपमामिश्रित रूपक।

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समै[1] रावराने सबै गए लबकी।
गौरा गनपति आप औरंग को देखि ताप,
आपने मुकाम सब मारि गये दबकी[2]॥
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी।

पाठान्तर—

१. डूबे। २. गौरा गनपति आप औरन को देत ताप अपनी ही बारि सब मारि गये दबकी (पार्वती और गणेश जी

कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी ॥१८॥

शब्दार्थ—देवल = देवालय। गिराबते = गिराते। अली = मुहम्मद का दामाद, मुसलमानों का चौथे खलीफा। गबे लबकी = लबक गये, भाग गये। गौरा = पार्वती। गनपति = गणेश। ताप = प्रताप तेज। मुकाम = स्थान। मारि गये दबकी—दबक गये, छिप गये। पीरा = पीर, मुसलमान सिद्ध। पयगम्बरा = पैगम्बर, ईश्वर के दूत। दिगम्बरा = औलिया (मुसलमानों में प्राय नंगे रहने वाले साधु)। रब = खुदा (यहाँ पर तात्पर्य है मुसलमानी मजहब)। कला = शक्ति,देवताओं का प्रत्यक्ष प्रभाव। सुनति= सुन्नत, खतना, मुसलमानों का संस्कार, जिसमें पुरुष के मूत्रेन्द्रिय के अग्र भाग के ऊपर के ढीले चमड़े को काट डाला जाता है।

अर्थ—मुसलमान देवालयों को तोड-तोडकर गिराते हैं और अली के झडे फहरा रहे है। ऐसे समय राव राणा सब डर कर भाग गये। स्वयं पार्वती और गणेशजी औरगजेब का प्रताप देख कर अपने अपने स्थान में दबक गये (छिप गये)। पीर, पैगम्बर और औलिया दिखाई देते हैं (अर्थात् कोई हिन्दू साधू सन्त नजर नहीं आता, सब मुसलमान फ़क़ीर ही फकीर दिखाई पडते हैं)। सिद्ध लोगों की सिद्धता चली गई, सब तरफ मुसलमानी मत की दुहाई फिर रही है। काशी का प्रभाव नष्ट हो गया मथुरा में मस्जिदें बन गई। यदि शिवाजी न होते तो सब हिन्दुओं को खतना कराना पडता(मुसलमानी मत स्वीकार करना पडता)।

अलकार—सभावना और अनुप्रास।

आदि जो दूसरों को दण्ड देते हैं, वे सब अपनी रक्षा करने के समय दबक गये)।

१. जाती। २. होती।

आदि की न जानो देवी-देवता न मानो साँच,
कहूँ जो पिछानो बात कहत हौ अब की।
बब्बर अकब्बर हिमायूँ हद्द बाँधि गए,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान वेद ढब की॥
इन पातसाहन मै हिन्दुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरै तब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सब की ॥१६॥*

* कई प्रतियों मे इस कवित्त का पाठ निम्नलिखित है:—
सॉच को न मानै देवी देवता न जानै अरु,
ऐसी उर आनै मैं कहत बात जबकी।
और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुनकी,
अकब्बर साहजहॉ कहैं साखि तब की॥
बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद्द बॉधि गये,
दोनों एक करी ना कुरान वेद ढब की।
कासीहू की कला जाती मथुरा मसीत होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की॥

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि मैं उस समय की बात कहता हूँ जब कि अन्य बादशाह थे, और जिन्हे हिन्दुओं की बडी चाह थी, जिसके साक्षी अकबर और शाहजहॉ है। बाबर के पुत्र हुमायूँ ने हिन्दुओं की मर्यादा ज्यो की त्यों रक्खी। उन्होंने कुरान और वेद की रीति को एक नहीं किया अर्थात् वेद की रीतियों को उठाने का प्रयत्न नहीं किया,किन्तु औरङ्गजेब सत्य और देवी देवताओं का निरादर कर रहा है। यह सोचकर मैं कहता हूँ कि यदि शिवाजी न होते तो काशी का प्रत्यक्ष प्रभाव चला जाता, मथुरा मे मसजिदे बन जातीं और समस्त हिन्दुओं को खतना करवाना पडता।

शब्दार्थ—आदि=आदि पुरुष, परमात्मा। पिछानो=पहचानो। ढब = ढग, रीति-नीति। चाह=प्रेम, इच्छा। हुती=थी। साख= साक्षी, गवाह। पूरैं=पूर्ण करते हैं।

अर्थ—चाहे आप ईश्वर को न जानें, देवी और देवताओं को भी न माने पर मैं इस समय जो सच्ची बात कहता हूँ उसे पहचानिये। बाबर,हुमायूँ और अकबर हिन्दू और मुसलमानों की तथा वेद और कुरान की सीमा बाँध गये हैं। इन पुराने बादशाहों में हिन्दुओं के प्रति प्रेम था। जहाँगीर व शाहजहाँ उस समय के गवाह हैं (पर ये पिछली बातें हैं) अब तो काशी का प्रभाव नष्ट हो गया और मथुरा में मस्जिदें बन गईं और यदि शिवाजी न होते तो सब हिन्दुओं को खतना करवाना पडता।

अलकार—सभावना और अनुप्रास।

सूचना—इस पद्य के अन्तिम चरण का प्रथम तीन चरणों से ठीक मेल नही मिलता। अन्तिम चरण केवल समस्यापूर्ति के रूप मे जोड़ दिया गया प्रतीत होता है। कुछ प्रतियों मे इस पद्य का कुछ दूसरा पाठ है जो पृष्ठ ३१२ पर फुटनोट में दिया गया है। पर वह पाठ होने पर भी यह पद्य सुसम्बद्ध नहीं प्रतीत होता।

कुम्भकन्न असुर औतारी अवरगजेब,[1]
कीन्हीं कत्ल मथुरा[2] दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव सहर महल्ला बाँके[3]
लाखन तुरुक कीन्हें छूट गई तबकी[4]॥

---

१. कुमकर्न औरग को औनि अवतार लैके—(कुम्भकर्ण ने पृथिवी पर औरंगजेब का अवतार लेकर) २. मथुरा जराइ कै—(मथुरा को जला कर) ३. ४. खोदि डारे देवी-देव-देवल अनेक सोई, पेखि निज पानिन ते छूटी माल सब की—(देवी देवताओं के अनेक देवालय—मन्दिर—खोद डाले, इसे देख कर

'भूषन' भनत भाग्यो[5] कासीपति विस्वनाथ,
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की[6] ।
चारों वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि[7],
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की ॥२०॥

शब्दार्थ—कुम्भकन्न = कुम्भकर्ण । कीन्ही कत्ल मथुरा = मथुरा में कत्लआम करवाया । सन् १६६९ ई० में औरङ्गजेब ने मथुरा मे केशवराय का प्रसिद्ध मदिर तुडवाया था, यह मदिर महाराज वीरसिहदेव बुन्देला ने ३३ लाख रुपया लगाकर बनवाया था । तबकी = (अर्वी), तबकाबन्दी, साम्प्रदायिक धर्म । कासीपति विस्वनाथ = औरङ्गजेब ने विश्वनाथजी का मन्दिर सन् १६६९ ई० में तोड़ा था,उसी समय कहा जाता है कि श्री विश्वनाथजो की मूर्ति मन्दिर से भाग कर ज्ञानवापी नामक कूप में (जो मन्दिर के पिछवाड़े है) कूद पड़ी । भव=महादेव । कलमा = मुसलमानी मत का मुख्य मंत्र—'ला इलाह इल्लिल्ला मोहम्मद रसूलिल्लाह' ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कुम्भकर्ण राक्षस के अवतार औरङ्गज़ेब ने मथुरा में कत्ले आम कराकर रब (दीन इसलाम) की दुहाई फिरवा दी। देवी देवताओं को मूर्तियाँ खुदवा डालीं, सुन्दर नगर और मुहल्ले बरबाद कर दिये, लाखों हिन्दुओं का साम्प्रदायिक मत छुड़वा उन्हें मुसलमान बना लिया। भूषण कहते हैं कि जब काशीश्वर विश्वनाथ भाग गये,और स्वय महादेव अपनी गति को भूल गए तो और लोग किस गिनती में हैं। यदि ऐसे समय शिवाजी न होते तो चारों वर्ण

सब के हाथ से मालायें छूट गई) ५. भाजे। ६. और का गनाऊँ नाम गिनती मैं अब की—(मैं औरों का नाम गिनती मे क्या गिनाऊँ) ७. दिल मैं डरन लागे चारों वर्न ताहि समै—(उस समय चारो वर्ण मन मे डरने लगे)

अपना अपना धर्म त्याग कर कलमा और नमाज पढ़ने लगते और सबको खतना करवाना पड़ता।

अलङ्कार—संभावना, काव्यार्थापत्ति और अनुप्रास।

दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज वीर,
जेर कीन्हों देस हद्द बाँध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यो न मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से॥
आमिष अहारी मासहारी दै दै तारी नाचै,
खाँडे तोडे किरचैं उडाय सब तारे से।
पील सम डील[1] जहाँ गिरि से गिरन लागे,
मुण्ड मतवारे गिरैं झुण्ड मतवारे से॥ २१॥

शब्दार्थ—दावा=बराबरी का हौसला। जेर=पराजित। मवास=किला। बनजारे=व्यापारियों की एक जाति जो पहले बैलों पर सामान लादकर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में ले जाया करते थे। आमिष=मास। अहारी=खाकर। मासहारी=मास खाने वाले, भूत, पिशाच आदि। खाडे=चौडी तलवारें। तोडे=तोडेदार बन्दूकें। किरचैं=पतली तलवारें। पील=हाथी। डील=कद। गिरि=पहाड़। मुण्ड मतवारे=मुसलमानी मत के गर्व में गर्वित तुर्कों के सिर।

अर्थ—वीरवर शिवाजी ने बादशाहों की बराबरी करने का हौसला किया। समस्त देशों को पराजित कर अपने राज्य की सीमा दिल्ली के दरबार से अलग ही बाँधली। हठी मरहठों ने उसमें (अपनी हद में) अन्य किसी का क़िला नहीं रहने दिया (अर्थात् अपनी हद के

पाठान्तर—

१. डीलवारे।

सब किले अपने अधिकार में कर लिये) और सबके हथियार छीन लिये जिसके कारण वे (मुसलमान शत्रु) जंगल में बनजारों की भाँति फिरने लगे। मांसाहारी भूत पिशाच गण मांस खाकर ताली बजा बजाकर नाचने लगे। मरहठों ने शत्रुओं के खाँडे, तोड़ेदार बन्दूकें और किरचें तारों के समान उड़ा दीं (अर्थात् उनके छोटे छोटे टुकड़े कर सब तरफ इस प्रकार फेंक दिये कि वे तारों के समान दिखाई देने लगे) हाथी के समान भारी-भारी डील (शरीर) वाले शत्रु पहाड़ की तरह भरभरा कर गिर पड़े, और (मुसलमानी धर्म से) उन्मत्त हुए पुरुषों के सिर कट-कट नशे में चूर पुरुषों के समूह की भाँति गिरने लगे।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,[1]
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै[2] हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं ॥[3]
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मै।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परै कोट मै ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—कमान = तोप। मुरचा = वह स्थान जिस की आड़ मे बैठ कर योद्धा गोली एवं तीर चलाते हैं। दावा बाँधि =

पाठान्तर—

१. छूटत कमान बान बदूकरु कोकबान— (तोप, बाण, बन्दूक और कोकबानों के छूटने से)।

२. दै। ३. दावा बाँधि द्वेपिन पै बीरन लै जोट में— (हिम्मत बाँध कर वीरों की जोड़ लिए शत्रुओं पर हमला कर दिया)

हिम्मत बाँध कर। जोट = समूह। किम्मति = प्रतिष्ठा। भट = योद्धा। झोट = समूह। कोट = किला।

अर्थ—जब मुसलमानों की तोप, गोलियाँ और बाणों के चलने पर मोरचों की आड़ में भी बचना कठिन हो रहा था, उसी समय महाराज शिवाजी ने अपने साथियों को आज्ञा देकर हिम्मत बाँध कर ऐसा प्रबल आक्रमण किया कि उससे शत्रु वीरों के मध्य बडा हुल्लड मच गया। भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी! मैं आपके साहस का कहाँ तक वर्णन करूँ? आपके वीरगणों में आपकी इतनी प्रतिष्ठा है कि वे उमग से मूँछो पर ताव देते हुए कँगूरों पर चढ शत्रुओं को जख्मी करते हुए किले में कूद पडे।

अलंकार—तीसरी विभावना और अनुप्रास।

उतै पातसाहजू के गजन के ठट्ट छूटे,
उमडि घुमडि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराजजू के छूटे सिंहराज औ,
बिदारे कुम्भ करिन के चिक्करत भारे हैं॥
फौजैं सेख सैयद मुगल औ पठानन की,
मिलि इखलासखाँ हू मीर न सँभारे हैं।[1]
हद्द हिन्दुवान की बिहद्द तरवारि राखि,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं॥२३॥

शब्दार्थ—उतै = उधर। ठट्ट = समूह। घन = बादल। कारे = काले। इतै = इधर। सिंहराज = सिंह के समान वीरयोद्धा। बिदारे = फाड दिये। कुम्भ = हाथी का मस्तक। करिन के = हाथियो के।

पाठान्तर—

१. मिलि अफसर काहू भीर न सम्हारे हैं—(सैयद मुगल पठान की भीड़ को कोई भी अफसर नहीं सम्हाल सका)।

चिक्करत = चिघाड़ते हैं। इखलासखॉ = सन् १६७२ ई० मे सलहेरि के युद्ध मे इखलासखॉ मुगलों की ओर से सेनापति बनाया गया था। राखि = रख कर (रक्षा करके)। झारि डारे है = दूर कर दिया है।

अर्थ—उधर बादशाह औरंगज़ेब के मतवाले हाथियों के झुण्ड-के-झुण्ड ऐसे चले, मानों काले-काले बादल इकट्ठे होकर उमड़ रहे हों, तो इधर से महाराज शिवाजी के सिंह के समान वीर योद्धाओं ने छूट कर हाथियों के मस्तकों को विदीर्ण कर डाला जिससे वे बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिंघाड़ने लगे। शेख, सैयद, मुग़ल और पठानों की सम्मिलित फौजों को स्वयं मीर (सरदार) इखलासखाँ भी न सँभाल सका। महाराज शिवाजी ने अपनी महान तलवार के बल से हिन्दुओं की मर्यादा की रक्षा करते हुए कई बार दिल्ली का घमंड चूर कर दिया।

अलंकार—प्रथम चरण मे गम्योत्प्रेक्षा। 'सिंहराज' मे रूपकातिशयोक्ति। अनुप्रास।

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि,
सुनि असुरन के सुसीने धरकतु हैं¹।
देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस²,
आजहूँ लौं परे खगद्त खरकत हैं³॥

पाठान्तर—

१. नर काह सुरन के सीने धरकत हैं—(मनुष्य क्या देवताओं के भी हृदय धड़कते है)।

२. ३. देवलोकहू मैं अजौं मुगल पठानन के, सरजा के सूरन के खग्ग खरकत हैं—(देवलोक में आज भी मुगल पठान और शिवाजी के वीरों की तलवारें खड़खड़ा रही है)।

कटक कटक काटि कीट से उड़ाये केते[1],
'भूषन' भनत मुख मोरे सरकत हैं[2]।
रन भूमि लेटे अधकेटे अरसेटे परें[3],
रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥२४॥

शब्दार्थ—सलहेरि=सन् १६७१ में इस किले को शिवाजी के प्रधान मन्त्री मोरोपंत ने जीता था। असुरन के=मुसलमानों के। खगदत=तीरों के फल (गाँसियाँ)। खरकत=खटकती है, दुख देती है। कटक=काँटा, कटक रूप शत्रु। कीट=कीट। अरसेटे=शिथिल, अशक्त। पठनेटे=युवक पठान।

अर्थ—यह सुनकर कि 'शिवाजी ने सलहेरी की लड़ाई में विजय पाई है' मुसलमानों के कलेजे धड़कने लगते है। स्वर्ग,पाताल, और मर्त्य लोक में शिवाजी का यशगान हो रहा है और (शत्रुओं को) तीरों की गाँसियाँ अब भी दुख दे रही हैं। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने शत्रुओ की सेना को काट-काटकर कीड़े-मकौड़ों की तरह उड़ा दिया और कितने ही मुख मोडकर (पीठ दिखाकर) चुप चाप खड़े हो रहे है। रणभूमि में आधे-आधे कटे हुए, अशक्त, पठान-युवक रुधिर में लथपथ हुए पडे फड़फडा रहे हैं।

अलकार—अनुप्रास और उपमा।

---

१. २. भूपन भनत भारी भूतन के भौनन मैं टाँगी चदावतन की लोथैं लरकत हैं—(बड़े बड़े भूतों के घरों में टँगी हुई चदावत राजपूतों की लोथें हिल रही हैं।

३. कोऊ ना लपेटे अधफारे रनलेटे अजों—(रणभूमि में कोई मृत वीर (कफन से) लपेटा नहीं है वे सब अर्धखडित अवस्था में अब भी पडे हुए हैं)।

मालती सवैया *

केतिक देस दल्यो[1] दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्‍यो गुजरात को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो॥[2]
पजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौरँग मे रँग एक न राख्यो॥२५॥

शब्दार्थ—केतिक=कितने ही। दल्यो=ध्वस्त किया, नष्ट किया दल=सेना। चँगुल चापि कै=पंजे में दबाकर। चाख्यो=चखा, रम लिया, सुख भोगा। नाख्यो=नष्ट किया, फेक दिया। सूरति= गुजरात मे एक प्रसिद्ध नगर, इसे शिवाजी ने ५ वीं जनवरी सन् १६६४ ई० और १३ अक्टूबर सन् १६६० ई० को लूटा था। पेलि=पीस कर। मले=मसल डाले। दीन ह्वै भाख्यो=दीन होकर विनय की। नौरँग=भूषण कवि 'औरँगजेब' को नौरँग कहते थे।

अर्थ—शिवाजी ने कितने ही देश अपनी सेना के बल से पीस डाले। दक्षिण को अपने चंगुल में करके उसका सुख भोगा। गुजरात की शोभा और घमड (अथवा सुन्दरता के अभिमान) को नष्ट कर दिया और सूरत के रस अर्थात् वैभव को चूस उसे खोखला कर त्याग दिया। समस्त मुसलमानों को पंजों से पीस कर मसल डाला, केवल वही बचने पाया जिसने दीनता स्वीकार की। महाबली शिवाजी का वह रंग (गुण) है कि उसने औरगजेब मे एक भी रंग न रहने दिया (अर्थात औरङ्गज़ेब की एक न चलने दी)।

अलकार—अनुप्रास।

---

* इस छंद मे ७ भगण (ऽ।।) और अन्त मे दो गुरु ऽऽ वर्ण होते है। इसका दूसरा नाम 'मत्तगयन्द' भी है।

१. दले। २ राख्यो—(रक्खा, छोड़ा)।

सूबा निरानँद बादरखान गे लोगन बूझत ब्योंत बखानो।
दुग्ग सबै सिवराज लिये, धरि चारु बिचारु हिये यह आनो॥
'भूषण' बोलि उठे सिगरे, हुतो पूना में साइतखान को थानो।
जाहिर है जग में जसवंत, लियो गढसिंह में गीदर बानो॥२६॥

शब्दार्थ—सूबा = सूबेदार। निरानँद बादरखान गे = बहादुर खाँ निरानँद गे, बहादुर खाँ निरानन्द हो गये (दुखी हो गये)। ब्योंत = उपाय, यत्न। चारु = सुन्दर। बिचारु=विचार। हिये= हृदय में। हुतो = था। थानो = थाना, अड्डा। जसवंत = जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंहजी, इन्होंने सिंहगढ को सन् १६६३ ई० में घेरा परन्तु कुछ कर न सके। गीदर बानो = गीदड का भेस, डरपोकपना।

अर्थ—सूबेदार बहादुरखाँ ने आनन्द रहित हो लोगों से पूछा कि अब कोई उपाय बताओ, शिवाजी ने सब अच्छे अच्छे किले छीन लिए हैं, इस बात को मन में विचार लो। भूषण कवि कहते हैं कि इस पर सब लोग बोल उठे कि यह संसार में प्रसिद्ध है कि जब शाइस्ताखाँ ने अपना अड्डा पूना में जमाया था और जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह ने सिंहगढ़ को घेरा तो उन्हें शिवाजी के सम्मुख गीदड़ों की भाँति भागना पड़ा (फिर आपकी क्या गिनती है ?)।

अलंकार—गूढोत्तर।

कवित्त—मनहरण

जोर करि जैहैं जुमिला हू के नरेस पर[1],
तोरि अरि खंड-खंड सुभट समाज पै[2]।

---

१. जोर करि जैहैं अब अपर नरेस पर—(हम लोग हिम्मत कर के अब दूसरे राजाओं पर चढ़ाई करेंगे। २. लरिहै लराई ताके सुभट समाज पै—(उनके वीरों में लड़ाई लड़ेंगे)

'भूषण' असाम[1] रूम बलख बुखारे जैहैं,
चीन सिलहट[2] तरि जलधि जहाज पै॥
सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ[3],
कहैं नवरंगजेब साहि सिरताज पै[4]।
भीख माँगि खैहैं बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै ॥२७॥

शब्दार्थ—जोर करि = जोर लगाकर, हिम्मत करके। जुमिला—(फा०) सब जगह के। सिलहट = आसाम का एक नगर, यहाँ की नारंगी प्रसिद्ध हैं। कूरताई = कायरता। तरि = तैर कर। जलधि = समुद्र। खैहैं = खायेंगे। रैहैं = रहेंगे।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सरदारों की ज़िद और कायरता तो देखो, वे शाहो के सिरताज औरङ्ग़ज़ेब से कहते हैं कि हम लोग हिम्मत करके समस्त राजाओं पर चढ़ाई कर लेंगे(कर सकते हैं) और समस्त वीर-शत्रु समाज के भी टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे,हम सब आसाम,सिलहट,बलख, बुख़ारा तथा जहाज़ पर चढ़ समुद्र पार कर चीन और रूम (आदि देशो को विजय करने) चले जायँगे, हम सब बिना पदवी के रहेंगे और भीख माँग कर गुज़ारा कर लेंगे, परन्तु उस प्रतापी शिवाजी पर चढ़ाई करने नहीं जायँगे।

अलकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कार्य निबन्धना)।

चन्द्रावल[5] चूर करि जावली जपत कीन्ही[6],
मारे सब भूप औ सँहारे पुर धाय कै।

---

१. भनत। २. जैहैं साम चीन। ३. ४. सब उमराव मिलि एक मत ठानि कहैं, आइकै समीप अवरंग सिरताज पै—(सब उमराव मिलकर और एक मत होकर औरंगजेब बाद-शाह के पास जाकर कहते हैं)।

५. चंदराव। ६. करि। ७. घेर्‍यो है सिंगारपुर भूपन

'भूषन' भनत तुरकान दल-थभ-काटि[१],
अफजल मारि डारे तवल[२] वजाय कै[२] ॥
एदिल सों बेदिल हरम कहैं[३] वार बार,
अब कहा सोवो[३] सुख[४] सिंहहि जगाय कै।
भेजना है भेजौ सो रिसालैं सिवराजजू की,[५]
वाजी करनालैं परनालै पर[६] आय कै॥२८॥

शब्दार्थ—चंद्रावल = चन्द्रराव मोरे, यह जावली के दुर्ग का अधिकारी था, इसे शिवाजी ने सन् १७५६ में हराया था। भूप = राजा। सहारे = नष्ट किये। पुर = नगर। दलथभ = दल को थाँभने वाला, सेनापति। तबल = डंका। बेदिल = अनमनी, उदास। हरम=बेगमें। रिसालैं=खिराज, राज्यकर। करनालैं=तोपें। परनालैं= परनाला दुर्ग।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि बीजापुर के बादशाह आदिलशाह की बेगमें उदास मन हो उससे बार बार कहती हैं कि जिस शिवाजी ने चन्द्ररावमोरे को परास्त कर जावली को अपने अधिकार में कर लिया, और सब राजाओं को मार कर नगरों पर धावा कर उन्हें नष्ट कर डाला,

---

कों जाय कै—(और जाकर सिंगारपुर के राजाओं को घेर लिया है)। १. २. भूषन भनत सुलतान दल खेदि डारे, मारि डारे अफजल दल कों गिराय कै—(सुल्तान की सेना को भगा दिया और अफजल की सेना को नष्ट कर अफजल को मार डाला)। ३ मोए। ४ सूते—(सोये हुए) ५. भेजिए सुभेंट सिवराज कों रिसालैं कत—(हे स्वामी शिवाजी को कर और भेंट भेजिए) ६ गढ़।

और जिसने तुर्कों के सेनापतियों को कत्ल कर, डंके की चोट दे (अर्थात् खुल्लमखुल्ला) अफ़ज़लखाँ का वध किया, उसी शिवाजीरूपी सिंह को जगा कर (छेड़कर) अब आप कैसे सुख पूर्वक सो रहे हैं ? जो आपको खिराज (कर) भेजना है तो शीघ्र भेजिए क्योंकि उसकी तोपें (आपके राज्यान्तर्गत) परनाले के दुर्ग पर गरजने लगी हैं।

अलंकार—अनुप्रास और लोकोक्ति।

मालती सवैया

साजि चमू जनि जाहु सिवा पर सोवत सिंह न जाय जगाओ।
तासो न जंग' जुरौ न भुजग महाविष के मुख मैं कर नाओ॥
'भूषन' भाषति वैरि-बधू जनि एदिल औरँग लौं दुख पाओ।
तासु सलाह की राह तजौ मति नाह दिवाल की राह न धाओ॥२६

शब्दार्थ—चमू=सेना। जनि=मत। जग=युद्ध। जुरौ=जुडो, भिडो। भुजंग=साँप। कर=हाथ। नाओ=नवाओ, झुकाओ, डालो। भाषति=कहती हैं। वैरि-वधू=शत्रु-स्त्रियाँ। नाह=नाथ, पति।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शत्रु-स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों से कहती हैं कि सेना सजाकर शिवाजी पर चढ़ाई मत करो, व्यर्थ सोते हुए सिंह को न जगाओ, उससे युद्ध न करो, व्यथ ही विषैले सर्प के मुख में हाथ न डालो (अर्थात् शिवाजी से लड़ना सोते सिंह को जगाना अथवा साँप के मुख में हाथ डालना है, अत. ऐसा न करो) बीजापुर के बादशाह आदिलशाह और औरगजेब की भाँति कष्ट में न पड़ो। हे नाथ! उससे सलाह (मेल) करने का विचार न त्यागो, क्योंकि दीवार की राह पर जाना ठीक नहीं है (अर्थात् जान बूझ कर कुमार्ग में जाने पर दुख पाओगे)।

---

१. जाय।

अलंकार—अनुप्रास, लोकोक्ति और निदर्शना।

छप्पय *

बिज्जपुर बिदनूर सूर सर धनुष न सधहिं।
मगल बिनु मल्लारि नारि धम्मिल्ल नहिं बंधहिं॥
गिरत गब्भ कोटैं गरब्भ चिंजी चिंजा डर।[1]
चालकुंड दलकुंड गोलकुंडा संका उर॥
'भूषन' प्रताप सिवराज तव इमि दच्छिन दिसि संचरै।
मधुराधरेस धकधकत सो द्रविड़ निबिड डर दबि डरै[2]॥३०॥

शब्दार्थ—बिज्जपुर = बीजापुर। बिदनूर = गुजरात का एक नगर। मल्लारि=मालाबार देश। सूर=वीर। सर=बाण। सधहिं= साधते, निशाना बनाते। धम्मिल=जूड़ा, बालों की चोटी। गब्भ=गर्भ। कोटैं गरब्भ=किले के गर्भ में, किले के भीतर। चिंजी चिंजा=लड़की, लड़का। चालकुंड=दक्षिण का एक बंदरगाह। दलकुंड = दक्षिण का एक देश। शंका=भय। मधुरा = मदुरा (मदरास प्रान्त में)। धरेस=राजा। निबिड़ = घना, बहुत।

---

* इस छंद के आदि में रोलाछंद के चार पद चौबीस-चौबीस मात्राओं के होते हैं और अन्त में उल्लाला छंद के दो पद छब्बीस छब्बीस मात्राओं के होते हैं। इस प्रकार यह छः पदों का छप्पय होता।

पाठान्तर—

१. गिरत गर्भ कोटीन, गहत चिंजी चिंता उर—(चिंजी (जिंजी, दक्षिण का एक शहर) निवासियों को सदा चिन्ता और डर लगा रहता है, करोड़ों के गर्भ गिर जाते है)।

२. मधुराधरेस धक धक धकत द्रविड़ निविड़ अबिरल डरहिं—(मदुरा के राजा का हृदय धकधकाया करता है और द्रविड़ निरंतर अत्यधिक भयभीत रहते हैं)।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी ! आपका प्रताप दक्षिण दिशा में ऐसा फैल गया है कि बीजापुर और बिदनूर के शूरवीर धनुष पर बाण नहीं चढ़ाते अर्थात् आपका मुकाबला करने के लिए हथियार नहीं उठाते। मालाबार की शत्रु स्त्रियाँ मंगल (सौभाग्य) चिह्न से हीन (विधवा) हो जाने के कारण जूड़ा भी नहीं बाँधती (अर्थात् उनके बाल बिखरे ही रहते हैं) । किले के भीतर सुरक्षित रहने पर भी भय के कारण शत्रु-स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं और उनके लड़के लड़की भी तुम्हारे नाम से डरते रहते हैं। चाल्कुंड, दलकुंड (सम्भव है कि इस नाम का पहले कोई स्थान दक्षिण में हो) और गोलकुंडा के लोगों के हृदय भयभीत रहते हैं। मदुरा का राजा काँपता रहता है और द्रविड़ लोग अत्यन्त भय के मारे छिपे ही रहते हैं ।

अलंकार—अनुप्रास, तुल्ययोगिता और अतिशयोक्ति ।

कवित्त मनहरण

अफ़ज़ल खान गहि जाने मयदान मारा,[1]
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है ।[2]
'भूपन' भनत फरासीसी त्यों फिरंगी मारि,[3]
हबसी तुरुक डारे पलटि जहाज है ॥[4]

पाठान्तर—

१. अफजलखानजू को मारो मयदान जाने—(अर्थ वही है जो ऊपर वाले का) २. बीजापुर गोलकुंडा डरायो दराज है—(दराज = अधिक, अर्थात् बीजापुर और गोलकुंडा को जिसने अत्यधिक भयभीत कर दिया है) । ३. भूपण भनत फरॉसीस ॲंग्रेज मारि—(स्पष्ट है) ४. हबसी फिरंगी मारे उलटि जहाज है—(स्पष्ट है) ।

देखत मैं खानरुसतम जिन खाक किया[1],
सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज है[2]।
चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँघा ते यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥३१॥

शब्दार्थ—सालति=खटकती है, दुख देती है। सुरति=स्मरण, याद। चकता=चकताई वंशज, औरंगजेब। चहुँघा = चारों तरफ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब चौंक-चौंक कर अपने सरदारों से कहता है कि जिसने अफ़ज़लखाँ को पकड़ कर सरे मैदान कत्ल कर डाला, और हाल ही में जिसने बीजापुर और गोलकुंडा को पराजित किया है, जिसने फ्रांसीसियों की भाँति ही फिरंगियों (अंग्रेजों) को परास्त करके हबशियों और तुर्कों के जहाज़ डुबो दिये, जिसने देखते-देखते (अर्थात् बात की बात में) रुस्तमेजमाखाँ को मिट्टी में मिला दिया और जिसकी सुनी हुई आवाज़ अर्थात् समाचारों की याद मुझे आज भी बड़ा कष्ट दे रही है। हे मित्रो! तुम उस शिवाजी का पता चारों ओर को लगाते रहो कि वह कहाँ तक आगया है।

अलंकार—अनुप्रास।

फिरंगाने फिकिरि औ हदसनि हबसाने,
'भूषन' भनत कोऊ सोवत न घरी है।
बीजापुर-बिपति बिडरि सुनि भाजे सब,
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है॥

---

१. देखत मैं रुस्तम को छिन में खराब कियो—(अर्थ वही है जो ऊपर वाले का)। २. सलहेरि संगर की आवति अवाज है—(जिसके सलहेरि के युद्ध की आज तक भी प्रतिध्वनि हो रही है)।

राजन के राज सब साहन के सिरताज,
आज सिवराज पातसाही चित धरी है।
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार,
धाम धाम धूम-धाम रूम साम परी है ॥३२॥

शब्दार्थ—फिरंगाने = फिरंगियों का देश, फ्रांस, इंगलैंड, पुर्तगाल आदि। मिश्रबन्धुओं के मतानुसार बाबर के पिता का राज्य। फिकिरि = फिकर, चिन्ता। हदसनि = भय, (फा० हदसाने से)। हबसाने = हबशी लोगों का देश, यहाँ तात्पर्य जंजीरा के टापू से है, इसी के साथ-साथ सारा पश्चिमी घाट का समुद्री किनारा इन हबशी मुसलमान सरदारों के अधिकार में था)। घरी = घड़ी भर। बिडरि = विशेष डरकर। दिल्ली दरगाह = दिल्ली दरबार। खरभरी = खलबली। पात साही चित धरी = सम्राट होने की इच्छा की।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि फिरंगी चिंता के मारे और जंजीरा-वासी हबशी भय के कारण रात में घड़ी भर भी नहीं सोते। बीजापुर की विपत्ति का हाल सुनकर सब लोग डर कर भाग गये हैं और दिल्ली के दरबार में भी हलचल मची हुई है। क्योंकि राजाधिराज बादशाहों के शिरोमणि महाराज शिवाजी ने आज सम्राट् होने की इच्छा की है। इसी से बलख, बुखारा और काश्मीर आदि देशों में चिल्लाहट मची है तथा रूम और श्याम में घर-घर धूम-धड़ाका मच रहा है (कि हाय! अब हम क्या करें? शिवाजी हमें भी परास्त कर लूटेगा)।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

गरुड़ को दावा सदा[1] नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥[2]
भूपन अखड नवखड महिमंडल मैं,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥३३॥

शब्दार्थ—को = का। दावा=आतंक, आधिपत्य, अधिकार। नाग = सर्प। नाग-जूह = हाथियों का झुंड। पुरहूत = इन्द्र। पहारन = पहाडों। गोल = समूह। अखण्ड = सम्पूर्ण। नवखण्ड-महिमण्डल = पृथ्वी के नवों खण्ड (भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र केतुमाल, हरि, हिरण्य, राम और कुश)। किरण समाज = किरण-समूह।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जैसे गरुड़ का आतक सदा नाग (सर्पों) के समूह पर, महाबली सिंह का हाथियों के झुण्ड पर, इन्द्र का पर्वतों ‡ पर, बाज का पक्षियों के झुंड पर, और सूर्य की किरणों का अधिकार नवद्वीप और सारी पृथिवी के अंधकार के समूह पर होता है, उसी

पाठान्तर—

१. जैसे। २. दावा सबै पच्छिन के गोल पर बाज को।

‡ पुराणों में लिखा है कि पहले पहाड़ों के पख होते थे और वे उडा करते थे और जहाँ बैठ जाते थे वहाँ के लोग दब कर मर जाते थे। तब लोगों ने इन्द्र से प्रार्थना की। इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पख काट डाले। इसीलिए यहाँ पर्वतों पर इन्द्र का आतक कहा गया है।

प्रकार पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक जहाँ जहाँ बादशाही है वहाँ-वहाँ महाराज शिवाजी का अधिकार है।

अलंकार—निदर्शना।

दारा की न दौंर यह रारि नाहिं खजुवे की,
बाँधिबो नही है किधौं मीर सहवाल को।[1]
मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देव को न देहरा न मंदिर गोपाल को॥
गाढ़े गढ़ लीन्हे और[2] बैरी कतलान कीन्हे,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को[3]॥३४॥

शब्दार्थ—दौर=दौड़, धावा। रारि=लड़ाई। खजुवा=जिला फतेहपुर में बिन्दी के निकट खजुवा एक गाँव है। यहाँ औरंगजेब ने शाहशुजा को हराया था। मीर सहवाल=शाहबाजखाँ नामक सरदार, लाल कवि ने इसका नाम अपने छत्रप्रकाश में लिखा है। परन्तु इसका इतिहास में नाम नहीं मिलता। देहरा=देवालय, मन्दिर। देव को देहरा=ओरछा के राजा वीरसिंहदेव ने मथुरा में केशवराय का देहरा (मन्दिर) बनवाया था। गाढे=दृढ, दुर्गम। हासिल=खिराज। उगाहत=वसूल करता है। साल को=वर्ष का, सालाना।

---

१. बाँधिबो न होय ए मुरादसाह-बाल को—(बालक मुरादशाह को कैद कर लेना नहीं है)। २. केते। ३. जानत न भयो यहि साहकुल-साल को (इस बादशाही वंश के नाशक शिवाजी को आप नहीं जानते थे)।

अर्थ—(औरंगजेब से कोई सरदार कहता है) कि यह दारा के ऊपर धावा नहीं है और न यह खजुवा की लडाई है। यह सरदार शाहवाज खाँ को कैद कर लेना भी नहीं है और न यह विश्वनाथजी का मन्दिर है, न गोकुल में अड्डा जमाना है, न वीरसिंहदेव का बनवाया केशवराय का मन्दिर है और न श्री गोपाल जी का मन्दिर है (जिन्हें आप गिरा देंगे) यह तो महाराज शिवाजी बड़े बड़े दृढ किलों को जीतता, शत्रुओं को कत्ल करता और स्थान स्थान से सालाना खिराज उगाहता हुआ आरहा है। हे दिल्लीश्वर! अब यह तुम्हारी दिल्ली डूब रही है। इसे सम्हालते क्यों नहीं? इसे महाकाल रूप शिवाजी का धक्का आ लगा है (अर्थात् शिवाजी ने अब दिल्ली पर धावा किया है इसे सम्हालना कठिन है, अगर तुम्हें इसे बचाना है तो बचाओ)।

अलङ्कार—प्रतिषेध।

गढ़न गँजाय गढधरन सजाय करि,
छाँडि केते धरम दुवार दै भिखारी से।
साहि के सपूत पूत वीर सिवराज सिंह,
केते गढधारी किये वन वनचारी से॥
'भूषन' बखानै केते दीन्हें बन्दीखाने,
सेख, सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महतों से मुगुल महाजन से महाराज,
डाँडि लीन्हे पकरि पठान पटवारी से॥३५॥

शब्दार्थ—गँजाय=गंजन कर, नष्ट कर, तोड फोड कर। सजाय करि=सजा देकर दण्ड देकर। धरम दुवार दै=धर्म द्वार दे कर, अर्थात् धर्म के नाम पर। हजारी=हजारी पद पाने वाले, पञ्च हजारी, छ' हजारी आदि। बजारी=तेली, तमोली आदि। महतों= गाँव के मुखिया, नाजिम के समान पदाधिकारी, उदयपुर में अब

भी 'महता' पद एक उच्च पद माना जाता है। डॉडि लीन्हें = दण्ड लिया, जुर्माना लिया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि साहजी के वीर पुत्र और सिंह के समान साहसी सुपुत्र महाराज शिवाजी ने शत्रुओं के किलों को तोडकर उनके किलेदारों को दंड दिया और कितनो ही को धर्म के नाम पर भिक्षुओं की भाँति चला जाने दिया। कितने ही गढ़ स्वामियों को वन में फिरने वाले कोल और भीलों के समान (दीन) बना डाला और कितनों को जेलखाने में डाल दिया। कितने शेख सैयद और हजारी पद धारण करने वालों को बाजारू (मामूली) प्रजा की तरह पकड़ लिया। मुगल (शाही खानदान के मुसलमान) महतों (गाँव के मुखियों) की तरह, बड़े बड़े महाराज बनियों की भाँति और पठान पटवारियों के समान पकड़ लिये और उनसे जुर्माना ले लिया।

अलकार—उपमा और अनुप्रास।

सक्र जिमि सैल पर अर्क तम फैल पर,
बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिये।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,
'भूपन' ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिये॥
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग[1] पर पारथ ज्यों पेखिये।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ[2] चतुरंग पर सिवराज[3] देखिये॥३६॥

पाठान्तर—

१. वंस। २. तैसे। ३. चिन्तामणि—(शिवाजी के एक सेनापति चिमणाजी बापू जी थे। कुछ लोगो के विचार मे यह पद्य उन की प्रशंसा मे लिखा प्रतीत होता है। कुछ लोग इसे बाजीराव के

शब्दार्थ—सक्र = इन्द्र । सैल = पहाड़ । अर्क = सूर्य । तम फैल = अंधकार का फैलाव (राशि) । विघन = विघ्न, रुकावट । रैल = समूह । लंबोदर = गणेशजी । दसकन्ध = रावण । सिन्धु = समुद्र । कुंभज = अगस्त्य मुनि, जिन्होंने समुद्र पी लिया था, ये घड़े से पैदा हुए थे । विसेखिये = विशेष कर जानिये । हर = महादेव । अनग = कामदेव । भुजग = साँप । अग = पक्ष, मंडली । पारथ = अर्जुन । विहग = पक्षी । मतग = हाथी ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जिस भाँति इन्द्र पर्वतों को*, सूर्य अन्धकार की राशि को और गणेशजी विघ्नों के समूह को नाश करने वाले हैं, जैसे भगवान् राम ने रावण पर, भीम ने जरासंध पर, शिवजी ने कामदेव पर†, अगस्त्य मुनि ने समुद्र पर‡, गरुड़ ने सर्पों पर और अर्जुन ने कौरव पक्ष पर अपना प्रभाव प्रकट किया (अर्थात् उन्हें नष्ट कर दिया), और जैसे बाज पक्षियों के गोल को और सिंह हाथियों के झुण्ड को नष्ट करता है उसी भाँति शिवाजी महाराज मुसलमानों की चतुरंगिनी सेना को तहस-नहस करने वाले हैं ।

अलंकार—मालोपमा और अनुप्रास ।

भाई 'चिमणा जो आप्पा' की प्रशंसा में लिखा हुआ समझते हैं, पर हमें चिन्तामणि की जगह शिवराज पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है) ।

* इस की कथा छन्द ३३ के फुटनोट में देखिये ।

† एक बार महादेव जी समाधि लगाये बैठे थे कि कामदेव ने उन पर आक्रमण किया । महादेव जी ने क्रोध से ज्यों ही अपना तीसरा नेत्र खोला, कामदेव जल कर भस्म हो गया ।

‡ एक बार अगस्त्य मुनि समुद्र तट पर पूजन कर रहे थे । समुद्र अपनी लहरों से उनकी पूजा की सामग्री बहा ले गया । इस पर अगस्त्य मुनि ने क्रोधित हो समुद्र को पी लिया ।

वारिधि के कुंभभव घनवन[1] दावानल,
तरुन तिमिरहू के किरन समाज हौ।[2]
कंस के कन्हैया, कामधेनुहू के कंटकाल[3],
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ॥
'भूषन' भनत जग(जम) जालिम के सचीपति[4],
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कार्तवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सेर[5] सिवराज हौ॥३७॥

शब्दार्थ—वारिधि = समुद्र। कुंभभव = कुंभ से उत्पन्न हुए, अगस्त्य मुनि। घन वन = घना जंगल। दावानल = दावाग्नि, वह आग जो जंगलों को जला देती है। तरुन तिमिर = घोर अन्धकार। किरन-समाज = किरण समूह, सूर्य। कंटकाल = कंटकालय, काटों का घर। कैटभ = एक राक्षस जिसे कालिका देवी ने मारा था। विहंगम = पक्षी। जग जालिम = संसार में अत्याचार करने वाला, वृत्रासुर नामक राक्षस। जम जालिम का अर्थ होगा यम के समान अत्याचारी, वृत्रासुर नाम का राक्षस। सचीपति = इन्द्र। पन्नग = सर्प। पच्छिराज = पक्षियों का राजा गरुड़। कार्तवीज = सहस्राबाहु अर्जुन, इसने परशुराम के पिता जमदग्नि को निरापराध मार

---

१. बाँस-वन—(बाँसों का जंगल)। २. तिमिर पै तरनि की किरन-समाज हो—(औरंगजेब रूप अंधकार है तो आप उसको नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों का समूह हो)। ३. कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठ-नील—(औरंगजेब यदि कंस है तो आप कृष्ण हैं और यदि वह कामदेव है तो आप नीलकंठ [शिव] हैं) ४. भूषण भनत सब असुर के इन्द्र पुनि—(राक्षसों को मारने के लिए इन्द्र हो)। ५. सिंह।

डाला था, इसी का बदला चुकाने को परशुरामजी ने इसका और इसके वंश वालों का इक्कीस बार संहार किया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि यदि औरंगजेब समुद्र है, तो आप उसके लिये अगस्त्य मुनि हैं, यदि वह बड़ा गहन वन है, तो आप उसको भस्म करने वाले दावानल हो, यदि वह घोर अन्धकार है, तो आप उसका नाश करने वाले सूर्य हो, यदि वह कंस है, तो आप उसके संहार कर्ता श्रीकृष्ण हो, यदि वह कामधेनु है, तो आप उसके लिए काँटो का घर हो, यदि वह कैटभ है, तो आप उसके लिए कालिका हो, यदि वह पक्षी है, तो आप उसके घातक बाज हो, यदि वह संसार में अत्याचार करने वाला (या यम के समान अत्याचारी) वृत्रासुर दैत्य है, तो आप उसके नाशकर्ता इन्द्र हो, यदि वह सर्प है, तो आप उसके भक्षक (गरुड) हो, यदि वह रावण है, तो आप उसके संहारकर्ता राम हो, यदि वह सहस्रबाहु अर्जुन है, तो आप उसके लिये परशुराम के अवतार हो। हे महाराज शिवाजी! दिल्लीपति औरंगजेब रूपी हाथी के लिये आप सिंह के समान हो।

अलङ्कार—अनुप्रास, परंपरित रूपक और उल्लेख।

दरबर दौरि करि नगर उजारि डारे,
कटक कटायो कोटि दुजन दरब की।
जाहिर जहान जग जालिम है जोरावर,
चलै न कछूक अब एक राजा रब की ॥[1]
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप,
थर थर काँपति विलायत अरब की।

पाठान्तर—

१. चलै न कछूक जोर जब्बर जरब की—(जब्बर = जबरदस्त। जरब = चोट। आपके सामने बलवानों के भारी आघातों की भी कुछ नहीं चलती।

हालत दहलि जात काबुल कंधार बीर,
रोस करि काढ़ै समसेर ज्यो गरब की ॥३६॥

शब्दार्थ—दरबर = (दल बल) सेना के जोर से। दौरि करि = धावा करके। कटक=सेना। कटायो = काट डाली। दुजन दरब की = दुर्जनों के द्रव्य से इकट्ठी की हुई। रब = राव या खुदा अथवा खुदा परस्त मुसलमान। त्रास=भय। विलायत = विदेशी राज्य। दहलि जात = दहल जाते हैं, काँप जाते हैं। समसेर = (फा० शमशेर) तलवार। गरब = गर्व, अभिमान।

अर्थ—हे वीर शिवाजी! आपने अपनी सेना के बल से नगरो को उजाड़ कर करोड़ो दुष्टों (मुसलमानों) की द्रव्य से इकट्ठी की हुई सेना को काट डाला। आप ससार भर में महाबली एवं युद्ध में ज़ालिम (जुल्म करने वाले, भयानक) प्रसिद्ध हो। अब आपके सामने किसी भी राजा एवं मुसलमान रईस की कुछ भी पेश नहीं चल सकतो। आपके भय के कारण दिल्ली में भूचाल आ गया और अरब तथा विदेशी राज्य थर थर काँपते रहते है। जब आप क्रोधित हो अपनी गर्वीली तलवार म्यान से खींचते है तब काबुल कंधार आदि के वीर काँप उठते हैं।

अलंकार—तृतीय चरण मे अत्युक्ति तथा चतुर्थ मे चपला-तिशयोक्ति, अनुप्रास।

'सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यो,
कहत बारबार' कहि पातसाह गरजा।'

पाठान्तर—

१. कहत गरो परिबे को पातसाह गरजा—(शिवाजी की बड़ाई और हमारी छुटाई बार बार कह कर क्यों गला बैठाते हो, बादशाह ने गरज कर कहा)।

'सुनिये खुमान हरि तुरुक गुमान महि-¹,
देवन जेवायो' कवि 'भूषन' यों अरजा² ॥
'तुम वाको पायकै जरूर रन छोरो वह,
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा ।
मालुम तिहारो होत याहि मैं निवेरो रन,
कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा' ॥३६॥

शब्दार्थ—खुमान=आयुष्मान, चिरजीव । महिदेवन=ब्राह्मणों को । अरजा=अर्ज की, कहा ।

अर्थ—भूषण कवि से औरंगजेब ने गर्ज कर पूछा कि तुम बार बार शिवाजी की प्रशंसा और हमारी बुराई क्यों किया करते हो ? इस पर भूषण कवि ने इस भाँति निवेदन किया कि सुनिये—खुमान (चिरंजीव शिवाजी) ने तुर्कों का घमंड चूर कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर बड़ा यश लिया है । तुम उसके सामने भय से जरूर रणस्थल त्याग देते हो परन्तु वह तुम्हारे वज़ीरों को पकड़ कर उन्हें प्रजा की भाँति छोड़ देता है । बस इसी से निर्णय हो जाता है कि जो युद्ध में कायर है वह कायर ही है और जो सिंह हैं वह सिंह (वीर) ही है (अर्थात् तुम कायर हो और शिवाजी वीर है) ।

अलंकार—अनुप्रास और प्रश्नोत्तर ।

कोट गढ ढाहियतु एकै पातसाहन के,
एकै पातसाहन के देस दाहियतु है ।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज एकै,
साहन की फौज³ पर खग्ग वाहियतु है ॥

१. २ सुनिए खुमान हरि तिनको गुमान तिन्हैं देवे को जवाब कवि भूषण यों अरजा—(हे आयुष्मान् शिवाजी सुनिये तब उसके (औरंगजेब के) घमंड को चूर करते हुए, उसे जवाब देने के लिए मैंने इस प्रकार अर्ज की) । ३ सैन ।

क्यो न होहिं वैरिन की बौरी सुनि बैर बधू,[1]
दौरनि तिहारे कहौ क्यो निवाहियतु है।
गवरे नगारे सुनि वैरवारे नगरनि,
नैनवारे नदन निवारे चाहियतु है ॥४०॥

शब्दार्थ—ढाहियतु=गिराया जाता है। दाहियतु=जलाया जाता है। खग्ग=तलवार। बाहियतु है=चलाया जाता है। बौरी=पागल। सुनि बैर बधू=स्त्रियॉ (शिवाजी से, वैर सुन कर। दौरनि=आक्रमण। नदन=बडी बडी नदियॉ। निवारे=बडी-बडी नावे।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि हे महाराज शिवाजी? आप के द्वारा किसी बादशाह के किले गिराये जाते हैं, किसी के देश जला दिये जाते हैं और किसी बादशाह की सेना पर तलवार चलाई जाती है। शत्रुओं की स्त्रियाँ आपसे वैर सुन कर क्यों न पागल हों? (अर्थात् वे अवश्य पागल होती है)। भला वे बेचारी आप के आक्रमण को कैसे सहन कर सकती है, जबकि आपके नगाड़ों की ध्वनि को ही सुनकर शत्रु नगर वासियों के नेत्रों के जल से ऐसी बड़ी बडी नदियाँ निकलती हैं, जिन्हे पार करने को बड़ी-बडी नौकाओं का आवश्यकता होती है।

अलकार—अनुप्रास और अप्रस्तुत प्रशंसा (कार्य निबन्धना)।

चकित चकत्ता चौकि चौकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति[2] है।

---

१ बौरी सुनी बैर बधू के स्थान पर निम्नलिखित भिन्न भिन्न पाठ मिलते हैं—

(क) बाल बौरी कान सुनि, (ख) वैरी-बधू बौरी सुनि (ग) बौरी सुनि बर बधू—(सब का अर्थ लगभग एक ही है)

२. खरकति—(खटकती)।

बिलखि बदन[1] बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनि की नारी फरकति है॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि[3],
केते पातसाहन की छाती दरकति[4] है॥४१॥

शब्दार्थ—चकत्ता = औरंगजेब। दहसति = दहशत, भय। चाह = खबर, समाचार। करषति है = आकर्षण करती है। बिलखि बदन = उदासीन मुख। बिलखात = रोते हैं, शोक प्रकट करते हैं। नारी = नाड़ी। हहरि = भयभीत होकर। भीर = भीड़, सेना। भरकत = भड़कती है, डर कर भागती है।

अर्थ—महाराज शिवाजी के नगाड़ों की ध्वनि के आतंक से औरंगजेब चकित होकर बार बार चौंक उठता है। भयभीत दिल्ली निवासियों के मन सदा शिवाजी के समाचारों की ओर आकर्षित (खिंचे) रहते हैं। बीजापुर का बादशाह उदास मुख किये शोक करता रहता है। इधर उधर फिरनेवाले अंग्रेजों की नाड़ियाँ भय से फड़कती रहती हैं। गोलकुंडा का बादशाह कुतुबशाह थर थर काँपता रहता है और जजीरा के हब्शी राजा की सेना डर कर भड़कती रहती है। महाराज शिवाजी के नगारों की धाक से कितने ही बादशाहों की छातियाँ फटने लगती हैं।

अलंकार—अनुप्रास और अत्युक्ति।

---

१. बलख बिलात—(बलख नष्ट हो रहा) २. बीजापुर, पति ३. सिंह सिवराज तेरे धौंसा की धुकार सुनि—(धौंसा = नगाड़ा। धुकार = गड़गड़ाहट, आवाज) ४. धरकति (धड़कती)।

मौरँग कुमाऊँ औ पलाऊ बाँधे एक पल,[1]
कहाँ लौं गिनाऊँ जेऽब भूपन के गोत हैं[2]।
'भूपन' भनत गिरि विकट निवासी लोग,
बावनी बवजा नवकोटि धुधजोत हैं ॥
काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हों जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं।
अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह,
सिवराज प्रगटे ते राजा बड़े होत हैं ॥४२॥

शब्दार्थ—मौरग = नैपाल की तराई के पूर्व का देश। कुमाऊँ = गढ़वाल की रियासत को कहते हैं, यहाँ एक बार भूषणजी गये भी थे। पलाऊँ = सम्भवतः पालमऊ से तात्पर्य है जो विहार प्रान्त की दक्षिणी सीमा पर छोटा नागपुर के निकट है। भूपन = राजाओं के। गोत = समूह। बावनी बवजा = यह उस समय की दो रियासतों के नाम हैं। नवकोटि = नवकोट, यह मारवाड़ प्रान्त में है। धुधजोत = तेजहत। जेर = परास्त। हे = थे।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जिन्होंने मौरग, कुमाऊँ और पलाऊ राज्यों के राजाओं को पलभर में बाँध लिया, जिन्होंने कितने ही राजाओं के समूह को परास्त कर दिया, जिनका कि अब गिनाना कठिन है, विकट पर्वतों के रहने वाले, बावनी बवंजा और नवकोटि (मारवाड़) के वासी भी जिनके सम्मुख तेजहत होगये, जिन्होंने काबुल, कंधार और खुरासान को पराजित कर दिया, और जिनके मारे मुगल, पठान, शेख

पाठान्तर—

१. २. मोरँग कुमाऊँ आदि बाँधव पलाऊँ सबै, कहाँ लौ गनाऊँ जेते भूपति के गोत हैं—(मोरँग, कुमाऊँ, बाँधव और पलाऊँ आदि जितने राजकुल है, इनकी गणना मैं कहाँ तक करूं)।

और सैयद भी रोते रहते हैं, ऐसे पराक्रमी वीर शिवाजी के प्रकट होने से ही आज समझ में आगया कि राजा ही बडे होते हैं, वरना अबतक सब बादशाहो को ही बडा मानते थे ।

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग नाचे डग्ग[1] पर रुड मुड फरके।
'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके॥
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्‌भट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धरके।
बीजापुर-बीरन के, गोलकुडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाडिम से दरके ॥४३॥

शब्दार्थ—दुग्ग=दुर्ग, किला। उग्ग=(उग्र) शिवजी। डग्ग=डगर, मार्ग। करनाटी=करनाटक के, करनाटक पर शिवाजी ने सन् १६७६–७८ ई० में आक्रमण किया था। सुभट=वीर। पनारेवारे=परनाले के। उदभट=प्रचण्ड। तारे लगे फिरन=तारे फिरने लगे, नक्षत्र पलटने लगे, भाग्य पलटने लगा। उर=हृदय। दाडिम = अनार।

---

१ इसके स्थान पर भिन्न भिन्न पाठ हैं। कुछ प्रतियों मे 'उग्ग नाचे उग्ग पर' पाठ है वे दूसरे उग्ग का अर्थ आकाश मडल करते हैं, अर्थात् शिवजी आकाश मडल में नाचने लगे, पर 'उग्ग' का अर्थ 'आकाश' किसी कोष में नहीं है। मिश्रबन्धुओं ने 'डग्ग नाचे डग्ग पर' पाठ दिया है। यह पाठ मानने पर अन्वय इस प्रकार होगा—रुण्ड डग्ग डग्ग पर नाचे, मुड फरके—अर्थात् कबन्ध पग-पग पर नाचते (दौडते) थे और मुड फड़कते थे।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि धर्मवीर शिवाजी ने क़िले पर क़िले विजय कर लिये। ऐसा घोर युद्ध किया कि शिवजी (प्रसन्न हो) मार्ग में नाचने लगे और अनेकों रुड मुड फड़कने लगे। जब विजय के बडे बड़े नगाड़े बजाये गये तब करनाटक देश के सारे राजा भय के कारण सिहलद्वीप (लका) की ओर चुपचाप भागने लगे। परनाले वाले बड़े उद्भट (प्रचण्ड) वीर योद्धाओं का मारा जाना सुनकर और सितारागढ़ के स्वामी महाराज शिवाजी का भाग्य पलटने लगा †। यह जान कर बीजापुर और गोलकुण्डा के वीरों के तथा दिल्ली के अमीरों के हृदय अनार की भाँति फटने लगे।

अलंकार—पूर्णोपमा (चतुर्थ चरण में) और अनुप्रास।

मालवा उजैन भनि 'भूषन' भेलास ऐन,
सहर सिरोज लौं परावने परत है।
गोड़वानो तिलगानो फिरगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं॥
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं।
बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं॥४४॥

शब्दार्थ—भेलास=ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक नगर, जिसे आजकल भेलसा या भिलसा कहते हैं। ऐन=(अ०)ठीक। सिरोज=इस नाम

† 'तारे लागे फिरन' का अर्थ किसी किसी ने यह भी किया है—'आँखों के तारे (पुतलियाँ) फिरने लगे अर्थात् क्रुद्ध हो गये।' इस प्रकार पूरे चरण का अर्थ होगा—परनाले वाले योद्धाओ का मारा जाना, और सितारागढ़ के स्वामी शिवाजी की आँखे फिरने लगी हैं अर्थात् वे क्रुद्ध हो रहे है यह सुनकर.......

का एक शहर बुंदेलखण्ड मे था, अथवा फारिस के शीराज शहर से तात्पर्य हो सकता है। परावने = भगदड। गोंडवानो = जहाँ गोंड रहते हैं, मध्यप्रदेश। तिलगानो = तैलंगियों का देश। फिरगानो=फिरंगियों का देश अर्थात् यूरोप वालों की बस्तियां। रुहिलानो=रुहेलखण्ड। रुहिलन=रुहेले पठान। हिये=हृदय मे। हहरत=भयभीत होते है। उघरत हैं=खुलते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी! आपके आतंक से मालवा, उज्जैन, भेलसा और ठीक शीराज नगर तक लोगों में भगदड पड रही है। गोंडवाना, तेलंग देश, फिरंगियों की बस्तियों तथा करनाटक में रहने वालों के एवं रुहेलखण्ड के रुहेलों के हृदय भयभीत हो रहे है। बडे बडे वीर दुर्गाधीशों का धैर्य भी छूट गया है। डर के कारण बीजापुर, गोलकुंडा, आगरा और दिल्ली के किलों के दरवाजे किसी किसी दिन ही खोले जाते हैं।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्हो जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की॥
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामेवारे,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ॥४५॥

शब्दार्थ—खाकसाही = (फा०) खाक सियाह, भस्मीभूत, मटिया-मेट। हद्द सब मारे की = सब हद्द मारे की, जो हद्द (राज सीमाएँ)

मार मे थीं, अर्थात् राज के जिन भागों को शत्रुओं ने दबा रखा था। खिस गईं = खिसक गई,गिर गई, नष्ट हो गईं। फिसि गईं = फिस्स हो गईं, नष्ट होगईं। सूरताईं = शूरता। हिसिगईं = फा० (हिश्तन = छूटना) छूट गईं, नष्ट होगईं। दमामे = नगाड़े। धौंसा = बड़ा नगाडा। घहरात = गम्भीर शब्द करते है।

अर्थ—जिन्होंने बादशाहत का नाश कर उसे खाक में मिला दिया, और समस्त देश को परास्त कर अपनी मारी हुई सीमाओं को बलपूर्वक वापिस ले लिया; जिनके सम्मुख हज़ारों लोगों की शेखी, वीरता और हिम्मत सब हवा हो गई (नष्ट हो गई), उन्हीं (शिवाजी) के लाखो दमामे और नगाड़े गर्जते हुए मेघ की तरह (सेना के) आगे इस तरह घहरा रहे है जैसे किसी बड़े आदमी की बरात हो। शिवाजी उसके दूल्हे है, दक्षिणी (मराठे) लोग दमामे बजानेवाले है और 'दिल्ली' सितारा शहर की दुलहिन है।

अलंकार—अनुप्रास,उपमा और रूपक।

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहत छाती,
बाढ़ी मरजाद जैसी हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की॥
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की॥४६॥

शब्दार्थ—डाढ़ी के रखैयन = डाढ़ी रखने वाले, मुसलमान। डाढ़ी सी = जलती सी। मरजाद = (मर्यादा) सम्मान। हिन्दुवाना = हिन्दुओ का राज्य। रैयत = प्रजा। कसक = पीडा।

ठमक = शान, घमंड । बिन चोटी के = बिना चोटी वाले, अर्थात् मुसलमानों के । खोटी = भ्रष्ट खराब ।

अर्थ—भूषन कवि कहते हैं कि ज्यों ज्यों हिन्दूराज्य की प्रतिष्ठा और हद बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसे देखकर मुसलमानों की छातियाँ जलती रहती हैं। हिन्दू-प्रजा के मन की समस्त पीड़ा दूर होगई और मुसलमानों की शेखी मारी गई। वीरवर शिवाजी की धाक को सुन कर दिल्लीश्वर औरङ्गजेब का दिल धड़कता रहता है। चण्डी (कालिका) बिना चोटी वाले (अर्थात् मुसलमानों के) सिर खा खा कर मोटी होगई और चगताईखाँ के वशजों की सम्पत्ति (लक्ष्मी) दिन पर दिन घटने लगी।

अलंकार—अनुप्रास, यमक और पुनरुक्ति प्रकाश ।

जिन फन फुतकार उड़त पहार, भार[1]
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो ।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो ॥
कीन्हों जिन[2] पान पयपान सो जहान सब[3],
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो
खग्ग खगराज महाराज सिवराजजू को,
अखिल भुजंग दल-मुगल निगलिगो ॥४७॥

शब्दार्थ—बिदलिगो = विदलित हो गया, कुचला गया। झारन = भभक, लपटें। चिकारि = चिंघाड़ कर। पयपान = दुग्ध पान। कोल = पाताल का वराह (सूअर)। खलभलिगो = खलबली मच गई। खग्ग = खड्ग, तलवार। खगराज = गरुड़। भुजंग = साँप।

अर्थ—जिसके फन की फुफकार से बड़े बड़े पहाड़ उड़ जाते थे, जिसके भार से (पृथ्वी को धारण करने वाला) कठोर कच्छप मानो कमल

१. भार। २. जेहि। ३. कुल।

की भाँति विदलित हो गया था (टुकड़े टुकड़े हो गया था), जिसके विष-समूह में ज्वालामुखी पहाड़ लुप्त हो जाते थे, जिसके विष की लपटों से दिग्गज चिंघाड़ चिंघाड कर मद उगलते थे, जिसने समस्त ससार को दुग्ध-पान की भाँति पी लिया था, और जिसके प्रताप के मारे (पाताल लोक वासी) वराह के उछलने पर समुद्र का पानी खलबला गया था उसी समस्त मुगल-सेना रूप महाभयंकर सर्प को महाराज शिवाजी का खड्ग रूपी खगराज (गरुड़)सहज ही में निगल गया। (अर्थात् जिन मुसलमानो के आतंक से सारा संसार काँपता था, उन्हें शिवाजी ने सहज ही तलवार के ज़ोर से हरा दिया।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा और परंपारित रूपक।

साहि के सपूत रनसिंह[1] सिवराज वीर,
बाही समसेर सिर सत्रुन पै कढ़ि कै।
काटे वे कटक कटकिन के विकट भूपै,
हमसो न जात कह्यो सेस सम पढ़ि कै॥
पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै।
नाँदिया की पूँछ गहि पैरि कै कपाली बचे,
काली बची मांस के पहार पर चढ़ि कै॥४८॥

शब्दार्थ—रनसिंह=रण में शेर अर्थात् वीरकेसरी। बाही= चलाई। समसेर=शमशेर, तलवार। कढि कै=काढि कै, निकाल कर। कटक=सेना। कटकिन=सेना वाले, अर्थात् राजा या बादशाह। भूपै =पृथ्वी पर। सेस=शेषनाग। पढि कै=पढ़कर। पारावार=समुद्र। ताहि को=उसका। पावत=पाता। सोनित= रुधिर। यहि भाँति=इस भाँति। नाँदिया=शिवजी के बैल का

---

१. नरसिंह।

नाम। गहि = पकड़कर। पैरि कै = पैर कर, तैरकर। कपाली = शंकर। पहार = पहाड़। चढ़ि कै = चढ़कर।

अर्थ—शाहजी के सुपुत्र वीर केसरी शिवाजी ने (युद्ध में) शत्रुओं के सिर पर ऐसी तलवार चलाई और उस विकट भूमि में राजाओं की इतनी फौजों को मार डाला कि इससे शेषनाग के समान पढ कर भी कहा नहीं जा सकता (उसका वर्णन नहीं किया जा सकता)। खून का समुद्र ऐसा बढ रहा है कि कोई उस समुद्र का पार नहीं पा सकता। स्वय शकरजी अपने नान्दी बैल की दुम पकडकर तेरकर डूबने से बचे है और काली मास के पहाड पर चढ कर (खून के समुद्र में डूबने से) बची है।

अलकार—अनुप्रास और असम्बधातिशयोक्ति।

सारस से सूबा करबानक से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर मे धचैं नहीं।
बगुला से बगस बलूचियौ बतक ऐसे,
काबुली कुलग याते रन मैं रचैं नहीं॥
'भूषन' जू खेलत सितारे मैं सिकार सिवा,
साहि को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं।
बाजी सब बाज स चपेटैं चगु चहूँ ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नही॥४६॥

शब्दार्थ—सारस = एक पक्षी। सूबा = सूबेदार। करबानक = गोरैया पक्षी। धीर मैं धचैं नहीं = धैर्य में शोभा नहीं पाते (धैर्य

१. साहू (शिवाजी का पौत्र, शम्भाजी का पुत्र)।

२. सभा—(शम्भाजी)। यह पाठ मानने पर यह पद्य साहूजी की प्रशंसा में हो जाता है, शिवाजी की प्रशंसा मे नहीं रहता।

३. बाजी सब बाज की चपेट चहुँ ओर फिरैं (उनके घोड़े रूपी बाज की झपट चारों ओर पड़ती है)।

नहीं धर सकते) बंगस=पठानों की एक उपजति। कुलंग=एक पक्षी। सुवन=पुत्र। दुवन=दुर्जन, शत्रु। बाजी=घोड़ा। रचै=रचते, अनुरक्त होते। सँचै=सचार करते। चपेटै=दबा रहे हैं। बुग=चंगुल, पजा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शाहजी के पुत्र शिवाजी सितारे में शिकार खेल रहे हैं। मुसलमान सूबेदार सारस के समान हैं, शाहज़ादे गोरैया पक्षी हैं, मुगल अमीर मोर है, ये भय से घबड़ाए रहते हैं, धैर्य नहीं धरते। बगस बगुले हैं, बलूची बतक हैं, काबुली कुलंग पक्षी हैं, ये भी डरपोक होने के कारण युद्ध में अनुरक्त नहीं होते (नहीं ठहरते)। किसी ओर भी कोई दुष्ट पक्षी(शत्रु) घूमता दिखाई नहीं देता। शिवाजी के घोड़े बाज के समान चारों ओर से अपने चगुल में (मुसलमान रूपी) पक्षियों को दबा रहे हैं। उनके सामने मुसलमान रूपी तीतर दिल्ली के भीतर भी नहीं बचने पाते।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और रूपक।

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मै॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं ॥५०॥

शब्दार्थ—राखी=रक्खी, रक्षा की। हिन्दुवानी=हिन्दुत्व। वेदविधि=वेदों की रीति, वैदिक विधान। रजपूती=क्षत्रियत्व। धरा=पृथ्वी। समसेर=तलवार। दिवाल=दीवार, यहाँ पर मर्यादा से अभिप्राय है। दुनी=दुनियाँ, संसार।

अर्थ—श्रेष्ठ कवि भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी, आपकी तलवार ने हिन्दुत्व को बचाया और हिन्दुओं के तिलक की रक्षा की, मैंने सुना है कि उसने पुराण, स्मृति और वैदिक रीतियों की भी रक्षा की। क्षत्रियत्व तथा राजाओं की राजधानियों को बचाया, पृथ्वी पर धर्म की तथा गुणियों में गुण की रक्षा की। मराठों के देश की सीमाओं को विजय करने के कारण आपकी कीर्ति का देश में जो यशगान हो रहा है, उसे मैंने सुना है। आपकी तलवार ने ही दिल्ली की सेना को पराजित करके संसार में मर्यादा स्थापित की है।

अलंकार—अनुप्रास और पदार्थावृत्तिदीपक।

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत[1]
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं॥५१॥

शब्दार्थ—विदित = प्रकट, प्रसिद्ध। रसना = जिह्वा। रोटी = जीविका। गर = गला। मीड़ना = मसलना।

अर्थ—महाराज शिवाजी ने अपनी तलवार के बल से वेदों और पुराणों को प्रकट रखा (लुप्त नहीं होने दिया), सारयुक्त राम नाम को सुन्दर जिह्वा रूपी घर में रक्खा। हिन्दुओं की चोटी और सिपाहियों की जीविका रक्खी। कंधों पर जनेऊ और गले में माला की रक्षा की। मुगलों का मर्दन कर, बादशाहों को मरोड़ कर, और शत्रुओं को पीस कर अपने

---

१. वेद राखे विदित पुरान प्रसिद्ध राखे।

हाथों में मनोवाञ्छित वरदान देने का अधिकार रक्खा। उन्होंने अपनी तलवार के ज़ोर से राजाओं की सीमा (मर्यादा) बचाई, मन्दिरों में देवताओं की रक्षा की और घर में अपना धर्म सुरक्षित रखा।

अलंकार—अनुप्रास और पदार्थावृत्तिदीपक।

सपत नगेस आठौं[1] ककुभ-गजेस कोल,
कच्छप दिनेस धरै धरनी अखंड को।
पापी घालै धरम सुपथ चालै मारतंड,
करतार प्रन पालै प्रानिन के झुंड[2] को॥
'भूषन' भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी,
म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को।
जग काजवारे निहिचिंत करि डारे सब,
भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को ॥५२॥

शब्दार्थ—सपत=सप्त, सात। नगेस=पहाड़। ककुभ=दिशा। ककुभ गजेश=दिग्गज। कोल=वराह, सूअर। कच्छप=कछुआ। दिनेश=सूर्य। धरनी=पृथ्वी। अखंड=सम्पूर्ण। घालै=नष्ट करता है। धरम=धर्मराज, यमराज। मारतंड=सूर्य। प्रन=प्रतिज्ञा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे धर्मवीर महाराज शिवाजी! आप अपनी कीर्ति का अभिमान कर सदा म्लेच्छों को मारते हैं, इसलिए आपने सातों पर्वतों, आठों दिग्गजों, वराह (सूअर) और सूर्य—जो समस्त पृथ्वी को धारण किये हुए हैं; तथा धर्मराज—जो पापियों का नाश करते है, एवं भगवान—जो सूर्यादि ग्रहों को ठीक रास्ते पर (नियम पूर्वक) चलाते हैं, तथा जिनका प्रण प्राणियों के समूह को पालना है—इन सब संसार का कार्य चलाने वालों को—निश्चिंत कर दिया है, इसलिए ये नित्य प्रातःकाल आपकी भुजाओं को आशीर्वाद देते हैं।

---

१. चारों। २. चंड।

छत्रसाल दशक

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद महेवावाल ।
सालत नौरँगजेब-उर[1], ये दोनों छतसाल ॥
वै देखौ छत्तापता, यै देखो छतसाल ।
वै दिल्ली की ढाल यै, दिल्ली ढाहनवाल ॥

शब्दार्थ—धनी = अधिपति । मरद = वीर पुरुष । सालत = चुभते हैं, दुख देते है । छत्तापता = पत्रों का बना हुआ छाता, (रक्षक)। छतसाल = छत्र को ध्वंस करने वाले ।

(इन दोहों में दो छत्रसालों का वर्णन हैं) एक बूँदी-नरेश छत्रसाल हाडा और दूसरा महेवावासी वीर छत्रसाल। ये दोनों छत्रसाल औरंगजेब के हृदय में चुभते हैं। वे (बूँदी के छत्रसाल) दिल्ली के रक्षक हैं और ये (महेवा के छत्रसाल) दिल्ली के छत्र को ध्वस करने वाले है। वे (बूँदीवाले छत्रसाल) दिल्ली की ढाल हैं और ये (महेवा के छत्रसाल) दिल्ली को विध्वंस करने वाले हैं। (शाहजहाँ के बीमार होने पर दिल्ली के तख्त पर कुछ दिन दारा का अधिकार था। जब औरंगजेब ने दिल्ली का तख्त पाने के लिए दारा पर चढाई की तब छत्रसाल हाडा दारा की तरफ़ से औरगज़ेब मे लडा था इसलिये उसे दिल्ली की ढाल कहा है। दूसरे छत्रसाल बुंदेला दिल्ली को ढाने वाले हैं। जब औरंगजेब ने दिल्ली का सिंहासन पा लिया तब इन्होंने उससे मोर्चा लिया था और उससे लगातार लडते रहे। इस प्रकार दोनों छत्रसाल ही औरंगजेब को दु:ख देनेवाले हैं)।

---

१. औरंगजेब को ।

मनहरण कवित्त

रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज[1] जोम जमकैं[2]।
भादौं की घटा-सी उड़ि[3] गरद[4] गगन घिरे[5],
सेलै समसेरै फिरैं[6] दामिनी-सी दमकैं[7]॥
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागै घन कैसी[8] घमकै[9]।
वैयर[10] बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की धमकैं[11]॥ १॥

शब्दार्थ—रैयाराव=राजा चपतराय का खिताब। चढ़ो= चढ़ाई की। जोम=घमंड। जमकै (जमुकै)=एकत्र होते है,सटते है। सेलै=भाले। समसेरै=तलवारें। घन=हथौड़ा। घमकै=चोट। बैयर=स्त्री। बगारन=दुर्गम घाटियाँ। अगारन=घरों। पगारन= चहारदीवारी। नगारन की धमकैं=नगाड़ों की गड़गडाहट।

अर्थ—रैयाराव चंपतराय के पुत्र वीर छत्रसाल जब चढ़ाई करते हैं तो बड़े बड़े हाथी सट कर खड़े हो जाते हैं। धूल उड़कर भादों की घटा के समान आकाश में घिर जाती है और (वीरों के) भाले और तलवारें जो फिरती हैं वे बिजली के समान चमकती हैं। छत्रसाल के नगाड़ों की गड़गड़ाहट सुन कर खान, उमराव, राव और राजाओं के हृदय में हथौड़ों की सी चोट लगती है। दुगम घाटियों और महलों में रहने वाली शत्रु स्त्रियाँ नगाड़ों का शब्द सुन कर मकानों की चहार-दीवारी फाँदने लगती हैं (अर्थात् डर कर भागने लगती हैं)।

---

१. समसेर (तलवार)। २. जमके। ३. उठीं। ४. गरदै। ५.घेरैं। ६. फेरै। ७. दमके। ८. कैसे। ९. घमके। १०.बैहर। ११. धमके।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास

चकाचक-चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥
सुनि सुनि रीति विरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन-उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जग-जीतिलेवा तेऊ ह्वैकै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपाल की॥ २॥

शब्दार्थ—चाकचक=चारों ओर से सुरक्षित, दृढ, मजबूत। चमू=सेना। अचाकचक=अचाचक, अचानक। चाक=चक्र, कुम्हार का चाक। करेरो=सख्त, तेज, सीधी। करेरी करवाल की=तलवार सीधी की, सामना किया। विरुदैत=जिसका विरद (यश) बखाना जाय, यशस्वी। थप्पन=सं० स्थापना, बसाना। उथप्पन=उखाड़ना, उजाड़ना। बानि=आदत।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि चंपतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल की धाक, सब तरह से सुरक्षित शत्रु सेना के चारों ओर कुम्हार के चक्र के समान अचानक फिरती रहती है। उन्होंने शाही अमलदारी को मार कर परास्त कर दिया, किसी उमराव (सरदार) ने उनके सम्मुख तलवार सीधी न की अर्थात् मुकाबला करने का साहस न किया। यशस्वी महाराज छत्रसाल की थप्पन (आश्रितों को बसाने) और उथप्पन (शत्रुओं को उजाड़ने) की आदत एवं कीर्ति सुन-सुन-कर युद्ध में विजय पाने वाले शत्रु राजा भी खिराज दे दे कर इस महेवा-नरेश की सेवा करने लगे।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और विशेषोक्ति।

साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद-सा जीता जो समद लौं बखाना है।

भूपन बुँदेला-मनि चपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँ ना है ॥
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा
महमद अमीखाँ का कटक खजाना है।
वीर-रस-मत्ता जाते काँपत चकत्ता यागे,
कत्ता ऐसा बाँधिए जो छत्ता बाँधि जाना है ॥३॥

शब्दार्थ—साँग=(सं० शक्ति) भाला। पेलि=ढकेल कर। खग्ग=(सं० खड्ग) तलवार। समद=अब्दुस्समद, इसे औरंगजेब ने सन् १६९० में छत्रसाल पर चढ़ाई करने के लिए भेजा था। कई लड़ाइयों के बाद छत्रसाल ने इस पर विजय पाई थी। समद=समुद्र। मियाँ=मुसलमान। उदगल=उद्दंड। महमद अमीखाँ=मुहम्मद हाशिम खाँ, यह सिरौंज का थानेदार था, छत्रसाल ने सिरौंज के अन्तर्गत 'तिवारी ठिकाने' को लूटा था। कटक=सेना। मत्ता=मतवाला। कत्ता=तलवार। छत्ता=छत्रसाल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि चम्पतराय के सुपुत्र और बुंदेलों के शिरोमणि वे महाराज छत्रसाल धन्य हैं, जिन्होंने भालों की मार से धकेल धकेल कर और तलवार चला चला कर समुद्र के समान विशाल अब्दुस्समद (की सेना) को जीत लिया, और जिनकी धाक से एक भी वीर मुसलमान व्यक्ति नहीं बचा। जिन्होंने जंगल के बल से (अर्थात् जंगल में छिपकर और अचानक हमला करके) उद्दंड और प्रबल महम्मद हाशिम खाँ की फौज और ख़जाना लूट लिया, जो सदा वीर रस में मस्त रहते हैं और जिनसे सदा औरंगज़ेब भी डरता रहता है, उन्हीं छत्रसाल की ऐसी तलवार बाँधनी चाहिए।

अलंकार—उपमा, यमक, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

देस दहपट्टि[1] आयो आगरे दिल्ली के मेंड़े,
 बरगी बहुरि[2] मानौं दल जिमि देवा को।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल मनि,
 ताके तें कियो बिहाल जंग-जीति लेवा को॥
खंड खंड सोर यों अखंड महि मंडल में,
 मंडित[3] बुँदेलखंड मंडल महेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
 ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को॥४॥

शब्दार्थ—दहपट्टि=उजाड़ कर। मेंड़े=सीमा। बरगी=वे सिपाही जो सरकारी घोड़े पर राज-कार्य करते हैं। बहुरि=इकट्ठे होकर। देवा=(फा०) राक्षस। ताके तें=देखने से। बिहाल=विह्वल। सोर=शोहरत, प्रसिद्धि। मंडित=छाया, फैला। दच्छिन के नाह=दक्षिण के स्वामी, दक्षिण के बीजापुर के एक पठान ने संवत् १७५० वि० में पन्ना पर चढ़ाई की थी, पर वह वहाँ पहुँचते ही मारा गया, और उसकी सेना आगे न बढ़ सकी। सहसबाहु=सहस्रबाहु अर्जुन, एक राजा जिसके सहस्र भुजाएँ थीं।

अर्थ—दक्षिण का पठान सरदार घुड़सवार सेना इकट्ठी करके सब देशों को जीतता एवं बरबाद करता हुआ आगरे और दिल्ली की सीमा तक आ गया। उसकी सेना ऐसी थी मानों राक्षसों का समूह हो। भूषण कवि कहते हैं कि राजाओं के शिरोमणि छत्रसाल ने ऐसे युद्ध-विजयी शत्रु को भी केवल अपने दृष्टिपात से ही व्याकुल कर दिया। समस्त भू-मंडल के खंड-खंड में बुंदेलखंड के महेवा प्रांत की कीर्ति छा गई। दक्षिण के (बीजापुर के) स्वामी की सेना महाबाहु (छत्रसाल) ने

१. दहबट्टि। २. बहरि। ३. मंडौ ते।

इस प्रकार रोक ली जैसे सहस्रबाहु ने रेवा नदी की धारा रोकी थी।*

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

अत्र[1] गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मति बड़ी कै[2] कबड़ी[3] के खिलवारन लौं,
देत सै हजारन हजार वार चपटैं॥
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं;
सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं॥५॥

शब्दार्थ—अत्र=अस्त्र। खिझ्यो=क्रुद्ध हुआ। बेतवा=बुन्देलखंड की प्रसिद्ध नदी जो त्रिविक्रमपुर के पास यमुना में मिलती है। इसी के किनारे छत्रसाल का अब्दुस्समद से युद्ध हुआ था। झुकि=क्रुद्ध हो कर। झपटै=आक्रमण। हिम्मति बडी कै=बडा साहस करके। चपटै=चोटे। हुलसी=प्रसन्न हुई। कबड़ी=कबड्डी का खेल। जपटै=झपटते हैं, लपकते है। बाड़व=बड़वानल, समुद्र की आग।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि छत्रसाल जब हाथ में हथियार लेकर

---

* एक बार लंकापति रावण रेवा (नर्मदा) नदी मे स्नान कर रहा था। सहस्रबाहु अर्जुन ने उसे दश मुख वाला कोई जन्तु समझ कर पकड़ना चाहा। किन्तु रावण ने जब देखा कि उसे पकड़ने को सहस्रबाहु आ रहा है तब वह पानी में डुबकी लगा गया। तब सहस्रबाहु ने नदी मे ऊपर की ओर लेट कर पानी रोक दिया, जिससे नदी का पानी कम होजाने से रावण दिखाई देने लगा और उसे सहस्रबाहु ने सहज में पकड़ लिया।

१. अस्त्र। २. के। ३. गबड़ी।

बेतवा के मैदान में क्रुद्ध हुए, तब उधर से पठानों ने भी बड़े वेग से आक्रमण किया। छत्रसाल बड़े साहस के साथ कबड्डी के खिलाड़ियों की भाँति सैकड़ों हजारों को हजारों चपत मारते फिरते थे। ऐसे समय कालिका प्रसन्न हो आशीर्वाद देने लगीं और श्री महादेव जी के गण (मृतकों के) मस्तक लेने के लिए बड़े वेग से झपटने लगे। उस समय युद्धस्थल में अब्दुस्समद की सेना समुद्र के समान और बुँदेलों के भाले और तलवारें बड़वाग्नि की ज्वाला के समान जान पड़ते थे।

अलंकार—अनुप्रास, यमक और उपमा।

वड़ी औंडी उमडी-नदी-सी फौज छेकी जहाँ,
मेड वेड़ी छत्रसाल मेरु मे खरे रहे।
चपति के चकवै मचायो घमसान वैरी,
मलियै[1] मसानि आनि सौंहैं जे अरे रहे॥
भूषन भनत भक रुड रहे रुंड-मुंड,
भवके भुसुंड तुंड लोहू सों भरे रहे।
कीन्हों जस-पाठ हर, पठनेटे ठाट-पर,
काठ लौं निहारे कोस साठ लौं डरे रहे॥ ६॥

शब्दार्थ—औंड़ी = गहरी। छेकी = रोकी। मेड़ = सीमा। मेड बेड़ी = सीमा बाँध ली। चकवै = स० चक्रवर्ती, सम्राट। घमासान = घोर युद्ध। मलियै मसान = श्मशान में मसले हुए। भक = सहसा, अचानक। भवके = भक भक करके रक्त उगलने लगे अथवा भड़कने लगे, उछलने लगे। भुसुंड = स० भुशुंड, हाथी अथवा भुशुंडी (एक प्रकार का अस्त्र)। तुंड = मुख, सूंड अथवा तलवार का अगला हिस्सा। पठनेटे = पठान युवक। ठाटपर = ठाट-परायण, सजावट प्रिय अथवा अस्थिपंजर पर।

---

१. मरियै।

अर्थ—बड़ी गहरी और उमड़ कर बहने वाली नदी के समान सेना को महाराज छत्रसाल ने रोका और सीमा बाँध कर मेरु पर्वत के समान अचल खड़े रहे। चम्पतराय के सुपुत्र इस चक्रवर्ती महाराज छत्रसाल ने वह घमासान मचाया कि शत्रुगण जो सामने आकर उनसे भिड़े थे अब मसले (कुचले) हुए श्मशान में पड़े हैं। भूषण कवि कहते है कि रुंड- (कवंध) और ववधों के कटे हुए सिर उछलने लगे अथवा खून उगलने लगे और हाथियों की सूँडें खून से भर गई अथवा भुशुंडी (एक प्रकार का अस्त्र) और तलवारों के अग्रभाग खून से भर गये। महादेव ने भी (प्रसन्न हो) यशगान किया और पठान युवक जो बनाव श्रृंगार के प्रेमी थे, डर के कारण साठ कोस की दूरी पर भी काठ की तरह पड़े हुए देखे गये (डर के कारण आगे न बढ़ सके)। चतुर्थ पद का अर्थ यह भी हो सकता है—साठ कोस तक शत्रु डर के कारण काठ हो गये, (सन्न हो गये) और स्वयं भगवान शंकर पठान युवकों के ठाट (ठठरी, अस्थि पंजर) पर बैठकर छत्रसाल का यश-पाठ करने लगे।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास।

भुज भुजंगेस की बैसंगिनी[1] भुजगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैयाराव चपति के छत्रसाल महाराज,
भूषण सकै करि बखान को बलन के।[2]
पच्छी पर-छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने है खलन के॥७॥

शब्दार्थ—भुजगेस=शेषनाग। वैसगिनी=(वयस् संगिनी)

---

१. वै संगिनी। २. भूषन सकत को बखानि यों बलन के।

आयु भर साथ देने वाली। भुजंगिनी=नागिन। खेदि खेदि=खदेड़ खदेड़ कर। दीह=दीर्घ, विशाल, बड़े। दारुन=भयानक। बखतर=(फा०) कवच। पाखरन=हाथी घोड़ों पर डालने की लोहे की झूलें। परवाह=प्रवाह, बहाव। परछीने=पक्ष छिन्न, परकटे। पर = शत्रु। छीने = क्षीण, कमजोर। बर = बल।

अर्थ—हे रैयाराव चपतिराय के सुपुत्र महाराज छत्रसाल! आप की बरछी आपके बाहुरूपी शेषनाग की सदा हाथ रहने वाली नागिन है। यह (बरछी) विशाल भयंकर शत्रुदल को खदेड खदेड कर डसती है (नष्ट करती है)। यह (बरछी) कवच और लोहे की झूलों में ऐसे घुस जाती है जैसे मछली पानी की धारा को तैर कर पार कर जाती है (इतनी तेज है कि लोहे को भी सरलता से काट देती है)। भूषण कवि कहते हैं कि आपके बल का वर्णन कौन कर सकता है, (बरछी द्वारा कटने से) शत्रु की सेना के वीर परकटे पक्षी की तरह निर्बल होकर पड़े हैं। हे वीर! आपकी बरछी ने दुष्टों के बल छीन लिये हैं।

अलकार—रूपक, उपमा, उदाहरण, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सबै[1],
पदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।
भूपन भनत राय चपति को छत्रसाल,
रोप्यो रन स्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की॥
कैयक हजार[2] एक बार वैरी मारि डारे,
रजक दगनि मानों अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान-सेन-सगर-सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की॥८॥

---

१. सम। २. करोर।

शब्दार्थ—हैवर=(हयवर) श्रेष्ठ घोड़े। हरट्ट=(हृष्ट) मोटे ताजे। गैवर=(गजवर) श्रेष्ठ हाथी। गरट्ट = गरिष्ठ, डील डौल वाले, मोटे। ठट्ट = समूह, झुंड। रोप्यो रन ख्याल = लड़ाई का विचार किया। रंजक = वह बारूद जो तोप या बंदूक के छिद्र पर आग लगाने के लिए रक्खा जाता है। दगनि = दगना, जलना। अगनि रिसाने की = क्रोधाग्नि। सैद अफगन = सैयद अफगन; यह दिल्ली का एक सरदार था जो छत्रसाल से लड़ने को भेजा गया था, छत्रसाल ने इसे पराजित किया था। सगर सुतन= राजा सगर रघुवंशी थे। इनके साठ हज़ार पुत्र थे। एक बार राजा सगर ने अश्वमेध-यज्ञ किया। यज्ञ के समय घोड़ा छोड़ा गया। उस घोड़े की रक्षा के लिए सागर के ६०००० पुत्र साथ चले। इन्द्र ने अपना इन्द्रासन जाने के डर से घोड़ा कपिल मुनि के आश्रम मे बॉध दिया। सगर के पुत्र जब वहॉ पहुॅचे तो घोडे को बॅधा देखकर उन्हों ने मुनि को गालियॉ दीं और उन्हे सताया। तग होकर ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया, कि तुम सब नष्ट हो जाओ। तराप = तोप की गर्जना।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि उत्तम मोटे ताज़े घोड़ों तथा अच्छे डील डौल वाले हाथियों से सुसज्जित हो कर मुसलमानों की पैदल सेना के यूथ के यूथ इकट्ठे हो गये। चंपतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल ने हिन्दुओं का रक्षक बन कर रण-क्रीड़ा आरम्भ की। उनकी क्रोधाग्नि मानो तोप के बारूद का जलना है जिसने कई हज़ार शत्रुओं को एक ही बार में मार डाला। सैयद अफगन की सेना रूप सगर के पुत्रों के लिए छत्रसाल की तोपों की गर्जना कपिल मुनि का शाप हो गई (अर्थात् जिस तरह कपिल मुनि के शाप से सगर के पुत्र भस्म हो गये थे उसी तरह छत्रसाल की तोपों से सैयद अफगान की फौज भस्म हो गई)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा और अनुप्रास।

छप्पय

तहवरखान हराय, ऐंड अनवर की जग हरि।
सुतरुद्दीन बहलोल, गए अबदुल्ल समद मुरि॥
महमुद को मद मेटि, सैद अफगनहि जेर किय।
अति प्रचंड भुजदंड, बलन केही न दंड दिय॥
भूषन बुँदेल छत्रसाल डर, रंग तज्यो अवरंग लजि।
झुक्के निसान सक्के समर, मक्के तक तुरक भजि॥९॥

शब्दार्थ—तहवरखान = सन् १६८० औरंगजेब ने तहव्वर खॉ को एक बड़ी सेना-सहित छत्रसाल पर चढ़ाई करने को भेजा था। कई लड़ाइयों के पश्चात् अन्त मे वह छत्रसाल से हार कर वापिस लौट आया। ऐंड = घमंड। अनवर = जब तहव्वर खाँ हार कर लौट आया तब औरंगजेब ने शेख अनवर खॉ को एक सेना देकर छत्रसाल से लड़ने भेजा। किन्तु अनवर खाँ वहाँ पकड़ा गया और छत्रसाल को सवा लाख रुपया देकर छूट सका। हरि = हरण करके। सुतरुदीन = सदरुद्दीन, यह धमौनी का सूबेदार था। जब अनवरखॉ हार गया तब औरंगजेब ने इसे सेनापति बनाकर भेजा। इसने भी छत्रसाल से लड़ाई की थी किन्तु यह भी पकड़ा गया और सवा लाख जुर्माना एवं चौथ का वचन देने पर छत्रसाल ने इसे छोड़ा। बहलोल = जब छत्रसाल अब्दुस्समद से लड रहे थे तब 'भेलसा' मुगलों ने ले लिया। छत्रसाल 'भेलसा' फिर लेने को चले। तब मार्ग में बहलोलखॉ से भेंट होगई। लड़ाई होने पर बहलोल खॉ परास्त होकर भाग गया। मुरि गए = मुड़ गए, वापिस चले गये, भाग गये। महमुद = मुहम्मद खाँ बंगश, यह फर्रुखाबाद का नवाब था। इसे छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा की सहायता से हराया था। सैद अफगान = सैयद अफगन (छन्द नं० ८ देखिए)। रंग तज्यो = फीकापड़

गया, मलिन पड़ गया। निसान = झंडे। सके = शंकित हो गये, डर गये। तुरक्क = तुरक, मुसलमान।

अर्थ—महाराज छत्रसाल ने तहव्वरखाँ को हराया, अनवरखाँ का युद्ध में घमंड दूर कर दिया. सदरुद्दीन, बहलोल और अब्दुस्समद भाग गये। मुहम्मद का मद हरण करके सैयद अफगन को परास्त कर दिया। अपने प्रचंड भुजदंडो के ज़ोर से किसे दंड नहीं दिया अर्थात् सब को दण्डित किया। भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब लज्जित होकर फीका पड़ गया। छत्रसाल के आतक से मुसलमानों के झंडे झुक गये और युद्ध में शकित होकर तुरक (मुसलमान) मक्के तक भाग गये (भारत में भय के कारण नहीं रहे)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास।

राजत अखड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सो मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन[1] करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदर[2] कतार दीन्हे,
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को?
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू[3] को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥१०॥

शब्दार्थ—राजत = शोभा पाता है। छाजत = शोभा पाता है। गयद = हाथी। दिग्गजन हिय सालको = दिग्गजों के हृदय मे पीड़ा करने के लिए। आफताब = सूर्य। दुजन = (द्विजन) ब्राह्मण। तुरी = घोड़ा। कतार = पंक्ति। साहू = महाराज साहू जी, ये छत्रपति शिवाजी के पौत्र थे। सराहौं = प्रशंसा करूँ।

---

१. दुब्जन्न, दुर्जन। २. कोतल। ३ सिवा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि आपका अखंडित तेज शोभायमान है, आपका महान यश छा रहा है, आपके हाथी दिग्गजों के हृदय में पीड़ा पहुँचाने के लिए गर्जते हैं (अर्थात् आपके हाथियों के गर्जने से दिग्गज भी भय खाते हैं), आपके प्रताप के सम्मुख सूर्य भी मलिन हो जाता है, आप ताप (अभिमान) छोड़ कर ब्राह्मणों का बड़ा आदर करते हैं, आपने साज तथा सामान युक्त घोड़े, हाथियों और पैदलों की पंक्ति की पंक्तियाँ दान में दी हैं, आजकल ऐसा और कौन गरीबों का भरण पोषण करने वाला है? (अर्थात् कोई नहीं है)। इसी कारण मेरी इच्छा अन्य राजाओं के यश वर्णन करने की नहीं होती। या तो अब मैं साहू महाराज का यशवर्णन करूँगा या छत्रसाल का यश का गाऊँगा।

अलंकार—अतिशयोक्ति काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास।

फुटकर

रेवा ते इत देत नहिं, पत्थिक म्लेच्छ निवास।
कहत लोग इन पुरनि मै, है सरजा को त्रास ॥१॥

शब्दार्थ—रेवा = नर्मदा नदी।

अर्थ—नर्मदा नदी से इधर (दक्षिण में) कोई भी आदमी म्लेच्छ (मुसलमान) मुसाफिरों को अपने यहाँ नहीं ठहराता। सब लोग कहते हैं कि इन नगरों में सरजा (सिंह, शिवाजी) का आतंक फैला हुआ है।

अलंकार—समासोक्ति।

तेरे त्रास बैरि बधू पीवत न पानी कोऊ,
पीवत अघाय धाय उठे[1] अकुलाइ हैं।
कोऊ रही बाल कोऊ कामिनी रसाल सों[2] तौ,
भई बेहवाल फिरैं भागी बनराइ हैं॥
साहि के सपूत तुम आलम-सुभानु सुनौ[3],
भूषन भनत तव कीरति बनाइ है।
दिल्ली को तखत तजि नींद खान पान भोग,
सिवा सिवा बकत-सी सारी पातसाइ है॥ २॥

शब्दार्थ—अघाय = पेट भर कर। बाल = बाला, नवयुवती। कामिनी = स्त्री। बनराई = बनराज, बड़ा भारी जगल, घोर जंगल आलम = संसार। आलम-सुभानु = संसार का श्रेष्ठ सूर्य।

अर्थ—आपके भय से शत्रु स्त्रियाँ पेट भर कर पानी नहीं पीतीं, क्यो कि पेट भर कर पानी कर पी उठ कर दौड़ने में उन्हें कष्ट होता है। इनमें

---

१. उठैं। २. ते। ३. साहि के सपूत खुद आलम खुमान सुनौ

कोई तो नवयुवतियाँ हैं और कोई रसीली कामिनियाँ हैं अर्थात् अनन्य सुन्दरी हैं, वे सब घबरा कर घने बनों में मारी-मारी फिरती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र शिवाजी! सुनिए, भूषण आपकी कीर्ति (कविता) बनाकर कहता है, आप संसार के सूर्य हैं। दिल्ली के तख्त (बादशाह) ने खान, पान और भोग-विलास सब छोड़ दिया है, यहाँ तक कि सारी बादशाही 'शिवा-शिवा' बकती सी रहती है।

अलकार — अनुप्रास और वीप्सा।

तेरी धाक ही ते नित हबसी फिरंगी औ,
बिलाइती विलदे करैं वारिधि विहरनो।
भूषन भनत बीजापुर भागनेर दिल्ली,
तेरे बैर भयो उमरावन को मरनो॥
बीच बीच उहाँ केते जोर सो मुलुक लूटे,
कहाँ लगि साहस सिवाजी तेरो बरनो।
आठों दिगपाल त्रास आठ दिसि जीतिबे को,
आठ पातसाहन सों आठौ जाम लरनो॥३॥

शब्दार्थ—विलंदे = विलंद हुए, नष्ट हुए, अवारा। विहरनो = भ्रमण करना।

अर्थ—हे शिवाजी! आपकी धाक से हबशी, फिरंगी और विदेशी लोग नष्ट होकर (मारे मारे) सदा (भागने के लिए) समुद्र में घूमते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि आप से बैर रखने के कारण बीजापुर, भागनेर और दिल्ली के उमरावों का मरण हो रहा है अर्थात् वे मर रहे हैं। आप ने बीच-बीच में वहाँ के कितने ही देशों को लूटा है। हे शिवाजी! मैं आपके साहस का कहाँ तक वर्णन करूँ? आपने आठों याम (चौबीस घडी) आठों बादशाहों से लड़ाई ठान रखी है अत. आठों दिक् पालों को डर हो रहा है कि कहीं आप आठों दिशाओं को न जीत लें।

अलकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

आई चतुरंग-सैन सिंह सिवराज जू की,
देखि पातसाहन की सेना धरकत हैं।
जुरत सजोर जंग जोम भरे सूरन के,
स्याह-स्याह नागिन लौं खग्ग खरकत हैं॥
भूषन भनत भूत-प्रेतन के कंधन पै,
टाँगी मृत बीरन की लोथें लरकत हैं।
कालमुख भेटे भूमि रुधिर लपेटे पर-
कटे पठनेटे मुगलेटे फरकत हैं॥ ४॥

शब्दार्थ—जंग जुरत = युद्ध में जुड़ते हैं, भिड़ते हैं। सजोर = जोर सहित। जोम भरे = उत्साह पूर्ण। परकटे = पंख कटे, यहाँ हाथ पैर कटे हुए से तात्पर्य है। काल-मुख भेटे = मृत्यु के मुख में भेंट हुए, मौत के मुख में गये हुए, मर गये।

अर्थ—वीर केसरी, शिवाजी की चतुरंगिणी सेना को आई हुई देख कर बादशाहों की सेना दहल उठती हैं। उत्साह में भरे हुए बड़े बड़े योद्धा एक दूसरे से बड़े पराक्रम के साथ भिड़ जाते हैं और काली-काली नागिनों के समान तलवारें खटाखट बजने लगती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि भूत-प्रेतों के कधों पर रक्खी हुई मृत वीरों की लाशें लटक रही हैं। काल के मुख में गये हुए, हाथ पैर कटे (क्षत-विक्षत) नौजवान पठान और मुगल पृथिवी पर रुधिर में लथपथ हुए छटपटा रहे हैं।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज बीर,
धौंसा की धुकार ते पहार दरकत हैं।
गिरे कुंभि मतवारे स्रोनित फुवारे छूटे,
कड़ाकड़ छितिनाल लाखों करकत हैं॥

मारे रन जोम के जवान खुरासान केते,
काटि काटि दाटि दाबें छाती थरकत हैं।
रन-भूमि लेटे वे चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं॥ ५॥

शब्दार्थ—धौंसा=नगाड़ा। धुकार=गड़गड़ाहट। दरकत=विदारित होते हैं, फटते हैं। कुंभि=हाथी। छितिनाल=एक प्रकार की बन्दूक। करकत हैं=कड़कती हैं। जोम=पराक्रम, उत्साह। दाटि=डाँट कर। थरकत=थरथराती हैं, धड़कती हैं, काँपती हैं। चपेटे=चोट खाये हुए।

अर्थ—महाराज शिवाजी जब क्रुद्ध होकर चढाई करते हैं तो उनके धौंसे की गडगडाहट की ध्वनि से पहाड तक फट जाते हैं। कितने ही मदोन्मत्त हाथी गिर जाते हैं और उनसे रुधिर के फव्वारे छूटने लगते हैं। लाखों बन्दूकें कडकड शब्द करती हुई कडक रही हैं (छूट रही हैं)। उन्होंने युद्ध में पराक्रम-पूर्वक कितने ही खुरासानियों को काट काट कर मार डाला और कितनों ही को डाँट कर दबा रक्खा है, जिससे उनकी छाती अब तक धडकती है। युद्धस्थल में चोट खाये हुए पठान युवा पडे हुए हैं और खून में लिपटे हुए मुगल पडे तड़फडा रहे हैं।

अलंकार—अत्युक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥
कहूँ रुंड मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं॥ ६॥

शब्दार्थ—दले=दलित किये, नष्ट किये। दमकत हैं=चमकते हैं। कलल=कलेवा। अलल=शोर। तमकत हैं=तैश में आते हैं, उत्साहित होते हैं। बखतर=कवच, लोहे की झूलें। झमकत हैं=झम-झम शब्द करते हैं। गति=चाल (गत)। बंध=नियम। ताल गति बंध पर=पैंतरे के साथ। कबंध=धड़। धमकत हैं=धम-धम शब्द करते हैं।

अर्थ—सलहेरि के युद्ध में शिवाजी ने दिल्ली की सेना काट डाली। भूषण कवि कहते हैं कि इसका तमाशा देखने के लिये देवता आ विराजे हैं और (उनके दिव्य शरीर) चमक रहे हैं। कालिका कलेजे का कलेवा करके किलकारी मारती है। भूत-प्रेत शोर करते हुए तैश में आ रहे हैं। युद्ध में कहीं रुंड-मुंड पड़े हैं कहीं खून के कुंड भरे हैं, कहीं हाथियों के झुण्डों की झूलें झम-झमा रही हैं। (सिर कट जाने पर) धड़ कंधे पर तलवार धारण किये हुए पैंतरों के साथ पृथ्वी पर दौड़ कर धम धम शब्द करते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

भूप सिवराज कोप करि रन-मंडल मैं,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे मैं।
काटे भट बिकट गजन के सुंड काटे,
पाटे उर भूमि, काटे दुवन सितारे मैं॥
भूषन भनत चैन उपजे सिवा के चित्त,
चौसठ नचाई जबै रेवा के किनारे मैं।
आँतन की ताँत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पशुपाल के अखारे मैं॥ ७॥

शब्दार्थ—दरबारे मे=दरबार मे, यहाँ सेना से तात्पर्य है। पाटे=पाट दिया, भर दिया। दुवन=शत्रु। चैन=शान्ति, आराम।

चौंसठ=चौंसठ योगिनियाँ । आँत=आँतड़ियाँ । ताँत=डोरी जो आँतड़ियों से बनाई जाती है, यह धनुष पर डोरी के स्थान पर चढाई जाती है और सारगी में भी काम आती है। यहाँ ताँत से अभिप्राय सारगी का है । मृदग=ढोलक । ताल=मँजीरा । पसुपाल=पशुपाल, महादेव । अखारे=अखाड़ा, समाज, मंडली, दल ।

अर्थ—महाराज शिवाजी क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र के मध्य औरंगज़ेब की सेना में तलवार लेकर कूद पडे । वहाँ उन्होंने बड़े बडे वीर योद्धाओं को काट गिराया और हाथियों की सूँडें काट डालीं तथा पृथ्वी में डर भर दिया। सितारे (के रण क्षेत्र) में शत्रुओं को काट डाला । भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी के चित्त में तभी शान्ति पड़ी जब रेवा नदी के किनारे पर (उन्होंने इतनी मारकाट कर डाली कि वहाँ) महादेव जी का अखाड़ा जम गया, जिसमें चौसठों योगिनियाँ मनुष्यों की आँतों की ताँतों से सारगी, उनकी खाल मढकर मृदग और खोपडियों के मँजीरे बनाकर नाचने लगीं ।

अलंकार—अनुप्रास, अत्युक्ति और पदार्थावृत्तिदीपक ।

जानि पति बागवान मुगल पठान सेख,
बैल सम फिरत रहत दिन रात हैं ।
ताते ह्वै अनेक कोऊ सामने चलत कोऊ,
पीठ दै चलत मुख नाइ सरमात हैं ॥
भूषन भनत जुरे जहाँ जहाँ जुद्ध भूमि,
सरजा सिवा क जस बाग न समाते हैं ।
रहँट की घरी जैसे औरँग के उमराव,
पानिप दिली ते ल्याइ ढारि ढारि जात हैं ॥८॥

शब्दार्थ—बागबान=माली । ताते=गरम । ताते ह्वै=गरम होकर, क्रुद्ध होकर । रहँट=कुएँ से बैलों द्वारा जल निकालने की कल । घरी=घड़ा ।

अर्थ—अपने स्वामी (औरंगजेब) को (रणभूमि रूपी बाग का) माली समझ कर मुगल, पठान और शेख रात दिन बैल के समान घूमते फिरते हैं। कोई क्रोध कर (तेज़ी से) सामने चलते हैं और कोई शरमा कर नीचे को मुख किये पीठ देकर चले जाते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि वे जहाँ जहाँ रणभूमि में लड़ते हैं वहाँ वहाँ शिवाजी का यश (रणभूमि रूपी) बाग में नहीं समाता। औरंगज़ेब के बड़े बड़े सरदार रहँट के घड़े के समान हैं जो देहली से पानी (कान्ति, चमक) लाकर उसे (रणभूमि में) उँडेल जाते हैं (अर्थात् औरंगजेब के बड़े बड़े सरदार देहली से दक्षिण में आकर पराजित हो अपना सब गौरव खो कर वापिस लौट जाते हैं इस से शिवाजी का यश और अधिक बढ जाता है)।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, रूपक और समासोक्ति।

बाप ते बिसाल भूमि जीत्यो दस-दिसिन ते,
महि मैं प्रताप कीन्हों भारी भूप भान सों।
एसो भयो साहि को सपूत सिवराज वीर,
जैसो भयो, होत है, न है है कोऊ आन सों॥
एदिल कुतुबसाह औरँग के मारिबे को,
भूपन भनत को है सरजा खुमान सों।
तीन पुरं त्रिपुर के मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥९॥

शब्दार्थ—बिसाल=विशाल, बडा। भान=भानु, सूर्य। आन=अन्य, और। तीन पुर=तीन लोक। त्रिपुर=एक राक्षस। हनी=मारी। किरवान=कृपाण, तलवार।

अर्थ—शाहजी के सुपत्र वीर महाराज शिवाजी के ऐसा न कोई हुआ है, न है, और न होगा, जिन्होंने दसों दिशाओं में अपने पिता से भी अधिक भूमि जीती है और सूर्य के समान पृथ्वी पर अपने प्रचंड प्रताप को फैलाया है। भूषण कवि कहते हैं कि आदिलशाह, कुतुबशाह और औरंगज़ेब

को मारने के लिए चिरजीव शिवाजी के समान और कौन है ? शिवजी ने एक त्रिपुरासुर को (मारने के लिए) तीन लोकों में तीन बाण मारे थे* किन्तु शिवाजी ने तीन बादशाहों (बीजापुर, गोलकुंडा और औरंगजेब) को अपनी एक ही तलवार से नष्ट कर दिया।

अलंकार---व्यतिरेक, अनुप्रास और पुनरुक्तवदाभास।

तेग-बरदार स्याह पखा-बरदार स्याह,
निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को।
पान पीक-दानी स्याह सेनापति मुख स्याह,
जहाँ तहाँ ठाढ़े गिनै भूषन सिपाह को॥
स्याह भये सारी पातसाही के अमीर खान,
काहू के न रह्यो जोम समर उमाह को।
सिंह सिवराज दल मुगल बिनास करि,
घास ज्यों पजार्‌यो आम-खास पातसाह को॥१०॥

शब्दार्थ—तेग=तलवार। बरदार=धारण करने वाला। निखिल=समस्त। नकीब=बन्दी जन, भाट। बिराह=बेराह, बेकायदे अंड बंड। पीक-दानी=बर्तन विशेष, जिस में पान खाकर थूकते हैं। उमाह = उत्साह। पजार्‌यो = जला दिया। आम खास = महल के भीतर का वह स्थान जहाँ बादशाह बैठते हैं।

अर्थ—शेर शिवाजी ने मुगल सेना का नाश करके आम-खास घास की तरह जला दिया जिस से तलवार धारण करने वाले (तलव लेकर आगे आगे चलने वाले सेवक) पखा करने वाले और समस्त नकीबों के मुख काले पड गये और वे (डर के कारण) अंड-बंड बकने लगे। पानदान तथा पीकदान उठाने वालों से लेकर सेनापतियों तक के मुख काले पड गये। भूषण कवि कहते हैं (जब बडों-बड़ों की यह हालत हुई तब) जहाँ तहाँ खडे हुए सिपाहियों की कौन गिनती करे। समस्त बादशाहत

* इसकी कहानी पृष्ठ २४४ पर दी जा चुकी है।

के अमीरों एव खानों के मुख भी काले पड़ गये। सब का जोम (घमड) नष्ट हो गया और किसी को भी रणोत्साह न रहा।

अलकार—उपमा, अनुप्रास और काव्यार्थापत्ति।

सैयद मुगल पठान, सेख चदावत दच्छन[1]।
सोम-सूर द्वै बस, राव राना रन-रच्छन॥
इमि भूपन अवरग, और एदिल-दल-जंगी।
कुल करनाटक कोट, भोट-कुल ह्वस फिरगी॥
चहुँ ओर वैर महि मेरु लगि, साहितनै साहस झलक।
फिर एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक॥११॥

शब्दार्थ—दच्छन = दक्ष, चतुर। सोम = चन्द्रमा। सोम-सूर वश = चद्र एव सूर्य वश। भोट = भोटानवाले।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सैयद, मुगल, पठान, शेख, चतुर चंद्रावत, तथा चद्रवशी और सूर्यवशी दोनों राव और राणा युद्ध में जिसकी रक्षा करते हैं ऐसे औरंगज़ेब और आदिलशाह के बड़े बड़े दल हैं, जिन में सब करनाटकी, कोटे वाले, भूटानी, हबशी और फिरंगी सम्मिलित हैं। चारों ओर पृथिवी पर वैरियों का एक पहाड़ सा खड़ा हो गया है अब शाहजी के पुत्र शिवाजी का साहस देखिये कि एक ओर वे अकेले हैं और दूसरी ओर सारी दुनियाँ इकट्ठी हो गई है।

जोर रूसियान को है, तेग खुरासानहू की,
नीति इंगलैंड, चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत अमान मरदान हिन्दूवान हू की,
रूम अभिमान, हबसान-हद कादरी॥
नेकी अरंवान, सान-अदब ईरान त्यो ही,
क्रोध है तुरान, ज्यो फरॉस फद आदरी।

---

१. भच्छन।

भूषन भनत इमि देखिए महीतल पै,
वीर-सिरताज सिवराज की वहादरी ॥१२॥

शब्दार्थ—हुन्नर = हुनर, कला। महादरी = महा+आदरी बड़ा सम्मान। अमान = अपरिमाण, अत्यधिक। कादरी=कायरता। अरबान = अरब के रहने वाले। सान = फा. शान, छटा। अदब= आदर, सम्मान। फद = छल, धोखा।

अर्थ—जैसे रूसियों की शक्ति, खुरासानियों की तलवार, इंग्लैंड की अनीति और चीन का कला के लिए आदर प्रसिद्ध है, जैसे हिन्दुओं का साहस और परिमित वीरता, रूम निवासियों का अभिमान और हवशियों की हद दरजे की कायरता प्रसिद्ध है, जैसे अरब-निवासियों की भलमनसाहत ईरानियों की शान और शिष्टाचार, तूरानियों (तुर्की निवासियों) का क्रोध, और फ्रांसीसियों का छल (अर्थात् चालाकी) के लिए आदर प्रसिद्ध है; भूषण कवि कहते हैं कि वैसे ही वीर शिरोमणि शिवाजी की बहादुरी प्रसिद्ध है।

अलकार—मालोपमा।

सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ
लायकै बिठायो कोऊ सूबन के नियरे।
देखिकै रसीले नैन गरब गसीले भए,
करी न सलाम न बचन बोले सियरे॥
भूषन भनत जबै धर्यो कर मूठ पर,
तबै[1] तुरकन के निकसि गये जियरे।
देखि तेग चमक, सिवा को मुख लाल भयो,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे ॥१३॥

शब्दार्थ—ठाढ़े=खड़े। सूबन=सूबेदार। नियरे=निकट। रसीले = सरस, प्यारे। गसीले = गँसे, फँसे हुए।। गरब गसीले =

---

१. देखि।

गर्व में फँसे, गर्वयुक्त, अभिमान भरे। सियरे = शीतल। मूठ = तलवार का दस्ता। जियर = प्राण। पियरे = पीले।

अर्थ—सारी बादशाहत के अमीर उमरा लोग जहाँ एकत्र हो कर खड़े हुए थे वहाँ किसी ने शिवाजी को सूबेदारों के पास लाकर बिठा दिया। यह देख कर शिवाजी के रसीले नेत्र अभिमान पूर्ण (क्रोध पूर्ण) हो गये। उन्होंने इस कारण न बादशाह को सलाम किया और न शान्त (विनीत) वचन ही कहे। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने जब तलवार की मूठ पर हाथ रखा तो तुर्कों के प्राण निकल गये। तलवार की चमक और शिवाजी के क्रोध से लाल मुख-मण्डल को देख औरंगज़ेब का मुख काला पड़ गया और सेना के तमाम सिपाहियों के मुख पीले पड़ गये।

अलंकार—अक्रमातिशयोक्ति और विरोध।

तेरी असवारी महाराज सिवराज बली,
केते गढ़पतिन के पजर मचकिगे।
केते बीर मारि कै बिडारे किरवानन तें,
केते गिद्ध खाए केते अंबिका अचकिगे॥
भूपन भनत रुंड मुंडन की माल करि,
चार पाँव नाँदिया के भार ते भचकिगे।
टूटिगे पहार बिकरार भुव-मंडल के,
सेस के सहस फन कच्छप कचकिगे॥१४॥

शब्दार्थ—असवारी=सवारी। पजर=पसली। मचकिगे=चचक गये, दब गये, टूट गये। बिडारे=विदीर्ण किये, नष्ट किये। किरवानन=कृपाणों। अंबिका=अम्बा, काली। अचकिगे=खा गईं। नाँदिया=महादेव का बैल। भार ते= बोझ से। भचकिगे=लँगड़े हो गये, मोच आ गई। कचकिगे = कुचले गये।

अर्थ—हे शक्तिशाली महाराज शिवाजी! (विजयोत्सव के समय)

आपकी सवारी के नीचे आकर कितने गढपतियों के पंजर टूट गये। कितनों ही को तुम्हारे वीरों ने तलवार से मार-मार कर नष्ट कर दिया, कितनो ही को गिद्ध खा गये और कितनों को काली खा गई। भूषण कवि कहते हैं कि शिवजी ने इतने रुड-मुंडों की माला पहिनी कि उनके बोझ से नाँदिया के चारों पैरों में मोच आ गई। भूमंडल के भयकर पहाड भी (उस सवारी के नीचे आकर) टूट गये तथा शेषनाग के हजारों फन एव कच्छप तक कुचले गये।

अलकार—अत्युक्ति।

सुमन मैं मकरन्द रहत हे साहिनन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हस-वस रहत हैं तेरे जस,
हस मैं रहत करि मानस विरोध है॥
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भूमि,
तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।
पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है॥१५॥

शब्दार्थ—मकरन्द=पुष्परस। मकरन्द=मकरंदशाह (मालोजी) शिवाजी के पुरखा। सुमन=अच्छे मन वाले (शिवाजी)। मानस=मानसरोवर। जस-हस=यश रूपी हस। मानस=मन। करि विरोध=विरोध करके। करतूति=कर्तव्य, कार्य। अदभुत रस ओध=अद्भुत रस से परिपूर्ण। पानिप = आव, चमक। पयोध = समुद्र।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र भौंसला महाराज शिवाजी इस पृथ्वी पर आप की करनी अद्भुत रस से परिपूर्ण है। क्योंकि (साधारण तौर पर) सुमन (फूल) में मकरन्द (पुष्प रस) रहता है, पर आपके विषय में यह भली प्रकार जानी हुई बात है कि मकरन्द (माल मकरन्द शाह के

यश) में सुमन (अच्छे विचार वाले शिवाजी) रहते हैं। (संसार में देखा तो यह जाता है कि) मानस (मानसरोवर) में हंसों का समूह रहता है परन्तु इसका विरोध करके आपके यश रूपी हंस में (लोगों के) मन (अनुरक्त) रहते हैं। (साधारणतया) पानी में जहाज़ रहता है परन्तु हे महाराज शिवाजी आपके लाज रूपी जहाज़ में पानिप (चेहरे की कान्ति) रूपी समुद्र रहता है।

अलंकार—अनुप्रास, यमक, रूपक और विरोधाभास।

मारे दल मुगल सम्हार करि वार आज,[1]
उछलि बिछलि म्यान बामी ते निकासती।
तेरे कर वार[2] लागे दूसरी न माँगै कोऊ,
काटि कै करेजा स्रोन पीवत बिनासती॥
साहि के सपूत महाराज सिवराज वीर,
तेरी तलवार स्याह नागिन ते जासती।
ऊँट हय पैदल सवारन के झुंड काटि,
हाथिन के मुंड तरबूज-लौं तरासती॥ १६॥

शब्दार्थ—सम्हार करि=सँभल कर। वार=चोट। बामी=साँप का बिल। कर वार=हाथ का वार। बिनासती=विनष्ट करती, जासती=ज्यादा, अधिक। तरासती=तराशती, काटती।

अर्थ—(हे शिवाजी आपकी तलवार रूपी सर्पिणी) म्यान रूपी बाँबी से निकलते ही उछल कर, रपट कर, सम्हल कर चोट करके (डस कर) मुगलों की सेना को मार डालती है। हे शिवाजी! तुम्हारे हाथ का एक वार पड़ जाने पर दूसरा वार तो कोई माँगता ही नहीं (तलवार के एक ही वार में शत्रु मर जाता है)। तुम्हारी तलवार शत्रुओं का कलेजा काट काट कर उनका खून पीती है एवं नाश करती है। हे शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाज़ी! तुम्हारी यह तलवार स्याह (काली) नागिन से भी

१. मारे दल मुगल तिहारी तलवार आज। २ तेरी तलवार।

अधिक है। यह तलवार ऊँट, घोड़े, पैदल तथा सवारों के समूह के समूह काट काट कर हाथियों के मस्तकों को तरबूज की तरह तराशती है।

अलंकार—रूपक, उपमा और अनुप्रास।

सिहल के सिंह सम रन सरजा की हाक,
सुनि चौंकि चलैं सब धाइ पाटसादा के।[1]
भूषन भनत भुवपाल दुरे द्राविड के,
ऐल-फैल गैल गैल भूले उनमादा के॥
उछलि उछलि ऊँचे सिंह गिरे लंक माहिं,
बूडि गए महल विभीषन के दादा के।
महि हालै, मेरु हालै अलका कुबेर हालै,
जा दिन नगारे बाजे सिव-साहजादा के॥१७॥

शब्दार्थ—सिंहल=एक द्वीप। हाक=हाँक, दहाड़, गर्जना। पाटसादा=(पाट=राजसिंहासन+शाद=भरे पूरे) भरे-पूरे राज्य के लोग। एल=खलबली, कोलाहल। गैल=मार्ग, रास्ता। गैल गैल=मार्गों में, गली गली मे। उनमादा=पागल। मेरु=सुमेरु पर्वत। अलका=कुबेर की नगरी। साहजादा—राजकुमार।

अर्थ—युद्ध में सिहल द्वीप के वीर भी, सिंह-समान शिवाजी की दहाड को सुनकर, भरे-पूरे राज के होने पर भी भाग गये। भूषण कवि कहते हैं कि द्राविड देश के राजा छिप गये, और वहाँ की गली-गली में खलबली फैल गई, लोग पागल होकर शरीर की भी सुधि-बुध भूल गये। (शिवाजी की हाँक सुनकर) कितने ही सिंह समान वीर लंका में जा गिरे। विभीषण के दादा (ज्येष्ठ भ्राता रावण) के महल भी डूब गये। जिस समय राजकुमार (महाराज) शिवाजी के नगाडे बजते हैं तो (एक प्रकार का भूकम्प सा आ जाता है जिस से) पृथ्वी, सुमेरु पर्वत और कुबेर की अलकापुरी तक हिलने लगती है।

१. सुनि चौंकि चलत बधाइ पाटसाद्गा की।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, पदार्थावृत्तिदीपक और अतिशयोक्ति।

कत्ता के कसैया महाबीर सिवराज तेरी,
रूम के चकत्ता लौं हू सका सरसात है।
कासमीर, काबुल कलिंग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हेरात है॥
विकट विराट वंग व्याकुल वलख वीर,
बारहों* विलाइत सकल विललात है।
तेरी धाक धुंधरि धरा मै अरु धाम-धाम,
अंधाधुंध आँधी सी हमेस हहरात है॥१८॥

शब्दार्थ—कत्ता=छोटी टेढ़ी तलवार। कसैया=बाँधने वाला। चकत्ता=बादशाह। सरसात है=छाया है। कलिंग=उड़ीसा। हेरात है=खो जाती है। बंग=बंगाल। वलख=अफगानिस्तान का एक नगर। विललात है=व्याकुल है। धुँधरि=धूल, गर्द गुबार। हहरात है=चलती है।

अर्थ—कत्ता शस्त्र के बाँधने वाले महावीर शिवाजी! आपका भय रूम देश के बादशाह तक छाया हुआ है। (आपके आतंक से) काश्मीर, काबुल, कलिंग (उड़ीसा) कलकत्ता और सम्पूर्ण करनाटक निवासियों की हिम्मत टूट जाती है। भयानक एवं विशाल बंगाल देश और बलख के वीर भी व्याकुल रहते हैं तथा समस्त बारहों विदेशी राज्य दुखी रहते हैं। पृथिवी में स्थान-स्थान पर आपकी धाक रूपी गर्द गुब्बार अंधा-धुंध आँधी के समान सदा चलती रहती है।

अलंकार—उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश अनुप्रास और रूपक।

---

* 'बारहों विलायत' कहने से प्रतीत होता है कि भूषण विदेशी राज्य मात्र को विलायत कहते हैं।

साहि के सपूत सिवराज वीर तेरे डर,
अडग अपार महा दिग्गज सो डोलिया।
बेदर[1] बिलायत सो उर अकुलाने अरु,
सकित सदाई रहै बेस बहलोलिया ॥
भूषन भनत कौल करत कुतुबसाह,
चाहै[2] चहूँ ओर रच्छा[3] एदिल सा भोलिया।
दाहि दाहि दिल कीने दुखदाई दाग ताते,
आहि आहि करत औरंग सा औलिया ॥१६॥

शब्दार्थ—अडग = अटल। डोलिया = डोल गया, हिल गया, चलायमान हो गया। बेदर = दक्षिण में एक मुसलमानी रियासत। बेस = वेष, रूप। बहलोलिया = बहलोलखाँ। कौल = करार, प्रतिज्ञा। भोलिया = भोला-भाला। दाहि = जलाकर। दिल दाहि = दिल जलाकर, दिल दुखा कर। दाग = चिह्न। आहि = हाय। औलिया = फकीर

अर्थ—हे शाहजी के सुपुत्र वीर शिवाजी! दिशाओं के रक्षक दिग्गजों के समान, अटल रहने वाला, महाबलिष्ठ, (बादशाह औरंगज़ेब) भी आप के भय से सदा हिल गया। बेदर और बिलायत (विदेशी राज्य) हृदय में व्याकुल रहते हैं और बहलोलखाँ सदा शंकित (भयभीत) के वेश में रहता है। भूषण कवि कहते हैं कि कुतुबशाह (डर कर) (शिवाजी से फिर कभी न लडने की) प्रतिज्ञा करता है और भोला-भाला आदिलशाह भी चारों ओर से अपनी रक्षा करने की इच्छा में रहता है। (हे शिवाजी) आपने उनके हृदयों को जलाकर दुखी एवं दागी (घायल) कर दिया है। इसी से फकीर बादशाह औरंगजेब हाय हाय चिल्लाता रहता है।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश और वीप्सा।

---

१ बदर। २. चारे। ३. इच्छा।

तखत तखत पर तपत प्रताप पुनि,
नृपति नृपति पर सुनी है अवाज की।
दंड सातौ दीप नव खंडन अदंड पर,
नगर नगर पर छावनी समाज की ॥
उदधि उदधि पर दाबनी खुमान जू की,
थल थल ऊपर सुबानी कविराज की।
नग नग ऊपर निसान झरि जगमगे,
पग पग ऊपर दुहाई सिवराज की ॥२०॥

शब्दार्थ—तखत = राजसिंहासन। तपत प्रताप = प्रताप छाया हुआ है, आतंक छाया हुआ है। अदंड = अदण्ड्य, जिनको कभी दण्ड नहीं मिला। दाबनी = दबावट, दमन। नग = पर्वत। निसान = झंडे। झरि = झर, समूह, जगमगे = चमकते हैं, यहाँ फहराने से तात्पर्य है। दुहाई = प्रताप का डंका पिटना, यश-गान होना।

अर्थ—प्रत्येक राजसिंहासन पर शिवाजी के प्रताप का आतंक छाया हुआ है और प्रत्येक राजा पर शिवाजी की आवाज सुनाई देती है अर्थात् धाक जमी हुई है। प्राचीन काल से अदण्डित सातों द्वीप और नौ खण्डों को शिवाजी ने दण्डित कर दिया। शिवाजी की फौज के डेरे प्रत्येक नगर में पड़े हैं। आयुष्मान शिवाजी का अधिकार एवं दमन सब समुद्रों पर है। इसलिए कवि भूषण की श्रेष्ठ कविता का आदर स्थान स्थान पर हो रहा है (क्योंकि उसमें शिवाजी का यशोगान है)। प्रत्येक पर्वत पर शिवाजी के ही झंडों के समूह फहरहा रहे हैं और पग पग पर शिवाजी ही की दुहाई दी जा रही है अर्थात् जयजयकार हो रहा है।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये[1] जसवन्त अजूबा।
साइतखाँ अरु[2] दाउदखाँ पुनि हारि[3] दिलेर[4] महम्मद[5] डूबा॥
भूषन देखे[6] बहादुरखाँ पुनि[7] होय[8] महाबतखाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवा जू के तेज तें[9] पान से फेरत औरंग सूबा॥२१॥

शब्दार्थ—जेर किये = अधीन किए, पराजित किये। अजूब = अजीब। दिलेर = दिलेरखाँ। महम्मद = महामद, बड़ा अभिमानी। ऊबा = ऊब गया। सूखत = शुष्क होते हैं, भय से सूखते हैं। फेरत = नीचे ऊपर करता है, बदलता है। सूबा = सूबेदार।

अर्थ—महाराज शिवाजी के साथ पहले तो बड़े-बड़े सरदार लड़े फिर राजा यशवन्त सिंह को शिवाजी ने बड़ी विचित्र रीति से पराजित किया, फिर शाइस्ताखाँ, दाऊदखाँ आदि वीर भी हार गये और अभिमानी दिलेरखाँ भी डूब गया। (चौपट हो गया)। भूषण कवि कहते हैं कि बहादुरखाँ को भी देख लिया और महाबतखाँ जैसे योद्धा भी घबरा गये। बादशाह औरंगज़ेब शिवाजी के प्रभाव से अपने सूबेदारों को सूखता (डरा) हुवा जान कर उन्हें पान की तरह से बदलता रहता है। अर्थात् जैसे गर्मी में सूखते हुए पान को ऊपर से नीचे कर देते हैं ऐसे ही औरंगजेब अपने सूबेदारों को जो शिवाजी से हार आते हैं पद घटा कर नीचे कर देता है और दूसरों को ऊपर करता है। जब वे भी हार आते हैं तो इन्हें फिर नीचे करके दूसरों को ऊपर करता है।

अलंकार—उपमा।

औरँग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।

---

१. कै पहिले उमराव अमीरुल फेरि कियो। २. फेरि कुतुब्बखाँ। ३. कीन्हों। ४. दलेल। ५ महामद। ६. कीन्हें। ७. फिर। ८. मेरु। ९. सों।

देवल डिगाने[1] राव-राने[2] मुरझाने[3] अरु,
धरम ढहाना, पन मेट्यो है पुराना को॥
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद बखाना को।
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना बर बाना हिन्दुवाना को॥२२॥

शब्दार्थ—अठाना = सताने लगा। आनि = स. आणि, मर्यादा, इज्जत। जोराना = जोरदार हो गया, बलवान हो गया। डिगाने = तोड़ दिए। ढहाना = गिर गया। पन = प्रण। पुराना = पुराणों। मसाना = श्मशान। बिरद = कीर्ति, यश। बाना = रूप, वेश। बर बाना = सुन्दर वेष।

अर्थ—औरंगज़ेब सब को सताने लगा, किसी भी सरदार अथवा वीर की उसने इज्जत न रहने दी। वह जबर्दस्त शक्तिशाली होकर उस समय संसार में अत्याचार करने लगा। कितने ही मन्दिर उसने गिरवा दिये। छोटे बड़े सभी राव-राने बलहीन हो गये। हिंदू धर्म को गिरा दिया (पतित कर दिया)। पुराणों का धर्म-व्रत (रीति रिवाज) भी मिटा दिया। ऐसे समय में शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने हाथ में तलवार लेकर ऐसा घनघोर युद्ध किया कि मुसलमानों से सारी श्मशान भूमि भर गई। खुमान शिवाजी ने हिन्दुओं के बाने की रक्षा कर ली, इसी से समस्त संसार में शिवाजी की प्रशंसा एवं यशोगान हो रहा है।

अलंकार—अनुप्रास।

कूरम कबध हाड़ा तूँवर बघेला वीर,
प्रबल बुँदेला हुते जेते दल-मनी सो।

---

१. डिगाना। २. राना। ३. मुरझाना।

देवल गिरन लागे मूरति लै विप्र भागे,
नेकहू न जागे सोइ रहे रजधनी सों ॥
सब नै पुकार करी सुरन मनाइवे को,
सुर नै पुकार भारी कीन्ही विस्वधनी सों।
धरम रसातल को डूबत उबारयौ सिवा,
मारि तुरकान घोर बल्लभ की अनी सों ॥२३॥

शब्दार्थ—कूरम=कछवाहे वंश के क्षत्रिय (जयपुर नरेश कछवाहे हैं)। कमधज=राठौर (जोधपुर नरेश राठौर हैं) । हाड़ा=हाड़ा वंशज क्षत्रिय (बीकानेर नरेश हाड़ा हैं)। तूंवर=तोमर-वंशज क्षत्रिय। बघेला=एक क्षत्रिय कुल। दल-मनी=दल-मणि, सेना में श्रेष्ठ। रजधनी सों=राजधानी में। विश्वधनी=संसार के स्वामी, विष्णु भगवान। बल्लभ=भाला। अनी=नोक।

अर्थ—जब यवनों द्वारा मन्दिर गिराये जाने लगे और ब्राह्मण मूर्तियाँ लेकर भागने लगे, तब कछवाहे, राठौर, हाडा, तोमर, बघेला आदि वीर एवं बलवान बुँदेला आदि जितने सेना में श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर समझे जाते थे, वे सब अपनी अपनी राजधानियों में जाकर सो गए, कोई भी (रक्षा करने को) न उठा। तब सबने मिलकर (अत्याचार से बचाने के लिए) देवताओं से प्रार्थना की और देवताओं ने संसार के स्वामी विष्णु भगवान् से प्रार्थना की। ऐसे समय में शिवाजी ने मुसलमानों को भालों की नोक से मार कर रसातल में डूबते हुए धर्म को बचाया।

अलंकार—एकावली और अनुप्रास।

बध कीन्हे बलख सो बैर कीन्हौ खुरासान,
कीन्ही हबसान पर पातसाही पल ही।
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीन्हे,
जाहिर जहान उपखान यही चल ही॥

जंग करि जोर सों निजामसाही जेर कीन्ही,
रन मैं नमाए हैं बुँदेल छल-बल ही।
ताके सब देस लूटि साहिजी के सिवराज,
कूटी फौज अजौं मुगलन हाथ मल ही ॥२४॥

शब्दार्थ—बध कीन्हे=बाँध लिया, कैद कर लिया। उपखान=सं० उपाख्यान, कथा, बात। नमाए=झुकाए, परास्त किए। कूटी=मारी, पीटी।

अर्थ—संसार में यह कहानी प्रसिद्ध है कि जिसने बलख को कैद कर लिया, खुरासान देश से शत्रुता ठान ली, हबशियों पर क्षण भर में अधिकार कर लिया, बेदर और कल्यान को घोर युद्ध करके छीन लिया, निज़ाम को ज़बर्दस्त लड़ाई करके परास्त कर दिया और बुँदेलों को कपट चालों से दबा दिया ऐसे (उपर्युक्त सारे कामों के करने वाले औरंगज़ेब) के देशों को शाहजी के पुत्र शिवाजी महाराज ने लूट लिया और उसकी फौज को खूब पीटा जिससे मुगल अभी तक हाथ मलते हैं।

अलंकार—भाविक और अनुप्रास।

प्रबल पठान फौज काटिकै कराल महा,
आपनी मनाइ आनि जाहिर जहान को।
दौरि करनाटक मैं तोरि गढ़-कोट लीन्हे,
मोदी सो पकरि लोदी सेर खाँ अचानको॥
भूषन भनत सब मारिकै बिहाल करि,
साहि के सुवन राचे अकथ कहान को।
बारगीर बाज सिवराज तो सिकार खेले,
साह-सैन-सकुन मैं ग्राही किरवान को ॥२५॥

शब्दार्थ—आनि = मर्यादा, मान, दबाव। मोदी = बनिया, जो आटा दाल बेचता है। शेरखाँलोदी = यह एक अफगान था। बीजापुरी कर्नाटक का दक्षिणी आधा भाग इसके अधिकार मे था।

शिवाजी से हार कर इमने उनसे सन्धि करली थी। राचे अकथ कहान को = अकथनीय कहानियों को रच डाला, अर्थात् अनहोनी बात कर डालीं। बारगीर = घुड़सवार सैनिक। सकुन=पक्षी।

अर्थ—यह बात ससार भर में प्रसिद्ध है कि (शिवाजी ने) बलवान एव महाभयकर पठानों की फौज को काट कर उससे अपना दवाव मनवा लिया अर्थात् पठानों की सेना यह मान गई कि हम आप से दबते हैं। करनाटक पर चढाई करके वहाँ के किलों को ढा दिया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। बीजापुर के सरदार शेरखाँ लोदी को तो इतनी आसानी से अचानक पकड लिया, जैसे किसी बनिये को (हाकिम ने) पकड लिया हो। भूषण कवि कहते हैं कि शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने सब (सिपाहियों) को पीटकर बेहाल कर दिया और इस प्रकार अपनी अकथनीय कहानिएँ रच डालीं। हे शिवाजी! तलवार धारण करने वाले आप के घुडसवार-रूपी वाज बादशाहों की सेना-रूप पक्षियों का शिकार सा खेलते हैं, अर्थात् आप के तुच्छ सैनिक भी शत्रु-सेना को काटने के लिये पर्याप्त हैं।

अलकार—अनुप्रास, उपमा और रूपक।

औरग-सा इक ओर सजै इक ओर सिवा नृप खेलनवारे।
भूषन दच्छिन दिल्लिय देस किए दुहुँ ठीक ठिकान मिनारे।
साह सिपाह खुमानहि के खग लोग घटान समान निहारे।
आलमगीर के मीर वजीर फिरैं चउगान बटान से मारे॥२६॥

शब्दार्थ—ठिकाना=स्थान। मिनारे=मीनार, दीवार (यहाँ गोल (Goal) से तात्पर्य है। चउगान=चौगान, यह खेल आजकल के पोलो (Polo) और हाकी (Hockey) से मिलता है। बटान=गेंद।

अर्थ—एक ओर शाह औरगजेब सजे हुए हैं और दूसरी ओर से खेलने वाले शिवाजी महाराज हैं। भूषण कवि कहते हैं कि इधर दिल्ली और

उधर दक्षिण देश इन दोनों को मीनार (Goal) का स्थान निश्चित किया है। लोगों ने शाहशाह के सिपाही और शिवाजी की तलवार को घटाओं की तरह देखा अर्थात् सिपाही बादल और तलवारें बिजली के समान थीं। आलमगीर औरंगज़ेब के उमराव और वजीर लोग इस प्रकार मारे मारे फिरते हैं जैसे चौगान के खेल में गेंद इधर से उधर मारी मारी फिरती है।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा।

श्री सिवराज धरापति के यहि भाँति पराक्रम होत है भारी।
दंड लिये भुव मडल के नहिं कोऊ अदड बच्यो छतधारी॥
बैठि कै दच्छिन भूपन दच्छ खुमान सबै हिन्दुवान उजारी।
दिल्ली ते गाजत आवत ताजिये पीटत आपको पजहजारी॥२७॥*

शब्दार्थ—छतधारी=छत्रधारी, राजा। दच्छ=दक्ष, चतुर। उजारी=प्रकाशित किया। ताजिये पीटत=मातम मनाते हुए, उदास मुख।

---

* यही सवैया "साहित्य सिंधु" में 'कविराज' के नाम पर इस प्रकार मिलता है—

श्रीसिवराज धरापति की यही भाँति पराक्रम कांति निहारी।
दड लियो भुव मडल मैं नहिं कोऊ अदंड बच्यो छतधारी॥
दच्छिन बैठि कहै 'कविराज' खुमान सबै हिन्दुवान उजारी।
दिल्ली ते गाजिकै गाजी ह्वै आये पै पाजी से पीटे हैं पचहजारी॥

इस प्रकार ये दोनों सवैये आपस में मिलते हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि किसने किसकी छाया पर सवैया रचा। सम्भव है कविराज ने भूषण का सवैया किसी से सुना हो और फिर उन्होंने अपना सवैया इस प्रकार रच डाला हो।

अर्थ—श्री महाराज शिवाजी नरेश का ऐसा महान पराक्रम है कि उन्होंने समस्त पृथ्वी के राजाओं से दड (कर) ले लिया कोई भी ऐसा छत्रधारी (राजा) नहीं रहा जिसने उन्हें दड (कर) न दिया हो। भूषण कवि कहते हैं चतुर महाराज शिवाजी ने दक्षिण में बैठे-बैठे ही हिन्दुओं को (अपने वीर कार्यों से) प्रकाशित कर दिया। दिल्ली से पचहजारी सरदार गर्जना करते हुए आते हैं, किन्तु दक्षिण से ताजिया पीटते से (उदास हुए, मातम मनाते हुए) जाते हैं अर्थात् शिवाजी से हार जानेपर उदास होकर जाते हैं।

अलकार—ललित और विषादन।

बैठतीं दुकान लैकै रानी रजवारन की,[1]
तहाँ आइ बादशाह राह देखै सब की।
बेटिन को यार और यार है लुगाइन को,
राहन के मार दावादार गए दबकी ॥
ऐसी कीन्हीं बात तोऊ कोऊवै[2] न कीन्ही घात,
भई है नदानी बस छत्तिस मैं कब की।
दच्छिन के नाथ ऐसी देखि धरे मूछों हाथ,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी ॥२८॥

शब्दार्थ—लैकै=लेकर, लगाकर। रजवारन=रजवाड़े, राजपूतों की रियासते। यार=मित्र, प्रेमी। लुगाई=स्त्री। राहन=रास्ते। राहन के मार=रास्ते मे मार पीट करने वाले, बटपार, डाकू। दावादार=अधिकार जमाने वाला, बराबरी करने वाला। दबकी=दुबक गये, छिप गये। कोऊवै=कोई भी, किसी ने भी। घात=चोट। नदानी=मूर्खता।

---

१ रानी रजवारन की दुकानों लगाई वैठी। २ कोऊ यै।

अर्थ—(मीना बाजार* में) रजवाड़ों की रानियाँ दुकानें लगाकर बैठती थीं। और बादशाह (अकबर) वहाँ आकर मार्ग में उन सब की गति देखता था। वह राज-पुत्रियों का प्रेमी तथा रानियों को चाहने वाला था, उस समय बटपार भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते थे, वे भी उसे देख छिप गये थे अर्थात् (अकबर का) यह कार्य बटपारों से भी अधिक भयंकर था। बादशाहों ने ऐसी ऐसी (असह्य) बातें की, परन्तु किसी ने उस पर चोट न की। कितने ही समय से राजपूतों के छत्तीसों वंशों में यह मूर्खता होती रही है। ऐसे समय में दक्षिण के स्वामी महाराज शिवाजी ने यह सब कुछ देखकर मूछों पर हाथ रखा अर्थात् यह प्रकट किया कि हम बादशाहों से बदला लेंगे, सच है यदि शिवाजी न होते तो सब की सुन्नत हो जाती अर्थात् सबको मुसलमान होना पड़ता।

अलकार—सभावना।

सतयुग द्वापर औ त्रेता कलियुग मधि,
आदि भयो नाहिं भूप तिन हुते ए[1] घरी।
बब्बर अकब्बर हिमायूँसाह सासन सों,
नेह ते सुधारी हेम-हीरन ते सगरी॥
भूषन भनत सबै मुगलान चौथ दीन्ही,
दौरि दौरि पौरि पौरि लूट ली चहूँ फरी।

* अकबर के समय मे महलों में स्त्रियों का एक बाजार लगता था जिसमें दिल्ली-स्थित आश्रित राजाओं की स्त्रियाँ, लड़कियाँ तथा अन्य प्रतिष्ठित प्रजाजनों की स्त्रियाँ सौदा बेचती थीं। कहते हैं कि अकबर इस बाजार की सैर गुप्त-रीति से वेष बदल कर करता था और वह जिस स्त्री को पसन्द कर लेता था उसे महलों मे रख लिया जाता था।

१ आ।

धूरि तन लाइ बैठी सूरत है रैन-दिन,
मूरत कौं मारि[1] बदसूरत सिवा करि ॥२९॥

शब्दार्थ—तिन हुते ए घरी=उन से लेकर इस समय तक। हेम=स्वर्ण, सोना। सगरी=समस्त, सब। चौथ=चतुर्थांश, आय का चतुर्थांश मराठे कर रूप में पराजित नरेशों से लेते थे। दौरि दौरि=दौड़ दौड़ कर, धावे मार कर, आक्रमण करके। पौरि=डयोढी, यहाँ स्थान स्थान में तात्पर्य है। चहुँ फरी=चारों ओर फिर कर, चारों ओर घूम कर।

अर्थ—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में आदि से लेकर अब तक कोई भी राजा ऐसा नहीं हुआ। बाबर, हुमायूँ तथा अकबर बादशाहों के शासन काल में बड़े प्रेम से सारी (सूरत नगरी) सोने और जवाहरात से सजाई गई थी। भूषण कवि कहते हैं शिवाजी ने चारों तरफ घूम घूम कर आक्रमण करके इसे खूब लूटा, वहाँ के सब मुसलमान सरदारों ने इन्हें चौथ दी। अब सूरत नगरी रात दिन धूल धूसरित सी रहती है अर्थात् सूरत में अब कुछ बाकी नहीं रहा, धूल ही धूल रह गई है। इस प्रकार शिवाजी ने सूरत को मार कर (लूट कर) बदसूरत (म्लान-मुखी) कर दिया, अर्थात सूरत नगरी की शोभा नष्ट कर दी।

अलंकार—यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

पक्खर प्रबल दल भक्खर सों दौर करि,
आय साहिजू को नन्द बाँधी तेग बाँकरी।
सहर मिलायो मारि गरद मिलायो गढ़,
अजहूँ न आगे पाछे भूप किन नाँ करी॥
हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मन्दिर ढहायो जो पै काढ़ी मूल काँकरी।

---

१ मोरि।

आलम पुकार करै आलम-पनाहजू पै,
होरी सी जलाय सिवा सूरत फनाँ करी ॥३०॥

शब्दार्थ—पक्खर=लोहे की झूलें जो युद्ध के समय हाथी, घोड़ों पर डाल दी जाती है.। भक्खर=सिन्ध का एक नगर। बाँकरी=बाँकी, टेढ़ी, प्रबल। भिलायो=सूरत के निकट एक नगर। गरद=धूल। पोटि=पोटरी, गठरी। मन्दिर=महल। मूल=जड़, नींव। काँकरी=कंकड़ी। काढ़ी मूल काँकरी=नींव के कंकड़ तक निकाल दिये, जड़ से खुदवा डाले। आलम=संसार, लोग, दुनियाँ। आलम-पनाह=संसार-रक्षक, औरंगजेब। फनाँ=नष्ट।

अर्थ—शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने लोहे की झूलों से सुसज्जित एवं प्रबल सेना द्वारा (सिन्ध के) भक्खर नगर तक धावा मारा और वापिस आकर विजयोत्साह में अपनी बाँकी तलवार बाँधी। (फिर) भिलायो नगर को नष्टकर उस के किले को धूल में मिला दिया। तब से अब तक किसी भी राजा ने आगे या पीछे 'ना' नहीं की अर्थात् शिवाजी के आधिपत्य को अस्वीकार नहीं किया। (सूरत से) हीरे, मणि एव माणिक्य की लाखों गठरियाँ लदवा लाये और वहाँ के महलों को गिरा कर उनकी नींव तक खुदवा डाली। तब सब लोग जाकर संसार-रक्षक (औरगज़ेब) से पुकार करने लगे कि शिवाजी ने सूरत को होली की तरह जला कर नष्ट कर दिया है (तुम क्यों नहीं रक्षा करते ?)।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा।

दौरि चढ़ि ऊँट फरियाद चहूँ खूँट कियो,
सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो।
कहि ऐसे आय[1] आम-खास मधि साहन को,
कौन ठौर जायें दाग छाती बिच दै गयो॥

---

१ आप।

सुनि सोई साह कहे यारो उमरावो जाओ,
सो गुनाह राव एती बेर बीच कै गयो।
भूषन भनत मुगलान सबै चौंथ दीन्ही,
हिंद मैं हुकुम साहि नंदजू को ह्वै गयो ॥३१॥

शब्दार्थ—फरियाद=प्रार्थना, पुकार। खूँट=कोना, ओर। कूटि=पीट कर। दाग=चिह्न, घाव। राव=राजा, यहाँ शिवाजी से तात्पर्य है। गुनाह=अपराध। एती बैर=इतने समय में। हुकुम=आज्ञा, यहाँ शासन से तात्पर्य है।

अर्थ—ऊँट पर चढ़ कर, दौड़कर चारों तरफ यह पुकार की गई कि शिवाजी कूट पीट कर सूरत का सारा धन लूट ले गया। इसी प्रकार उन्हीं साँडनी-सवारों ने बादशाह के महलों में आम-खास में आकर कहा कि अब हम कहाँ जायें। शिवाजी हमारी छाती में घाव कर गया है। यह सुनकर बादशाह उमरावों से कहने लगा कि मित्रो! उमरावो! जाओ, (देखो) वह राव (शिवाजी) इतने से (थोड़े) समय में इतना भारी अपराध कैसे कर गया? भूषण कवि कहते हैं कि शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी को (सूरत के) सभी मुसलमानों ने चौथ दी और हिन्दुस्तान भर में उनका अधिकार हो गया।

अलंकार—अनुप्रास।

बारह[1] हजार असवार जोरि दलदार,
ऐसे अफजलखान आयो सुर-साल है[2]।
सरजा खुमान मरदान सिवराज वीर,
गजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है॥
भूषन भनत दोऊ दल[3] मिलि गये बीर,
भारत से भारी भयो जुद्ध बिकराल है।

---

१. बारही। २. ऐसे अफजलखान जोर जुमिलात है। ३. भीर दोउ दल मही थल।

पार जावली के बीच गढ़ परताप तले,
स्रोन भए स्रोनित सों अजौं धरा लाल है ॥३२॥

शब्दार्थ—जोरि=जोडि, जोड़कर, इकट्ठा करके। दलदार=दलवाला, दलपति, सेनापति। सुर-साल=सुर+साल, देवताओं को सालने वाला, राक्षस। मरदान=मर्द, वीर, पराक्रमी। गंजन=नाश करने वाला। गनीम=शत्रु। गाढ़े गढपाल=बलवान गढपति, बड़े बड़े दुर्गों के रक्षक। भारत=महाभारत। पार=एक नगर। स्रोन भए स्रोनित सों=रक्त बहने के कारण ललाई छा जाने से।

अर्थ—बारह हज़ार घुड़सवारों की सेना को इकट्ठा करके राक्षस रूप सेनापति अफ़ज़लखाँ आया। आयुष्मान, मरदाने वीर सिंह शिवाजी जो शत्रुओं के नाशक हैं और बड़े भारी दुर्ग-रक्षक हैं, वे भी (अफ़ज़लखाँ के आगमन को सुन कर) आये। भूषण कवि कहते हैं कि दोनों सेनाओं के वीर परस्पर भिड़ गए और महाभारत जेसा भयंकर युद्ध ठन गया। पार और जावली के बीच में प्रतापगढ़ के नीचे रक्त बहने के कारण ललाई छा जाने से पृथिवी अब भी लाल है।

अलंकार—उपमा, भाविक और अनुप्रास।

दिल्ली को हरौल भारी सुभट अडोल गोल,
चालिस हजार लै पठान धायो तुरकी।
भूपन भनत जाकी दौरि ही को सोर मच्यो,
एदिल की सीमा पर फौज आनि ढुरकी॥
भयो है उचाट करनाट नरनाहन को,
डोलि[1] उठी छाती गोलकुंडा ही के धुर[2] की।
साहि के सपूत सिवराज बीर तैंने तब,
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की ॥३३॥

---

१ काँपि। २ घर।

शब्दार्थ:—हरौल=सेना का अग्रभाग (Vanguard)। अडोल=अटल, स्थिर। गोल=समूह। आन ढुरकी=आ ढुलकी, आ झुकी, आ पहुँची। भयो है उचाट=अस्थिर हो गये, व्याकुल हो गये। डोल उठी=चचल हो गई, कंपायमान हो गई। धुर=सर्वोच्च-स्थान, चोटी, यहाँ किले से तात्पर्य है।

अर्थ—बड़े भारी दृढ़ योद्धाओं का समूह जिसके अग्रभाग में था, ऐसी दिल्ली की चालीस हजार सेना को लेकर तुर्की पठान बीजापुर पर चढ़ आया। भूषण कवि कहते हैं कि जिसके आने से चारों ओर शोर मच गया, इस प्रकार की वह दिल्ली की सेना अली आदिलशाह की सीमा पर आ पहुँची। यह देख करनाटक के राजाओं को भी व्याकुलता हो गई और गोलकुण्डा के किले (के अन्दर रहने वाली सेना) की छाती भी काँप गई। ऐसे समय में हे शाहजी के वीर पुत्र महाराज शिवाजी! आपने अपने बाहुबल से बीजापुर की बादशाहत की रक्षा की।

अलंकार—अनुप्रास।

घिरे रहे घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही असवारन[1] की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै[2] गयो॥
देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़े, कर झारत किते गयो।
सारी पातसाही के सिपाह सेवा सेवा करैं,
परयो रह्यो पलँग परेवा सेवा ह्वै गयो॥३४॥

शब्दार्थ—घाट=नदियों के वे स्थान जहाँ से नाव पर चढ़ते है। बाट=मार्ग, रास्ते। गैल=मार्ग। छ्वै गयो=छू गया, स्पर्श कर गया, तै कर गया। चौकी=पहरा (Guard)। ठाढ़ी=खड़ी। कर

१ सब स्वारन। २ चलो।

मीड़े=हाथ मलती है, पछताती है। कर झारत=हाथ झाडता हुआ, हाथ फटकारता हुआ। सेवा=शिवाजी। परेवा=पक्षी।

अर्थ—(यमुना के) समस्त घाट एवं सब स्थल मार्ग (सिपाहियों से) घिरे हुए थे, इतने पर भी (शिवाजी) साल भर के रास्ते को क्षण भर में ही पार कर गया। स्थान स्थान पर सवारों की चौकियाँ (पहरे) पड़ी हुई थीं, (इतने पर भी) वह अमीर-उमरावों की भीड़ में से निकल ही गया। किसी के देखने में भी नहीं आया और कोई जानता भी नहीं कि वह कैसे चला गया, दिल्ली हाथ ही मलती रह गई (दिल्ली-पति पछताता ही रह गया) कि वह हाथ झाड़ता हुआ किधर चला गया। तमाम बादशाहत के सिपाही शिवाजी-शिवाजी (कहाँ गया ?) करते रहे पलंग वैसे ही पडा रहा और शिवाजी पक्षी की तरह उड़ गया।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और वीप्सा।

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति-अति करते।
पैठिगो पताल वलि वज्रधर ईरषा तें,
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरते॥
टूट्यो सिसुपाल वासुदेवजू सों वैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम विचरतें।
राम-कर छूवत ते टूट्यो ज्यों महेस-चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते॥३५॥

शब्दार्थ—टूट्यो=टूट गया, नष्ट होगया, चौपट हो गया। करतें=करने से। पैठिगो = प्रविष्ट होगया, चला गया। वलि = एक दैत्यराज, इसने ९९ यज्ञ किये थे। जब सौवाँ यज्ञ करने लगा तब इन्द्र डरा कि कहीं यह इन्द्र-पद न ले ले। अतः विष्णु भगवान से प्रार्थना करने पर विष्णु ने वलि राजा की परीक्षा लेने के लिये 'वावन' रूप (बौने का रूप) धारण किया और राजा वलि

से ३½ पग पृथ्वी माँगी। जब राजा ने पृथ्वी दान कर दी, तब बावन जी महाराज ने तीन पगों में आकाश, पाताल और पृथ्वी नाप ली। शेष आधे पग के लिए जब जगह न रही तो उन्होंने वह बलि के सिर पर रख दिया। बलि उसके भार को न सहार सका और पाताल में जा गिरा। बज्रधर = वज्र को धारण करने वाले, इन्द्र। हिरनाच्छ = प्रह्लाद का ताऊ, हिरण्यकश्यप का ज्येष्ठ भ्राता, इसे विष्णु भगवान ने मारा था, यह बड़ा अत्याचारी दैत्य था। सिसुपाल = शिशुपाल, यह श्रीकृष्ण की फूफी का बेटा था, और चँदेरी का राजा था। यह रुक्मिणी जी से विवाह करना चाहता था, किन्तु रुक्मिणी जी श्रीकृष्ण जी को चाहती थीं। अत रुक्मिणी जी का विवाह जब से श्रीकृष्ण से हुआ तब से शिशुपाल श्रीकृष्ण से बहुत जलने लगा। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया तो शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को बहुत गालियाँ दी। उस अवसर पर श्रीकृष्ण ने इसे मार डाला। वासुदेव = वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण। महिष = महिषासुर, इसे महाकाली ने मारा था। अधम = अधर्म। अधम-विचरते = अधर्म विचार से, पापाचार से।

अर्थ—जैसे आपस की फूट ही से सारे हिन्दू चौपट हो गये, अधिक अत्याचार करने से रावण के वंश का नाश होगया, इन्द्र से ईर्ष्या करने के कारण बलिराज पाताल पहुँच गया, चित्त में अभिमान धारण करने के कारण हिरण्याक्ष दैत्य का नाश होगया, श्रीकृष्ण से वैर करने के कारण शिशुपाल मारा गया, अधर्म के कार्य करने के कारण महिषासुर दानव नष्ट होगया, और जैसे रामचन्द्र जी के हाथ के स्पर्श से महादेव का धनुष टूट गया, वैसे ही शिवाजी के साथ लडने से दिल्ली की बादशाहत टूट गई (नष्ट हो गई)।

अलंकार—पदार्थावृत्तिदीपक और मालोपमा।

चोरी रही मन मै ठगोरी रूप ही मैं रही,
नाहीं तो रही है एक मानिनी के मान मैं।
केस मैं कुटिलताई नैन मैं चपलताई,
भौंह मैं बँकाई हीनताई कटियान मैं ॥
भूषन भनत पातसाही पातसाहन मैं,
तेरे सिवराज राज अदल जहान मैं।
कुच मैं कठोरताई रति मैं निलजताई,
छाँड़ि सब ठौर रही आइ अबलान मैं ॥३६॥

शब्दार्थ — ठगोरी = ठग विद्या, मोहिनी। बँकाई = वक्रता, टेढ़ापन। हीनताई = क्षीणता, पतलापन, दुर्बलता। पात = पतन, गिरना। पातसाही = शाही का पतन, बादशाहत का गिरना। अदल = न्याय। कुच = स्तन। रति = स्त्री प्रसंग; संभोग। अबलान = स्त्रियाँ।

अर्थ—(शिवाजी का ऐसा न्याय था कि समस्त राज्य में) चोरी केवल मन में ही थी (अर्थात् और कोई किसी चीज़ की चोरी नहीं करता था केवल स्त्रियाँ ही लोगों के मन चुराती थीं)। ठगोरी केवल रूप में थी (रूप से मनुष्य ठगे जाते थे अन्यथा कोई किसी को ठगता न था)। नाही शब्द मानिनी (रूठी हुई स्त्री) के मान में था ही (रूठी स्त्री ही अपने पति को रतिदान में नाहीं करती थीं और कोई भी दान देने में नाहीं नहीं करता था)। कुटिलता केवल बालों में थी, चंचलता केवल नेत्रों मे थी, वक्रता (टेढ़ापन) केवल भौंहों में और क्षीणता केवल स्त्रियों की कमर में थी (कोई भी कुटिल, चंचल, वक्र और दुर्बल मनुष्य शिवाजी के राज्य में नहीं था केवल स्त्रियों के ही इन अंगों में ये बातें थीं)। भूषण कवि कहते हैं कि (शिवाजी के राज्य में) किसी का पतन नहीं था, केवल बादशाहों की बादशाही का ही पतन था। हे शिवाजी! तुम्हारे न्याय-पूर्ण राज्य में संसार भर में कठोरता केवल कुचों में और निर्लज्जता केवल

सभोग समय में (स्त्रियों में) है। इस प्रकार उपर्युक्त समस्त बातें स्त्रियों में ही आकर इकट्ठी हो गई हैं (अन्य कहीं नहीं पाई जातीं)।

अलंकार—अनुप्रास, परिसंख्या और व्याजस्तुति।

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै,
कावुल पुकारै कोऊ गहत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
खग[1] खादर लौं भारै ऐसी साहू की बहार है॥
सक्खर[2] लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चलो जात,
टक्कर लेवैया कोऊ वार है न पार है।
भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेर,
दिल्ली पर परति परिंदन की छार है॥३७॥

शब्दार्थ—हहर = डर, भय। हहर पारै = डर पैदा कर देता है, हलचल मचा देता है। सार = हथियार। रूँदि डारै = कुचल देता है। खूँदि मारै = कुचल कर मार डालता है। खादर = नदी या समद्र के किनारे की नीची भूमि, कछार, यहाँ समुद्र तट से तात्पर्य है। साहू = शिवाजी का पोता। सक्खर और भक्खर = सिंध में दो गाँव हैं। मक्कर = सिंध के निकट 'मकुरान' एक गाँव, एक मकराना स्थान जयपुर मे है, यहाँ की पत्थर की खान बड़ी प्रसिद्ध है। वार = इस ओर। पार = उस ओर। सिरोंज = भूपाल के पास एक शहर जहाँ सन् १७३८ में मराठों ने निजाम को हराया था। परावने = भगदड़। छार = धूल।

अर्थ—बलख, बुखारा तथा मुलतान तक हलचल मचा देता है, और काबुल में भी पुकार मच जाती है, कोई भी हथियार नहीं धारण करता। रोमानिया को कुचल डालता है और खुरसानियों को घोड़ों से खुँदवा देता है। खादर (सुमुद्र तट) तक तलवार चलाता है (आक्रमण करता

१. खाक। २. कक्कर।

है), ऐसी महाराज साहू की बहार है। वह सक्खर, भक्खर और मकुरान नगर तक जा पहुँचता है। परन्तु यहाँ से वहाँ तक उससे टक्कर लेने वाला (सामने लड़ने वाला) कोई नहीं है। भूषण कवि कहते हैं कि सिरोंज शहर तक भगदड़ मच जाती है और (भगदड़ मे उठी हुई धूल पक्षियों के पंखों पर छा जाती है और जब वे उड़कर जाते हैं तो) पक्षियों से वह धूल दिल्ली पर गिरती है।

अलंकार—अनुप्रास और पर्य्यायोक्ति।

साहूजी की साहिवी दिखात कछू होनहार,
जाके रजपूत भरे जोम चमकत हैं।
भारे भारे नग्रवारे भागे घर तारे दै दै,
कारे घन घोर ज्यों नगारे धमकत हैं॥[१]
व्याकुल पठानी मुगलानी अकुलानी फिरैं,
भूषण भनत माँग मोती दमकत हैं।
दिल्ली दल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के,[२]
चम्बल के आर-पार नेजे चमकत हैं॥३८॥

शब्दार्थ—साहिबी = स्वामित्व, शासन। होनहार = भविष्य में उन्नति करने वाला। रजपूत = क्षत्रिय, सैनिक। जोम = उत्साह। चमकत हैं = गर्जते हैं। तारे दै दै = ताले दे दे कर, ताले लगाकर। दाहिबे को = जलाने के लिए।

अर्थ—शाहूजी का शासन भविष्य में होनहार सा मालूम होता है क्योंकि इनके समस्त राजपूत (सिपाही) उत्साह से भरे हुए गरजते रहते रहते हैं। जब इनके घनघोर काले बादलों जैसे (गर्जना करने वाले) नगाड़े धमकते हैं तब बड़े बड़े नगरों में रहने वाले घरों में ताले लगा

---

१. बाजे ज्यों नगारे घनघोर धमकत हैं। २. दच्छिन के आमिल भो सामिल ही चहूँ ओर।

कर भाग जाते हैं तथा पठान और मुगलों की स्त्रियाँ बेहाल होकर अकुलाती हुई भागी फिरती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि उनकी माँग के मोती चमकते हैं (अर्थात् उनके बुर्के उतर गए हैं, जिससे चमकते हुए मोती दिखाई देते हैं)। दक्षिण के सिंह महाराज शाहूजी के भाले दिल्ली की सेना को जलाने के लिये, चम्बल नदी के दोनों ओर चमक रहे हैं।

अलंकार—अनुप्रास,पुनरुक्तिप्रकाश,उपमा,रूपक, पर्यायोक्ति।

भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग लौं पतारा की।
एक जस लेत अरि फेरा फिर गढ़हू को,
खडि नवखड दिए दान ज्यो[1] ब तारा की॥
ऐसे व्याह करत विकट साहू साहन सों,
हद हिन्दुवान जैसे तुरक ततारा की।
आवत बरात सजे ज्वान देस-दच्छिन के,
दिल्ली भई दुलहिन सहजैं सतारा की॥३९॥

शब्दार्थ—गनिक=गणक, ज्योतिषी। निजाम बेग=सम्भवत निजामुल्मुल्क। यह पहले दिल्ली के बादशाह की तरफ से दक्षिण का सूबेदार था, पर सन् १७२४ में स्वतत्र हो गया। गुजरात और मालवा के सूबे भी इसके हाथ में थे। इसके स्वतत्र होने पर बादशाह ने सरबुलन्दखॉ को गुजरात का सूबेदार बना कर भेजा। निज़ामुल्मुल्क गुजरात छोड़ना न चाहता था, अत उसने मराठों से मदद ली और बदले में उन्हें चौथ वसूल करने का अधिकार दिया। पतारा = घोर जगल, यहाँ हिमालय से तात्पर्य है।

अर्थ—निजामबेग (निजामुल्मुल्क) रूपी ज्योतिषी शाहूजी को शुभ लग्न लिखकर भेजता है(अर्थात् आक्रमण करने के लिये उत्तेजित करता है) और शाहूजी इधर गुजरात त क और उधर घोर जंगल (हिमालय की तराई) की

१. ज्यों।

गंगा तक पहुँच जाते हैं (अर्थात् उत्तर भारत तक आक्रमण करते हैं)। शाहूजी एक फेरे (आक्रमण) में शत्रु से यश और फिर गढ़ भी छीन लेते हैं। नवों खण्डों (सम्पूर्ण पृथिवी) के खण्ड खण्ड करके उन्होंने इस प्रकार दान कर दिये मानों तारा (शुक्र तारा) उदय हुआ हो (शुक्र तारे के उदय होने पर जो दान दिया जाता है वह बड़ा फलदायक होता है। शाहूजी ने अपने सरदारों को राज्य प्रबन्ध के लिए जागीरें बाँट दी थी, उसी की तरफ सम्भवतः निर्देश है)। शाहूजी बादशाहों से इस प्रकार भयकर विवाह ठानते हैं, और हिन्दुओं की मर्यादा की वैसे ही रक्षा करते हैं जैसे तुर्क लोग तातार की रक्षा करते हैं। दक्षिण देश के युवकों से सजी हुई बरात चढ़ती है, जिसमें दिल्ली सितारे की दुलहिन बन गई है। (सन् १७१८ में सैयद हुसैनअली की सहायता करने के लिए शाहूजी ने बालाजी विश्वनाथ की अधीनता में मराठों की सेना को दिल्ली भेजा था, सम्भवतः उसी की तरफ निर्देश है)।

साजि दल सहज सितारा महाराज चलै,
बाजत नगारा पढ़ै धाराधर साथ से।
राव उमराव राना देस देसपति भागे,
तजि तजि गढ़न गढ़ोई दमसाथ से ॥
पैग पैग होत भारी डावाँडोल भूमि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग मैगल अनाथ से।
उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
सेष-फन वेद-पाठिन के हाथ स ॥४०॥

शब्दार्थ — धाराधर=बादल। गढ़न=दुर्ग,किले। गढोई=छोटा किला। पैग=पग, कदम। मैगल=मदगल, मदझड़ा हाथी। दिग्ग मैगल=दिग्गज। उझकत=ऊपर को उठते हैं। वेद पाठिन के हाथ से=वेद पाठियों के हाथों के समान, जिस समय वेदपाठी वेद पढते हैं तो वेद के स्वरों के अनुसार अपने हाथों को ऊपर नीचे झुलाते हैं।

अर्थ—जिस समय सितारा के महाराज (साहूजी) अपनी सेना को सहज में ही सजाकर चलते हैं उस समय उनके नगाड़ों की ध्वनि ऐसी होती है जैसे बादल साथ साथ (अपनी गर्जना से) उनकी विरुदावली पढ़ते चलते हों। राव, उमराव तथा राना आदि गढ़ एवं गढ़ियों को छोड़कर अपने देशों से ऐसे भाग गये जैसे रावण भागा था (एक बार रावण राम से युद्ध करते करते भाग गया था और यज्ञ करने लगा था। इस यज्ञ को विभीषण की सहायता से बन्दरों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया था)। (सेना के भार से) पृथ्वी पद पद पर हिलने लगती है और वायु के गोले उठते हैं तथा पद पद पर दिग्गज अनाथ हो जाते हैं (सेना के भार से दिशाओं के हाथी दब जाते हैं, न उनसे पृथ्वी छोड़ते बनती है न सँभाले ही बनती है, इनकी इस अवस्था में कोई मदद नहीं करता, विचारे अनाथ से हो जाते हैं)। शेषनाग के फन भी (इस सेना-भार से) वेदपाठियों के हाथों के समान कभी उलटते हैं, कभी गिरते हैं, कभी पलटते हैं, कभी नीचे को झुकते हैं और कभी ऊपर को उठते हैं।

अलंकार—उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश और कारकदीपक।

वाजि बब चढ़ो साजि बाजि जब कलॉ भूप,
गाजी महाराज राजी भूषन बखानते।
चंडी के सहाय महि मंडी तेजताई, ऐंड
छंडी राय राजा जिन दंडी औनि आन तें॥
मंदीभूत रवि रज बंदीभूत हठधर,
नंदी-भूत-पति भो अनंदी अनुमान ते।
रंकीभूत दुवन करंकीभूत दिग्दंती,
पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान ते॥४१॥

शब्दार्थ—बब=रण नाद, रण का बाजा। बाजि=बजाकर। बाजि=घोड़ा। कलॉ=(फा०) बड़ा, सर्वोच्च। गाजी=धर्मवीर। राजी=पंक्ति, समूह, दल। महाराज राजी=महाराज का दल (सेना)।

मंडी=मंडित की। छंडी=छोड दिया। दंडी=दडित किया। औनि=(अवनि) पृथ्वी। मंदी भूत=मद होगया। वंदीभूत=कैद होगये। हठ धर=हठ धारण करने वाले, हठी। नदी=शिवजी का बैल। रकीभत=दरिद्र होगये। करकी भूत=कलंकी होगये। पंकीभूत=कीचड वाला होगया। सुलंकी=सुलकी अग्नि कुल के क्षत्रिय हैं यहाँ "हृदयराम सुत रुद्र साह" से तात्पर्य है, यह सुलंकी कुल में उत्पन्न हुए थ। "शि० भू०" के छद नं० २८ का शब्दार्थ देखिये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जब धर्मवीर, सर्वोच्च, सुलंकी के महाराज ने रण के बाजे बजाकर घोड़े सजा सेना सहित चढ़ाई की तो चंडी देवी की कृपा से सारी पृथिवी को उन्होंने अपने तेज से मडित कर दिया, अर्थात् उनका प्रताप सारी पृथिवी पर छागया और समस्त राव राजाओं ने, जिन्होंने अन्य राजाओं से भूमि दण्ड में छीन ली थी, अपनी ऐंड (बडप्पन की अक्ड़) छोड़ दी। सुलकी महाराज (की सेना) के युद्ध के लिए प्रयाण करने पर धूल के उडने से सूर्य मंद पड़ गया, बड़े बडे हठी (राजा) कैद होगये, नदी और भूतों के स्वामी महादेव जी युद्ध के आसार का अनुमान कर प्रसन्न होगये, शत्रु दरिद्र होगये, दिग्गज कलंकित हो गये (पृथिवी का भार न सँभाल सकने के कारण अथवा धूल पड़ने से मैले पड़ गये) समुद्र में (इतनी धूल गिरी कि पानी) कीचड ही कीचड हो गया।

अलकार—अनुप्रास एव यमक।

> जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
> ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु है।
> प्रलै कैसे धाराधर धमकै नगारा धूरि-
> धारा तें समुद्रन की धारा पाटियतु है॥
> भूपन भनत भुवगोल को कहर तहाँ,
> हहरत तगा जिमि गज्ज काटियतु है।

विभौ की भँडार औ भलाई को भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है ॥४३॥

शब्दार्थ—भले भाय = भली भाँति । भासमान = प्रकाशित । भासमान = सूर्य । भान = आभा, शोभा । भानत=भंग करता है । तोडता है, दूर करता है । भूरि=समस्त । भोगिराज=सर्प । उभारन को=उठाने को । भावती=भाने वाली, प्रिय स्त्री । भामिनी=स्त्री । भरतार=भर्त्ता, पति । विभौ=वैभव, ऐश्वर्य । भासै=प्रकाशित होता है, जाना जाता है । भाग भरे भाल=भाग्यशाली । जयसिंह—जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह बडे वीर थे । शाइस्ताखॉ के हारने पर औरंगजेब ने इन्हें दक्षिण में शिवाजी को दबाने के लिए भेजा था । यह औरंगजेब के सब से बडे सिपाहसालार थे । इन्होंने मध्य एशिया के बलख से लेकर बीजापुर तक और कंधार से लेकर मुगेर तक अपना आतक फैलाया था । ये जब सन् १६६५ ई० में दक्षिण मे गये तब इनके साथ दिलेरखॉ, दाऊदखॉ कुरेशी, और राजा रायसिंह आदि बड़े बडे सेनानायक गये थे । शिवाजी ने इन से सधि कर ली थी, और इन्हीं के कहने से वे आगरा औरंगजेब से मिलने गये थे । ये दक्षिण से लौटते समय बुरहानपुर में स्वर्गवासी हुए ।

अर्थ—महाराज जयसिंह भलीभाँति प्रकाशित सूर्य जैसी आभा वाले हैं । वे भिखारियों के समस्त भय जाल को दूर कर देते हैं, तथा सब प्रकार के भोगों (ऐश्वर्यों) को भोगने वाले और सर्पराज जैसी (विशाल) भुजा वाले हैं । उन्हें पृथ्वी के अपार बोझ को उठाने का (अर्थात् पृथ्वी की रक्षा का) ध्यान रहता है । भूषण कवि कहते हैं कि वे अपनी प्रिया के समान पृथिवी-रूपी स्त्री के पति हैं और समस्त भारतवर्ष के भरत के समान राजा हैं । वे ऐश्वर्य के खज़ाने तथा सब प्रकार की भलाइयों के भवन (स्थान) एव बड़े ही भाग्यशाली हैं ।

अलंकार—यमक, उपमा, रूपक, अनुप्रास और उल्लेख ।

अकबर पायो भगवत के तनै सों मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सो।
भूपन त्यो पायो जहाँगीर महासिंहजू सों,
साहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सो॥
अब औरंगज़ेब पायो रामसिंह जू सो,
औरो दिन दिन पै हैं कूरम के माने सों।
केते राव-राजा मान पावैं पातसाहन सों,
पावै पातसाह मान मान के घराने सों॥४४॥

शब्दार्थ—अकबर—मुगल बादशाहों में सब से शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध बादशाह हुआ है। इसने सन १५६५ से शासन करना आरम्भ किया। भगवंत—राजा भगवानदास जयपुर के राजा थे। इनकी बहिन बादशाह अकबर को ब्याही गई थी। यह अकबर की सेना के सेनापति भी थे। इनका दत्तक पुत्र मानसिंह बड़ा ही प्रतापी एवं वीर था। भगवंत के तनै=राजा भगवानदास का तनै (पुत्र) मानसिंह। मानसिंह अकबर के सेनापति थे इन्होंने काबुल तक जीता था। दक्षिण को भी इन्होंने विजय कर लिया था। यह अकबर के दायें हाथ माने जाते थे। जगतसिंह=अकबर के सेनापति महाराज मानसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंह थे। महासिंह—ये जगतसिंह के लड़के थे। महासिंह जी के पुत्र ही प्रसिद्ध मिरजा राजा जयसिंह जी थे जिनका परिचय पिछले छन्द में दिया जा चुका है। रामसिंह—जयपुराधीश महाराज जयसिंह जी के सुपुत्र थे। जब महाराज शिवाजी आगरा गये थे तो रामसिंहजी ने ही उनकी सुश्रूषा तथा सहायता की थी। कूरम=कछवाहा वंश, जयपुर-नरेश कछवाहे वंश के हैं।

अर्थ—अकबर बादशाह ने वास्तव में राजा भगवानदास के पुत्र मानसिंह के कारण और फिर वीरश्रेष्ठ जगतसिंह के कारण ऐसी इज्जत

पाई थी। भूषण कवि कहते हैं कि इसी प्रकार जहाँगीर बादशाह ने महासिंह के कारण और शाहजहाँ ने जयसिंह के कारण यश प्राप्त किया, इस बात को ससार जानता है। अब औरंगज़ेब बादशाह ने रामसिंह जी के द्वारा इज़्ज़त पाई है तथा अन्य बादशाह भी कछवाहे नरेशों के ही कारण दिन प्रतिदिन मान पावेंगे। कितने ही उमराव और राजा लोग बादशाहों से सम्मान और प्रतिष्ठा पाते हैं किन्तु मानसिंह जो (जयपुर नरेश) के घराने (वंश) के कारण उल्टा बादशाह ही मान पाते हैं।

अलकार—पदार्थावृत्तिदोपक, विरोधाभास, यमक और अनुप्रास।

पौरच-नरेश अमरेस जू के अनिरुद्ध,
तेरे जस सुने ते सुहात सौंन सीतलैं।
चन्दन सी, चाँदनी सी, चादरैं सी चहूँ दिसि,
पथ पर फैलती है परम पुनीत लैं॥
भूपन वखानी कवि मुखन प्रमानी सो तो,
वानी जू के वाहन हरख हस ही तलैं।
सरद के घन की घटान सी घमडती है,
मेड़ू तें उमडती हैं मडतीं महीतलैं॥४५॥

शब्दार्थ—पौरच—क्षत्रियों की जाति, जिनका अलीगढ के आसपास राज्य था। इनकी राजधानी "मेड़ू" थी। भूषण जी के समय में इस वंश का अनिरुद्धसिंह नरेश राज करता था। सुहात=सुहाते हैं, भले लगते हैं। सौंन = श्रवण, कान। चादरैं = कपड़े की सुफेद चद्दर। पुनीत = पवित्र। लैं = लौं, तरह। वानी जू = श्री सरस्वती जी। वाहन = सवारी। ही-तलैं = हृत्तल में। मेड़ू = पौरच नरेश की राजधानी। मंडती = छा जाती है।

अर्थ—हे पौरच वंशज महाराज अमरसिह जी के पुत्र अनिरुद्धसिंह जी, आपका यश सुनने से (हमारे) कानों को शीतलता मिलती है।

(आपके यश की उज्ज्वलता) चन्दन, चाँदनी एव चद्दर (की उज्ज्वलता) के समान चारों दिशाओं में मार्गों पर परम पवित्रता की भाँति फैल जाती है। भूषण कवि कहते हैं कि (आपके यश की उज्ज्वलता का) कवियों के मुखों से प्रमाण मिलता है (अर्थात् कवि आपकी उज्ज्वलता का वर्णन करते हैं) और श्री सरस्वती की सवारी के हस के हृदय में भी वह (यश की उज्ज्वलता) हर्ष उत्पन्न करती है। शरद ऋतु के (सफेद) बादलों की घटाओं की भाँति (आपके यश की उज्ज्वलता) मेंड़ से उमड़ती हुई सारे ससार में फैल जाती है।

अलकार—मालोपमा और अनुप्रास।

जुद्ध को चढत दल बुद्ध को सजत[1] तव,
लक लौं अतकन के पतरै पतारे से।
भूपन भनत भारे घूमत गयद कारे,
वाजत नगारे जात अरि-उर छारे से॥
धँसिकै धरा के गाढ़े कोल की कडा के डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे से।
फेन से फनीस-फन फूटि विष छूटि जात,
उछरि उछरि सिंधु पुरवै फुआरे[2] से॥४६॥

शब्दार्थ—बुद्ध=बूँदी नरेश छत्रसाल हाड़ा के भाई, भीमसिंह के पौत्र अनिरुद्धसिंह थे। इन्हीं अनिरुद्धसिंह जी के राव बुद्धसिंह जी पुत्र थे औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब उसके पुत्रों में राज्य के लिए जाजऊ स्थान पर लड़ाई हुई तो राव बुद्धसिंह जी मुअज्ज़म की ओर से लड़े थे। लंक=लका द्वीप। पतरै=द्रव पदार्थ की तरह फैल जाता है। पतारे=जंगल। छारे=छाले, फफोले। कोल=

---

१ जसन। २ भुआरे।

बराह, सूअर। डाढ़ै=दाँत। तरारै=फा० तर्रार, शक्तिशाली। तमार=मूर्छा। पुरवै=पूर्ण करता है, भर देता है।

अर्थ—बूदी के राव बुद्धसिंह जी जिस समय सेना सजा कर युद्ध के लिये चढ़ाई करते है तब लंका देश तक उनके आतंक का जंगल सा फैल जाता है। भूषण कवि कहते हैं कि काले काले बड़े बड़े हाथी झूमते हुए चलते हैं और नगाड़ों के बजने से तो वैरियों के हृदयों में फफोले से पड़ जाते हैं। उन नगाड़ों की ध्वनि पृथिवी में घुस कर बराह की डाढ़ें तक कड़कड़ा (कर तोड़) देती है और उस से शक्तिशाली दिग्पालों तक को मूर्च्छा सी आ जाती है। (सेना के भार से) शेषनाग के फन समुद्र की फेन की तरह फट जाते है और उनसे जो विष निकलता है वह फव्वारे की तरह उछल कर ऊपर को आ जाता है और समुद्र तक को भर देता है।

अलकार—अत्युक्ति, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जू नाँगी डर काहू के डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
स्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं॥
उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै रावबुद्ध-कर बिमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौं लौं गजराजन की गजक करै नहीं॥४७॥

शब्दार्थ—अछक=छकी हुई, तृप्त (अछक का अर्थ अतृप्त होना चाहिए पर यहाँ तृप्त क अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है)। धक=उमग, प्रबल इच्छा। चोखे=अच्छे अच्छे। खानखानन=खानखाना, मुसलमान। स्रोनित=श्रोणित, खून। आसौ=आसव, लाल रग की मदिरा। सुकल=शुक्ल, सफेद। गजक=कजक, शराब पीने वाले

मुँह का स्वाद ठीक करने के लिए जो नमकीन या चटपटी चीज खाते है।

अर्थ—हे राव बुद्धसिंह जी! तुम्हारे हाथ की तलवार यद्यपि सदा तृप्त रहती है (अर्थात् शत्रुओं को खूब काट काट कर तृप्त हो रही है) तो भी उसकी पीने की इच्छा नहीं बुझती। वह बिल्कुल नंगी है परन्तु फिर भी वह किसी से नहीं डरती। वह खानखानों (मुसलमान सरदारों) के बढ़िया बढिया भोजन करती है और उनका रक्त पीती है तो भी उसका पेट नहीं भरता। वह आसव उगलती रहती है (अर्थात् सदा रक्त बहाती रहती है) तो भी वह सफेद (चमकती हुई) रहती है, तुम्हारी यह मतवाली (रक्तरूप आसव पीकर मस्त होने वाली) तलवार तब तक तृप्त नहीं होती जब तक कि अच्छे अच्छे हाथियों की गजक नहीं कर लेती।

अलकार—विशेषोक्ति, विरोधाभास और अनुप्रास।

उलहत[1] मद अनुमद ज्यों जलधि-जल,
बलहद भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप-वृंद,
विंध्य से बिलंद सिंधु-सातहू के थाह के॥
भूषन भनत झूल झपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमडित मजेजदार तेज-पुंज,
गुंजरत कुजर कुमाऊँ नरनाह के॥४८॥

शब्दार्थ—उलहत=उमड़ता है। मद अनुमद=मद के बाद मद। बल हद=बल की सीमा। भीम कद=बड़े भारी डील डौल वाले। आह के=बलके, साहस के। गंड=गंडस्थल, कनपटी। मधुप=भौंरे। बिलद=ऊँचे। थाह=गहराई। झपति=ढके हैं। झपान=ढकने का वस्त्र, या ढकने की वस्तु। झहरात=थरथरा कर

---

1. उलदत।

गिर पड़ते है। मजेजदार=मिजाज वाले, घमडी। गुंजरत=गरजते है। कुंजर = हाथी।

अर्थ—हाथियों से इतना मद उमड़ता है जैसे सागर ही उमड़ रहा हो। वे अत्यन्त बलशाली और बड़े भारी डील डौल वाले हैं, उनके सामने किसी का साहस नहीं पड़ता। उनकी बड़ी बडी प्रचंड कनपटियाँ भौंरों के झुडों से सुशोभित रहती हैं, वे विंध्याचल पर्वत के समान ऊँचे और सातों समुद्रों की थाह लेने वाले है। भूषण कवि कहते हैं कि वे हाथी झूलों के ढकने से ढके हुए हैं (अर्थात् उन पर झूलें पड़ी रहती हैं) और जब वे झूमते चलते हैं तो उन से ईर्ष्या करने वाले रथ भी थरथरा कर गिर पड़ते हैं। घन-घटाओं के समान उमड़ते हुए कुमाऊँ नरेश के ऐसे तेजस्वी एवं घमंडी हाथी गर्जना कर रहे हैं।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास।

डंका के दिए ते दल-डबर उमंड्यो उड-
मड्यो उडमंडल लौं खुर की गरद्द है।
जहाँ दारासाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड मै मड़त मारू-राग बंबनद्द है॥
भूषन भनत घने घुम्मत हरौलवारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद्द है।
हद्द न छपद्द महि मद्द फर नद्द होत,
कद्द नभनद्द से जलद्द दल दद्द है॥४९॥

शब्दार्थ—डंका के दिए=नगाड़ा बजाने पर। डबर=विस्तार। दल-डंबर = सेना का विस्तार, सेना समूह। उमड्यो = उमड़ा। उडमंड्यो = उड़कर मडित हो गया, छा गया। उडमंडल = तारा-मंडल, यहाँ "आकाश" से तात्पर्य है। खुर = सुम। दारा साह = दारा, यह शाहजहाँ बादशाह का सब से बड़ा पुत्र था, यही शाहजहाँ के पश्चात् सिंहासन का अधिकारी था। इसमें धार्मिक कट्टरता

नहीं थी। हिन्दुओं के साथ यह अच्छा व्यवहार करता था। भूषण ने दारा की प्रशंसा इसी कारण की है कि यह हिन्दू-धर्म से प्रेम रखता था। शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर औरंगजेब ने राज्य पाने के लिए दिल्ली की तरफ कूच किया। राज्य-प्रबंध उस समय दारा के हाथ में था। आगरा के पास दोनों की लड़ाई हुई। दारा हार कर भागा, पर पकड़ा गया। औरंगजेब ने उसे खूब अपमानित करने के पश्चात् मरवा डाला। पैंड=पग, पद। मंड़त= मंडित होता है, छाजाता है। मारूराग=युद्ध के बाजे का राग। बंबनद=बंबनाद, हिंदू योद्धाओं की युद्ध समय हर-हर बं-बं की ललकार। हरौल=सेना का आगे का भाग। किम्मत=कीमत। अमोल=अमूल्य, दुरद = द्विरद, हाथी। हद्द न = हद्द नहीं, बेहद, अपार। छपद = छ' पद, षट् पद, भौंरा। मद = मद, हाथी की कनपटी से चूने वाला रस। फर = युद्ध क्षेत्र। नद्द = नदी। कद्द = कद, लम्बाई। नभनद्द = आकाश गंगा। जलद्द = जलद, बादल। दल = समूह। दद्द = दर्द, पीड़ा।

अर्थ—नगाड़ों के बजने पर सेना-समूह उमड पडता है, (सेना के घोडों के) खुरों से गर्द उडकर आकाश तक छा जाती है। वीर दाराशाह के चढाई करते ही पग पग पर मारू बाजे की ध्वनि फैल जाती है और बं, बं शब्द होने लगता है (दारा की ओर से युद्ध में हिन्दू नरेश भी लड़ते थे, वे ही बं-बं शब्द बोलते थे)। भूषण कवि कहते हैं कि हरौल (अग्रभाग) में बहुमूल्य एवं बडी हिम्मत वाले हाथी घूम रहे है(झूमते हैं), इन (हाथियों) की कनपटियों पर भौंरों की अपार भीड है तथा पृथ्वी पर इन से मदजल झरने के कारण युद्धक्षेत्र में नदी सी बह चलती है। इनकी ऊँचाई आकाश गंगा तक है (अर्थात् बहुत ऊँचे है)। ये बादलों के समूह को भी पीडा पहुँचाते हैं अर्थात् इतने ऊँचे हैं कि बादलों का आनाजाना भी रोक लेते हैं।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति और अनुप्रास।

निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलै-भानु कैसी,
फारैं तम-तोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कठ वैरिन के नागिन-सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुडन की माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु वली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट-कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को॥ ५०॥*

शब्दार्थ—मयूखे = किरणें। प्रलै-भानु = प्रलय काल का सूर्य। तम-तोम = अन्धकार का समूह। गयन्दन के = हाथियों के। जाल= समूह। लपकि = दौड़ कर। रुद्र = महादेव। लाल = चिरंजीव, अथवा कवि का नाम। छितिपाल = राजा। प्रतिभट = शत्रु। कटक = सेना। कालिका-सी = काली के समान। किलकि = प्रसन्न होकर, किलकारी मार कर। कलेऊ=कलेवा, नाश्ता। काल=यमराज।

अर्थ—म्यान से निकली हुई तलवार की किरणें प्रलय काल के सूर्य के समान तेज़ हैं जो अन्धकार के समूह के समान काले हाथियों के झुडों को फाड़ डालती हैं। वैरियों के गले पर वह नागिन के समान दौड़ कर पड़ती है और महादेव जी को मुण्डों (कटे हुए सिरों) की माला दे दे कर प्रसन्न करती है। हे चिरंजीव (अथवा लाल कवि कहते हैं) महाबाहु वीर छत्रसाल महाराज, मैं आपकी तलवार का वर्णन (प्रशंसा)

---

*इस कवित्त मे भूषण का नाम नहीं है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई की सम्मति में यह कवित्त भूषण का नहीं है अपितु बूँदी-नरेश हाडा छत्रसाल की प्रशंसा में लाल कवि का बनाया हुआ है। उनकी सम्मति मे पाँचवी पंक्ति के 'लाल' शब्द का अर्थ चिरजीव नहीं है अपितु यह कवि का नाम है।

कहाँ तक करूँ। यह कालिका के समान शत्रु की कितनी ही सेनाओं को, जो काँटेदार झाड़ियों के समान दुखदायी हैं, काट-काट कर यमराज को कलेवा करवाती है।

अलंकार—उपमा, अप्रस्तुतप्रशंसा, पुनरुक्तिप्रकाश तथा अनुप्रास।

दारा और औरँग जुरे हैं दोऊ दिल्लीवाल,
एकै गए भाजि एकै गए रुँधि चाल मैं।
कोऊ दगाबाजी करि बाजी राखी निज कर,
कौनहू प्रकार प्रान बचत न काल मैं॥
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह-लँगर दै,
एती लाज कामैं जेती लाल छत्रसाल मैं।
तन तरवारिन मैं मन परमेसुर मैं,
प्रान स्वामि-कारज मैं माथो हर-माल मैं॥५१॥*

शब्दार्थ—दारा साहि=दाराशिकोह, औरंगजेब का बड़ा भाई। रुँधि=फँस गए। दगाबाजी करि=धोखा देकर। जूझ्यो=युद्ध करने लगा। लोह-लंगर=लोहे की मोटी जंजीर, जो हाथी के पैर में इस लिए डाल दी जाती है कि वह भाग न सके।

अर्थ—दाराशिकोह और औरंगज़ेब दोनों दिल्ली के शाहजादे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त हुए हैं। उस समय कोई कोई तो भाग गये और कोई चाल चल कर घेर लिये गये। कोई कोई ऐसे थे कि जिन्होंने दगाबाजी करके बाजी अपने हाथ में रक्खी (अर्थात् प्रान बचाये)। इस समय प्राण बचाना बड़ा कठिन हो रहा था। ऐसे समय में हाड़ा छत्रसाल अपने

* इस कवित्त में भी भूषण का नाम नहीं है और इस से पहले पद्य की तरह इसे भी स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई लाल कवि का मानते हैं। कुछ प्रतियों में 'लाल' शब्द की जगह 'लाज' पाठ भी मिलता है तथा कुछ लोग 'लाल' का अर्थ चिरजीव करते है। अत यह कवित्त भूषण का है या किसी और कवि का, यह संदेहात्मक है।

हाथी से उतर कर उसके पैर में लोहे की साँकल डलवा कर घोर युद्ध में भिड़ गये। क्योंकि इतनी लज्जा(आत्माभिमान)और किसमें हो सकती है, जितनी छत्रसाल में थी। उस समय उनका शरीर तलवारों में कट रहा था, मन परमेश्वर में लगा हुआ था, प्राण स्वामी (दारा) के कार्य में थे, इसी हेतु इनका सिर महादेव जी की मुण्डमाल में था (जो वीरता से लड़ते हुए मरते हैं उनका माथा महादेव के मुण्डमाल में स्थान पाता है)।।

अलंकार—यमक और स्वभावोक्ति ।

कीबे को समान प्रभु ढूँढि देख्यो आन पै,
निदान दान जुद्ध मैं न कोऊ ठहरात है।
पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं ॥
संका मानि सूखत अमीर दिल्लीवार जब,
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं।
चहूँ ओर चकित चकत्ता के दलन पर,
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं ॥५२॥*

शब्दार्थ—कीबे=करने के लिए। पंचम=बुंदेला नरेशों की पदवी जो उनके पूर्व पुरुष पचमसिंह के नाम से चली थी। थहरात=काँपते हैं।

अर्थ—आपके समान दूसरा स्वामी करने (बनाने) के हेतु मैंने सारा संसार खोज मारा किन्तु आपके समान दानवीर तथा युद्धवीर कोई

---

* इस कवित्त मे भी भूषण का नाम नहीं है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई की सम्मति में इस कवित्त की तृतीय पंक्ति में आया 'पंचम' शब्द कवि का नाम है, पर कुछ लोगों की सम्मति में 'पचम' बुंदेला नरेश की उपाधि है। अतः यह कवित्त भी भूषण का है या किसी और कवि का, यह निश्चय से नही कहा जा सकता।

दिखाई नहीं पड़ता। छत्रसाल पंचम के बाहुबल का वर्णन सुन सुनकर पठान लोग भाग जाने के लिए पक्षियों की भाँति काँपते हैं। और जब चंपतराय के पुत्र छत्रसाल महाराज के नगारे बजते हैं तो दिल्ली के अमीर मुसलमानों का कलेजा सशंकित हो सूखता जाता है। औरंगजेब की विस्मित सेना समूह के ऊपर चारों ओर राजा छत्रसाल के प्रताप की ध्वजा फहरा रही है।

अलंकार—यमक, उपमा, चञ्चलातिशयोक्ति और अनुप्रास।

चले चन्दबान घनबान औ कहुकबान,
चली हैं कमानैं धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चली जमडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ को तरनि मानों च्वै रह्यो॥
ऐसे समै फौजें बिचलाईं छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाए पायँ बीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले सग छोडि साथी चले,
ऐसी चला चली मैं अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥५३॥

शब्दार्थ—चंदबान=वे बाण जिनके आगे अर्धचन्द्राकार गाँसी लगी होती है। घनबान=ऐसे बाण जिनके चलाने से बादल छा जाते हैं। कुहुकबान=एक प्रकार के बाण जिनके चलने से बड़ा शब्द होता है। कमानैं=तोपें। जमडाढ़ैं=कटारी की तरह का एक हथियार। बाढ़वारैं=तेज धार वाली। लोहआँच=हथियारों (के बार बार चलने) से उत्पन्न हुई गर्मी। च्वै=टपकना।

---

*स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई ने इस छन्द को बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा के किसी दरबारी कवि का रचा बताया है। इस छन्द में भूषण का नाम नहीं है और न किसी अन्य कवि का ही है। इसलिए यह भी सन्देहात्मक है।

अर्थ—चन्द्रबाण, घनबाण, कुहुकबाण और तोपें चल रही हैं, जिससे सारे आकाश में धूवाँ छा रहा है। तीक्ष्ण कटारों और तलवारों के चलने और उनकी रगड़ से ऐसी आँच उत्पन्न हो रही है मानों जेठ मास का सूर्य उदय हो गया हो। ऐसे समय में छत्रसाल की फौज विचलित होने पर भी उन्होंने वीर रस में उन्मत्त होकर शत्रु के पैर पीछे हटा दिए। हाथी, घोड़े भाग गए, अन्य साथी भी साथ छोड़ छोड़कर भाग चले किन्तु ऐसी चलाचली (भगदड़) के समय पर हाड़ा छत्रसाल अचल हो युद्ध-क्षेत्र में डटे रहे।

अलंकार—पदार्थावृत्ति दीपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

उठि गयो आलम सो रुजुक सिपाहिन को,
उठिगो बँधैया सब बीरता के बाने को।
भूषन* भनत उठि गयो है धरा सो धर्म,
उठिगो सिंगार सबै राजा राव राने को॥
उठिगो सुकवि सील, उठिगो जसीलो डील,
फैलो मध्यदेस मैं समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवत राय,
अरराय टूटयो कुल खंभ हिन्दूआने को॥५४॥

शब्दार्थ—रुजुक=फा० रिजक, भोजन, जीविका। बाना=वेष। सिंगार=शृंगार, सजावट, शोभा। सुकवि-शील=अच्छे अच्छे कवि जिसके दरबार में हों। जसीलो=यशवाला, यशस्वी। डील=शरीर। भाल फूटे=भाग्य फूट गये। जूझे=युद्ध मे मर गये।

* इस स्थान पर 'भूधर' पाठ होना चाहिए, ऐसा कुछ लोगों का विचार है, क्योंकि 'भूधर' नाम का कवि भगवंतराय खीची के यहाँ था। भगवतराय खीची की मृत्यु भूषण की मृत्यु के बहुत से दिन पश्चात् हुई थी अतः इस छन्द के भूषण-कृत होने में संदेह है।

भगवत राय—भगवतराय खीची असोथर के राजा थे। ये स्वयं अच्छे कवि थे और कवियों का सम्मान करते थे, इनके दरबार में मून, भूधर, सारंग आदि कवि थे। इस कवित्त में मध्यदेश का नाम आने से यह शङ्का होती है कि भगवतराय खीची तो संयुक्त प्रान्त के असोथर के राजा थे फिर उनका मध्य देश से क्या सम्बन्ध? इसके सिवाय भगवतराय का निधन काल सन् १७४० ई० माना जाता है। भूषण इस से पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। भगवतराय नाम का एक राजा मध्य देश में भी हुआ ज्ञात हुआ है किन्तु यह इतना प्रसिद्ध नहीं था। अरराय = भहरा कर।

अर्थ—सिपाहियों को भोजन (जीविका) देने वाला संसार से उठ गया। वीरता के वेश (मर्यादा) को बाँधने वाला उठ गया। भूषण कवि कहते हैं कि पृथिवी से धर्म उठ गया तथा राजाओं और उमरावों की शोभा भी उठ गई। अच्छे अच्छे कवियों को दरबार में रखने वाला उठ गया, यशस्वी शरीर वाला भी कोई नहीं रहा, अपितु सारे मध्य प्रदेश में मुसलमानों का ही प्रभाव फैल गया। भगवत-राय के मरने से भिक्षुकों की किस्मत फूट गई और हिन्दुओं के वंश का आधार भी भहरा कर टूट गया।

अलङ्कार—उल्लख और अनुप्रास।

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइवो।
जेते मनि-मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई में धरे ते तौ धराई में धराइवो॥
एक भूख राखै भूख राखै मत भूषन की,
यही भूख राखै भूप भूषन बनाइवो।
गगन के गौन जम गिनन न देहैं नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइवो॥५५॥

शब्दार्थ—देह = स० देहि, दो, दे डालो। देह = शरीर। जौन तौन = जो, तो, इधर उधर की बातें, उज्र। जौन=जिन्हें, जो। धरा = पृथ्वी। भूख = क्षुधा, इच्छा। गौन=गमन। नग = जवाहरात।

अर्थ—दीजिए (जितना हो सके दान) दीजिए फिर ऐसा शरीर नहीं मिलेगा। जो (यम गण) आते हैं वे 'कौन' तथा 'जो तो' नहीं जानते अर्थात् वह कौन है, कैसा है इसकी परवाह नहीं करते बल्कि छोटे बड़े सब को ले ही जाते हैं। जितने मणि-माणिक्य जवाहरात हैं उन्हें मन में ही मान लो क्योंकि लोग कहते हैं कि जो पृथिवी में धरे हैं (पृथिवी में गाड़ कर रखे हैं) वे पृथिवी में ही धरे रहेंगे (साथ किसी के भी नहीं चलेंगे)। फिर एक ही इच्छा रखनी चाहिए, भूषण (गहने) आदि की इच्छा ही न रखे, केवल यही इच्छा रखे कि राजाओं का सा प्रतापी बन जाऊँ क्योंकि परलोक जाते समय यमराज नग (जवाहरात आदि) न गिनने देगा, केवल नग्न चलना पड़ेगा जवाहरात साथ नहीं चलेंगे।

अलंकार—यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

शृंगार-रस*

अति सौंधे भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आइ रहीं अलकैं।
कवि भूषन अंग नवीन विराजत मोतिन-माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मन सो नित होत नई, ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहर जात मनौ मुसुकानि किधौं छवि की छलकैं॥५६

नैन जुग नैनन सों प्रथमै लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरैं नहि टेरे हैं।

---

*शृंगार-रस के दस पद्य पंजाब युनिवर्सिटी की प्रभाकर परीक्षा की पाठविधि में नहीं हैं। इसलिए इनके अर्थ नहीं दिए गये।

अडि अडि पिलि पिलि लडे हैं उरोज वीर,
देखो लगे मीसन पै घाव ये घनेरे हैं ॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
भए अंग-अंगनि त केते मुठभेरे हैं ।
पाछे परे बारन कौं बाँधि कहै आलिन सौं,
भूपन सुभट येई पाछे परे मेरे हैं ॥५७॥

कोकनद-नैनी केलि करी प्रानपति संग,
उठी परजंक तें अनंग-जोति सोकी-सी ।
भूपन सकल दलमलि हलचल भए,
बिंदु-लाल भाल फैल्यो कांति रवि रोकी सी ॥
छूटि रही गोरे गोल गाल पै अलक आछी,
कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि हो की सी ।
मोती सीस फूल तें बिथुरि फैलि रह्यो मानो,
चन्द्रमा तें छूटी है नछत्रन की चोकी सी ॥५८॥

देखत ही जीवन बिडारै तौ तिहारो जान्यो,
जीवन-द नाम कहिबे ही को कहानी मै ।
कैधों घनस्याम जो कहावैं सो सतावैं मोहिं,
निहचैकै आजु यह बात उर आनि मैं ॥
भूपन सुकवि कीजै कौन पर रोसु निज-
भागि ही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी मैं ।
रावरेहू आए हाय हाय मेघराय सब,
धरती जुडानी पै न बरती जुड़ानी मैं ॥५९॥

मेचक-कवच साजि वाहन-बयारि-बाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के ।

भूपन भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के ॥
पैदरि-बलाका धुरवान के पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के ।
ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर,
ये आये बीर बादर बहादर मदन के ॥६०॥

मलय समीर परलै को जो करत अति,
जम की दिसा तें आयो जम ही को गोतु है ।
साँपन को साथी न्याय चन्दन छुए ने डसै,
सदा सहवासी विष-गुन को उदोतु है ॥
सिन्धु को सपूत कलपद्रुम को बन्धु,
दीनबंधु को है लोचन सुधा को तनु सोतु है ।
भूपन भनत भुव भूषन द्विजेस तैं,
कलानिधि कहाय कै कसाई कत होतु है ॥६१॥

जिन किरनन मेरो अग छुयो तिनही सों,
पिय अंग छुवै क्यों न मैन-दुख-दाहे को ।
भूषन भनत तू तो जगत को भूषन है,
हौं कहा सराहौं ऐसे जगत-सराहे को ॥
चन्द ऐसी चाँदनी तू प्यारे पै बरसि उतै,
रहि न सकै मिलाप होय चित चाहे को ।
तू तो निसा करै सब ही की निसा करै मेरी,
जो न निसा करै तो तू निसाकरै काहे को ॥६२॥

बन उपवन फूले अवनि के झौर झूले,
अवनि सोहात सोभा और सरसाई है।
अलि मदमत्त भए केतकी बसंती फूली,
भूपन बखाने सोभा सबै सुखदाई है॥
बिपम बिडारिबे को वहत समीर मंद,
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
इतनो सँदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ,
कहो जाय कंत सों बसंत रितु आई है॥६३॥

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाइ रह्यो मानो यह विप कालीनाग को।
बैरिन भई है कारी कोयल निगोडी यह,
तैसो ही भँवर कारो बासी बन बाग को॥
भूपन भनत कारे कान्ह को बियोग हिये,
सबै दुखदाई जो करैया अनुराग को।
कारो घन घेरि घेरि मारयो अब चाहत है,
एते पर करति भरोसो कारे काग को॥६४॥

सुने हूजै बेसुख सुने बिन रह्यो न जाय,
याही ते बिकल-सी बितातीं दिन-राती हैं।
भूपन सुकवि देखि बावरी विचार काज,
भूलिबे के मिस सास नद अनखाती हैं॥
सोई गति जानै जाके भिदी होय कानै सखि,
जेती कढ़ै तानै तेती छेदि छेदि जाती है।
हूक पाँसुरी मैं क्यो भरौं न आँसुरी मैं थोरे,
छेद बाँसुरी मैं घने छेद किए छाती हैं॥६५॥

कुछ अन्य पद्य*

बाँएँ लिखवैयन के बाम विधि होन लागे,
दाएँ लिखवैयन पै दाप सी मढ़ै लगी।
छा गई उदासी खासी मस्जिद मकबरन,
मठ-मंदिरन कोटि रोसनी चढ़ै लगी॥
भूषन भनत सिवराज आज तेरे राज,
तेज तुरकानन ते तेजता कढ़ै लगी।
माथन पै फेरि लागे चंदन चमक देन,
फेरि सिखा-सूत्रन की महिमा बढ़ै लगी॥६६॥
ताही ओर परै घोर घर-घर जोर सोर,
जाही ओर सिवा के नगारे भारे गरजैं।
भूषन जो होइ पातसाही पाइमाल औ,
उजीर बेहवाल जैसे बाज त्रास चरजैं॥
एकै कहैं देस लेहु एकै कहैं दंड लेहु,
एकै कहैं लेहु गढ़-कोट जंग बरजै।
करत उकील सरजा के दरबार,
छरीदारन सों ऐसी पातसाहन को अरजै॥६७॥
पारावार पार पैरि जैहैं भुजबल अरु,
बारक बिहंसि बड़वानल मैं जरिहैं।

---

* ये पद्य साहित्य-सेवक कार्यालय, काशी की प्रति में है। इनमें से कुछ पद्य बाबू ब्रजरत्नदास के संस्करण मे भी है। परन्तु अभी यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि ये सब पद्य भूषण के हैं और या किसी कवि के। इसलिए इनके अर्थ नहीं दिये गये। अगले संस्करण मे इनके अर्थ दिए जायेंगे।

दौरिहैं उपाहने पगन तरवारि पर,
महा विषधरन के मुख कर करिहैं ॥
भूषन भनत अवरंगजू को उमराव,
कहत रहत गिरिहू ते गिरि परिहैं ।
छोरि समसेर सेर सिंहहु सों लरिहैं पै,
बाँधि समसेर सिवा सिंह पै न लरिहैं ॥६८॥

एकै भाजि सकत न चौकरी भुलाने ऐसे,
जैसे मृग-जूथ दपटत मृगराज के ।
भूषन भनत एकै पच्छनि थकित भए,
पच्छी लौं सटपटात झपटत बाज के ॥
एकै सरजा के परताप यों जरत, तिन-
पुंज ज्यौं बरत परे मुख-दौ-दराज-के ।
मीरजादे मुरि जात खानजादे खपि जात,
साहजादे सूखि जात दौरे सिवराज के ॥६९॥

सूर-सरदार सूबेदार ऐंड़दार ते वै,
सरजा धँसाए धोप-धक्कनि धुकाइ कै ।
भूषन भनत याते सकत रहत नित,
कोऊ उमराव न सकत समुहाइ कै ॥
दिल्ली ते चलत ह्यॉं लौं आवत सिवा के डर,
कूटि-काटि फौजैं जाती भभरि भगाइ कै ।
मध्य ते उमड़ि जैसे बीची वारि वारिधि की,
बेला न उलघैं जाती बीच ही बिलाइ कै ॥७०॥

मारे तें रुहेलनि बिडारे ते बुँदेलनि के,
बहादुरखान ह्वैहै घाट को न घर को ।

भूषन भनत सिव सरजा की धाक फेरि,
कोऊ नाहिं ह्वैहै सूबा दक्खिन के दर को ॥
बंदर के लीन्हे पर, देवगिरि छीने पर,
सत्रुन के सीने पर जैहै महा धर को।
दोई दिन भीतर बिगोई सुनि आसरे सो,
कोई दिन जैहै गढोई ग्वालियर को ॥७१॥

कारी भीति कालिंजर कगूरे कनौज सदा,
सूरन के संका सरजा के करवाल की।
भूषन मिमार माड़े माडव मुलुक कोऊ,
झँपि सोर भीमर गहै न बात वाल की॥
बिललाइ बिकल विलाइति को साह सुनि,
साइति मैं सुरति बिलाइत विहाल की।
कहाँ लौं सराहौं सिवराज की सपूती भई,
कौंसिलापुरी लौं धाक भौंसिला भुआल की ॥७२॥

कैयो देस परिव्रढ़ कैयो कोट-गढ़ी-गढ़,
कीन्हे अढ़अढ डिढ काहू मैं न गति है।
भूपन भनत सेना-वध-हलकप सुनि,
सिंहल ससंक वंक लक हहलति है ॥
गोलकुंडा बीजापुर हवस पुरतगाल,
वलख बिलाइत दिली मैं दहसति है।
डंका के बजत पातसाह या मलेछ-मन,
डॉकि चौकी धाक सिवाजी की पहुचति है ॥७३॥

महाराज सरजा खुमान सिंह तेरी धाक,
छूट अरि-नैननि मै पानी की पनारिका।

भूषन भनत धार-धार सुनि बेसुमार,
बारक सम्हारैं न कुमार न कुमारिका ॥
देह की न खबरि सुगेह की चलावै कौन,
गात न सोहात न सोहाती परिचारिका ।
मानव की कहा चली एते मान आगरे मैं,
आयो-आयो सिवराज रटैं सुक-सारिका ॥७४॥

साहि-तनै[1] सुभट सिवाजी गाजी तेरी धाक,
भभरि भगानी रानी बेगि[2] चुगलन की ।
भूषन मुखनि[3] महताब की निकाई सुल-
फाई तिन[4] पगनि[4] गुलाब के गुलन की ॥
कच-कुच-भार कटि लचि लचकाइ थकि[5],
आई गरुआई पीन जघ जुगलन की ।
श्रम कुम्हिलानी[6] बिललानी बन-बन डोलैं[7],
मैगल-गवन मुगलानीं मुगलन की ॥७५॥

इत सिरजैखाँ उत सरजा सिवाजी सूर,
दोऊ उतसाहन लरैया खुरकन के ।
भूषन भनत गढ़ नाले पर खाले भिरे,
देखैं दोऊ दीन पै न एकौ कुरकन के ॥
साहदी भवानी उन्हैं माहदी सँघारे सबै,
बीजापुरी बीर अब लेन मुरकन के ।
लोहू चले नाले पै न हाले दल साले चले,
भाले मरहट्टन के ताले तुरकन के ॥७६॥

पाठान्तर—१ सहतन । २ राज । ३ भनत । ४ गुलफन की । ५ कटि-कुच भारन तें लफि लचकाइ लफि । ६ अकुलानी । ७ फिरैं ।

कीन्हे खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड वीर,
मंडन मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
हेरत हिराने ते कहू न ठहराने हैं ॥
पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने है।
भूषन भनत नवखंड महिमंडल मैं,
जहाँ-तहाँ दीसत अब माहि के निसाने हैं ॥७७॥

हैवत हो फीलखाने पिलुआ पलंगखाने,
आफत वजीरखाने फाका मोदखाने मैं।
हुँगवा हरमखाने दारिद दरबखाने,
खाक मालखाने औ खबीस खसखाने मैं ॥
सरदी बरूदखाने फसली सिपाहखाने,
घुर्रा बाजखाने और सुस्ती जंगखाने मैं।
भूषन किताबखाने दीमक दिवानखाने,
खाने-खाने आफत ना अवाज तोपखाने मैं ॥७८॥

महाराज सिवराज तेरे त्रास साह भजे,
जिनके निकट सब नित्य ही लसत हैं।
आरिन मैं अरुआ अटारिन मैं आकज औ,
आँगन अलूसन मैं बाघ बिलसत हैं ॥
भौनन के भीतर भुजंग भूत फैले फिरैं,
प्रेतन के पुंज पौरि पैठत ग्रसत हैं।
चारु चित्रसारिन मैं चौकत चुड़ैल फिरैं,
खासे आमखासन मैं राकस हँसत हैं ॥७९॥

औरे रूपनि छोड़ि अलि, भूषन सेइ रसाल।
याके निकट वसन्त ही, ह्वैहै निपट निहाल ॥८०॥

टूटि गए गढ़-कोट महा अरु छूटिगे मेंडे जे खाँड़नि खाँचे।
कूटे सबै उमराव सिवा अरु लूटिबे को कहूँ देम न बाँचे॥
भूषन कंचन की चरचा कहा रंच न हेम खजाननि काँचे।
झूठे कहावत हे पहिले अब आलमगीर फकीर भे साँचे ॥८१॥

लोक ध्रुवलोकहू ते ऊपर रहैगो भारो,
भानु ते प्रभानि की निधान आनि आवैगो।
सरिता सरिस सुरसरि तै करैगो साहि,
हरि ते अधिक अधिपति साहि मानैगो॥
ऊरध-परारध ते गनती गनैगो गुनि,
वेद ते प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।
सुजस तें भल्यौ मुख भूषन भनैगो बाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो वखानैगो ॥८२॥

देवता को पति नीको पतिनी सिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ वे रथ उर आनिए।
परम धरम को है सेइबो न व्रत-नेम,
योग को सँजोग त्रिभुवन योग जानिए॥
भूषन कहा भगति न कनक मनि ताते,
विपति कहा वियोग सोगन वखानिए।
सँपति कहा सनेह न गथ गहिरो सुख,
सुख को निरखिबोई मुकुति न मानिए ॥८३॥

सु डन समेत काटि विहद मदगन सो,
रुधिर सों रंग-रन मंडल में भरिगो।

भूषन भनत तहाँ भूप भगवंतराय,
पारथ समान महाभारत सो करिगो ॥
मारे देखि मुगल तुराबखान ताही समैं,
काहू अस न जानी काहू नट सो उबरिगो।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि ताही समै,
हाथी-हाथा हाथी ते सहादत उतरिगो ॥८४॥

भेटि सुरजन तोहि मेटि गुरजन लाज,
पथ परिजन को न त्रास जिय जानी है।
नेह ही को तात गुन जीवन सकल गात,
भादौं-तम-पुंजन निकुंजन सकानी है ॥
सावन की रैनि कवि भूषन भयावनी मैं,
भावत सुरति तेरी सकहू न मानी है।
आज रावरे की यहाँ बातैं चलिबे की मीत,
मेरे जान कुलिस घटा सी घहरानी है ॥८५॥

मेरु को सोनो कुबेर की संपति ज्यो न घटै विधि राति अमा की।
नीरधि नीर कहै कवि भूषन छीरधि-छीर छमा है छमा की ॥
रीति महेस उमा की महा रस रीति निरंतर राम-रमा की।
ए न चला ए चलै क्रम छोड़ि कठोर क्रिया औ तिया अधमा की ॥८६॥

पद्य-सूची

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
अक्षा-सी दिनकी	२६४	आजु सिवराज महाराज	२६१
अकबर पायो	४०५	आदर घटत	३१
अगर के धूप धूम	१८७	आदि की न जानो	३१२
अचरज भूषण	१४९	आदि बडी रचना	१८३
अजौं भूतनाथ	२५०	आनद सों सुदरिन	१६
अटल रहे हैं	१०१	आन ठौर करनीय	१५६
अतर गुलाब रसचोवा	३००	आन बात आरोपिए	६१
अति मतवारे जहाँ	१९०	आन बात को आन मैं जहँ	७३
अति सम्पति बरनन	२५४	आन बात को आन में होत	५८
अति सौंधे भरी	४१८	आन हेतु सों	२३९
अत्र गहि छत्रसाल	३५६	आनि मिल्यो अरि	२३६
अनत बरजि कछु	१८९	आपस की फूट ही	३९४
अनहूवे की बात	१५२	आयो आयो सुनत ही	९०
अन्दर से निकसीं	२९९	आवत गुसलखाने	६०
अन्योन्या उपकार	१७१	इन्द्र जिमि जम्भ	३९
अफजलखान गहि	३२६	इंद्र निज हेरत	२३०
अरितिय भिल्लिनि	१३२	इक हाडा	३५१
अरिन के दल	२७९	इत सिरजैखाँ	४२५
अरु अक्रमातिसयोक्ति	२८४	उठि गयो आलम	४१६
अरु अर्थ अन्तरन्यास	२८४	उतरि पलंग ते	२९८
अस्तुति में निन्दा	१३६	उतै पातसाहजू के	३१७
अहमद नगर के थान	२३४	उत्तर पहार विधनोल	१२०
आई चतुरंग-सैन	३६६	उदित होत सिवराज	११
आए दरबार	२७	उदैभानु राठौरबर	२१८
आगे आगे तरुन	२४९	उद्धत अपार तव	८८
आजु यहि समै	२५८	उपमा अनन्वै	३२८

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
उपमा वाचक पद	२६	औरे के गुन दोस	२१६
उमड़ि कुडाल मैं	२४८	औरे रूपनि	४२७
उरुहत मद अनुमद	४०९	कछु न भयो केतो	१६२
ऊँचे घोर मंदर	२९७	कत्ता की कराकनि	२९६
एक अनेकन मैं रहै	१८६	कत्ता के कसैया	३७८
एक कहैं कलपद्रुम	५२	करत अनादर	३०
एक क्रिया सों	११०	करन लगैं औरै	१५७
एक प्रभुता को धाम	२८६	करि मुहीम आए	२४६
एक वचन में होत	१२६	कलियुग जलधि	४२
एक बात को दे जहाँ	१८८	कवि कहैं करन	५३
एक बार ही जहँ	१९४	कविगन को दारिद	२६०
एक समै सजि कै	६८	कवि-तरुवर	९३
एकहि के गुण दोष	२११	कसत मैं वार बार	१७७
एकै भाजि सकत	४२३	कहनावति जो लोक की	२४०
एते हाथी दीन्हे	१०	कहाँ बात यह	१५९
ऐसे बाजिराज देत	२८२	कहिबे जहँ सामान्य	९४
औरँग अठाना	३८१	कहुँ केतकी	१७
औरँग जो चढ़ि	२४१	कह्यो अरथ जहँ	२०३
औरँग यों पछितात	१५२	काज मही सिवराज	२११
औरँग सा इक ओर	३८५	कामिनी कत सों	९९
और काज करता	१७६	कारी भीति कालिंजर	४२४
और गढ़ोई नदी नद	८४	कारो जल जमुना	४२१
औरन के अनबादे	२१६	काल करत कलि	६५
औरन के जाँचे	२७६	काहू के कहे सुने	२४७
औरन को जो जनम	१०९	काहू पे न जात	१२३
और नृपति भूषण	९४	कितहूँ विसाल	१७
और हेतु मिलि कै	१९३	किबले की ठौर	३०३

प्रतीक	पृष्ठ संख्या
कीन्ह खड-खड	४२६
कीबे को समान	४१४
कीरति को ताजी	११७
कीरति सहित जो	१०८
कुन्द कहा पय वृन्द	३५
कुम्भकन्न असुर	३१३
कुल सुलक	२१
कूरम कवध हाडा	३८२
कूरम कमल कमधुज	३०९
केतिक देस दल्यो	३२०
के वहुतै के	५२
कैयक हजार किए	३०५
कै यह कै वह	५९
कैयो देस परिव्रढ	४२४
कै वह कै यह	१९१
कोऊ बचत न सामुहैं	२१९
कोऊ बूझै बात	२३६
कोकनद-नैनी	४१९
को कविराज विभूषण	११६
कोट गढ ढाहियतु	३३७
कोट गढ़ दै कै	१७४
को दाता को रन	२३७
कोप करि चढ्यो	३६६
कौन करै बस वस्तु	२३७
क्रम सौं कहि	१८४
क्रुद्ध फिरत अति	२७३
गज घटा उमड़ी महा	२५१
गढन गँजाय	३३१
गढनेर गढचाँदा	९०
गतबल खानदलेल	२६८
गरव करत कत	३१
गरुड को दावा सदा	३२९
गुननि सौं इनहूँ	९७
गैर मिसिल ठाढ़ो	२३५
गौर गरबीले अरबीले	१९८
घटि बढि जहँ	४६
घिरे रहे घाट	३९३
चकित चकत्ता	३३८
चक्रवती चकता ,	१००
चढ़त तुरग चतुरग	९६
चन्दन में नाग	३२
चन्द्रावल चूर करि	३२२
चमकती चपला न	६१
चले चन्दबान	४१५
चाकचक चमू	३५३
चाहत निर्गुण	११०
चित अनचैन आँसु	२६३
चोरी रही मन मैं	३९६
छाय रही जितही	३०
छूटत कमान अरु गोली	३१६
छूट्यो है हुलास	११४
जसन के रोज	१५३
जहँ अभेद कर	४९
जहँ उतकरप अहेत को	२०५

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
जहँ कैतव छल	७१	जहाँ हेतु अरु	८८
जहँ चित्त चाहे काज	१६७	जहाँ हेतु चरचाहि मैं	८९
जहँ जोरावर सत्रु	१९७	जहाँ हेतु ते प्रथम	९१
जहँ दूरस्थित वस्तु	२५२	जहाँ हेतु पूरन	१४७
जहँ प्रसिद्ध उपमान	२९	जहाँ हेतु समरथ	१५१
जहँ बरनत गुन दोष	२१८	जाको बरनन कीजिए	२२
जहँ मन वांछित	१६५	जा दिन चढ़त	४०२
जहँ विरोध सौं	१४३	जा दिन जन्म	१२
जहँ संगति तें और को	२२५	जानि पति बागवान	३६९
जहँ समता को	४०	जा पर साहि-तनै	१३
जहाँ आपनो रंग	२१९	जाय भिरौ न भिरे बचिहौ	१३९
जहाँ एक उपमेय	३८	जावलि बार सिंगारपुरी	१५९
जहाँ और के संग तें	२२८	जाहि पास जात	८०
जहाँ और को संक	६९	जाहिर जहान जाके	१२५
जहाँ करत उपमेय	२८	जाहिर जहान सुनि	२१७
जहाँ करत हैं जतन	१६३	जाहु जनि आगे	२५५
जहाँ काज तें हेतु	२६३	जिन किरनन	४२०
जहाँ जुगति सौं	६३	जिन फन फुतकार	३४५
जहाँ दुहुन की देखिए	२२	जीत रही औरंग	१८६
जहाँ दुहुन को भेद	४१	जीत लई वसुधा	९४
जहाँ दुहूँ अनुरूप	१६१	जीत्यो सिवराज सलहेरि	२१८
जहाँ परस्पर होत	३७	जुग वाक्यन को	१०५
जहाँ प्रगट भूपन	१४९	जुद्ध को चढ़त	४०७
जहाँ बड़े आधार	१६९	जु यों होय तो	२०७
जहाँ श्लेष सौं	२४३	जे अरथालंकार ते	२६५
जहाँ सरस गुन	२१७	जेई चहौ तेई गहो	१८४
जहाँ सूरतादिकन	२५७	जेते हैं पहार भुव	४८

प्रतीक	पृष्ठ संख्या
जे सोहात सिवराज	२४१
जेहि थर आनहि	८६
जेहि निषेध	१४०
जै जयति जै	५
जोर करि जैहैं	३२१
जोर रूसियान	२६२
ज्ञान करत	८४
झूठ अरथ की सिद्धि	२०९
टूटि गए गढ़-कोट	४२७
डंका के दिए	४१०
डाढी के रखैयन	३४४
तखत तखत	३८०
तरनि जगत जलनिधि	६
तहँ नृप रजधानी	१९
तहवरखान हराय	३६१
ताकुल मैं नृपवृन्द	८
ताते सरजा विरद	९
ता दिन अखिल	१४८
ताही ओर परै	४२२
तिमिर वंस-हर	६९
तिहुँ भुवन मैं	१८०
तुम सिवराज	५७
तुरमती तहखाने	२७५
तुल्यजोगिता तहँ	९५
तुही साँच द्विजराज	१२०
तू तौ रातौ दिन	१३८
तेग-बरदार स्याह	३७१
तेरी असवारी	३७४
तेग धाक ही ते	३६५
तेरे त्रास वैरि	३६४
तेरे ही भुजन पर	६६
तेरो तेज सरजा	३७
तैं जयसिंहहि गढ़	१६३
तो कर सों छिति	१७१
तो सम हो सेस	३४
त्रिभुवन मैं परसिद्ध	१११
दच्छिन के सब	१३
दच्छिन को दावि	१४७
दच्छिन-धरन	१८८
दच्छिन-नायक	१४४
दरबर दौरि करि	३३५
दसरथ जू के राम	११
दानव आयो दगा	७४
दान समै द्विज	२४६
दारहिं दारि मुरादहि	१६७
दारा और औरँग	४१३
दारा की न दौर	३३०
दारुन दइत हरनाकुस	२६२
दारुन दुगुन दुरजोधन	११२
दावा पातसाहन सों	३१५
दिल्लिय दलन दवाय	२६६
दिल्ली को हरौल	३९२
दिल्ली-दल दले	३६७
दीनदयाल दुनी प्रतिपालक	२२६

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
दीपक एकावलि मिले	१८१	नैनजुग नैनन सों	४१८
दीपक पद के	९९	पंच हजारिन बीच	१६१
दुग्ग पर दुग्ग	३४१	पपा मानसर आदि	२२१
दुज कनौज कुल	२०	पक्खर प्रबल	३८९
दुरगहि बल पंजन	७०	पग रन में चल	२०९
दुरजन दार भजि	७६	पर के मन की जानि	२३५
दुवन सदन सब	८१	पहले कहिए बात	१३९
देखत ऊँचाई	८२	पाय बरन उपमान	३२
देखत सरूप को	१२९	पारावार पैरि	४२२
देखत ही जीवन	४१९	पावक तुल्य	२७
देत तुरीगन	१०६	पावस की यक राति	२३२
देवता को पति	४२७	पीय पहारन	५८
देवल गिरावते	३१०	पीरी पीरी हुन्नै	१३७
देस दहपट्ट कीने	२१३	पुनि यथासख्य	२८४
देस दहपट्टि आयो	३५५	पुन्नाग कहुँ	१८
देसन देसन ते	७०	पुहुमि पानि रवि	२८७
देसन देसन नारि	१९२	पूनावारी सुनि कै	२७७
देह देह देह	४१७	पूरब के उत्तर	१४१
दै दस पाँच रुपैयन	१५१	पूरब पूरब हेतु	१७८
दौरि चढ़ि ऊँट	३९०	पैज प्रतिपाल	५४
दौलति दिली की पाय	२१५	पौरच-नरेश	४०६
द्रव्य क्रिया गुन	१४२	प्रथम बरनि जहँ	१८०
द्वारन मतंग दीसे	२५४	प्रथम रूप मिटि	२२२
ध्रुव जो गुरता	२८०	प्रबल पठान फौज	२८४
नामन को निज	२५९	प्रस्तुत लीन्हे	१२१
निकसत म्यान	४१२	प्रेतिनी पिसाचरु	२९१
नृप सभान में आपनी	२१४	फिरगाने फिकिरि	३२७

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
वध कीन्हे बलख	२८३	बीर बीरबर से	२०
बचनन की रचना	१३३	बेंदर कल्यान	१६४
बचैगा न समुहाने	१२२	बैठती दुकान लैके	३८७
बडी औंडी उमडी	३५७	बैर कियो सिव	१९३
बडो डील लखि	११९	ब्रह्म के आनन तें	२२२
बहल न होहिं दल	२९२	ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम	१७६
बन उपवन फूले	४२१	भयो काज बिन	१४५
बरनत हैं आधेय	१७२	भयो होनहारो अरथ	२५०
बरनन कीजै आन को	११९	भले भाय भासमान	४०३
बरने निरुक्तिहु	२८५	भाखत सकत सिवाजी	६३
बर्न्य अवर्न्यन को	९८	भासति है पुनरुक्ति	२७९
बलख बुलारे	३९७	भिन्न अरथ फिरि	२७७
बहसत निदरत	४०	भिन्न रूप जहँ	२३०
बाँएँ लिखवैयन	४२२	भिन्न रूप सादृश्य	२३३
बाजि गजराज सिवराज '	२९४	भुज भुजगेस की	३५८
बाजि बब चढो	४०१	भूपति सिवाजी	१५६
बानर बरार बाघ	२७४	भूप सिवराज	३६८
बाने फहराने	२९०	भूषन एक कवित्त	२८१
बाप तें बिसाल	३७०	भूषन भनत जहँ	१५
बारह हजार असवार	३९१	भूषन भनि ताके	१०
बासव से बिसरत	८५	भूषन भनि सबही	१२४
बिकट अपार	१	भूषन सब भूषननि	२१
बिना कछू जहँ	११५	भेंट सुरजन	४२८
बिना चतुरंग सग	२०३	भेजे लिख लग्न	३९९
बिना लोभ को बिवेक	११६	भौंसिला भूप बली	५०
बीर बिजैपुर के	५१	मंगन मनोरथ के	९२
बीर बड़े बड़े मीर	१४५	मच्छहु कच्छ मैं	१०७

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
मद जल धरन	१०३	या निमित्त यहई भयो	२६२
मन कवि भूषण	१८२	या पूना में मति टिकौ	२५६
मनिमय महल	१४	यों कवि भूषन भाषत है	२२५
मलय समीर	४२०	यों पहिले उमराव	३८१
महावीर ता वस	७	यों सिर पै छहरावत	२२३
महाराज सरजा	४२४	यों सिवराज को	३६
महाराज सिवराज के	२५९	रहत अछक	४०८
महाराज सिवराज चढ़त	१५५	राखी हिंदुवानी	३४८
महाराज सिवराज तव वैरी	१६८	राजत अखंडतेज	३६२
महाराज सिवराज तव सुघर	७७	राजत है दिनराज को	७
महाराज सिवराज तेरे त्रास	४२६	राना भो चमेली	३०७
महाराज सिवराज तेरे वैर	१३४	रैया तें दूत	३६४
माँगि पठायो सिवा कछु	१९८	रैयाराव चपति	३५२
मानसर-वासी हंस	२०६	लसत विहगम	१९
मानो इत्यादिक	८२	लाज धरौ सिवजू सों	१९७
मारे तें रुहेलनि	४२३	लिखे सुने अचरज बड़े	२८०
मारे दल मुगल	३७६	लिय जिति दिल्ली	२७१
मारि करि पातसाही	३४३	लिय धरि मोहकम	२७०
मालवा उजैन	३४२	लूट्यो खानदौरा	७८
मिलतहि कुरुख	२२	लै परनालो सिवा	१६०
मुंड कटत कहुँ	२७२	लोक ध्रुवलोकहू	४२७
मुकतान की झालरिन	१५	लोगन सों भनि भूषन	२३६
मेचक कवच साजि	४१९	लोमस की ऐसी आयु	२०७
मेरु को सोनो	४२८	वस्तु अनेकन को	१९६
मेरु सम छोटो पन	२१०	वस्तु गोय ताको धरम	६५
मोरँग कुमाऊँ	३४०	वस्तुन को भासत	११३
मोरँग जाहु कि जाहु	१९१	वह कीन्ह्यो तो यह कहा	२००

प्रतीक	पृष्ठ सख्या
वाक्यन को जुग	१०२
वारिधि के कुंभभव	३३४
विजपुर बिदनूर	३२५
वेद राखे विदित	३४९
वै देखौ छत्ता	३५१
शिव प्रताप तव	३१
श्रीनगर नयपाल	८६
श्री सरजा सलहेरि के जुद्ध	२२४
श्री सरजा सिव	१४२
श्री सिवराज धरापति	३८६
सक आन को	६७
सकर की किरपा	१७९
सक्र जिमि सैल	३३२
सतयुग द्वापर	३८८
सदा दान किरवान	८
सदृश वस्तु मैं मिलत पुनि	२३१
सदृश वस्तु मैं मिलि जहाँ	२३०
सदृश वाक्य जुग	१०७
सपत नगेस	३५०
सबन के ऊपर ही	३०६
सम छबिवान	१११
सम सोभा लखि	५६
सयन मैं साहन को	२०१
सहज सलील सील	१७०
साँगन सो पेलि-पेलि	३५३
साँचो तैसो बरनिए	२४६
साइति लै लीजिए	२०२
साजि चतुरग बीर	२८९
साजि चमू जनि	३२४
साजि दल सहज	४००
साभिप्राय विशेषननि	१२२
सामान्य और विसेप	२८५
सारस से सूबा	३४७
सारी पातसाही	३७३
सासताखाँ दक्खिन को	२४४
सासताखाँ दुरजोधन	२४
साहि के सपूत रनसिंह	३४६
साहि के सपूत सिवराज	३७९
साहितनै तेरे बैर	२४३
साहितनै सरजा की कीरति	१६६
साहितनै सरजा के भय	६७
साहितनै सरजा खुमान	७१
साहितनै सरजा तव	२९
साहितनै सरजा समरत्थ	२०४
साहितनै सरजा सिव के गुन	१५८
साहितनै सरजा सिवा की	४०
साहितनै सरजा सिवा के	२२९
साहितनै सिव तेरो	१५०
साहितनै सिवराज ऐसे	२५७
साहितनै सिवराज की	१४६
साहितनै सिवराज भूपन	४७
साहितनै सिव साहि	७५
साहितनै सुभट	४२५
साहिन के उमराव	२३९

प्रतीक	पृष्ठ संख्या	प्रतीक	पृष्ठ संख्या
साहिन के सिच्छक	१३	सुजस दान अरु	१८०
साहिने सन समरत्थ	२	सुनि सु उजीरन	७०
साहिन सों रनै	१०९	सुने हूजै	४२१
साहूजी की साहिबी	३९८	सुविनोक्ति भूपन	२८८
सिंह थरि जाने बिन	४४	सुभ सत्रह सै तीस	२८५
सिंहल के सिंह	३७७	सुमन मैं मकरन्द	३७५
सिव औरंगहि	१०५	सुविसेप उक्ति	२८४
सिव चरित्र लखि	२१	सूवन साजि पठावत	२५३
सिव सरजा की जगत मैं	२२८	सूवा निरानँद	३२१
सिव सरजा की सुधि	२४०	सूर सरदार	४२३
सिव सरजा के कर	६२	सूर सिरोमनि	१२४
सिव सरजा के बैर	२१४	सैयद मुगल पठान	३७२
सिव सरजा तव दान	१००	सौंधे को अधार	३०१
सिव सरजा तव सुजस	२३१	सोभमान जग पर	११५
सिव सरजा तव हाथ	१६९	स्वर समेत अच्छर	२६५
सिव सरजा भारी	९७	हरयो रूप इन	२६०
सिव सरजा सों जग	१७३	हाथ तसबीह लिये	३०४
सिवा की बड़ाई	३३६	हिन्दुनी सों तुरकिनि	१३२
सिवाजी खुमान तेरो	२२७	हित अनहित	९७
सिवाजी खुमान सलहेरि	१७३	हीन होय उपमेय	३३
सिवा बैर औरंग	२४०	हेतु अनत ही होय	१५८
सीता संग सोभित	१२७	हेतु अपह्नुत्यौ	२८३
सुंदन समेत कटि	४२७	है दिढ़ाइबे जोग	२०२
सुंदरता गुरुता	१९६	हैवर हरट्ट साजि	३५९
सुकविनहूँ की	२१	हैवत हो फीलखाने	४२२

प्रबन्ध-प्रभाकर

(ले०—प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् तथा 'नवरस' के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक बाबू गुलाबराय, एम. ए., एल-एल. बी.)

इसमें विद्वान् लेखक के साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विषयों; हिन्दी-साहित्य की विभिन्न धाराओं; प्रमुख कवियों; गद्य, नाटक आदि के विकास और उनके विविध रूपों, तथा अन्य उपयोगी विषयों पर परिपक्व विचारों को लेकर प्रौढ़ भाषा में लिखे गये ४५ समालोचनात्मक निबन्ध एकत्र किए गये हैं। लेखन-कला के ज्ञान के लिए यह अनूठी और अनुपम पुस्तक है। भारतीय विश्वविद्यालयों की हिन्दी की इंटर और बी० ए० परीक्षा, पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी-प्रभाकर परीक्षा, हिन्दी-विश्वविद्यालय, प्रयाग की मध्यमा परीक्षा तथा वर्नाक्युलर बोर्ड की वर्नाक्युलर टीचर्स सार्टिफिकेट और एडवांस परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए अत्युपयोगी पुस्तक। पुस्तक आगरा और इलाहाबाद युनिवर्सिटियों की बी. ए. परीक्षा मे पाठ्य-पुस्तक नियत हो चुकी है। पृष्ठ संख्या ३०० से अधिक; मूल्य १॥)

काव्य-प्रदीप

ले०—पं० रामबहोरी शुक्ल, एम. ए., साहित्यरत्न, क्वींस कालेज, बनारस

वर्षों के अध्यापन के अनुभव के बाद और विद्यार्थियों की कठिनताओं से परिचित होकर विद्वान् लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। इसमें रस, गुण, अलंकार, छन्द आदि काव्य के अंगों का सुबोध विवेचन किया गया है। इस कठिन विषय को एकदम नये, वैज्ञानिक और मौलिक ढंग से स्पष्ट किया गया है। उदाहरण प्रायः सभी आजकल की खड़ी बोली की कविता से दिये गये हैं। इसीलिए 'प्रभाकर' परीक्षा के विद्यार्थी इसकी सहायता से अलंकार तथा छंद जैसे कठिन विषय को बड़ी आसानी से समझ सकते हैं। पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा और हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा नागपुर युनिवर्सिटी की इंटर और बी. ए. परीक्षाओं मे पाठ्य-पुस्तक नियत की गई है। मूल्य १॥)